अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय

(एक गवेषणात्मक अध्ययन)

प्रयाग विश्व विद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिये स्वीकृत

लेखक

डा० दीनदयालु गुप्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

मूल्य २०) दो भाग

प्रथमबार] [संवत् २००४

मुद्रक

भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

क्रम

समर्पण

नाम रूप गुन भेद जो, सोइ प्रकट सब ठौर ॥

❀ ❀ ❀

रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि ।

सो सब गिरिधर देव को, निधरक बरनौं ताहि ॥

❀ ❀ ❀

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक ॥

❀ ❀ ❀

तुम तजि कौन नृपति पै जाउँ ।

काके द्वार पैठि सिर नाऊँ, परहथ कहाँ बिकाउँ ।

तुम करुनामय त्रिभुवननायक, विश्वंभर जाको नाउँ,

सुरतरु, कामधेनु चिन्तामनि, सकल भुवन जाको ठाउँ ।

तुमते को दाता, को समरथ, जाके दिये अघाउँ,

परमानन्द हरि-सागर तजि कैं, नदी सरन कत जाउँ ॥

अष्टछाप के आराध्य देव !

नाम-रूप-गुण-भेद से भक्ति-भक्त-भगवन्त-गुरु रूप – आप ही इस कृति में व्याप्त हैं । अतः यह कृति भी आपकी ही है ।

विनीत

दीनदयालु

उपोद्घात

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अष्टछाप के कवियों का एक विशिष्ट स्थान है। यदि इनमें केवल सूरदास ही होते तब भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती। परन्तु इनमें और भी कई महाकवि की पदवी के योग्य हैं। हिन्दी साहित्य के विकास का ज्ञान बिना इनके काव्य को पढ़े हुये सम्भव नहीं है। व्रजप्रान्त के ये अनमोल रत्न हैं। इनका प्रभाव समस्त हिन्दी काव्य पर है। सूर की कविता संसार के महान् कवियों की कृति से किसी अंश में न्यून नहीं है। नन्ददास के काव्य में माधुर्य प्रचुर मात्रा में है। इन कवियों के ग्रन्थों में केवल काव्य सौन्दर्य ही नहीं है, संगीत का ज्ञान ही नहीं है, कृष्णभक्ति का विविध रूप भी इनमें मिलता है। साहित्य-प्रेमी इनके काव्य का रसास्वादन करते हैं, सङ्गीतमर्मज्ञ इनको सुनकर प्रफुल्लित होते हैं, और भक्त इनको सुनकर और पढ़कर परम आनन्द प्राप्त करते हैं। आश्चर्य की बात है कि भगवान् के कई अवतार हुये, परन्तु व्रज के कृष्ण के व्यक्तित्व का जितना गहरा प्रभाव जनता पर पड़ा उतना किसी और का नहीं। बच्चे उनकी लीलाओं की कथाओं और बालकाल की क्रीड़ाओं को सुनकर उनकी ओर आकर्षित होते हैं, युवक उनके रासरंग और राधिकास्नेह को देखकर उनको प्रेममूर्ति मानते हैं, और प्रौढ गीता के प्रणेता को जगद्गुरु के रूप में देखते हैं। सूरदास कहते हैं—

"जो रस रास रंग हरि कीन्हें वेद नहीं ठहरान्यो।"

और नन्ददास—

'रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनौं ताहि॥'

और कृष्ण की आराधना केवल व्रज में ही नहीं हुई। समस्त भारतवर्ष में कृष्ण के भक्त पाये जाते हैं। कृष्ण काव्य गुजराती, बङ्गला और मैथिली साहित्य का भी प्रधान अङ्ग है। किसी और मनुष्य अथवा अवतार के सम्बन्ध में इतनी कवितायें नहीं लिखी गई हैं। इतने प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा और भक्ति से ये कवितायें रची गई हैं कि इनकी तुलना किसी और काव्य से नहीं हो सकती है। संस्कृत साहित्य में भी कृष्ण की

महिमा बखानी गई है। श्रीमद्भागवत की अमृतधारा आज भी हमें प्लावित करती है। जयदेव की मधुर कोमल-कान्त-पदावली से हमें आज भी आह्लाद मिलता है। संस्कृत पढ़ने वाला कौन इन पदों को प्रसन्नता से बार बार नहीं पढ़ता है ?

पीनपयोधरभारभरेण हरि परिरम्य सरागम् ।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदंचितपंचमरागम् ॥
कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥
कापि कपोलतले मिलितालपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
कापि चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥
केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।
मंजुलवंजुलकुंजगतं विचकर्ष करेण दुकूले ॥
करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥
श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मितचारुतरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥

परन्तु ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में इससे भी अधिक माधुर्य है। वह इससे भी अधिक हृदय-ग्राहक है। जैसा श्री वियोगी हरि जी ने कहा है, "उस ब्रजभाषा के प्राचीन साहित्य में तो अपूर्व ही चीजें मिलेंगी। वह रस, वह भाव, वह माधुर्य मुश्किल से अन्यत्र देखने में आयेगा। उस युग में भक्त-सत्कवियों ने प्रेम-जाह्नवी की दिव्य-दिव्य धाराएँ बहा दी थीं। दशों दिशाओं में जगमोहन की मधुर-मधुर बाँसुरी गूँजने लगी थी। सहस्रों संसार-परितप्त जीव सुशीतल प्रेम-निकुंज की सुखद छाया में विश्राम और शान्ति पाने लगे। सैकड़ों प्रेमोन्मत्त भक्त आपे को भूलकर नाच उठे थे।" उसी युग के भक्त अष्टछाप के कवि हैं। "श्री गोवर्द्धन नाथजी के प्राकट्य की वार्ता" में लिखा है—

"जब श्री गोवर्धननाथ जी प्रगट भये तब अष्ट सखाहू भूमि में प्रगट भये, अष्टछाप रूप होय कैं सब लीला को गान करत भये। तिनके नाम को छप्पय श्री द्वारकानाथ जी महाराजकृत—

"सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानन्द जानो,
कृष्णदास सो ऋषभ छीतस्वामी सुबल बखानो।
अर्जुन, कुम्भनदास, चत्रभुजदास, विशाला,
विष्णुदास सो भोजस्वामी गोविंद श्री दामाला।

अष्टछाप आठों सखा श्री द्वारकेश परमान ,
जिनके कृत गुनगान करि निज जन होत सुथान ।"

श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने यह दिखाया है कि नन्ददास का नाम इस छप्पय में नहीं है, यद्यपि "भावप्रकाश" में गोस्वामी हरिराय नन्ददास के विषय में लिखते हैं कि 'जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं।"

अष्टछाप के कवि ये हैं—(१) सूरदास, (२) परमानन्ददास, (३) कुम्भनदास, (४) कृष्णदास, (५) नन्ददास, (६) चतुर्भुजदास, (७) गोविन्दस्वामी, (८) छीतस्वामी। इन पर यह ग्रन्थ डाक्टर श्रीदीनदयालुजी गुप्त ने प्रयाग विश्व विद्यालय की डी॰लिट् उपाधि के लिए लिखा था इसमें एक विलक्षणता यह है कि पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य ने प्रयाग के समीप ही अपना निवास स्थान बनाया था। उनके प्रमुख शिष्यों की कविता से सभी हिन्दी प्रेमी परिचित हैं। कृष्ण के जीवन का प्रत्येक अंश, उनके अङ्ग और आभूषण, उनकी लीलायें, उनकी बाल-क्रीड़ायें, उनके प्रेम, उनके वात्सल्य, उनकी सुहृद्भक्ति, उनके वैराग्य—इत्यादि का वृत्तान्त अत्यन्त सरस और मनोरंजक रूप में इस काव्य में है। सूर की कविता की प्रशंसा करना अनावश्यक है। हिन्दी से जो भी परिचित सूर का भक्त है, सूर का प्रेमी है, इन पदों को जो एक बार पढ़ चुका हो कभी भूल नहीं सकता है—

श्याम अंग युवती निरखि भुलानी।
कोउ निरखति कुंडल की आभा यतनेहि मोल बिकानी ॥"

'देखो भाई या बालक की बात।
वन उपवन सरिता सब मोहे देखत श्यामल गात ॥"

"मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोलको लीनों तू जसुमति कब जायो ॥"

"मेरे कुंवर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धरयो रहै।'

"नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहाँ तें सजनी सुनियतु दूर सिधारे ॥"

"उधो, मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।"

नन्ददास के पद भी स्मरणीय हैं, विशेष कर "भँवरगीत" के और "रासपंचाध्यायी" के—

"कोउ कहै ये निठुर, इन्हैं पातक नहिं व्यापै।
पाप-पुन्य के करनहार, ये ही हैं आपै॥
इनके निर्दय रूप मैं नाहिन कोऊ चित्र।
पय-प्यावत आनन हरे, पूतना बाल चरित्र॥
मित्र ये कौन के॥"

"कोउ कहै री विस्व माँझ जेते हैं कारे।
कपटी, कुटिल, कठोर, परम मानस मतिहारे॥
एक स्याम तन परसि कै, जरत आज लौं अंग।
ता पाछैं फिरि मधुप यह, लायो जोग-भुजंग॥
कहा इन को दया॥"

"जब दिनमणि श्री कृष्ण दृगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि पर्‍यो अँधियार सकल संसार घुमड़घुरि॥
तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक-दुख देखि दयाकर।
प्रगट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत-विभाकर।"
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि-मधि नीलमनी अद्भुत झलकै अस॥
'नव मरकतमनि स्याम कनक मनिगन ब्रजबाला।
वृन्दावन कौं रीझि मनों पहिराई माला॥
मृदुल मधुर-टंकार ताल झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की तार भँवरगुंजार रली पुनि॥

सूर और नन्ददास के पद बहुत से पाठक जानते हैं परन्तु शेष सखाओं के काव्य इतने प्रसिद्ध नहीं हुये। फिर भी औरों की कविता में भी लालित्य है—

कृष्णदास

"मो मन गिरधर-छवि पै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकैं चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो॥
सजल स्यामघन-बरन लीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यो।
'कृष्णदास' किये प्रान निछावर यह तन जग सिर पटक्यो॥"

परमानन्ददास

भली यह खेलिबे की बानि।
मदनगुपाल लाल काहू की नाहिन राखत कानि॥
अपने हाथ लै देत हैं बनचर दूध दही घृत सानि,
जो बरजों तौ आँखि दिखावैं पर धन कों दिनदानि।
सुन री जसोदा सुतके करतब पहले माँट मथानि,
फोरि डारि दधि डार अजिर में कौन सहै नित हानि।"

कुम्भनदास

केते दिन जु गये बिनु देखैं,
तरुन किसोर रसिक नँद-नन्दन कछुक उठति मुख रेखैं।
वह शोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चद बिसेखैं,
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर वपु भेखैं।
स्यामसुँदर-सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं,
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखैं।

इन्हीं भक्तकवियों पर यह पुस्तक लिखी गई है। श्री दीनदयालुजी ने इसमें बहुत परिश्रम किया है। और जहाँ कहीं भी इस विषय पर सामग्री मुद्रित, हस्तलिखित—मिल सकी है उसका उपयोग किया है। ब्रज का भौगोलिक वर्णन, अष्टछाप के समय की राजनैतिक और सामाजिक दशा का वृत्तान्त, भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की विवेचना, कवियों का जीवन चरित्र, कवियों की रचनाओं की समीक्षा, पुष्टिमार्ग का विवरण, वल्लभ-सम्प्रदाय और इन कवियों के दार्शनिक विचार, तथा भक्ति – इससे विदित होगा कि किस प्रकार से यह अध्ययन सर्वाङ्ग पूर्ण है। मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ विद्वानों के आदर का पात्र होगा।

अमरनाथ झा

डा० अमरनाथ झा
एम० ए०, डी० लिट्०
प्रयाग

परिचय

'अष्टछाप' कवियों के इस प्रथम विस्तृत अध्ययन को हिंदी विद्वानों तथा पाठकों के संमुख रखने में मुझे विशेष हर्ष तथा संतोष है। हर्ष इसलिए कि यह मेरे प्रथम शिष्य डा० दीनदयाल गुप्त के वर्षों के परिश्रम का फल है, और संतोष इसलिए कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिंदी-कृष्णभक्ति-धारा की खोज विशेष अग्रसर हो सकेगी।

साधारण हिंदी पाठक भी 'पृष्ठभूमि' शीर्षक अध्याय को रोचक तथा उपयोगी पावेंगे। अष्टछाप कवियों की जीवनी तथा कृतियों के अध्ययन की सामग्री एकत्रित करने में डा० गुप्त ने विशेष परिश्रम किया है। इस सामग्री से जो निष्कर्ष उन्होंने निकाले हैं उन सबसे प्रत्येक विद्वान् सम्मत हो यह आवश्यक नहीं है। इस क्षेत्र के भावी कार्यकर्त्ताओं के लिए 'अध्ययन के सूत्र' शीर्षक अध्याय में संकलित सामग्री सदा सहायक सिद्ध होगी।

ग्रन्थ के दूसरे भाग में असाधारण महत्व की सामग्री है। वल्लभ संप्रदाय से संबोधित मूल संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करके डा० गुप्त ने संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रथम विस्तृत विवेचन उपस्थित किया है, और इस कसौटी पर अष्टछाप-कवियों की दार्शनिक विचारधारा को कसा है। ग्रन्थ का यह अंश अत्यन्त बहुमूल्य है। अंतिम अध्यायों में नंददास और परमानंददास की कृतियों की भाषा तथा काव्यगत आलोचना है। आशा है कि अगले संस्करण में शेष अष्टछाप कवियों की कृतियों की संक्षिप्त आलोचना बढ़ाकर डा० गुप्त इस अंश को पूर्ण कर देंगे।

हिंदी-साहित्य के गंभीर अध्ययन और मौलिक खोज के स्तर को यह ग्रन्थ ऊपर उठावेगा इसका मुझे पूर्ण विश्वास है, अतः इस बहुमूल्य कृति का मैं स्वागत करता हूँ तथा डा० गुप्त को हार्दिक बधाई देता हूँ। आशा है कि भविष्य में भी डा० गुप्त के द्वारा हिन्दी साहित्य अनुशीलन का कार्य इसी प्रकार होता रहेगा।

डा० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट०
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
विश्वविद्यालय, प्रयाग

धीरेन्द्र वर्मा
कृष्ण जन्माष्टमी, सं० २००४

प्रस्तावना

इस ग्रन्थ में हिन्दी-ब्रजभाषा के प्रसिद्ध अष्टछाप भक्त-कवियों का अध्ययन किया गया है। अष्टछाप-काव्य की महत्ता की प्रशंसा हिन्दी के सभी प्रमुख विद्वानों ने की है। स्व० डा० श्यामसुन्दरदास ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में इन कवियों के विषय में कहा है—'जीवन के अपेक्षाकृत निकटवर्ती क्षेत्र को लेकर उसमें अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखा देने में सूर की सफलता अद्वितीय है। सूक्ष्मदर्शिता में सूर अपना जोड़ नहीं रखते . अष्टछाप में प्रत्येक ने पूरी क्षमता से प्रेम और विरह के सुन्दर गेय पद बनाये।"[1] स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—"आचार्यों की छाप लगी आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वाणी की थी।. .. मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया"।[2] इसी प्रकार मिश्रबन्धुओं ने भी हिन्दी के वैष्णव कवियों में अष्टछाप को सर्वप्रधान माना है।[3] वस्तुतः इस वर्ग का अकेला कवि सूर ही इतना महान् भक्त, दार्शनिक कवि और सङ्गीताचार्य है कि तुलसी को छोड़ आज तक इसके जोड़ का कोई कवि नहीं हुआ। नन्ददास के पद लालित्य और भावावलि की प्रशंसा हिन्दी संसार मुक्त कण्ठ से करता है। परमानन्ददास का 'परमानन्दसागर' भी सूरसागर की टक्कर का कहा जाता रहा है। खेद का विषय है कि केवल अल्प उपलब्ध रचनाओं के आधार पर ही, इतनी प्रशंसा के अधिकारी माने हुए, इन आठ महान् कवियों की रचनाओं की न तो भली प्रकार अब तक खोज हुई थी, न उपलब्ध रचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच हुई, और न उनके काव्य का दर्शन तथा भक्ति की दृष्टि से गम्भीर अध्ययन ही हुआ। इन आठ कवियों में से केवल सूर और नन्ददास का ही, हिन्दी में, कुछ अध्ययन हुआ है, परन्तु उस में भी, इन कवियों के जीवन-चरित्र की खोज इनके काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन, इनके नाम पर गिनाये जाने-वाले ग्रन्थों की परीक्षा तथा काव्य और आध्यात्मिक दृष्टि से इन ग्रन्थों की विस्तृत

1—हिन्दी भाषा और साहित्य, सं० १९९४ संस्करण, पृ० ३१६, ३२२, ३२६ तथा ३२७।

२—भ्रमरगीतसार, प्रथम संकरण, भूमिका, पृ० २।

३—मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, नवीन संस्करण, पृ० २१६।

समालोचना की कमी है। इसी महती आवश्यकता का अनुभव करके, प्रस्तुत अध्ययन में इन कमियों की पूर्ति का किञ्चित प्रयास किया गया है।

ग्रन्थ के सात अध्याय दो भागों में विभाजित हैं। चार अध्याय पहले भाग में हैं और तीन दूसरे में। प्रथम अध्याय में व्रजभूमि का परिचय, अष्टछाप से सम्बन्धित व्रज के स्थानों का विवरण, व्रज का मानचित्र, साहित्यिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत इन कवियों की स्थिति का समय-निर्धारण अध्ययन का मौलिक अङ्ग है। इसी अध्याय में धार्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत, तुलनात्मक अध्ययन के लिए, अष्टछाप के पूर्ववर्ती तथा समसामयिक व्रज में प्रचलित धार्मिक आन्दोलनों—जैसे निम्बार्क, माध्व, विष्णुस्वामी, चैतन्य, वल्लभ, राधा-वल्लभीय, और हरिदासी सम्प्रदायों, का परिचय दिया गया है। इन सम्प्रदायों के विवरण के लिए अँगरेज़ी में प्रकाशित साहित्य की सहायता के अतिरिक्त लेखक ने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के मूल संस्कृत ग्रन्थों का मुख्य आधार लिया है। द्वितीय अध्याय में अष्टछाप के जीवन-वृत्त तथा रचनाओं की सूचना देनेवाले सूत्रों (Sources) का अध्ययन है। इन सूत्रों की खोज, उनकी प्रामाणिकता पर विचार, तथा हिन्दी साहित्य में प्रचलित मतमतान्तरों की आलोचना लेखक की मौलिक कृति है। तृतीय अध्याय में कवियों के जीवन चरित्र दिये गये हैं। इसमें प्राचीन अप्रकाशित विश्वस्त सूत्रों के आधार पर इन कवियों के चरित्र दिये गये हैं। अकबरकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा वल्लभसम्प्रदायी परम्परा तथा उस सम्प्रदाय के ग्रन्थों के आधार पर इन कवियों की जन्म, शरणागति तथा गोलोकवास की तिथियाँ भी निर्धारित की गई हैं। चतुर्थ अध्याय में अष्टछाप के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार है। अष्टछाप कवियों द्वारा रचित कही जानेवाली रचनाएँ, 'सूरसागर' तथा नन्ददास के ग्रन्थों को छोड़कर, अभी तक प्रकाश में नहीं आईं। नन्ददास के ग्रन्थ भी, प्रयाग विश्वविद्यालय से, इस ग्रन्थ की समाप्ति के दिनों में ही प्रकाशित हुए। लेखक को नन्ददास के अध्ययन के लिए भी हस्तलिखित तथा अप्राप्य छपी सामग्री ढूँढ़कर जुटानी पड़ी। इन कवियों की 'परमानन्दसागर' आदि रचनाओं के संग्रह, लेखक ने श्रीनाथद्वार, काँकरौली, सूरत, कामवन, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, अलीगढ़ आदि स्थानों में स्वयं जाकर, खोज के साथ, प्राप्त किये हैं। हिन्दी के अब तक के लेखकों ने, अष्टछाप-कवियों के साथ नाम-साम्य रखनेवाले अनेक कवियों की रचनाएँ अष्टछाप नाम पर, बिना उनकी जाँच किये हुए, लिख दी हैं। लेखक ने इनकी प्रमाणिकता पर भी विचार किया है

पञ्चम तथा षष्ठ अध्यायों में वल्लभ सम्प्रदाय तथा इन अष्ट कवियों के दार्शनिक विचार तथा भक्ति का विवेचन है। इन विषयों के ज्ञान के लिए लेखक ने वल्लभ-सम्प्रदायी ग्रन्थों का तथा अन्य भक्ति-ग्रन्थों का अध्ययन किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय की सेवा-पद्धति की जानकारी के लिए उसने उस सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिरों की यात्रा की है, और साम्प्रदायिक महात्माओं तथा विद्वानों के प्रवचनों के सुनने के कुछ अवसर भी प्राप्त किये हैं। दर्शन-शास्त्र का विषय गहन विवेक और भक्ति का विषय स्वानुभूति की अपेक्षा रखते हैं। इन दोनों आवश्यकीय बातों

का लेखक में नितान्त अभाव है। फिर भी उसने अष्टछाप के दार्शनिक विचार तथा उनकी प्रेमानुभूतियों के जानने की चेष्टा की है। अष्टछाप पर अब तक प्रकाशित सामग्री की तुलना में लेखक का यह अध्ययन भी अपनी क्या देन रखता है, यह विज्ञ पाठक समाज ही जानेगा।

सप्तम अध्याय में परमानन्ददास और नन्ददास के ग्रन्थों का काव्य की दृष्टि से विशेष अध्ययन है। परमानन्ददास की सम्पूर्ण काव्य-समीक्षा तथा नन्ददास-ग्रन्थों की विस्तृत व्याख्या इस अध्याय के मौलिक अंश हैं। काव्य विवेचन के आरम्भ में आठों कवियों के काव्य-गुणों का केवल परिचयात्मक वर्णन ही है। इसमें आठों कवियों की काव्य-समीक्षा नहीं की गई। काव्य की दृष्टि से परमानन्ददास तथा नन्ददास के ग्रन्थों का ही विशेष विवरण दिया गया है।

सम्भव है, ग्रन्थ में आई हुई कुछ पुनरावृत्तियाँ खटकनेवाली प्रतीत हों। उनके विषय में लेखक का विनम्र कथन है कि लेखक ने परमानन्ददास तथा नन्ददास दोनों कवियों की अलग-अलग काव्य-समीक्षा की है। नन्ददास के प्रत्येक ग्रन्थ की आलोचना भी एक दूसरे ग्रन्थ से स्वतन्त्र रक्खी है। इसलिए प्रत्येक समालोचना में प्रसङ्गों के शीर्षकों की पुनरावृत्ति हो गई है। उधर एक-एक विषय पर आठों कवियों के अलग-अलग विचार दिये हुए हैं, इसलिए प्रत्येक विषय के शीर्षक के अन्तर्गत अष्टछाप-कवियों के नामों की भी पुनरावृत्ति हुई है। अष्टछाप के दार्शनिक विचार-विवेचन के अन्तर्गत नन्ददास के ग्रन्थों में आनेवाली आध्यात्मिक विचारधारा का विस्तार-भय से, केवल सङ्केतमात्र ही हो पाया था। कवि की विचारधारा का उसके अलग-अलग ग्रन्थों में स्पष्टीकरण किया गया है। इस प्रकार से भी कहीं कहीं नन्ददास की काव्य-समीक्षा में विषय की पुनरावृत्ति हो गई है। ग्रन्थों की स्वतन्त्र समीक्षा के बाद नन्ददास के काव्य की समष्टि-दृष्टि से भी आलोचना है।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होगा कि इस ग्रन्थ के दोनों भागों में जीवन-चरित्र, रचना, दार्शनिक विचार तथा भक्ति भावना की दृष्टि से तो आठों कवियों का अध्ययन किया गया है, परन्तु काव्य-समीक्षा के लिए केवल परमानन्ददास तथा नन्ददास, दो ही कवि लिये गये हैं। आगे लेखक का विचार छूटे अंशों को भी पूरा करने का है। ग्रन्थ के साथ में लगी सहायक तथा उद्धृत ग्रन्थों की सूची से ज्ञात होगा कि लेखक ने अध्ययन के मूल सूत्रों पर पहुँचने का प्रयास किया है।

पिछले वर्ष, हरजीमल डालमिया पुरस्कार प्रतियोगिता में इस पुस्तक की पांडुलिपि पर २१००) रुपये का पुरस्कार मिला था। उक्त पुरस्कार समिति के इस निर्णय ने लेखक के उत्साह को बढ़ाया है। अष्टछाप के अध्ययन, उनकी रचनाओं की प्राप्ति तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में जिन सज्जन और संस्थाओं से सहायता मिली है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी लेखक का कर्तव्य है। सर्वप्रथम, लेखक प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डा० श्री अमरनाथ झा, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत, भारतीय संस्कृति, पाली, प्राकृत आदि भाषा-विभाग के

अध्यक्ष प्रो० को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है, जिनकी देखरेख में और जिनकी असीम कृपा के प्रसादरूप यह कार्य सम्पादित हुआ है। डा० वर्मा तो लेखक के मुख्य पथ-प्रदर्शक ही थे। महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, स्व० आचार्य डा० श्यामसुन्दरदास तथा विद्वद्वर मिश्रबन्धुओं के प्रति लेखक अत्यन्त कृतज्ञ है, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय और अनेक सत्परामर्श दिये हैं। काँकरोली के गो० श्रीब्रजभूषणलाल जी महाराज, गो० श्री विट्ठलनाथजी, महाराज श्री जी सूरत, काँकरोली-विद्या-विभाग के सञ्चालक पं० कण्ठमणि शास्त्री तथा भगवदीय द्वारिकादासजी, श्रीनाथद्वार के परम विद्वान् पं० रमानाथ शर्मा शास्त्री, काशी-विश्वविद्यालय के प्रो० जीवनशङ्कर याज्ञिक, हिन्दी के परम हितैषी डा० भवानीशङ्कर याज्ञिक, मथुरा के पं० जवाहरलाल चतुर्वेदीजी और सोरों जिला एटा के पं० भद्रदत्त शर्माजी के प्रति भी लेखक अपना आभार प्रकट करता है। उसको इन सज्जनों से अष्टछाप की अप्रकाशित सामग्री तथा वल्लभ-सम्प्रदाय सम्बन्धी विशिष्टबातों की जानकारी प्राप्त हुई है।

आचार्य डा० अमरनाथ झा तथा गुरुवर डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने इस ग्रन्थ के उपोद्घात तथा परिचय लिखकर ग्रन्थ के गौरव को बढ़ाया है। इन दोनों गुरुजनों का लेखक श्रद्धापूर्वक विशेष आभार मानता है। अन्यत्र कई वर्ष की प्रकाशन-प्रतीक्षा के बाद यह ग्रन्थ परम श्रद्धेय माननीय श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डनजी तथा मित्रवर श्रीरामचन्द्र टण्डनजी की सद्भावना और कृपा द्वारा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रकाशन में छपा है, इनकी महती कृपा और सदिच्छाओं की लेखक किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करे! पुस्तक के छपते समय प्रूफ के शोधन में लेखक के स्नेहभाजन मित्र और शिष्य श्री प्रेमनारायण टण्डन ने बहुत सहायता की है, उनको स्नेहपूर्वक धन्यवाद है। जिन विद्वानों के ग्रन्थों से इस पुस्तक में सहायता ली गई है, उन सबके प्रति भी लेखक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। अन्त में लेखक अपने आत्मीय, पूज्यजन तथा मित्रवर्ग, विशेष रूप से गुरुदेव पं० गोकुलचन्द्र शर्मा तथा बालसखा श्रीरघुवंशलाल गुप्त की शुभ कामना, प्रोत्साहन और सहायता के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता है।

ग्रन्थ के विविध भागों में प्रसङ्गवश जिन विद्वानों की कृतियों की आलोचना हुई है, उनके प्रति लेखक के हृदय में भारी सम्मान है। अष्टछाप-जीवनी और काव्य-सम्बन्धी खोज की सामग्री के आधार पर लेखक ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनको लेखक अन्तिम वाक्य कहने का दावा नहीं करता, परन्तु हिन्दी के विज्ञ आलोचकों से यह विनम्र आशा अवश्य करता है कि वे उक्त सामग्री के निजी परीक्षण और निरीक्षण के बाद लेखक के मत की जाँच करें।

पुस्तक में जहाँ-तहाँ छापे की त्रुटियाँ रह गई हैं। इसका लेखक को खेद है। यदि कृष्णभक्ति-रस और हिन्दी-काव्य-रस के मर्मज्ञ रसिक-जनों को इसमें कुछ रोचकता मिली तो लेखक अपने श्रम को सफल समझेगा।

विनीत

संवत २००४ वि०

दीनदयालु गुप्त

विषय सूची

भाग (१)

प्रथम अध्याय

पृष्ठ भूमि (१—८०)

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र (८१-१६७)

तृतीय अध्याय

अष्टछाप जीवन-चरित्र (१६८-२७८)

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप के ग्रन्थ (२७९-३९१)

भाग २

पञ्चम अध्याय

दार्शनिक विचार (३९३—५१५)

षष्ठ अध्याय

भक्ति (५१६-६६२)

सप्तम अध्याय

काव्य-समीक्षा (६९३-८९५)

नन्ददास के प्रामाणिक ग्रन्थों का विशेष विवरण तथा काव्य समीक्षा

परिशिष्ट

चित्रतालिकादि सूची

संक्षेप और संकेत

इन ग्रन्थों का विशेष विवरण सहायक ग्रन्थों की सूची में भी दिया हुआ है।

अष्टछाप	सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा	अष्टछाप, डा० वर्मा
अष्टछाप	प्रकाशक विद्या विभाग कॉंकरौली	अष्टछाप, कॉंकरौली
इम्पीरियल फ़रमान्स	सम्पादक के० एम्० झावेरी बम्बई	इम्पीरियल फ़रमान्स झावेरी
कीर्तन-सङ्ग्रह	प्रकाशक लल्लूभाई छगनलाल देसाई	कीर्त्तनसङ्ग्रह, देसाई
गीता-रहस्य	लेखक लोकमान्य तिलक	गीता रहस्य
नन्ददास, दो भाग	सम्पादक उमाशङ्कर शुक्ल	नन्ददास, शुक्ल
साहित्य-लहरी	सङ्ग्रहकर्त्ता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रकाशक खड्गविलास प्रेस सम्पादक रामदीनसिंह	साहित्यलहरी रामदीनसिंह
भक्तमाल	टीकाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु, भक्तमाल
भक्तमाल भक्तिसुधा स्वादतिलक	टीकाकार श्री सीताराम शरण भगवानदास रूपकला, संस्करण सन् १९३७ ई०	भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक, रूपकला
भँवरगीत	ले० नन्ददास, सम्पादक विश्म्भर नाथ मेहरोत्रा	भँवरगीत मेहरोत्रा
सूरसागर	प्रकाशक वेंकटेश्वर प्रेस, १९६४ वि० संस्करण	सूरसागर, वे० प्रे०
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट या खो० रि०
नन्ददास पदावली	लेखक का निजी सङ्ग्रह तथा संग्रह पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी मथुरा और विद्या विभाग, कॉंकरौली	ले० नि० नन्ददास पद संग्रह
पद-सङ्ग्रह कुम्भनदास	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० कुम्भनदास पद संग्रह
पद-सङ्ग्रह कृष्णदास	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्या विभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० कृष्णदास पद-संग्रह
पदसंग्रह गोविंदस्वामी	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० गोविंद स्वामी पद संग्रह

पद-संग्रह चतुर्भुजदास	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, काँकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० चतुर्भुजदास पद-संग्रह
पद-संग्रह छीतस्वामी	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्या विभाग, काँकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० छीतस्वामी पद-संग्रह
पदसंग्रह नन्ददास	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, काँकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० नन्ददास पद-संग्रह
पद-संग्रह परमानन्ददास	लेखक का निजी सङ्ग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, काँकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार में	ले० नि० परमानन्द दास पद-संग्रह
तत्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण फलप्रकरण, भागवतार्थ प्रकरण	लेखक श्रीमद् वल्लभाचार्य संशोधक पं० गोकुलदास कोटा प्रकाशक पं० श्रीधर शिवलाल जी, ज्ञान सागर यन्त्रालय बम्बई	त० दी० नि० बम्बई
नाट्य-शास्त्र	लेखक महामुनि भरत सम्पादक एम० रामकृष्ण कवि, प्रकाशक सेंट्रल लाइब्रेरी बरोदा, संस्करण १९२६ ई०	नाट्य शास्त्र, भरत प्र० सें० ला० बरोदा
निम्बादित्य दशश्लोकी सिद्धान्त कुसुमाञ्जलिभाष्य	श्रीहरिव्यासदेव प्रणीत प्रकाशक निर्णय सागर प्रेस	निम्बादित्य दशश्लोकी हरिव्यासदेव
लघु भागवतामृत	लेखक श्री रूप गोस्वामी	लघु भागवतामृत
वल्लभ-दिग्विजय	लेखक गोस्वामी यदुनाथ जी, अनुवादक, पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, नाथद्वार से प्रकाशित	वल्लभ-दिग्विजय
श्रीमद्भगवद्गीता	प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर	गीता
श्रीमद्भागवत	प्रकाशक गीताप्रेस, गोरखपुर	भागवत
सिद्धान्तलेश	लेखक अप्पय दीक्षित प्रकाशक अच्युत ग्रन्थमाला, काशी	सिद्धान्त लेश, अच्युत ग्र० माला
अकबर दि ग्रेट मुगल	लेखक विन्सेंटस्मिथ	अकबर दि ग्रेट मुग़ल स्मिथ
वैष्णविज़्म शैविज़्म एण्ड माइनर रेलिजस् सिस्टेम्स्	लेखक सर आर० जी० भण्डारकर	वैष्णविज़्म, शैविज़्म भण्डारकर

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

अष्टछाप का परिचय

हिन्दी ब्रज भाषा के निम्नलिखित आठ कवि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। सूरदास, परमानददास, कुंभनदास, कृष्णदास अधिकारी, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविंद स्वामी तथा छीत स्वामी। इनमें से प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य जी (सवत् १५३५ से स० १५८७ तक) के शिष्य थे, और अतिम चार, आचार्य जी के उत्तराधिकारी गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी (सवत् १५७२ से स० १६४२) के शिष्य थे। ये आठों भक्त-कवि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सहवास में (लगभग सवत् १६०६ वि० से सवत् १६३५ वि० तक) एक दूसरे के समकालीन थे और ब्रज में गोवर्द्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन की सेवा और वहीं रहकर भगवद्भक्ति रूप मे पद-रचना करते थे। उस समय के वल्लभसम्प्रदायी अनेक कवियों का उल्लेख उक्त सम्प्रदाय की वार्ताओं मे आता है, परन्तु गो० विट्ठलनाथ जी न अपने सम्प्रदाय के अनुयायी भक्त कवियों में से सर्वश्रेष्ठ भक्त, काव्यकार तथा सगीतज्ञ, इन्हीं आठ सज्जनों को छाँटा और इन पर अपनी प्रशसा और आशीर्वाद की छाप लगाई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की इस मौखिक तथा प्रशसात्मक छाप के बाद ही ये सम्प्रदायानुसार 'अष्टछाप' कहलाने लगे थे। इस बात का प्राचीनतम लिखित प्रमाण, लेखक की जानकारी में, गो० विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र, श्री गोकुलनाथ जी कृत सवत् १६९७ वि० की ८४ वार्ता तथा "गुसाईं जी के चार सेवकन की वार्ताओं" के उल्लेखों मे ही मिलता है। ये आठों भक्त-कवि [illegible] भी कहलाते हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय की प्राचीन

परम्परा तथा 'अष्टसखान की वार्ता' रूप में मिले हुए इन कवियों के जीवन-वृत्तान्त से यही सिद्ध होता है कि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध भक्तवर्ग के अन्तर्गत उपर्युक्त कवि ही आते हैं। जिन सज्जनों ने अष्टछाप के उक्त नामों में परिवर्तन किया है, जैसे किसी-किसी विद्वान् ने नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास नाम दिया है,[1] उन्होंने वल्लभसम्प्रदायी परम्परा तथा प्राचीन वार्ता साहित्य की अनभिज्ञता के कारण ही ऐसा किया है।

ये आठों कवि एक उच्चकोटि के भक्त, कवि तथा गवैये थे। अपनी रचनाओं में प्रेम की बहुरूपिणी अवस्थाओं के जो चित्र इन कवियों ने उपस्थित किये हैं, वे काव्य की दृष्टि से वास्तव में उत्कृष्टतम काव्य के नमूने हैं। वात्सल्य, सख्य, माधुर्य और दास्य भावों की भक्ति का जो स्रोत, अपने काव्य में, इन भक्तों ने खोला है, वह भी अत्यन्त सुखकारी है। लौकिक तथा अध्यात्मिक दोनों अनुभूतियों की दृष्टि से देखने पर इनका काव्य महान् है।

अष्टछाप काव्य की जन्मस्थली ब्रजभूमि

ब्रजमंडल के विस्तार के विषय में निम्नलिखित दोहा ब्रज में बहुत प्रसिद्ध है:—

ब्रज का भौगोलिक विस्तार, उसके वन, पर्वत तथा प्राकृतिक शोभा

'इत वरहद इत सोनहद[2], उत सूरसेन को गाँव
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल माँह।'

ग्राउज़ महाशय ने अपने 'मथुरा मेमोयर' नामक ग्रन्थ में इस दोहे के आधार पर ब्रज-मंडल की हदों का खुलासा किया है[3]। वे कहते हैं कि "ब्रजमंडल के एक ओर की हद 'बर' स्थान है, दूसरी ओर सोन है, और तीसरी ओर सूरसेन का गाँव है। बर, अलीगढ़ ज़िले में बरहद नाम का एक स्थान है[4]। सोन की हद गुड़गाँव ज़िले तक जाती है और सूरसेन का गाँव यमुना के किनारे पर बसा

१—श्री गोवर्द्धननाथ जी के 'प्राकट्य की वार्ता,' वें० प्रे०, के पृष्ठ २७ पर श्री मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने श्री द्वारिकानाथ जी महाराज कृत एक छप्पय दिया है, जिसमें अष्टछाप में नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास नाम लिखा है। वल्लभसम्प्रदायी आचार्यों में श्री द्वारिकानाथ नाम के कई आचार्य हुए हैं। पांड्या जी ने यह नहीं बताया कि उक्त छंद कौन से महाराज द्वारिकानाथ जी का है। दूसरे, पांड्या जी द्वारा शोधित गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता की इस प्रति के उक्त छप्पय को प्रमाणिक कहना कठिन है।

२—सोनहद के स्थान पर सोन नद शब्द भी प्रचलित है।

३—मथुरा मेमोयर, ग्राउज़, पृष्ठ ७१।

४—अलीगढ़ का पुराना नाम 'कोर' है। देहात में आजकल भी अलीगढ़ को 'कोर' ही कहते हैं। अलीगढ़ ज़िले की तहसील भी 'कोर' है। 'कोर' का अर्थ ब्रजमंडल के किनारे का स्थान बताया जाता है।

हुआ वर्तमान बटेश्वर[1] स्थान है ।" ग्राउज़ ने उक्त मेमोयर में नारायण भट्ट-कृत एक 'व्रज-विलास' नामक संस्कृत ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है जिसकी रचना उन्होंने सन् १५५२ ई० में हुई बताई है और जिसका विषय व्रजयात्रा-वर्णन बताया है[2]। ग्राउज़ के कथनानुसार 'इस ग्रन्थ के तेरह भाग हैं और इसमें १०८ पृष्ठ हैं । इसमें व्रज के १३३ वनों का वर्णन है जिनमें से ९१ यमुना के दाहिनी ओर स्थित तथा ४२ बाएँ किनारे पर स्थित बताए गए हैं। इस ग्रन्थ से भी व्रजमंडल के विस्तार का एक श्लोक ग्राउज़ ने अपने मथुरा मेमोयर में उद्धृत किया है जो इस प्रकार है:—

पूर्व हास्य-वनं नीय पश्चिमस्योपहारिक।
दक्षिणे जन्हुसञ्ज्ञाकं भुवनाख्यं तथोत्तरे ॥

इस विषय में ग्राउज़ महोदय का कथन है कि पूर्व का हास्य वन अलीगढ़ ज़िले में स्थित बरहद का वन है। पश्चिम का उपहार वन, गुड़गाँव ज़िले में सोन नदी के किनारे है। दक्षिण में जन्हुवन सूरसेन का गाँव बटेश्वर के निकट है। तथा उत्तर का भुवन बन या भूषण वन शेरगढ़[3] स्थान के निकट है। नारायण भट्ट द्वारा दी हुई उक्त व्रज की हदों का जो मेल किंवदन्ती रूप में प्रचलित दोहेवाली व्रज की हदों के साथ, ग्राउज़ ने किया है वह कहाँ तक ठीक है, निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता। वर्तमान काल में यात्रा करने वाले कृष्णभक्त व्रज ८४ कोस की परिक्रमा या व्रज यात्रा में ऊपर कही हदों के स्थानों को नहीं छूते। उपर्युक्त किंवदन्ती के आधार से व्रज के मंडल का केन्द्रस्थान मथुरा नगर है। मथुरा का प्रदेश प्राचीन काल से शौरसेन प्रदेश भी कहलाता है और कृष्ण के पितामह शूरसेन के नाम पर उस प्रदेश का नामकरण हुआ कहा गया है। प्राचीन इतिहासवेत्ताओं ने मथुरा नगरी को ही शौरसेन प्रदेश की राजधानी लिखा है।[4] व्रज की हद बतानेवाले पीछे कहे दोहे से ज्ञात होता है कि शूरसेन का गाँव मथुरा के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान है। ग्राउज़ महोदय ने, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्तमान बटेश्वर को सूरसेन का गाँव माना है। आगरा गज़ेटियर में बटेश्वर का दूसरा नाम 'सूरजपुर' दिया हुआ है, शूरसेन नगर या गाँव नहीं दिया। दूसरे, व्रज की हद को बटेश्वर तक लाने में व्रजमंडल का आकार बेडौल हो जाता है, और उसकी एक हद आगरे की 'बाह' तहसील में दक्षिण पूर्वी कोने की ओर सुदूर

१—वर्तमान बटेश्वर, आगरा ज़िले की तहसील 'बाह' में एक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ प्रत्येक वर्ष चौपायों का मेला लगा करता है। सूरसेन का गाँव, बटेश्वर न होकर कोई अन्य स्थान भी हो सकता है। लेखक को ऐसे किसी स्थान का पता नहीं चला।

२—मथुरा मेमोयर, ग्राउज़, पृष्ठ ८६।

नोटः—सोन नदी गुड़गाँव ज़िले की कोई छोटी बरसाती नदी कही जाती है।

३—शेरगढ़, तहसील छाता, ज़िला मथुरा में एक स्थान है।

४—The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, 1899 A. D. Edition by Nando Lal Dey.

निकल जाती है। इस प्रकार व्रजमंडल का गोलाकार रूप नहीं रहता। 'मंडल'[1] शब्द से गोलाकार का ही बोध होता है। व्रज की धार्मिक स्वरूप-धारणा भी गोलाकार रूप की है।

पीछे कहे दोहे तथा नारायण भट्ट के श्लोक में व्रज की हदों के बताये हुए सभी स्थानों की ठीक ठीक स्थिति संदिग्ध है। परन्तु हम व्रज के वर्तमान प्रसिद्ध और ज्ञात बनों के तथा व्रजयात्रा के स्थानों के आधार से व्रजमंडल की रूपरेखा का अनुमान कर सकते हैं। प्रसिद्धि है कि व्रज का केन्द्र मथुरा है। इसके चारों ओर आसपास के चौरासी कोस के स्थान में ८४ बनों में १२ बन तथा २४ उपवन मुख्य हैं। इस मंडल के उत्तर के भुवन-बन तथा कोटवन, जो गुड़गांव ज़िले की हद पर स्थित हैं, ज्ञात हैं। पश्चिम में भरतपुर राज्य के कामबन तथा चरणपहाड़ी भी परिचित हैं। इन स्थानों तक वर्तमान व्रज-यात्रा भी जाती है। व्रज की पूर्व की हद अलीगढ ज़िले में बरहद, और हास्यबन (वर्तमान हसाइन) मानी जा सकती है। दक्षिण की हद के विषय में लेखक का अनुमान है कि यह आगरे के निकट तक है।[2]

श्री नंदलाल डे ने आगरे का प्राचीन नाम 'अग्रवन' दिया है और कहा है कि यह वन व्रज के ८४ वनों में से एक है[3]। यदि मथुरा को केन्द्र मान कर, उक्त स्थानों को स्पर्श करता हुआ एक गोला खींचें तो ८४ कोस (१६८ मील) की परिधि का मंडल बनता है, और उसके अन्तर्गत व्रज के सभी प्रसिद्ध स्थान आ जाते हैं। साथ में लगे नक्शे में लेखक ने व्रज-मंडल की रूप रेखाएँ दिखाई हैं। वर्तमान चौरासी कोस की व्रज यात्रा का मार्ग भी इस नक्शे से ज्ञात होगा। व्रज-भूमि की चौरासी कोस की हद महात्मा सूरदास जी ने भी बाँधी है। सूरसारावली में वे कहते हैं:—

चौरासी व्रज कोस निरंतर खेलत हैं बल मोहन,
सामवेद ऋग्वेद यजुर में कहेउ चरित व्रजमोहन[4]।

इस कथन के आगे सूर ने कृष्ण के क्रीड़ा स्थल बारह बनोंके नाम दिये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि ८४ कोस की परिधि में मधुवन भी सम्मिलित है। परन्तु जहाँ सूर आदि इन अष्ट भक्तों ने कृष्ण के व्रज छोड़ कर मथुरा तथा द्वारिका जाने का प्रसंग तथा गोपी-विरह का वर्णन किया है, वहाँ उन्होंने मथुरा नगर से व्रज-प्रदेश को अलग सा चित्रित किया है। लेखक का अनुमान है कि व्रज के मधुवन में स्थित मथुरा नगर, कंस के आतंक से व्रज के अन्य स्थानों से ऐसा अलग हुआ माना जाता होगा, जहाँ लोगों का बहुधा आना जाना बंद सा

१—राजनीति शास्त्र की शब्दावली में 'मंडल' शब्द का अर्थ "जनपद" रूप में भी लिया जाता है।

२—Cambridge History of Ancient India page 316.

३—The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, 1899 A. D. Edition by Nand Lal Dey, page 2.

४—सूरसागर, सारावलि, वें० प्रे०, पृ० ३७.

था। अष्टछाप काव्य में 'व्रज' शब्द गोचारण, गोपालन तथा गोप ग्वालों के निवास स्थान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अष्टछाप की भाषा में अक्रूर और उद्धव 'मधुबनियाँ' तो हैं लेकिन वे व्रज के वासी नहीं हैं। मथुरा के नागरिक लोग गोचारण तथा गोपालन के व्यवसाय और स्थान से अलग थे इसलिये उनको घोषवासी अथवा व्रज (गोपालक स्थान) के वासी नहीं कहा गया।

'व्रज' शब्दका अर्थ है 'व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रज' जिस स्थान पर नित्य गाएँ चलती हैं अथवा चरती हैं, उस स्थान को व्रज कहते हैं। व्रज को कृष्णभक्त, 'गोलोक' भी कहते हैं। 'व्रज' शब्द की व्युत्पत्ति तथा उसके अर्थ के क्रमिक विकास पर डा० धीरेन्द्र वर्मा का नीचे लिखा लेख महत्व का है। 'व्रज का संस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' है। यह शब्द संस्कृत धातु 'व्रज' 'जाना' से बना है। व्रज का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता (जैसे ऋग्वेद मंत्र २, सू० ३८, म० ८, म० ५, सू० ३५ म० ४, म० १०, सू० ४, म० २ इत्यादि) में मिलता है परन्तु वह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु समूह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संहिताओं तथा इतिहास ग्रन्थ रामायण-महाभारत तक में यह शब्द देशवाचक नहीं हो पाया था।

हरिवंशादि पौराणिक साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग मथुरा के निकटस्थ नंद के व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ में ही हुआ है। हिन्दी साहित्य में आकर व्रज शब्द पहले पहल मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में मिलता है, किन्तु इस प्रदेश की भाषा के अर्थ में यह शब्द हिन्दी साहित्य में भी बहुत बाद को प्रयुक्त हुआ है
'धार्मिक दृष्टि से व्रजमंडल मथुरा जिले तक ही सीमित है किन्तु व्रज की बोली मथुरा के चारों ओर दूर दूर तक बोली जाती है।"[1]

वर्तमान व्रज में कृष्ण चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले जो स्थान आजकल जहाँ स्थित हैं, वे वहाँ बहुत पुराने बसे हुए नहीं हैं। कृष्ण के समय का भूगोल तथा अष्टछाप और आज के व्रज के भूगोल में बहुत अन्तर हो गया है। कौन कह सकता है कि यमुना, जिस रास्ते पर आज बहती है उसी पर सूर के समय में तथा उससे सुदूर कृष्ण के समय में बहती होगी। यमुना ने न जाने कितनी स्थितियाँ बदल ली हैं। यही हाल बहुत से प्राचीन स्थानों का भी है।

कृष्ण भक्ति के साथ व्रज भूमि का अटूट सम्बन्ध है। जब से कृष्ण भक्ति का भारतवर्ष में प्रचार हुआ तभी से व्रज मंडल का महत्व भी बढ़ा। कृष्णोपासक लाखों यात्री, सम्पूर्ण भारत से खिंच कर व्रजयात्रा को प्रत्येक वर्ष व्रज में आते हैं। कृष्णभक्तों के लिये व्रज की रज, व्रज के वन, नदी, पहाड़, पशु पक्षी, पुरुष स्त्री, सभी प्रेम भाव की पुनीतता के उद्रेक करने वाले हैं। अनेक भाषा कवियों ने व्रज की इस पुनीतता का वर्णन किया है।

१—नाम महात्म्य, श्री व्रजांक अगस्त १९४०, 'व्रजभाषा' लेख डा० धीरेन्द्र वर्मा।

कृष्णोपासना की दृष्टि को अलग रखकर साधारण भौतिक सौन्दर्योपासना की दृष्टि को ही ले, यदि हम ब्रज ८४ कोस के दायरे में भ्रमण करें तो हमें ज्ञात होगा कि अब भी, प्राचीन काल से प्रशंसित ब्रज-भूमि एक रमणीक प्रदेश है। पर्वत, टीले, कछार आदि, खंडित भूमि-भाग, चौरस मैदान, झील, कुंड, पोखर आदि जलाशय, कदम, करील, हींस, छोकर, कीकर ढाँक, पलाश, वृन्दा, आम, जामुन आदि वृक्ष तथा लता बनों की कुंज गली, पपीहा, मोर, कोकिल, खंजन आदि पक्षी, यमुना की कछारों में चरनेवाली पुष्ट दुधारी गाय, सुखद जल-वाहिनी यमुना और वहाँ की सुन्दर ऋतुएँ, इन सम्पूर्ण प्राकृतिक रूपों को लेकर ब्रज की जिस शोभा का वर्णन समस्त भारतवर्ष के कवि-वर्ग ने मुक्त कंठ से किया है, वह ब्रज की प्राकृतिक शोभा उक्त रूपों में अब भी बहुत अंश में वर्तमान है। अष्टछाप के कवियों ने भी ब्रज के इस प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है।[1] सरकार के प्रोत्साहन से ब्रज के ज़मीनदारों ने आजकल सुन्दर-सुन्दर बनों को काट कर भूमि को जोत में ले लिया है और बहुत से प्राकृतिक दृश्यों को नष्ट कर दिया है। पश्चिमीय संयुक्त प्रान्त की सिंचाई ने भी नहरों द्वारा यमुना के जल को चूसकर इस भूमि के कुछ भाग को राजपूताने के रेगिस्तान से मिला दिया है, और इधर देहात की गरीबी और अशिक्षाजन्य आपस की कलह ने, ब्रजजनों को तथा उनके गो, गोवत्स आदि पशुवर्ग को सुखा डाला है। इस विषम स्थिति के बीच में भी ब्रज-शोभा की झाँकी अब भी लुभावनी है। यमुना की कछारों में बन गायों के झुंड और मोरों के समूह अब भी विद्यमान हैं। कोसी की दुधारी गाएँ अब भी प्रसिद्ध हैं।

सावन और भादों के महीनों में प्रत्येक वर्ष भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के कृष्णोपासक भक्त और जन-समुदाय ब्रज ८४ कोस की यात्रा किया करते हैं। ब्रज-यात्रा के पथ-प्रदर्शन करने-वाली, वैष्णव भक्तों द्वारा लिखी हुई पुस्तकें मथुरा वृन्दावन में, इन यात्राओं के समय में बिका करती हैं। यात्रा के बीच में जो कृष्णोपासना के धार्मिक स्थान, कुंज, कुंड, पर्वत, बन और मन्दिर पड़ते हैं उनके नाम और उनका माहात्म्य उक्त पुस्तकों में दिये होते हैं। इन पुस्तकों में ब्रज के १२ बन, २४ उपवन, ५ टीले (पर्वत), ४ झील और चौरासी कुंड

१—सूरदासः—

मल्हार

शोभा माई अब देखन की बहार
गोवर्धन पर्वत के ऊपर मोरन की पतवार।

× × ×

घन गरजत और दामिनी दमकत नैन्हीं नैन्हीं परत फुहार।
सूरदास प्रभु तौऊ न आवैं अखियाँ हों लग चार।

पर्वोत्सव कीर्तन संग्रह, भाग २, देसाई, पृष्ठ २७१।

बताए गये हैं। वर्तमान समय में मान्य १२ वन और २४ उपवनों के नाम नीचे दिये जाते हैं। महात्मा सूरदास ने भी व्रज के बनों के नाम दिये हैं।[१]

व्रज के वर्तमान समय में बताए हुए १२ वन[२]:

मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, कामवन, खदिरवन,
वृन्दावन, भद्रवन, भांडीरवन, बेलवन, लोहवन, और महाबन।

वर्तमान समय के २४ उपवन[३]; ·

गोकुल, गोवर्धन, बरसाना, नंदगाँव, संकेत, परममन्द्र,
अरींग, शेषशायी, माट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्रीकुण्ड,
गन्धर्ववन, परसौली, बिलछू, बछवन, आदिबद्री, करहला,
अजनोख, पिसायोवन, कोकिलावन, दधिबन, कोटवन, रावलवन,

जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्तमान काल में बहुत से बन काट डाले गए हैं और वहाँ बन का कोई चिन्ह तक नहीं है, परन्तु उक्त बनों के नामधारी गाँव उन स्थानों पर अब भी मौजूद हैं जिनमें से कई स्थान लेखक के देखे हुए हैं। महात्मा सूरदास ने व्रज के जिन बारह बनों के नाम दिये हैं वे इस प्रकार हैं :—

नोटः—कालिदास ने रघुवंश के छठे सर्ग में गोवर्द्धन के मोरों का वर्णन किया है।

नंददासः—

जहाँ तहाँ बोलत मोर सुहाए।
श्रवन, रमन, भवन वृंदावन घोर घोर घन आए।
नैन्हीं नैन्हीं बुंदन बरषन लागे व्रज मंडल में छाए।
नंददास प्रभु संग सखा लिये कुंअरि मुरलि बजाए।
'नंददास', शुक्ल, पृष्ठ ३८१।

चतुर्भुजदासः—

व्रज पर नीकी आजु घटा।
नान्हीं नान्हीं बूँद सुहावन लागीं चमकत बीजु छटा।
गरजत गगन मृदंग बजावत नाचत मोर नटा।
श्रवन देत गावत चातक पिक प्रगट्यो मदन भटा।
सब मिलि भेंट देत नंदलालहि बैठे ऊँचि अटा।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधरनलाल सिर कुसुमी पीत पटा।
·लेखक के निजी चतुर्भुजदास पद संग्रह मे, पद नं० ७४।

१—सूरसागर, सारावलि, वें० प्रे०, पृ० ३७, छंद नं० १०८८ तथा १०८९।
२—मथुरा मैमोयर, ग्राउज, तृतीय संस्करण, पृ० ८०:८१।
३—मथुरा मैमोयर, ग्राउज, तृतीय संस्करण, पृ० ८०:८१।

यहि विधि क्रीडत गोकुल में हरि निज वृन्दावन धाम,
मधुवन[1] और कुमुदवन[2] सुन्दर, बहुलावन[3] अभिराम,
नन्दग्राम[5] संकेत[6], खिदर[7] बन और कामबन[8] धाम,
*लोहबन[9], माट[10] बेलबन[11] सुन्दर, भद्रवृहद[12] बन ग्राम।**

सूरदास द्वारा दिये हुए इन बारह बनों के नामों में वर्तमान समय के नंदगाँव, संकेत तथा माट उपवनों के नाम सम्मिलित हैं। सम्भव है, सूर के समय का ८४ कोस का ब्रजमंडल इन्हीं बारह बनों से युक्त ब्रजमण्डल रहा हो।

ब्रज के पाँच पर्वत या टीले ये हैं :

गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दीश्वर, और दो चरण पहाड़ी।

अष्टछाप से सम्बन्धित ब्रज के कुछ स्थान।

गोवर्धनः—मथुरा से पच्छिम की ओर लगभग १२ मील की दूरी पर 'गोवर्धन' कृष्ण भक्तों का एक परम पवित्र तीर्थ-स्थान है। गोवर्धन का साधारण अर्थ है, 'गौओं की वृद्धि करने वाला'। यहाँ पर गायों के चरने के लिये पर्वतीय बड़े-बड़े चरागाह हैं। गोवर्धन पर्वत का विस्तार पूर्व की ओर लगभग ४ मील तक है। इसकी ऊँचाई सौ या सवा सौ फीट से अधिक नहीं है। गोवर्धन गाँव, पर्वत के दो हिस्सों के बीच में बसा है। इस पर्वत के विषय में कथा है कि कृष्ण ने ब्रज की रक्षा इसी को उठाकर की थी। लोग कहते हैं कि जैसे जमुना का जल घटता जाता है उसी प्रकार गोवर्धन भी पृथ्वी में धुसता जाता है। इस पर्वत के दक्षिण की ओर अन्यौर तथा जतीपुरा दो और गाँव हैं। अकबर के शाही फरमानों में जतीपुरा परगने का उल्लेख है। पहाड़ी के उतार पर बसे हुए जतीपुरा के निकट की पर्वत भूमि सबसे अधिक ऊँची होगई है। यहीं पर श्री वल्लभाचार्यजी द्वारा निर्मित प्रसिद्ध श्रीनाथजी अथवा गोवर्धननाथजी का मन्दिर है जिसका निर्माण संवत् १५७६ वि० में समाप्त हुआ था। इस स्थान को गोपालपुर तथा गोवर्धन पर्वत को गोपाचल और गिरिराज भी कहते हैं। अष्टछाप के भक्त-कवियों ने इसी स्थान पर रह कर भक्ति और काव्य की पीयूष-धारा बहाई थी। श्री वल्लभाचार्यजी तथा श्री गो० विट्ठलनाथजी की यहाँ बैठकें बनी हुई हैं। ब्रज में, वल्लभ-सम्प्रदाय का 'गोकुल' के बाद यही मुख्य स्थान था। कहा जाता है कि प्राचीन काल में गोवर्धन के निकट ही वृन्दाविपिन था और उसी के निकट यमुना बहती थी। वर्तमान वृन्दावन, जो गौडीय गुसाँइयों का वृन्दावन कहलाता है, गोवर्धन से लगभग १८ कोस की दूरी पर है।

---

* सूरसागर, सारावली, वें० प्रे०, पृ० ३७।

गोवर्धन पर स्थित श्रीनाथजी के वैभवशाली मन्दिर को औरङ्गजेब ने नष्ट किया था, उसी समय सं० १७२६ वि० में श्री हरिरायजी तथा अन्य वल्लभ-सम्प्रदायी गोस्वामी, श्रीनाथजी के भव्य स्वरूप को उदयपुर राज्य में ले गये और वहाँ तब से अब तक 'श्रीनाथद्वार' स्थान में यह स्वरूप स्थित है। गोवर्धन पर श्रीनाथजी का मन्दिर अब रिक्त पड़ा है। इसी के एक ओर आन्योर और दूसरी ओर जतीपुरा गाँव है। पर्वत के अन्तिम भाग के स्थान का नाम 'पूछरी' है। इन सभी स्थानों का उल्लेख ८४ तथा २५२ वार्ताओं में आया है, और अष्टछाप कवियों की जीवनी भाग में आवेगा।

गोवर्धन गाँव के निकट एक बहुत बड़ा तालाब है, जिसको मानसी गङ्गा कहते हैं। कहा जाता है कि श्री वल्लभाचार्यजी के समय में अकबर के मन्त्री राजा मानसिंह ने इस प्राचीन तालाब का जीर्णोद्धार किया था। तालाब सूखा पड़ा रहता है। बन-यात्रा के समय वर्षा का जल इसमें भर जाता है। गोवर्धन में बहुत सी कन्दराएँ हैं। लोग कहते हैं कि इसकी कन्दराओं के भीतरी छोर का आज तक किसी को पता नहीं चला। भीतर ही भीतर मीलों सुरंगें गई हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने इन्हीं कन्दराओं में से एक में प्रवेश कर अपनी इहलोकलीला समाप्त की थी।[1]

मथुरा

ब्रजभाषा कवियों ने इस नगर के मथुरा, मधुपुरी, तथा मधुबन ये तीन नाम लिखे हैं। मधुबन स्थान वर्तमान मथुरा से चार मील की दूरी पर है। कहा जाता है कि शत्रुघ्न ने 'मधु' नामक दैत्य तथा लवणासुर को मार कर 'मधुपुरी' नाम की नगरी बसाई थी। पीछे इसी शब्द का अपभ्रंश रूप मथुरा हुआ। पुरानी मथुरा उस स्थान पर बताई जाती है जहाँ आजकल केशवदेव जी का मन्दिर स्थित है। प्राचीन काल से ही मथुरा एक पवित्र स्थान माना जाता रहा है। बौद्धधर्म के ह्रास के बाद, वैष्णव-धर्म के पुनरुत्थान के साथ मथुरा नगर की धार्मिक महत्ता और उसकी पवित्रता की वृद्धि हुई। वैष्णवधर्म के उत्थान ने निम्नलिखित सात नगरों की विशेष वृद्धि की थी। वैष्णव लोग इन नगरों को अब तक मोक्ष-दाता कहते हैं। वे नगर ये हैं[2]:—

काशी (बनारस) कान्ची (कांजी) माया (हरिद्वार)
अयोध्या, द्वारावती (द्वारिका) मथुरा तथा अवन्ती।

1—अष्टछाप, कांकरौली पृ० १२१।

2—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायकाः।
एवं सप्त पुरीणान्तु सर्वोत्कृष्टन्तु माथुरम्।
— [illegible] श्रीरूपगोस्वामी, वें० प्रे०, पद्य २१०।

हिन्दू इतिहास काल में मथुरा नगर बहुत काल तक चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी रहा। इस नगर पर मुसलमानों के अनेक आक्रमण हुए और कई बार यह नष्ट-भ्रष्ट भी किया गया। महमूद ग़ज़नी ने मथुरा की सम्पत्ति को खूब लूटा[1] और यहाँ के सुन्दर स्थानों को नष्ट किया। सन् १५०० ई० में सिकन्दर लोदी सुलतान ने इस नगर को तबाह किया और यहाँ तलवार के बल पर हज़ारों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। श्री यदुनाथ जी कृत 'वल्लभ-दिग्विजय' में सिकन्दर लोदी के इस स्थान पर रहने वाले राजकर्मचारियों द्वारा किये गये अत्याचारों का उल्लेख आता है।[2] सन् १६६६ ई०[3] में औरङ्गजेब ने यहाँ के मन्दिरों को तुड़वाया और उनके स्थानों पर मसजिदें बनवाई। इतनी आपत्तियों के बीच भी मथुरा का महत्व तथा वैष्णवों में उसके प्रति पुनीतता का विश्वास बना ही रहा।

मथुरा के प्राचीन टीले खँडहर, तालाब तथा कुँओं में बहुत प्राचीन ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएँ पाई गई हैं। इसीलिए संयुक्त-प्रान्त की सरकार की ओर से वहाँ एक बहुत बड़ा पुरातत्व-विभाग का 'म्यूजियम' स्थापित किया गया है। मथुरा के चारों ओर चार शैव मन्दिर हैं। नगर के पच्छिम में भूतेश्वर जी, पूर्व में पिप्पलेश्वर, दच्छिण में रङ्गेश्वर और उत्तर में गोकर्णेश्वर—ये चार शिवमन्दिर हैं। कहा जाता है कि वैष्णव-प्रभाव से पहले मथुरा पर शैवोपासक भक्तों का प्रभाव था। यहाँ का केशवराय जी का मन्दिर अष्टछाप के समय में ही बना था। आजकल मथुरा में कई सुन्दर मन्दिर हैं जो वस्तुतः बहुत पुराने नहीं हैं—जैसे, श्री द्वारिकाधीश जी का मन्दिर, श्री गोविन्ददेव जी का मन्दिर, श्री बिहारी जी का मन्दिर, श्री मदनमोहन जी का मन्दिर आदि। श्री द्वारिकाधीश जी के मन्दिर के आगे निम्बार्कसम्प्रदायी श्री राधाकान्त जी का मन्दिर है; तथा प्रयागघाट पर श्री वेणीमाधव जी का रामानुज-सम्प्रदायी मन्दिर है। गऊघाट पर विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय का श्रीराधा बिहारी जी का मन्दिर है। ये सभी मन्दिर १६वीं शताब्दी के बने हुए हैं।[4]

यमुना के संसर्ग से आसपास के खादर के वन्य दृश्यों से मथुरा-प्रदेश की प्राकृतिक शोभा भी दर्शनीय है। अष्टछाप कवियों में से श्रीछीतस्वामी मथुरा के ही निवासी चतुर्वेदी ब्राह्मण थे, जिनके वंशज अब भी मथुरा में हैं। छीत स्वामी के वंशजों का एक घराना श्यामघाट पर रहता है। लेखक की इस वंश के एक सज्जन से मथुरा में वार्तालाप भी हुई थी।

१—सन् १०१८ ई० 'इतिहास प्रवेश,' जयचन्द विद्यालंकार, पृष्ठ २११ तथा २१२।

२—वल्लभ दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृष्ठ ५०।

३—मथुरा मैमायर, ग्राउज़, तीसरा संस्करण, पृष्ठ १२०।

४—मथुरा मैमायर, ग्राउज़, तृतीय संस्करण, पृष्ठ १७८।

इस नगर का भी धार्मिक महत्व बहुत है। ब्रज भूमि में कृष्ण भक्त तथा कृष्ण भक्ति के प्रचारक आचार्यों के समागम का मुख्य स्थान, अष्टछाप कवियों के समय में, वृन्दावन ही था। यहाँ पर कई मन्दिर उसी समय के स्थित हैं। कृष्ण पूजा के समय जितने सम्प्रदाय अष्टछाप के समय में प्रचलित थे अथवा हुए उन सबके साम्प्रदायिक मन्दिर अथवा स्थान इस नगर में विद्यमान हैं। स्वामी हरिदास जी का 'बाँके बिहारी जी' का मन्दिर है, श्री स्वामी हितहरिवंश जी का 'राधावल्लभ जी' का मन्दिर है, जिसकी स्थापना श्री हितहरिवंशजी ने संवत् १५६५ वि० में की थी। अष्टछाप के समकालीन श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी[1] के सम्प्रदाय का 'श्री राधारमणजी' का मन्दिर है जिसकी स्थापना श्री चैतन्य महाप्रभु जी के शिष्य श्रीगोपाल भट्ट ने की थी। श्री महाप्रभु के समय के बने हुए इस सम्प्रदाय के और भी कई मन्दिर यहाँ हैं जैसे, श्री गोविन्ददेव जी के मन्दिर को अष्टछाप के समकालीन श्री रूपगोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जी ने सम्वत् १६४७ वि० में स्थापित किया था। श्री गोकुलानन्द जी का मन्दिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु के समय का ही बना हुआ है। श्री रामानुज-सम्प्रदाय का 'श्रीरंगजी' का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध और वैभवशाली है। परन्तु यह मन्दिर पुराना नहीं है, सम्वत् १६०८ वि० का बना हुआ है।

वृन्दावन

वल्लभ-सम्प्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा श्री गोकुलनाथ जी महाप्रभु की बैठकों के स्थान भी यहाँ बने हुए हैं, परन्तु इस सम्प्रदाय का यहाँ कोई वैभवशाली मन्दिर नहीं है। अष्टछाप भक्त कभी कभी इस स्थान पर भी आते-जाते थे। वृन्दावन की महिमा तथा इस स्थान के वन के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अष्टछाप तथा अन्य कृष्ण भक्तों ने बहुत किया है। मथुरा और वृन्दावन के बीच में वृन्दावन का बड़ा जंगल है।

प्राचीन वृन्दावन किस स्थान पर था, इस विषय में अनुमान से लोग कई स्थान बताते हैं। कहा जाता है कि जमुना के किनारे का वर्तमान वृन्दावन माध्वसम्प्रदाय के किसी आचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु जी ने बसाया था।

गोवर्धन पर स्थित इस स्थान का विवरण पीछे 'गोवर्धन' के साथ दिया जा चुका है। इस गाँव के पास लगभग एक मील पर एक 'बिलछू कुण्ड' नाम का सरोवर है, जहाँ, गोपालपुर में रहते हुए नन्ददास जी नहाया करते थे[2]। गोपालपुर से ढाई मील पर 'मानसी गङ्गा' सरोवर है। '२५२ वार्ता' के अनुसार नन्ददास जी इसी मानसी गङ्गा स्थान पर अकबर से मिले

गोपालपुर

१—कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया सीरीज़, भाग २, पृष्ठ १३१, तथा १५३।
जन्म संवत् १५४२ वि०, निधन संवत् १५९१ वि० (सन् १४७६-१५३३ ई०)
तथा मथुरा मैमायर, ग्राउज़, तृतीय संस्करण, पृष्ठ १६७।

२—'२५२ वैष्णवन की वार्ता' के अन्तर्गत 'रूपमंजरी की वार्ता,' वें० प्रे०, पृ० ४६२।

थे[1] और बादशाह के समक्ष उनका देहावसान हुआ था । श्रीनाथ जी के मन्दिर के इन आसपास के स्थानों का सम्बन्ध अष्टछाप कवियों से बहुत रहा था ।

जमुनावतौ

यह स्थान भी गोवर्धन के निकट ही है। कहते हैं कि पहले यमुना इस गाँव के पास में होकर ही बहती थी। इसीलिए इस स्थान का नाम 'जमुनावतौ' पड़ा। अष्टछाप कवियों में से श्री कुम्भनदास जी यहीं के रहनेवाले थे। कुम्भनदास जी के नाम की एक पोखर और एक 'खिरक' (बाड़ा) आज तक प्रसिद्ध है।

परसौली

यह स्थान भी गोवर्धन के पास ही है और आजकल मथुरा परगने में है। कृष्ण की 'परम रासस्थलि' होने से यह स्थान अपभ्रंश रूप मे परसौली या पारखौली कहलाता है। कहते हैं कि कृष्ण ने यहीं पर गोपी-कृष्ण-रास किया था और प्राचीन वृंदावन इसी के कहीं आसपास था। इस स्थान पर श्री वल्लभाचार्य जी, श्री गो० विट्ठलनाथ जी तथा श्री गोकुलनाथ जी की बैठकें बनी हुई हैं। ये आचार्य वहाँ रहकर साम्प्रदायिक व्याख्यान दिया करते थे। एक बार, अष्टछाप के भक्त-कवि तथा श्रीनाथ जी के मंदिर के अधिकारी कृष्णदास जी ने श्री गो० विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी के दर्शनों से वंचित कर दिया था। उस समय गुसाईं जी इसी परसौली स्थान पर कुछ समय रहे थे और वहीं से, दूर से, श्रीनाथ जी के मन्दिर के दर्शन कर लिया करते थे। गुसाईं जी ने श्रीनाथ जी के विरह में, यहीं रह कर 'विज्ञप्ति' नामक रचना बनाई थी। अष्टछाप भक्तों में प्रमुख भक्त सूरदास का देहावसान इसी स्थान पर हुआ था। इस स्थान के निकट 'चन्द्र सरोवर' नाम का तालाब है जो बहुत पवित्र समझा जाता है। इसलिए परसौली को 'चन्द्र सरोवर' भी कहते हैं। अष्टछाप के परम भक्त कवि कुम्भनदासजी की परसौली तथा चन्द्रसरोवर के निकट भूमि थी, जहाँ वे अपनी जीविका रूप में खेती किया करते थे।

पूछरी

यह स्थान गिरिराज गोवर्धन का अन्तिम भाग है। इसके निकट कई कुण्ड हैं, जैसे अप्सरा कुण्ड, नवल कुण्ड, रुद्र कुण्ड, आदि। इसी स्थान पर अकबर तथा अष्टछाप के समकालीन प्रसिद्ध गवैये तथा भक्त, रामदास की गुफ़ा है, जहाँ वे रहा करते थे। पूछरी के थोड़ी दूर आगे रुद्र कुण्ड पर अष्टछाप के कवि कृष्णदास अधिकारी का बनवाया हुआ कुँआ है जिसमें गिरकर उनकी मृत्यु हुई थी। पूछरी के पास ही 'श्याम ढाक' नामक एक और स्थान है, जहाँ पर, ८४ वार्ता के कथनानुसार[2], कृष्णदास अधिकारी मरने के बाद भूत-योनि में रहते थे और जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनका उस योनि से उद्धार किया था। श्याम ढाक के

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १४८ तथा १५१।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २२१ से २५२ तक।

निकट ही अष्टछाप के भक्त श्री गोविंद स्वामी का स्थान, उन्हीं के नाम पर 'गोविन्द स्वामी की कदम खण्डी' और 'गोविन्द स्वामी की गुफ़ा' प्रसिद्ध हैं। 'कदम खण्डी' कदम वृक्षों के घने समूह को कहते हैं। गोविन्द स्वामी जी वल्लभ सम्प्रदाय में आने के बाद यहीं रहते थे और यहीं से गोवर्द्धननाथ जी की कीर्तन-सेवा करने जाते थे।

जतीपुरा

गोवर्द्धन के परिचय के साथ इस स्थान का कुछ परिचय पीछे दिया जा चुका है। जतीपुरा गोवर्धन पर्वत के नीचे उतार पर पहाड़ी से लगा हुआ एक गाँव है। इस स्थान पर श्रीवल्लभाचार्य जी के वंशज गुसाइयों की सात गद्दियों के सात मन्दिर हैं। यहीं पर श्रीनाथ जी की मूर्ति (वल्लभ-सम्प्रदाय की भाषा में स्वरूप) का प्राकट्य हुआ था जिसका स्मारक यहाँ बना हुआ है। श्री आचार्य जी की यहाँ प्रसिद्ध बैठक है। इस स्थान पर अनेक गुफाएँ हैं।

गाँठ्योली और टोंड़ का घना

गाँठ्योली स्थान भी गोवर्धन से थोड़ी ही दूर पर है। कहा जाता है कि यहीं पर राधा और कृष्ण का ग्रन्थि-बंधन हुआ था; इसी से यह स्थान 'गाँठ्योली' कहलाता है। अष्टछाप-कवि जब श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन करते थे तो उनके साथ श्यामकुमार[1] पखावजी, पखावज बजाता था तथा उसकी लड़की ललिता, वीणा बजाया करती थी। यह श्यामकुमार पखावजी इसी गाँठ्योली गाँव का रहने वाला था।

महावन

यह स्थान मथुरा से पाँच मील दूर यमुना की दूसरी ओर स्थित है। अब तक महावन मथुरा ज़िले की एक तहसील था, कुछ दिन हुए यह तहसील तोड़ दी गई है। महावन और वर्तमान गोकुल में लगभग एक मील का अन्तर है। कहा जाता है कि कृष्ण के समय में महावन को ही गोकुल कहते थे। आज कल महावन और गोकुल के निकट कोई बड़ा बन नहीं है। महावन स्थान का महत्त्व बौद्धकाल ही से बहुत रहा है। पुरातत्ववेत्ताओं को वहाँ के स्थानों के खोदने से बौद्धकालीन वस्तुएँ मिली हैं। ग्राउज़ महोदय[2] का कहना है कि मुग़ल सम्राट् बाबर महावन के जंगलों में शिकार खेलने आता था। इस स्थान पर भी वल्लभ-सम्प्रदायी गुसाईं रहते हैं। यहाँ का एक अस्सी खम्भा स्थान भी बहुत प्रसिद्ध है जहाँ ये अस्सी खम्भे बहुत प्राचीन काल के बने बताए जाते हैं। अष्टछाप-कवियों में प्रसिद्ध भक्त कवि गोविन्दस्वामी, जो आँतरी गाँव के रहने वाले थे, कृष्ण-प्रेम-भक्ति में घर छोड़ महावन में आ बसे थे। वहाँ

१—वैष्णव वार्ताओं में 'श्यामकुमार' नाम दिया है।
'८४ वैष्णव की वार्ता' के अन्तर्गत कृष्णदास अधिकारी की वार्ता तथा अष्टछाप काँकरौली, पृष्ठ २०२, अष्टछाप, डा॰ वर्मा, पृष्ठ २६।

२—मथुरा मैमोयर, ग्राउज़, पृष्ठ २७२।

वे पद गाने में बहुत प्रसिद्ध थे। गोकुल और महाबन के पास एक यशोदा घाट यमुना के किनारे का स्थान था। गोविन्द स्वामी इसी घाट पर बैठकर राग अलापा करते थे।

वल्लभ सम्प्रदाय का यह मुख्य स्थान रहा है और अब भी है। वस्तुतः गोकुल स्थान को श्रीवल्लभाचार्य जी तथा श्री गो० विट्ठलनाथ जी ने ही बसा कर नगर का रूप दिया था।[1]

गोकुल

इसलिये गोकुल को गुसाइयों की गोकुल तथा वल्लभ सम्प्रदायी गोस्वामियों को गोकुल गुसाईं कहा जाता है। वर्तनाम गोकुल में अनेक मन्दिर हैं, परन्तु सबसे प्राचीन मन्दिर यहाँ पाँच हैं। ये मन्दिर वस्तु-कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर नहीं हैं और न इन पर ऊँचे ऊँचे गुम्बद हैं। विट्ठलनाथ जी का मन्दिर, गोकुलनाथ जी का मन्दिर, मदन-मोहन जी का मन्दिर, बालकृष्ण जी का मन्दिर तथा नवनीतप्रिय जी का मंदिर, ये बहुत मान्य हैं। इनमें से कुछ अष्टछाप कवियों के जीवन काल के ही बने हुए हैं। श्री गोकुल नाथ जी का मन्दिर आजकल सबसे अधिक वैभवशाली है, इस[2] का निर्माण सन् १५११ ई० में तथा बालकृष्णजी के मन्दिर का निर्माण सन् १५३६ ई० में हुआ था। नवनीतप्रिय जी के मन्दिर की स्थापना गोकुल में संवत् १६२८ वि० में हुई थी, जहाँ सूरदास जी कभी-कभी कीर्तन के लिए आते थे। गोकुल में श्रीवल्लभाचार्य जी भागवत तथा अपने अन्य धार्मिक ग्रन्थों पर व्याख्यान दिया करते थे। प्रयाग के पास स्थित अड़ैल से जब वे व्रज में आते थे तो उनके ठहरने का यही मुख्य स्थान था। संवत् १६२२ वि० में गो० विट्ठलनाथ जी अड़ैल छोड़कर सपरिवार गोकुल आ गये, परन्तु थोड़े दिन वहाँ रहकर वे मथुरा चले गए। उसके बाद संवत् १६२८ वि० के लगभग वे सपरिवार गोकुल फिर आए और स्थायी रूप से वहीं रहने लगे। इसी स्थान पर अष्टछाप के कवि नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविंद स्वामी तथा छीतस्वामी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य बने थे।

गोकुल में वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्यों में से, श्री वल्लभचार्य जी, श्री विट्ठलनाथ जी

१—श्री विट्ठलनाथ से प्रभु भए न ह्वैहैं।

... ...

... .

को कृतज्ञ करुना सेवक तन कृपा सुदृष्टि चितैहैं।

गाय ग्वाल सँग लैकें को फिर गोकुल गाँव बसैहैं।

... ...

लेखक के निजी, चतुर्भुजदास-पद-संग्रह से, पद नं० ७१।

२—मथुरा मेमोयर, ग्राउज़, पृष्ठ २८१।

नोटः—वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले सूरदास के निवासस्थान गऊघाट और रुनकता का परिचय सूर की जीवनी में दिया गया है।
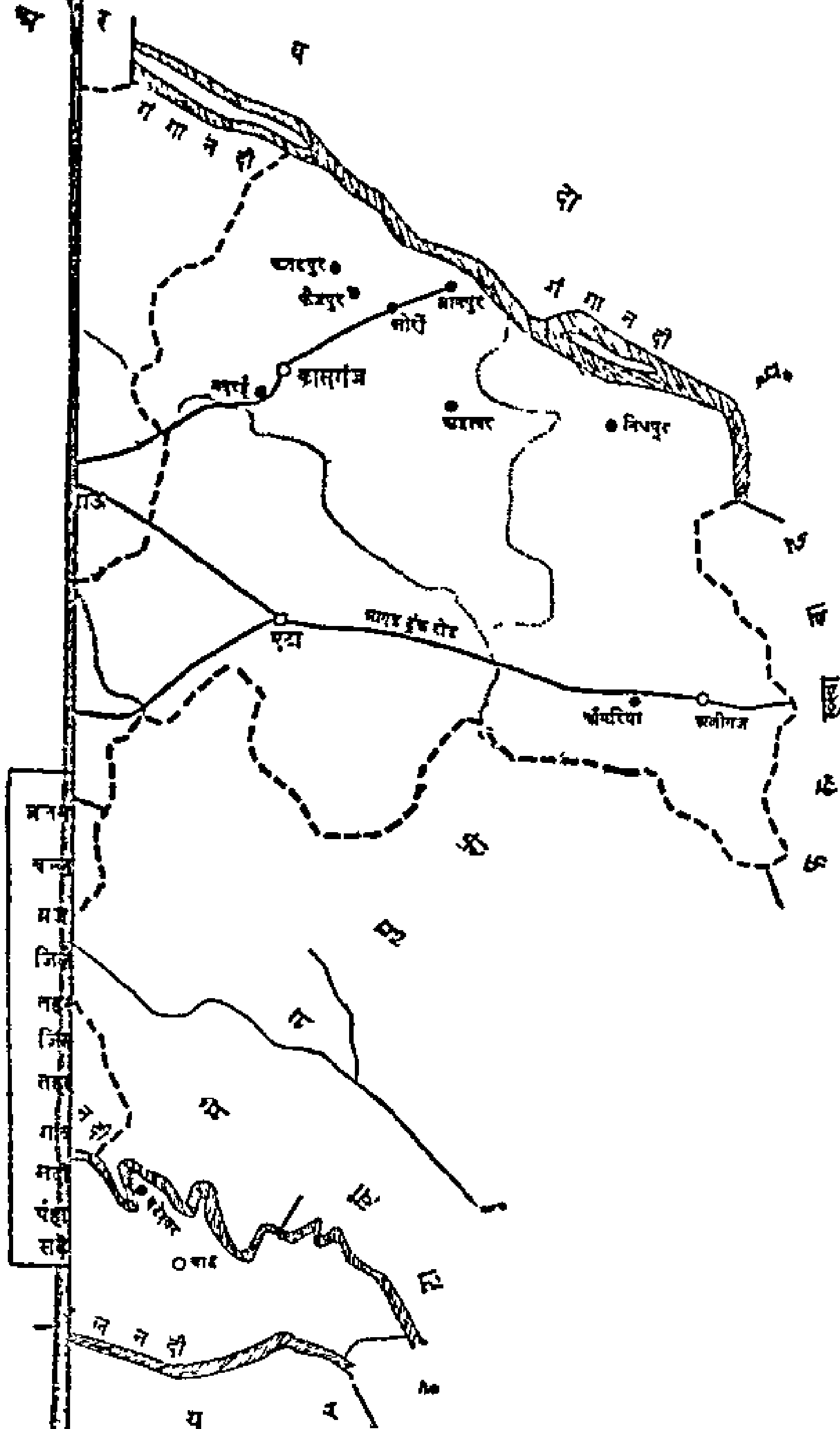
का मानचित्र
इंच -१६ मील
कासगंज
सोरों
एटा
अलीगंज

तथा श्री गोकुलनाथ जी की बैठकें बनी हैं, जहाँ अब भी वार्ता आदि साहित्यों के ऊपर वल्लभ-सम्प्रदायी विद्वानों के प्रवचन हुआ करते हैं। गोकुल और गोवर्धन पर श्री विट्ठलनाथ जी के देहावसान के बाद उनके सात पुत्रों के सात मन्दिर बने, जिनमें कृष्ण के सात स्वरूप स्थापित थे। मुसलमान बादशाहों के उत्पीड़न से इनमें से छः स्वरूप तो अन्य स्थान, रजवाड़ों, में ले जाकर स्थापित कर दिये गए; केवल श्री गोकुलनाथ जी का प्राचीन स्वरूप वापिस गोकुल में आया और वह अब तक वहीं है।

ब्रज के पीछे दिये हुए स्थानों के अतिरिक्त और भी बहुत से स्थान हैं जिनका संबंध ब्रज में प्रचलित भिन्न-भिन्न कृष्णभक्ति के सम्प्रदायों से है। श्रावण भादों की ब्रज-यात्रा में यात्री इन स्थानों में होकर जाते हैं। ऊपर उन्हीं स्थानों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिनका अष्टछाप भक्तों से सम्बन्ध था। ये आठों कवि वैसे ब्रज के और भी अनेक स्थानों पर गये होंगे परन्तु उन स्थानों का वार्ता-साहित्य तथा अष्टछाप-जीवनी से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है।

तथा श्री गोकुलनाथ जी की बैठकें बनी हैं, जहाँ अब भी वार्ता आदि साहित्यों के ऊपर वल्लभ-सम्प्रदायी विद्वानों के प्रवचन हुआ करते हैं। गोकुल और गोवर्धन पर श्री विट्ठलनाथ जी के तिरोधान के बाद उनके सात पुत्रों के सात मन्दिर बने, जिनमें कृष्ण के सात स्वरूप स्थापित थे। मुसलमान बादशाहों के उत्पीड़न से इनमें से छः स्वरूप तो अन्य स्थान, रजवाड़ों, में ले जाकर स्थापित कर दिये गए; केवल श्री गोकुलनाथ जी का प्राचीन स्वरूप वापिस गोकुल में आया और वह अब तक वहीं है।

व्रज के पीछे दिये हुए स्थानों के अतिरिक्त और भी बहुत से स्थान हैं जिनका संबंध व्रज में प्रचलित भिन्न-भिन्न कृष्णभक्ति के सम्प्रदायों से है। श्रावण भादों की व्रज-यात्रा में यात्री इन स्थानों में होकर जाते हैं। ऊपर उन्हीं स्थानों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिनका अष्टछाप भक्तों से सम्बन्ध था। ये आठों कवि वैसे व्रज के और भी अनेक स्थानों पर गये होंगे परन्तु उन स्थानों का वार्ता-साहित्य तथा अष्टछाप-जीवनी से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है।

अष्टछाप काव्य की पृष्ठभूमि

किसी कवि के काव्य का सम्बन्ध उसके पूर्व और उसके समकालीन युग से बहुत होता है। प्रत्येक कवि अपने युग के प्रभावों को किसी न किसी अंश में लेता हुआ ही अपनी कृति से अपने ही युग को अथवा आगामी युगों को प्रभावित करता है। इसलिए उस कवि के अध्ययन के लिए उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में ही हम उस कवि के काव्य की सहानुभूतिपूर्ण आलोचना कर सकते हैं। अपने जीवन और युग के लिए तो हम उसकी कृति के मूल्य को बिना उसके युग का परिचय प्राप्त किए ही आँक सकते हैं, परन्तु कवि के दृष्टिकोण और उसके विचारों की तह पर पहुँचने के लिए उसके समय की विचारधारा का सहारा लेना परम आवश्यक है। अस्तु, अष्टछाप-काव्य के अध्ययन से पहले उनके पूर्ववर्ती तथा उनके समय की साहित्यिक, कुछ अंश में राजनैतिक और सामाजिक, तथा धार्मिक परिस्थितियों का परिचय लेना समीचीन होगा। इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण देश और सम्पूर्ण भाषाओं की तत्कालीन परिस्थितियों को न देकर, उन्हें केवल हिन्दी भाषा और अष्टछाप-काव्य की जन्मभूमि ब्रजमण्डल तक ही, अधिक अंश में, सीमित रक्खा गया है। अष्टछाप काव्य-रचना का समय लगभग सं० १५५५ वि० से सम्वत् १६४२ वि० तक का है। गोवर्धन पर श्रीनाथ जी के मन्दिर में लगभग सम्वत् १६०६ से सवत् १६३५ तक आठों कवियों की स्थिति थी।[1]

अष्टछाप के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य का परिचय उन्हीं साहित्यिक विचारधाराओं के आधार पर लेने का प्रयत्न किया जायगा जिनको हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकारों

है जिसके अन्तर्गत लौकिक विविध प्रकार के विषय और मनोरंजन से सम्बन्ध रखनेवाले काव्य को गिना जा सकता है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने पुष्य (सम्वत् ७७०) से लेकर अष्टछाप के काल में होनेवाले 'क्रिसन रुक्मिणी री बेल' के रचयिता[1] पृथ्वीराज (रचना काल सं० १६३७) तक के अनेक वीरगाथा और वीरगीत लेखकों के नाम दिये हैं। उनमें से बहुत से कवियों के ग्रन्थ अभी तक मिले भी नहीं हैं। इस काव्य-धारा के प्रमुख कवि दो हैं:—'बीसल देव रासो' के रचयिता नरपति नल्ह तथा 'पृथ्वीराजरासो' के रचयिता चंद। वीरों के पराक्रम और उनके यश का, वीर और शृंगार-रस पूर्ण वर्णन इन गाथाओं का विषय है। बहुधा यह काव्य दोहा, कवित्त, छप्पय तथा कुछ अन्य गेय छंदों में लिखा गया है। ये वीर गाथाएँ सम्पूर्ण हिन्दी प्रान्त में भाषा के कुछ रूपान्तर के साथ अवश्य प्रचलित रही होंगी। जगनिक का 'आल्हा खण्ड,' यद्यपि इसकी मूल भाषा के रूप को अलग खड़ा करके दिखाना अत्यन्त कठिन है, इस बात का प्रमाण है। यह वीर-काव्य सम्पूर्ण हिन्दी प्रान्त में अभी तक प्रचलित चला आता है।

वीरगाथा-काव्य

चन्द आदि इन वीर-गाथा लेखकों की डिंगल भाषा में व्रजभाषा के रूप भी हमें मिलते हैं जो आगे चलकर पिंगल नाम से एक स्वतन्त्र और प्रबल साहित्यिक भाषा बनी। वीर-गाथाओं से अष्टछाप भक्तकवि भी परिचित अवश्य रहे होंगे, क्योंकि नर-काव्य, राजाओं की सेवा और उनके आश्रय की निन्दा सूर और परमानन्ददास ने अपने दो चार पदों में की है, जिसको उनकी 'भक्ति' के प्रसङ्ग में भी दिखाया गया है। सम्भव हो सकता है कि अष्टछाप ने दोहा, कवित्त आदि कुछ छन्दों को उस काव्यपरम्परा से लिया हो। परन्तु इस रासो-काव्य की वीर शैली का, भाव और भाषा की दृष्टि से, अष्टछाप-काव्य में कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं दिखाई देता।

अष्टछाप समय तक की सन्त-काव्य की परम्परा गुरु गोरखनाथ (वि० की तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) से चल कर सिख पन्थ के प्रवर्तक गुरु नानक तक आती है। इस परम्परा के मुख्य कवि हैं—हठयोगी गुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द जी के शिष्य पीपा, सेना, धना, रैदास तथा कबीर, नानक, महाराष्ट्र-कवि त्रिलोचन और नामदेव। इन सन्तों में से लगभग सभी ने अपने स्वतन्त्र धार्मिक पन्थ चलाये थे। इन पन्थों में से सबसे अधिक प्रभावशाली और प्रचार

सन्त काव्य

१—'कृष्ण रुक्मिणी री बेल,' के रचयिता, बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह जी का वर्णन २५२ वार्ता में भी दिया हुआ है, जो गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक कहे गये हैं।

पानेवाले पन्थ, गुरु गोरखनाथ जी का शून्यवादी और हठयोग का अनुयायी नाथ-पन्थ शब्द-ब्रह्मवादी तथा ज्ञान और योग का अनुयायी कबीर-पंथ, तथा निर्गुण-ईश्वर और नाम का उपासक रैदासी पंथ थे। सन्त-साहित्य की भाषा का रूप एक अनिश्चित तथा मिश्रित भाषा का रूप था। इसमें पूर्वी, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा और पञ्जाबी का मिश्रण मिलता है। सन्त काव्य के विषय, वैराग्य, संसार की असारता, गुरुमहिमा, नाममहिमा, मानसिक परिष्कार के उपाय, सदाचार, मन के प्रति प्रबोध, ज्ञान और योग की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, इन रहस्यात्मक अनुभूतियों का रतिभाव की अन्योक्तियों में व्यक्तीकरण, आदि हैं। इस काव्य का मुख्य रस शान्त है। यह मुक्तक शैली और छन्द तथा पद, दोनों साहित्यिक रूपों में लिखा गया है।

नाथ-पन्थ के शून्यवाद और हठयोग, तथा कबीर आदि सन्तों के केवल निर्गुण 'ब्रह्म-वाद' की निन्दा, ज्ञान और योग मार्गों की अनुपयुक्तता तथा इन मार्गों के सिद्धान्तों के प्रति उपेक्षा के भावों का व्यक्तीकरण सूरदास, परमानन्ददास तथा नन्ददास ने अपने कई पदों में किया है।[1] इनके 'गोपी-उद्धव-सम्वाद' में इस विषय से ही सम्बन्ध रखनेवाला वादविवाद वर्णित है, जो इस बात की साक्षी देता है कि ज्ञान और योग के तथा केवल निर्गुण ब्रह्म और शून्य के माननेवाले, उस समय में प्रचलित पन्थों के सिद्धान्तों से ये कवि परिचित थे। सन्तों की वाणी में तथा अष्टछाप-काव्य में कुछ वर्णित विषय तथा शैली की भी समानता पाई जाती है जैसे, सूरदास ने वैराग्य[2], संसार की असारता[3], नाम महिमा[4], सन्त-महिमा[5], गुरु महिमा[6] आदि, सन्त-काव्य के अनेक विषयों के समान ही, विविध विषयों पर बहुत पद लिखे हैं। गुरु-महिमा और सन्त-महिमा का वर्णन तो आठों कवियों ने किया है। सन्त-काव्य की साखी और पद-शैली तो अष्टछाप काव्य में हैं ही; प्रेम की संयोग-वियोगात्मक अनुभूति की मधुर भक्ति-पूर्ण उक्तियाँ भी, सन्तों की प्रेम-अन्योक्तियों के समान, इस काव्य में विद्यमान हैं। कबीर की उलटबाँसियों की पेचीदगी और अर्थगोपन के गुण सूर के दृष्टि कूट पदों में मिलते हैं। इन समानताओं के आधार पर इस निष्कर्ष का अनुमान किया जा सकता है, कि अष्टछाप कवि सन्त-काव्य से परिचित होने के साथ साथ, उससे किसी अंश में प्रभावित भी हुए थे। इस विषय में एक बात यह न भूलनी चाहिए कि जिन वर्णित विषयों की समानता हम अष्टछाप और सन्त-काव्यों में मिलती है, उन सभी विषयों का संक्षेप में समावेश अष्टछाप-काव्य के मूल-आधार-ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में भी है तथा पद-शैली का समावेश जयदेव से आती हुई कृष्ण-काव्य-परम्परा में है। इन दोनों काव्यों में मुख्य समानता विचारों की उतनी नहीं जितनी पद-शैली की कही जा सकती है जिसके अग्र-प्रचारक

१—सूरसागर, पृष्ठ ५१२, ५१६, ५२७, ५७६ तथा ५८७।
२— ,, ,, २७। ३—सूरसागर, पृष्ठ ३१ तथा ३३। ४—सूरसागर पृष्ठ
५— ,, ,, ३७। ६— ,, ,, ५१ तथा ५७।

हिन्दी में सन्त कवि थे। अष्टछाप-काव्य में यह पद-शैली, सन्तकाव्य की पद-शैली से अधिक परिष्कृत और कलापूर्ण है। इसका कारण यही है कि अष्टछाप के कवि स्वयं उच्चकोटि के सङ्गीतज्ञ, कला-विवेकी और विद्वान् थे, उधर सन्तकवि बहुधा अनपढ़ तथा संङ्गीत और काव्यकला के शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ थे।

सन्त-काव्य-धारा के अन्तर्गत कहे गए कवियों में से, सन्त नामदेव (वि० की चौदहवीं शताब्दी) का प्रभाव अष्टछाप पर अवश्य पड़ा होगा। महाराष्ट्र तथा हिन्दी[1] के कवि, और 'विठोवा' के परम भक्त, नामदेव की बानी का प्रचार उनके जीवनकाल में ही दूर दूर फैल गया था। पण्ढरपुर में श्री विट्ठल भगवान् (विठोवा अथवा कृष्ण) की मूर्ति के समक्ष ही, जिनके[2] उपासक नामदेव जी भी थे, श्री वल्लभाचार्य जी ने भक्ति की प्रेरणा ली थी। उस समय उन्होंने नामदेव जी के प्रेम और ज्ञान भरे अभङ्ग तथा ब्रजभाषा में लिखे पद, सोरठ और साखियों को अवश्य सुना होगा। नामदेव ने स्वय भारतवर्ष के तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी। उन्होंने ब्रज में अपनी मधुर वाणी का प्रभाव भी छोड़ा होगा। ब्रज में अष्टछाप के प्रथम चार भक्तों ने नामदेव जी की कृष्णभक्ति और उनके ज्ञानोपदेशों के विषय में अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी के मुख से अवश्य सुना होगा।

अष्टछाप-काव्य की भाषा पर सन्त-काव्य की मिश्रित भाषा का हमें कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं मिलता। हाँ, यदि नामदेव जी के नाम से हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों मे उद्धृत की जानेवाली भाषा का ब्रजभाषा-रूप नामदेव जी ही द्वारा लिखित है, तब तो उनकी भाषा में ब्रजभाषा के एक ऐसे साहित्यिक रूप का नमूना मिल जाता है जिसको सूर और परमानन्द-दास की परिष्कृत साहित्यिक ब्रजभाषा की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। परन्तु उस भाषा के नामदेव-कृत होने मे सदेह है। कदाचित् ब्रजभाषा की मौखिक परम्परा ने उसे इस प्रकार की भाषा का रूप दे दिया है।

अष्टछाप के प्रथम चार कवियों के काव्य से पहले लिखी हुई दो प्रेम कहानियों का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों मे मिलता है। एक, मुल्ला दाऊदकृत 'नूरक चन्दा की कहानी' और दूसरी, दामो-कृत 'लक्ष्मण सेन पद्मावती'। इन दोनों कहानियों का हिन्दी के इतिहासकारों ने कोई परिचय नहीं दिया। मलिक मुहम्मद जायसी, जिन्होंने सवत् १५९७ में 'पद्मावत' नामक प्रेम-कहानी की रचना की थी, अष्टछाप के कई भक्तों के

दोहा चौपाई में लिखा हुआ सूफी प्रेम-काव्य

1—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट, १९१२, नं० ६२। नामदेव की साखी, तथा रिपोर्ट नं० २१७, नामदेव जी का पद। तथा हिन्दी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २६२ तथा मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १ पृष्ठ १८३, सं० १९९४ वि० का संस्करण।

2—भक्तमाल, भक्ति-सुधा स्वाद-तिलक, रूपकला, पृष्ठ ३१६-३१७।

समकालीन थे। जायसी से कुछ ही पहले की लिखी हुई मृगावती और मधुमालती भी सूर के जीवनकाल की ही रचनाएँ हैं। इन प्रेमगाथाओं की भाषा अवधी है और ये दोहा चौपाई की प्रबन्ध शैली में लिखी हुई हैं। सूफ़ियों के सिद्धान्तों में प्रेम और विरहानुभूति की बहुत महिमा कही गई है। उसी प्रेम और 'प्रेम की पीर' की सूचक ये प्रेम कहानियाँ हैं।

अष्टछाप-काव्य के साथ इस सूफ़ी प्रेम-काव्य की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अष्टछाप-काव्य में भी प्रेम और प्रेम की विरहानुभूति की व्यञ्जना है। अष्टछाप-काव्य पर उस भारतीय प्रेम-भक्ति-परम्परा का प्रभाव मुख्य है, जो भारतवर्ष में सूफ़ियों के धर्म-प्रचार के पहले से ही चली आती थी और जिसको अष्टछाप ने अपने गुरुओं से पाया था। सूफ़ियों ने, जैसे, अपने दार्शनिक-सिद्धान्त-पक्ष में भारतीय वेदान्त से विचार लिये थे, उसी प्रकार वे साधन-पक्ष मे भी भारतीय उपासना-विधि के साधन प्रेम-भक्ति से प्रभावित हुए थे। वल्लभ-सम्प्रदायी प्रेम-भक्ति का रूप तो, जिसका अनुकरण अष्टछाप ने किया था, गीता, भागवत, नारद-भक्तिसूत्र, शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, नारदपाञ्चरात्र आदि भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों में प्राचीन काल से ही विद्यमान था। इस प्रकार अष्टछाप की राधाकृष्ण की प्रेम-कथा का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है, सूफ़ियों की प्रेमकहानियाँ नहीं हैं। नन्ददास-कृत 'रूपमञ्जरी' प्रेम कहानी में भी, सूफ़ियों द्वारा, मसनवी ढङ्ग पर लिखी प्रेमगाथाओं की किसी विशेषता अथवा आदर्श के अनुकरण का कोई चिह्न नहीं है। हाँ, इन प्रेम-गाथाओं की दोहा चौपाई की छन्द-शैली का नमूना अष्ट भक्तों के समक्ष अवश्य था, जिसका प्रभाव नन्ददास की, दशमस्कन्ध-भाषा, रूपमञ्जरी आदि की छन्द-शैली पर माना जा सकता है। इस ओर भी नन्ददास महात्मा तुलसीदास के रामचरितमानस की भाषा-शैली से अधिक प्रभावित माने जाने चाहिए, क्योंकि '२५२ वार्ता' में लिखा है कि नन्ददास ने 'भागवत भाषा दशमस्कन्ध' को, तुलसी के रामचरितमानस् से प्रेरणा लेने के बाद लिखा था[१]।

दोहा-चौपाईवाली छन्द-शैली के नमूने के लिए, सूफ़ियों की प्रेमगाथा तथा तुलसी के रामचरितमानस के अतिरिक्त, नन्ददास से पहले की इसी शैली में लिखी हुई एक भागवत-भाषा भी मिलती है। मिश्रबन्धु-विनोद में रायबरेली निवासी एक लालचदास हलवाई नामक कवि द्वारा सं० १५८७ वि० मे दोहा-चौपाई की शैली मे लिखी इस भागवत का उल्लेख है।[२] रायबरेली के इस लालचदास कवि द्वारा लिखित 'हरिचरित्र' नामक एक और ग्रन्थ का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[३] मे भी दिया हुआ है और इस कवि की विद्यमानता का संवत्, उक्त रिपोर्ट मे १५६५ वि० लिखा है। मिश्रबन्धुओं ने 'विनोद' में लालचदास के हरिचरित्र का भी उल्लेख किया है। वस्तुत भागवत-भाषा तथा

१—'अष्टछाप', डा० वर्मा, पृष्ठ ६६।

२—मिश्रबन्धु-विनोद भाग १, संवत् १९८३ वि० संस्करण, पृ० २८६।

३—नागरी प्र० स० खोज रिपोर्ट, सन् १९०६:७:८ ई०, नं० १८६।

हरिचरित्र दोनों एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। लालचदास हलवाई-कृत भागवत भाषा की जो हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने देखी हैं उनमें ग्रन्थ का नाम 'भागवत भाषा हरिचरित्र' भी दिया हुआ है। इसका विवरण आगे दिया जायगा। 'विनोद' में मिश्रबन्धुओं ने उक्त भागवत भाषा ग्रन्थ से उद्धरण देते हुए उसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

"यह पुस्तक लाला भगवानदीन जी 'दीन', अध्यापक, हिन्दी, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, के पास है।" उद्धरण इस प्रकार है:—

"पद्रह सौ सत्तासी जहियाँ, समय विलबित बरनो तहियाँ।
मास असाढ़ कथा अनुसारी, हरिबासर रजनी उजियारी॥
सकल सत कहँ नावइ माथा, बलि बलि जैहों जादवनाथा।
रायबरेली बरनि आवासा, लालचराम नाम कै आसा॥"

लालचदास हलवाई द्वारा दोहा-चौपाई की छन्द-शैली में रचित 'भागवत भाषा' 'हरिचरित्र' दशमस्कन्ध की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने मयाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय में देखी हैं। ये प्रतियाँ अवधी भाषा में लिखी हुई हैं, परन्तु कहीं-कहीं ब्रज भाषा के शब्दों के रूप भी इसमें मिलते हैं। मिश्रबन्धु-विनोद के उद्धरण कुछ पाठ-भेद से याज्ञिक संग्रहालय की भागवत से मिलते हैं जिससे निश्चित होता है, कि स्व० लाला भगवानदीन जी की प्रति तथा याज्ञिक संग्रहालय की प्रति, दोनों एक ही ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ हैं। याज्ञिक संग्रहालय की प्रतियों में एक प्रति के आरम्भ के पत्र खोए हुए हैं और दूसरी प्रति के कुछ अन्त के। दोनों के मिलाने से ग्रन्थ बहुत अंश में पूरा हो जाता है। इन दोनों ग्रन्थों में 'भागवत भाषा' के साथ कई स्थानों पर अध्याय की समाप्ति में हरिचरित्र 'शब्द' भी लगा है। इन दोनों प्रतियों में से एक में ग्रन्थरचना का संवत् दिया है। लेखक का नाम तो, लालचदास, लालच, जन लालच आदि कई रूपों में दोनों प्रतियों में आया है। यहाँ की प्रति में एक बात विशेष विचारणीय है कि इस ग्रन्थ का रचना काल सं० १५०० वि दिया हुआ है। रचनाकाल-सम्बन्धी उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

"सवत् पन्द्रह सै भी जहियाँ, समय विलम्ब नाम भा तहियाँ,
मास असाढ कथा अनुसारी, हरिबासर रजनी उजियारी।
सोनित नग्र सुधर्म निवासा, लालच तुम्र नाम की आसा
सब सतन कहँ नावौं माथा, बल बल जैहौं जादोनाथा।"

आरम्भिक चौपाइयों में से उद्धृत नीचे की एक चौपाई में कवि अपने को हलवाई कहता है—

"विघ्नहरण सतन सुखदाई, चरण गहे लालच हलवाई।"

उक्त दोनों स्थानों की लालच-कृत भागवत भाषा की प्रतियों के उद्धरणों से दो बातों में अन्तर दिखाई देता है, ग्रन्थ का रचना काल, तथा कवि का निवासस्थान। सम्भव है, रायबरेली का प्राचीन नाम सोनित (श्रोनित) नगर हो। प्रयत्न करने पर भी 'दीन' जी वाली पूरी प्रति लेखक को देखने को न मिल सकी। याज्ञिक-संग्रहालय की तिथिवाली प्रति दो ढाई सौ वर्ष पुरानी अवश्य होगी। इसलिए सम्भव हो सकता है कि यह ग्रन्थ सं० १५०० वि० का ही रचा हुआ हो। दोनों संवतों में से उक्त ग्रन्थ किसी भी सवत् का हो, इतना तो अवश्य सिद्ध है कि यह नन्ददास की 'भागवत भाषा' नामक रचना से ।जीस पचास वर्ष पहले की रचना अवश्य है। इस ग्रन्थ का ब्रज-प्रांत में भी प्रचार था, क्योंकि स्व० मयाशङ्कर जी को ये प्रतियाँ ब्रज में ही मिली थीं, सम्भव है इसकी प्रतिलिपियाँ वहाँ और भी विद्यमान हों, इसलिये नन्ददास जैसे भागवत-भक्त ने इस भागवत भाषा को पढ़ा हो, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सूरदास और परमानन्ददास ने भी चौपाई और दोहा छन्द बहुत लिखे हैं। दोहा और चौपाई सूफियों की हिन्दी रचना से पहले के ही छन्द हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल के[1] जैन साहित्य में दोहा, चतुष्पदी (चौपाई), ढाल, कवित्त आदि कई छन्दों का प्रयोग मिलता है। इसलिए यह कहना कि इन छन्दों के प्रयोग के लिए अष्टछाप कवि सूफ़ी कवियों के ऋणी हैं, अनुचित होगा। समय समय पर सूफी प्रेमी लोग कृष्ण-प्रेम-भक्ति से भी प्रभावित होते रहे हैं। रसखान[2] और आलम[3] जैसे सूफी भक्तों में से रसखान तो कृष्ण के ही अनन्य भक्त बन गये थे और आलम ने यद्यपि अपना मत नहीं बदला था, परन्तु उसने कृष्ण-प्रेम-लीला के अनेक छन्द लिखे हैं। पीछे कहा गया है कि सूफी प्रेमगाथाओं की भाषा अवधी है। अष्टछाप के काव्य में जो अवधी भाषा के शब्दों का कहीं-कहीं प्रयोग मिलता है वह इन प्रेम-गाथाओं के अध्ययन का प्रभाव प्रतीत नहीं होता, वरन् ब्रज-प्रान्त में सन्त-साहित्य द्वारा प्रचलित किये गये अवधी भाषा के गीत और ब्रज-प्रान्त में ब्रजवास अथवा यात्रा की कामना से रहने और आनेवाले पूर्व देशों के कृष्ण-भक्तों के विचार-विनिमय के प्रभाव-रूप जान पड़ता है।

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ९७।

२—रसखान-कृत 'प्रेम वाटिका' में पुस्तक का रचनाकाल सम्वत् १६७१ वि० दिया हुआ है। यह रचना कवि के उत्तर जीवन काल की है। '२५२ वार्ता' में रसखान पठान को श्री गो० विट्ठलनाथ जी का शिष्य कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि रसखान अष्टछाप का समकालीन व्यक्ति था।

३—आलम—आलम-कृत माधवानल काम कदला का रचना काल उक्त ग्रन्थ में सन् ९९१ हिज्री अथवा सन् १५८४.८५ ई० दिया हुआ है। इस संवत् वाली इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि लेखक ने पं० मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में देखी है।

अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले की रामकाव्य परम्परा में, केवल दो कवियों का उल्लेख हमें हिन्दी साहित्य के इतिहासों में मिलता है, एक भगवतदास, दूसरे भूपति कवि[1]। कवि भगवतदास के हिंदी में लिखे 'भेदभास्कर' ग्रन्थ के नाम के अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उक्त ग्रंथ का और कोई परिचय नहीं दिया। "हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग१" नामक पुस्तक में आचार्य डा० श्यामसुन्दर दास ने भी कवि भगवतदास के विषय में लिखा है,—"इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है[2]" इसलिए इस कवि की रचना के विषय में यहाँ कुछ नहीं कहा जा सकता।

रामकाव्य-परम्परा

सन् १६०२ ई० की खोज रिपोर्ट में, भूपति कवि का उल्लेख "भागवत भाषा दशम् स्कन्ध" के रचयिता के रूप मे तथा सन् १६०६ ई० की खोज रिपोर्ट में "रामचरित रामायण" के रचयिता के नाम से हुआ है। १६०२ की रिपोर्ट में "भागवत भाषा" का रचनाकाल सं० १३४४ वि० दिया हुआ है। और रामचरित्र रामायण का रचनाकाल दूसरी रिपोर्ट में सं० १३४२ वि० है। डा० रामकुमार वर्मा ने भूपति कृत "रामचरित्र रामायण" का निर्माण-काल सन् १६०६ ई० की खोज रिपोर्ट के आधार से तुलसीदास से पहले सं० १३४२ वि० लिखा है।[3]

"हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पहला भाग" नामक ग्रन्थ में ग्रन्थ के सम्पादक आचार्य डा० श्यामसुन्दर दास जी ने, एक ही व्यक्ति "भूपति" को पीछे कहे दोनों ग्रन्थों "भागवत भाषा दशम स्कन्ध" तथा "रामचरित्र रामायण" का रचयिता लिखा है और भूपति कवि की स्थिति सं० १७४४ वि० में लिखी है[4]। उक्त संक्षिप्त विवरण की प्रस्तावना से आचार्य जी ने इस बात को और भी स्पष्ट प्रमाण देकर खोला है कि "भागवत-भाषाकार भूपति की स्थिति सं० १३४४ वि० न होकर १७४४ में थी।" लेखक का भी विचार है कि 'रामचरित्र रामायण' भागवत के नवम स्कन्ध का भाषानुवाद है। और इस ग्रन्थ और भागवत भाषा दशम स्कन्ध का एक ही लेखक भूपति कवि है। इसकी रचना और दशम स्कन्ध भाषा की समाप्ति की रचना में खोज रिपोर्ट ने दो साल का अन्तर बताया है। दशम स्कन्ध के अनुवाद में दो साल का लगना बहुत सङ्गत बात है। पण्डित मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में भी भूपति कृत भागवत दशमस्कन्ध की सं० १६०६ वि० की लिखी एक प्रति लेखक की देखी हुई है। उसके पाठ, खोज रिपोर्ट में दिये हुये उदाहरणों से मिलते हैं। उसमें भी ग्रन्थ-रचना का काल स्पष्ट रूप से सं० १७४४ वि० दिया है।

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २४२:२४१।

२—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दर दास, पृ० १०८।

३—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ २४५: २४६

४—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दरदास, पृ० ११२।

"संवत सत्रह से भये चार अधिक चालीस।"

उक्त विवेचन के आधार से, डा० श्यामसुन्दर दास जी के मत तथा याज्ञिक-संग्रहालय की प्रति के आधार पर भूपति का समय संवत् १७४४ वि० ही प्रमाणित ठहरता है।

इस प्रकार अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले, रामकाव्य-परम्परा में आनेवाला कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। सूरसागर के नवम् स्कन्ध में सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित्र, भागवत नवम् स्कन्ध का अनुकरण है, राम-भक्ति-परम्परा के किसी हिन्दी कवि का प्रभाव नहीं है। नन्ददास आदि दूसरे वर्ग के चार अष्टछाप भक्तों के समक्ष अवश्य उनके जीवन काल ही में तुलसी का रामचरितमानस आ गया था। नन्ददास के ऊपर, जिसके प्रभाव के विषय में पीछे[1] कहा ही जा चुका है, अवश्य तुलसीदास जी के रामचरितमानस की शैली का प्रभाव पड़ा था।

अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले के, हिन्दी में कृष्णभक्ति पर काव्य लिखने वाले, केवल तीन नाम हमारे सामने आते हैं—१. जयदेव, जो वस्तुत: संस्कृत का कवि है, २. विद्यापति जो मैथिली भाषा का कवि है और ३. नामदेव, महाराष्ट्र कवि जिसकी व्रजभाषा परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है और जिसकी मूलभाषा का इस समय ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

अष्टछाप से पहले हिन्दी में कृष्ण-भक्ति-काव्य की परम्परा

जयदेव ने राधाकृष्ण की विलास लीलाओं का वर्णन संस्कृत भाषा की सरस और सङ्गीतमयी पदावली में किया। गीत-गोविन्द का प्रभाव हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों पर विशेष पड़ा है। जयदेव ने हिन्दी में भी कुछ पद लिखे थे जिनमें से केवल दो पद 'ग्रन्थ साहब' में मिलते हैं। उन पदों के देखने से ज्ञात होता है कि वे भाव और भाषा की दृष्टि से महत्व के नहीं हैं। गीत गोविन्द की अनेक प्रतिलिपियाँ, हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों के साथ बँधी, व्रज के वैष्णव घर तथा मन्दिरों में मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि गीत गोविन्द का, चाहे सङ्गीत की दृष्टि से हो, चाहे इसमें निहित भावों की दृष्टि से हो, व्रज में बहुत प्रचार था। अष्टछाप की मधुर पदावली के देखने से पता चलता है कि उस पर गीत-गोविन्द की भावमयी भाषा तथा सङ्गीतमयी शब्दावली का अवश्य प्रभाव पड़ा था।

काव्य की दृष्टि से विद्यापति के पदों का महत्व बहुत ऊँचा है। विद्यापति का काव्य अष्टछाप के समय में बहुत लोकप्रिय था। महात्मा चैतन्य[2] और उनके अनुयायियों ने भी

१—इसी ग्रन्थ का पृष्ठ २२ तथा २३।

२—समय—जन्मकाल १४८६ ई०, कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया सीरीज़, भाग २, पृ० १३१।

इनके गीतों को अपनाया था तथा चैतन्य महाप्रभु के, ब्रज में रहनेवाले अनुयायी इनको बड़ी तल्लीनता के साथ गाते थे। स्वयं महाप्रभु जी इनके पदों को गाते-गाते मूर्छा में आ जाते थे। उनकी जीवनी से यह बात विदित है। विद्यापति के पद बहुत काल तक बंगाल में गाये जाते रहे। यहाँ तक कि कुछ समय पहले तक बंग-साहित्य विद्यापति को बँगला भाषा का कवि कहता था। चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रचार अष्टछाप के समय में श्री रूपगोस्वामी जी[1] के प्रभाव से बहुत हुआ था, उसके साथ ब्रज में विद्यापति का भी मान बढ़ा। इस प्रकार विद्यापति की काव्य-शैली ने भी जयदेव की तरह अष्टछाप काव्य शैली को अवश्य प्रभावित किया होगा।

कृष्ण काव्य-परम्परा में तीसरा भक्त कवि नामदेव है जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है। अष्टछाप के द्वितीय वर्ग नन्ददास आदि के लिए तो कृष्ण-भक्ति-काव्य का सबसे बड़ा आदर्श अष्टछाप के प्रथम वर्ग के (सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास तथा कृष्णदास अधिकारी के) उस अपूर्व काव्य का था जो सदियों तक हिन्दी का आदर्श काव्य बना रहा और जिसकी समता का, काव्य की दृष्टि से अब तक किसी ब्रजभाषा कवि का काव्य नहीं है। अष्टछाप से पहले की कृष्ण-भक्ति-परम्परा में लालचदास हलवाई का 'भागवत भाषा दशमस्कन्ध' भी आता है जो, यदि अष्टछाप के प्रथम वर्ग के पहले नहीं तो, दूसरे वर्ग के पहले तो अवश्य रखा जा सकता है। इस ग्रन्थ का भी परिचय पीछे दिया जा चुका है।

ब्रह्मचारी विहारीशरण जी, सम्पादक, निम्बार्क माधुरी, ने 'नाम-माहात्म्य' नामक मासिक पत्र के 'श्री ब्रजाङ्क' में, "श्री ब्रज के बानी कर्ता सन्तों का सूक्ष्म परिचय" नामक एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने ब्रज के भक्त, श्री युगल-शतक के रचयिता श्री भट्ट जी का समय सं० १३५२ वि० तथा श्री हरिव्यास देव जी का समय सं० १३२० वि० दिया है, इन कवियों का परिचय उन्होंने अपने एक ग्रन्थ, निम्बार्क माधुरी, में भी दिया है। इस हिसाब से यह भक्तकवि सूर और परमानन्ददास से पहले के ठहरते हैं। वस्तुतः ब्रह्मचारी जी ने इन दोनों भक्तों की विद्यमानता का संवत् ग़लत दिया है। निम्बार्कसम्प्रदायी तथा युगल शतक के रचयिता श्री भट्ट[2] केशव काश्मीरी के शिष्य माने जाते हैं। इनका रचनाकाल लगभग सं० १६१० वि० है। श्री हरिव्यास देव का रचनाकाल भी सूरदास के समय का ही है। वैसे निम्बार्कसम्प्रदायी हरिव्यास देव जी आयु में सूर से बड़े थे।

ऊपर कही हुई काव्य की विचारधाराओं के अतिरिक्त प्रकीर्णक काव्य-परम्परा के अन्तर्गत अष्टछाप से पहले के कवियों में अमीर खुसरो (अलाउद्दीन का समकालीन) की

१—समयः—श्री रूपगोस्वामी जी ने शाके १४६२ (संवत् १५९७ वि०) में 'हरिभक्त रसामृत सिन्धु' ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ की पुष्पिका के लेख से यह संवत् सिद्ध है।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, संवत् १९९४ वि० संस्करण, पृ० १६४।

अष्टछाप से पहले प्रकीर्णक काव्य की परम्परा

केवल एक प्रमुख कवि हैं। इन्होंने विविध प्रकार के लौकिक ज्ञान, अनुभव तथा मनोवृत्तियों से सम्बन्ध रखनेवाले काव्य की हिन्दी में रचना की थी। हिन्दी में इस कवि की प्रसिद्धि मनोरंजक साहित्य, जैसे मुकरियाँ, पहेलियाँ, अन्तर्लापिका, दोसखुने आदि, के लिखने के लिए है। अमीर खुसरो की महत्ता सङ्गीत समाज में भी मान्य थी और अब भी है। वह स्वयं एक उच्च कोटि का गवैया था। गाने के 'क़व्वाली' ढङ्ग के आविष्कार का श्रेय इसी को दिया जाता है। अमीर खुसरो की भाषा ब्रजभाषा की माधुरी से मिश्रित खड़ी बोली है, जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा म है। इनकी भाषा को न तो शुद्ध खड़ीबोली और न शुद्ध ब्रजबोली ही कह सकते हैं। खुसरो की मुकरियों और पहेलियों की भाषा, खड़ी और ब्रज, दोनों बोलियों की आगे प्रस्फुटित होनेवाली साहित्यिक क्षमता का सङ्केत अवश्य करती है। अमीर खुसरो की रचना और सम्पूर्ण अष्टछाप काव्य में, सङ्गीत पक्ष को छोड़कर अन्य कोई भारी साम्य नहीं प्रतीत होता। सूर के दृष्टकूट पदों में अर्थ को मानसिक दृष्टि से छिपाने का जो भाव है, उसकी समता में खुसरो की पहेली, अन्तर्लापिका आदि कही जा सकती है। जिस प्रकार खुसरो ने श्लेष के बल पर दुहरे अर्थ भरे हैं उसी प्रकार सूर ने अनेक दृष्टकूटों में यमक और श्लेष के सहारे दो अर्थ दिये हैं। मानसिक एकाग्रता का अभ्यास तथा अभिमानी पण्डितों की बुद्धिपरीक्षा की चुनौती देनेवाले दृष्टकूटों की क्लिष्टकल्पना की प्रेरणा, सूर ने सम्भव है, खुसरो के 'पहेली' आदि साहित्य से ली हो।

पीछे दिये हुये विवेचन के आधार पर सक्षेप में कहा जा सकता है कि विषय और भक्ति भाव की दृष्टि से अष्टछाप के काव्य का मूल आधार श्रीमद्भागवत तथा श्री वल्लभाचार्य जी के प्रवचन हैं। काव्य की दृष्टि से अपने से पूर्व स्थित राजस्थानी, अवधी और मैथिली काव्य से उन्होंने केवल प्रेरणा मात्र ही ली, आदर्श रूप मानने योग्य उनके सामने कोई कवि न था। पद-शैली का आदर्श उनके समक्ष जयदेव, विद्यापति, नामदेव और कबीर के पदों ने रक्खा। भाषा की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के पहले ब्रजभाषा में रचना करनेवाले, किसी भी कवि का परिचय इतिहास नहीं देता। नामदेव की ब्रजभाषा भी परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है। इस प्रकार अष्टछाप का प्रथम वर्ग ही ब्रजभाषा का आदि कवि-वर्ग है और उसमें भी सबसे अधिक श्रेय सूर को है। मौखिक रूप में प्रचलित तथा तत्कालीन हिन्दी-साहित्य में जहाँ तहाँ असंस्कृत रूप से बिखरी हुई ब्रजभाषा की शिथिल शक्तियों को इन्हीं कवियों ने समेटा और उन्हें अपनी प्रतिभा के बल से एक काव्यगुण-सम्पन्न भाषा का रूप दिया। सूर की प्रतिभा इस ओर वास्तव में आश्चर्य में डालनेवाली है। अष्टछाप का प्रथम वर्ग सचमुच हिन्दी साहित्य म एक युग प्रवर्तक कवि वर्ग हुआ है। इस विषय में डा० धीरेन्द्र

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ७१६

वर्मा का कथन अवलोकनीय है—"सूरदास जी ने आजीवन श्री गोवर्द्धननाथ जी के चरणों में बैठकर व्रजभाषा-काव्य के रूप में जो भागीरथी बहाई उसका वेग आज तक भी क्षीण नहीं हो पाया है। सोलहवीं शताब्दी के पहले भी कृष्ण-काव्य लिखा गया था, लेकिन वह सब का सब या तो संस्कृत में है, जैसे जयदेव-कृत गीत गोविन्द, या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिल कोकिल-कृत पदावली। व्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।"[1]

अष्टछाप के समक्ष सङ्गीत का आदर्श उपस्थित करनेवाले सङ्गीत कलाविद् उत्तरी भारत में अवश्य रहे होंगे। अष्टवर्ग ने अपनी सङ्गीत प्रणाली में किस प्रणाली को अपनाया है, यह खोज का एक स्वतन्त्र विषय है। सङ्गीत के इतिहास तथा सङ्गीत की दृष्टि से अष्टकाव्य का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी के लिए यह एक पृथक् रूप से अपनी महत्ता रखता है। कहते हैं कि अकबर के समय में ध्रुपदिये गवैये बहुत थे और यही प्रणाली उस समय प्रचलित थी। खुसरो का कव्वाली ढङ्ग भी प्रचलित रहा होगा। सम्भव है, अष्टछाप, ध्रुपदवालों में हों। अष्टछाप की सङ्गीत कला उनके समय में इतनी प्रसिद्ध थी कि बड़े-बड़े गवैये इन्हें आदर्श मान कर इनका गाना सुनने आते थे। तानसेन जैसे प्रमुख गवैये को भी स्वामी हरिदास जी के अतिरिक्त अन्त में गोविन्दस्वामी की शिष्यता ग्रहण करनी पड़ी थी।[2]

अष्टछाप के समकालीन कवियों और कलाविदों के बहुत से नाम इतिहासकारों ने दिये हैं। हिन्दी के कवियों में इनके समकालीन प्रमुख कवि 'जायसी', महात्मा तुलसीदास, जिनका रचनाकाल अष्टछाप के प्रथम वर्ग के प्रौढ़ रचनाकाल के बाद आता है, रहीम, गङ्ग और श्री हितहरिवंश जी थे। केशवदास का कविताकाल अष्टछाप के बाद आता है। अष्टछाप के उक्त समकालीन कवियों में सूर की समता करनेवाले तथा कुछ अंश में समता में सूर से आगे बढ़नेवाले कवि केवल तुलसीदास ही हैं।

अष्टछापकेसमय दिल्ली की राजशक्ति और देशकी राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था।

उत्तरी भारत के माध्यमिक काल से इतिहास में, उत्तर भारत की राजकीय सत्ता का मुख्य केन्द्र दिल्ली रहा था। दिल्ली पर शासन करनेवाला राजा उत्तरी भारत का मुख्य राजा समझा जाता था। उस समय दिल्ली को जीत लेने पर छोटे-छोटे राज्यों का वश में करना बहुत अधिक कठिन कार्य न था। अष्टछाप के समय (लगभग सन् १४६८ ई० से सन् १५८५ ई० तक) का व्रजमण्डल दिल्ली की राजसत्ता के ही अधीन था। मुहम्मद ग़ोरी ने जब अन्तिम बार सन् ११६२ ई० में पृथ्वीराज को हराकर हिन्दू-राज्य का अन्त किया तब से विदेशियों के हाथ में

१—नाम माहात्म्य, श्री व्रजाङ्क, अगस्त सन् १६४०, 'व्रजभाषा' नामक लेख, लेखक डा० धीरेन्द्र वर्मा।

२—'२५२ वार्ता' में तानसेन की वार्ता।

दिल्ली साम्राज्य ने अनेक राजनैतिक परिवर्तन देखे। दिल्ली के कई मुसलमान बादशाह समस्त भारत के शासनकर्ता भी हुए तथा निर्बल बादशाहों के शासन में कई बार प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र भी हुए, परन्तु व्रजप्रदेश दिल्ली और आगरे की सल्तनत के अधीन ही रहा। अष्टछाप के समय में दिल्ली और आगरे के सिंहासन पर निम्नलिखित बादशाहों ने राज्य किया।

१—बहलोल लोदी।	सन् १४५१ ई० : १४८७ ई०
२—सिकन्दर लोदी।	सन् १४८६ ई० : १५१७ ई०
३—इब्राहीम लोदी।	सन् १५१७ ई० : १५२६ ई०
४—बाबर।	सन् १५२६ ई० : १५३० ई०
५—हुमायूँ।	सन् १५३० ई० : १५३६ ई०
६—शेरशाह सूरी।	सन् १५३६ ई० : १५४५ ई०
७—इसलाम शाह।	सन् १५४५ ई० : १५५४ ई०
८—मुहम्मद आदिलशाह तथा ९—सिकन्दर शाह।	सन् १५५४ ई० : १५५५ ई०
१०—हुमायूँ (फिर से)	सन् १५५५ ई० : १५५६ ई०
११—अकबर।	सन् १५५६ ई० : १६०५ ई०

अँग्रेज़ भारतीय इतिहासकारों ने दिल्ली पर, माध्यमिक काल में, राज्य करनेवाले अनेक वंश और घरानों के सुल्तानों की राजनीति, उनके प्रबन्ध, उनके युद्ध तथा हारजीत, राज्य विस्तार, फ़ौज तथा पारिवारिक जीवन का विवरण विस्तार के साथ दिया है। परन्तु उस समय के देश की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का परिचय उतने विस्तार के साथ उन्होंने नहीं दिया। उधर कुछ भारतीय इतिहासकारों ने इन विषयों पर भी, मुसलमानी सल्तनत के समय के ही पुराने लेखों तथा इतिहासों के आधार से, ग्रन्थ लिखे हैं। देश की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अध्ययन से, कवियों की विचारधारा की पृष्ठभूमि का ज्ञान होता है, दूसरे इन कवियों तथा आचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थों में प्रकट किये गये तत्कालीन परिस्थिति-सम्बन्धी उल्लेखों की सत्यासत्यता का भी हमें पता चल जाता है।

अष्टछाप से पहले मुसलमानकालीन भारत की प्रजा दो प्रकार की थी। एक मुसलमानी बादशाह पक्ष की और दूसरी, शासित हिन्दू पक्ष की। इतिहास से पता चलता है कि अकबर से पहले के खिलजी, तुग़लक़, सैयद, लोदी तथा मुग़ल वंशों के दो-तीन बादशाहों को छोड़कर सभी बादशाहों की शासन-नीति क्रूरता, धर्मान्धता तथा पक्षपातपूर्ण थी।

नोटः—ऊपर कही तिथियों के लिए देखिये—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ३ व ४, कोनोलाजी।

मुसलमान मतावलम्बी प्रजा तथा कुछ शाही 'जी हुजूरी' में पलनेवाले हिन्दू-राजकर्मचारी, जो बहुधा छोटे दर्जे के हुआ करते थे, सुखी और समृद्ध थे, बाक़ी प्रजा की दशा सदियों तक बहुत हीन और कष्टमय रही। उक्त वंश के बादशाहों तथा उनके कर्मचारियों द्वारा हिन्दू प्रजा के साथ किये गये व्यवहार का वर्णन वर्तमानकालीन सभी इतिहासकारों ने दिया है। सुल्तान-काल की हिन्दू जनता की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा का वर्णन करते हुए डा० ईश्वरीप्रसाद अपने ग्रन्थ 'मैडीवियल इण्डिया' में कहते हैं—

"भारतवर्ष में इसलाम धर्म का प्रचार उसके सरल सिद्धान्तों के कारण नहीं हुआ, किन्तु इसीलिए हुआ कि वह एक राजशक्ति का धर्म था जो कभी-कभी विजित प्रजा में तलवार तथा दण्ड द्वारा बलपूर्वक प्रसारित किया जाता था। स्वार्थ-लाभ तथा दरबार में उच्च-पद-प्राप्ति के लोभ में भी लोग अपने धर्म को छोड़कर इसलाम को अङ्गीकार कर लेते थे। परन्तु पद-प्राप्ति का लोभ तथा राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार उस वर्ग के प्रति हिन्दुओं के हृदय की कसकभरी शत्रु-भावना को दबाने में कभी सफल नहीं हुये, जिसने उनकी स्वतन्त्रता छीनी थी और जो उनके धर्म को घृणा की दृष्टि से देखता था।[1] धार्मिक तथा राजनैतिक, दोनों दृष्टियों से हिन्दू सताये जाते थे। उधर हिन्दुओं की ओर से भी प्रतिज्ञापूर्ण विरोध था।[2] मूर्तियों का खण्डन करना, सब प्रकार के विपरीत विश्वासों का हनन करना, तथा काफ़िरों (हिन्दुओं) को मुसलमान बनाना—ये कृत्य, एक आदर्श मुसलमान राज्य के कर्तव्य समझे जाते थे।[3] सिकन्दर लोदी के समय में तो हिन्दुओं पर अत्याचार करने का एक आन्दोलन-सा चल गया था। राज्य की ओर से मुसलमान धर्म को न माननेवाली प्रजा पर बड़े-बड़े प्रतिबन्ध लगे थे। बलपूर्वक उसे मुसलमान बनाना तो साधारण-सी बात थी, उसे एक प्रकार का कर, जो 'जज़िया' कहलाता था, राज्य को देना होता था।[4] यद्यपि क़ुरान में इस प्रकार के बलात्कार का कोई विधान नहीं है।[5]..................मुसलमान राज्यों में शाही लोगों में विलासिता का पोषण था। राज्य के उच्चपद मुसलमानों को ही मिलते थे। योग्यता की पूछ न थी। बादशाह की इच्छा ही सबसे बड़ा नियम था। जिन लोगों को सुल्तानी सुदृष्टि से सम्पत्ति और अधिकार मिले थे, उनमें विलासिता तथा बड़े-बड़े दुर्व्यसन घुस गये जिसके फलस्वरूप ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों में बल और स्फूर्ति का ह्रास होने लगा।[6]..................

१—हिस्ट्री आफ मैडीवियल इण्डिया, डा० ईश्वरीप्रसाद, पृ० ४६५।
२— ,, ,, ,, ,, ४६६।
३— ,, ,, ,, ,, ४६७।
४— ,, ,, ,, ,, ४६८।
५— ,, ,, ,, ,, ४६९।
६— ,, ,, ,, ,, ४७०।

हिन्दू लोग निर्धनता, हीनता, तथा कठिनता का जीवन व्यतीत करते थे। उनकी आय उनके परिवार के लिए कठिनता से ही पर्याप्त होती थी। विजित प्रजा में रहन-सहन की दशा बहुत निम्न श्रेणी की थी और राजकीय कर का भार उन्हीं पर विशेष रूप से था। ऐसी दुर्दशा में उन्हें अपनी राजनैतिक बल सम्बन्धी प्रतिभा को प्रखर करने का कभी अवसर न मिल सका।[१]"

भारत के उक्त सुल्तानों में फिरोज़ तुग़लक तथा शेरशाह सूरी ऐसे बादशाह अवश्य हुये जिन्होंने सम्पूर्ण प्रजा की आर्थिक दशा को सुधारा था और प्रजा हित के कार्य किये थे। शेरशाह के बाद शक्तिहीन बादशाहों के समय में यद्यपि राजकीय प्रबन्ध में शिथिलता आ गई थी और सूबे स्वतन्त्र होने लगे थे, तथापि राजकीय शक्तिहीनता के कारण भारतीय धार्मिक आन्दोलनों को अवसर मिल गया। शेरशाह सूरी तथा सूरीवंश के अन्य बादशाहों के समय में कई धार्मिक सम्प्रदाय प्रबल होकर बढ़े।

श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने समय के देश की परिस्थिति के विषय में 'कृष्णाश्रय' ग्रन्थ में स्पष्ट शब्दों मे कहा है—"देश म्लेच्छों से (मुसलमानों से) आक्रान्त है, म्लेच्छों से दबा हुआ देश पाप का स्थान बन गया है। सत्पुरुषों को पीड़ा दी जाती है। सम्पूर्ण लोक इस पीड़ा से पीड़ित है, ऐसे देश में भगवान् कृष्ण ही हमारे रक्षक हैं। गङ्गा आदि सब उत्तम उत्तम तीर्थ भी दुष्टों से आक्रान्त हो रहे हैं। इसलिए इन आधिदैविक तीर्थों का महत्व भी तिरोहित हो गया है। ऐसे समय में केवल कृष्ण ही मेरी गति हैं। अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक तथा अन्य मन्त्र नष्ट हो रहे हैं, ब्रह्मचर्यादि व्रत से लोग रहित हैं। ऐसे लोगों के पास रहने से वेदमन्त्र हीन हो गये हैं। उनके अर्थ और ज्ञान भी विस्मृत हो गये। ऐसी दशा में केवल कृष्ण ही मेरी गति हैं।"[२]

मुसलमान बादशाहों में अकबर एक पराक्रमी, बुद्धिमान्, प्रजापालक, कलाप्रेमी तथा उदार शासक हुआ था। उसके समय में यद्यपि हिन्दुओं ने पूर्ण रूप से अपनी राजनैतिक

१—हिस्ट्री आफ मेडिवियल इंडिया, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ४७१।

२— म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषुच,
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु, कृष्ण एव गतिर्मम।
गंगादि तीर्थ वर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह,
तिरोहिताधिदेवेषु, कृष्ण एव गतिर्मम।

× × ×

अपरिज्ञाननष्टेषु, मंत्रेष्वव्रतयोगिषु,
तिरोहितार्थ वेदेषु कृष्ण एव गतिर्मम।

कृष्णाश्रय, षोडश ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक नं० २, ३ तथा ९।

अकबर के राजत्वकाल में देश की राजनैतिक व्यवस्था (सन् १५५६ ई० : १६०५ ई० ।)

स्वतन्त्रता खो दी थी, परन्तु उनके हृदय में जो पिछली राजकीय सत्ता की ओर कटु भावना थी उसके व्यवहार से जाती रही और हिन्दू रजवाड़े मुग़ल सम्राट् अकबर की ही राजशक्ति बढ़ाने में लग गये। अकबर ने अपनी बुद्धिमत्ता तथा उदार शासन-नीति से एक एक करके लगभग सभी भारतीय प्रान्तों को अपने शासन में ले लिया। उसने जान लिया था, जब तक वह हिन्दू प्रजा की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर लेगा तब तक पूरे देश के जीतने पर भी मुग़ल साम्राज्य की नींव दृढ़ता के साथ नहीं बैठ सकती। उसने पिछले बादशाहों की कठोर दमन और पक्षपात की नीति को छोड़ दिया और सम्पूर्ण प्रजा को उदार दृष्टि से देखना शुरू कर दिया। प्रजाहित के उसने अनेक सुधार किये। बड़े बड़े पदों पर हिन्दू राजकर्मचारी नियुक्त किये। अकबर के शासन की सुव्यवस्था तथा अनेक सुधारों का श्रेय उसके हिन्दू मन्त्रिमण्डल को ही है। कई शताब्दियों के बाद लोगों को इस राजत्वकाल में पेट की तुष्टि के साथ मानसिक तुष्टि मिली थी। सुल्तानत्व काल के हिन्दू जनता पर जितने प्रजापीड़क, तथा अनुचित कर और प्रतिबन्ध लगे थे वे सब उसने उठा लिये।

पठान काल में मुसलिम-शासन से बचने को एक ओर राजपूतों ने अपनी जान लड़ाई थी तो दूसरी ओर भारतीय समाज और धर्म की रक्षा यहाँ के कुछ धर्माचार्यों ने की थी। उस समय स्वधर्म की हानि केवल विदेश से आनेवाले धार्मिक आन्दोलन से ही नहीं हो रही थी वरन् यहाँ घर में ही धार्मिक युद्ध मायावाद, शून्यवाद, आस्तिक-नास्तिक, अनेक वाद-विवादों के रूप में भीषण अग्नि की तरह चल रहा था, और वैराग्य-प्रधान वादों के प्रभाव में आकर जनता घर छोड़-छोड़ कर उदासीन होती चली जा रही थी। स्वदेश और स्वधर्म के ऊपर आई हुई सङ्कट की आँधी में कुछ धर्माचार्यों ने स्तम्भ बन कर समाज के धैर्य को नष्ट होने से बचाया और पराधीन होकर, प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच में ही भारतीय धर्म और सभ्यता की बुझती ज्योति को उन्होंने सम्हाला था।

अकबर के समय में उसकी सर्व धर्म-प्रसार-संबंधी स्वतन्त्रता की उदार नीति से प्रोत्साहित हो, ये धार्मिक आन्दोलन वेग के साथ चल पड़े। उस समय सभी भारतीय धर्मों की वृद्धि हुई। अकबर स्वयं मुसलमान-धर्म को मानते हुए भी कट्टरवादी नहीं था। उसके जीवन-काल में एक ऐसा समय भी आया था जब वह सभी धर्मों की बातों को जानने के लिए धर्माचार्यों को बुलाकर उनसे धर्मोपदेश लेता था। फ़तेहपुर सीकरी में उसने एक इबादतख़ाना[1] (प्रार्थना-भवन) बनवाया था जहाँ सभी धर्म के लोग जा सकते थे। यद्यपि वह स्वयं बहुत पढ़ा-लिखा नहीं था, परन्तु उसने जैन, पारसी, ईसाई, हिन्दू, आदि अनेक धर्मों की बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हिन्दू धार्मिक आचार्यों तथा महात्माओं

१—केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० ११३ तथा १२०।

का वह केवल सम्मान ही नहीं करता था, प्रत्युत उनकी आर्थिक सहायता भी करता था। सूरदास, कुम्भनदास आदि भक्तों से अकबर के मिलने की कथाएँ वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ताओं में भी दी हुई हैं।

अकबर की उदारता तो यहाँ तक प्रसिद्ध है कि उसने व्रजभूमि में मोर और गोहत्या तक का निषेध कर दिया था। गायों के चरागाहों से कर उठा दिये गये थे। धर्माचार्यों की धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रमाण में ऐतिहासिक प्रमाणों के अतिरिक्त भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के यहाँ अकबर के दिये हुये कुछ सुरक्षित फ़रमान भी हैं। श्री वल्लभाचार्य जी के बाद उनकी गद्दी पर बैठनेवाले गो० विट्ठलनाथ जी के नाम भी उसने कई फरमान जारी किये थे। उनमें से दो का भाषान्तर नीचे दिया जाता है—

तरजुमा फरमान आतिये जलाउद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी।

"इस वक्त में हमने हुक्म फरमाया कि विट्ठलराय बिरहमन जो बिला शुबह हमारा शुभचिन्तक है, उसकी गायें जहाँ कहीं हों, वे चरें। खालसा व जागीरदार कोई उनको तकलीफ न देवे, न रोके टोके व चरने से मुमानत न करें, छोड़ देवें कि उसकी गायें चरती रहें और वह आजादी से गोकुल में रहें। चाहिए कि हुक्म के मुताबिक तामील करें और कदामत रक्खें और हुक्म के ख़िलाफ़ न करें।"

तहरीर तारीख़ ३ महर सफ़र सन् ९८९ हिजरी मुताबिक सन् १५८१ ई० संवत् १६३८ विक्रमी।[1]

तरजुमा फ़रमान आतिये जलाउद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी।

"क्रोड़ी व जागीरदारान परगने मथुरा, सहारा, मिगोथ व टोड जो हर तरह पुश्त पनाही में हैं व उम्मेदवार रहते हैं जाने कि जहान की तामील करनेवाला हुक्म जारी किया गया कि इसके बाद ऊपर लिखे परगनों के इर्द गिर्द मोर जिबह न करें और शिकार न करें, आदमियों की गायों को चरने से न रोकें। इसलिए जागीरदारान व क्रोड़ी ऊपर लिखे हुये को ठेराव जान कर हुक्म मजकूर में पूरा बन्दोबस्त रक्खें कि कोई शख्स इसके खिलाफ करने की हिम्मत न कर सके, इस बात को अपना फर्ज जान। तहरीर बतारीख़ रोज़ दी महर ११ ख़ुरदाद।"

माह इलाही सन् ३८ जलूसी
दारुल सल्तनत लाहौर।

पीछे कहा गया है कि पठान शासन-काल में देश में चारों ओर अशान्ति और

1—इंपीरियल फरमान्स, झावेरी।

फरमान, अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी
तारीख़ ३ महर सन् ९८१ हिजरी अथवा संवत् १६३८ वि०
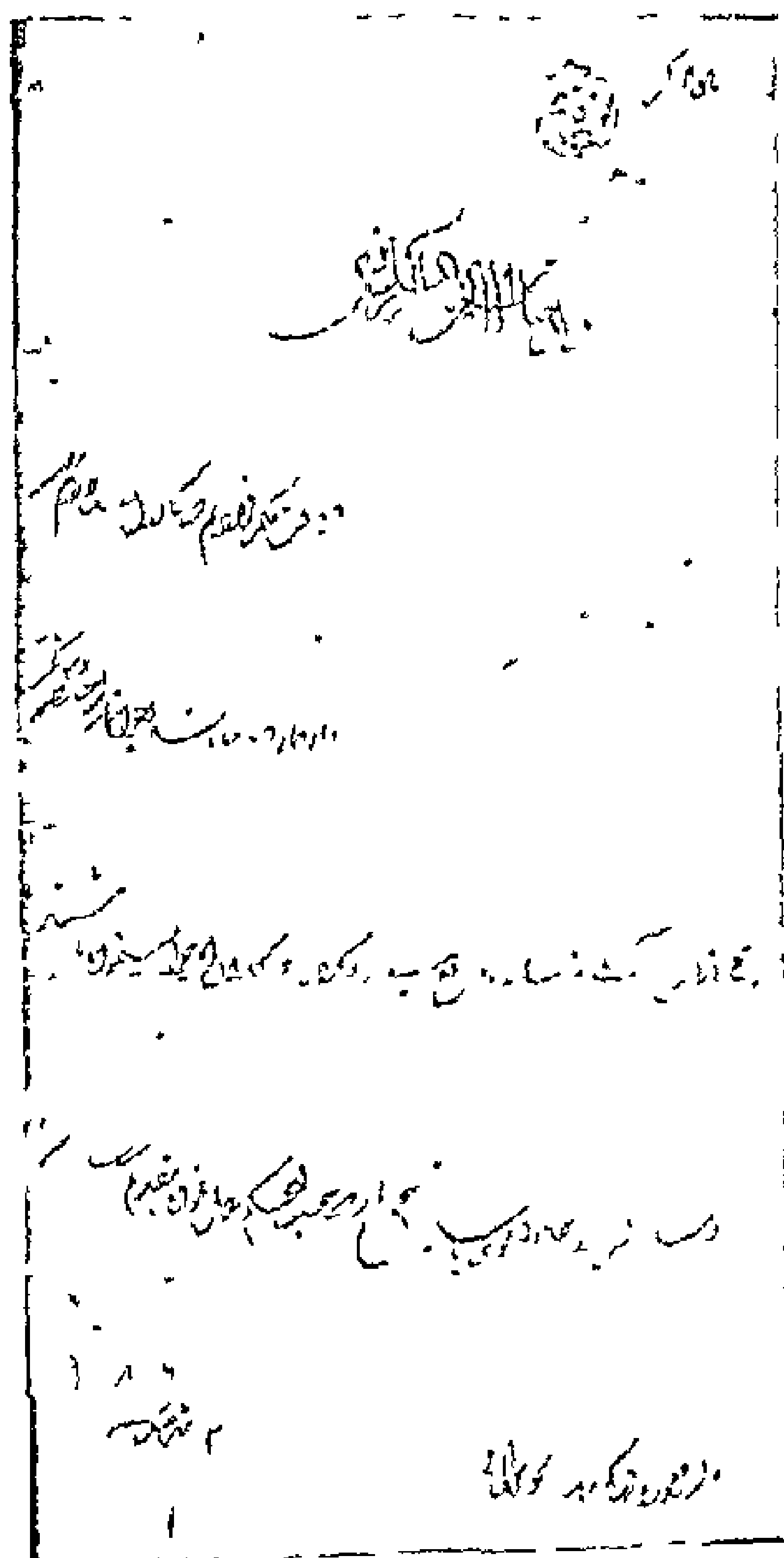
'इम्पीरियल फरमान्स'
सम्पादक के० एम्० झावेरी, बम्बई, से उद्धृत

फरमान, अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

माह इलाही सन् ३८ जनूसी, दारुलसल्तनत, लाहौर

कष्ट फैल रहे थे। हिन्दू जनता में कोई सङ्गठन न था। शिक्षा का अभाव था। राज्य की

अष्टछाप के समय में सामाजिक दशा

ओर से शिक्षा प्रचार का हिन्दुओं के लिए कोई प्रबन्ध न था; ब्राह्मणों की कुछ पाठशालाएँ धनिक वणिकों की उदारता के बल पर चलती थीं। मुसलमानों के 'मकतब' बहुत थे जिनको राजकीय सहायता मिलती थी। हिन्दुओं में जाति-पाँति का भेदभाव बहुत था जो मुसलमान-काल के पहले से ही चला आ रहा था। भारतवर्ष में अनेक जातियाँ समय समय पर बाहर से आती रही हैं। यद्यपि धर्म की दृष्टि से वे एक अवश्य हो गईं, परन्तु उनके रहन-सहन और कुछ प्राचीन संस्कारों ने उन्हें भिन्न-भिन्न वर्गों मे ही बनाए रक्खा। धार्मिक स्वतन्त्रता तथा मतभेद के कारण भी भारत में फिरक़े-बन्दी और साम्प्रदायिकता रही है। इससे भी हिन्दुओं में जाति-पाँति का भेद था, मुसलमानी-काल में आकर जाति-पाँति का भेद और भी बढ़ गया। मुसलमानो धार्मिक अत्याचार से बचने के लिए हिन्दुओं को खान-पान, ब्याह शादी, आदि के कड़े बंधन बढ़ाने पड़े, जिससे अपने अपने वर्ग को प्रत्येक जाति नये बाहरी प्रभावों से बचाती रहे। जो कार्य स्वधर्म-रक्षा और उन्नति के लिए किया गया था, उसने फलरूप, दिनों के फेर से, हिन्दू-सभ्यता में प्रगतिशीलता के स्थान पर स्थिर रूढ़िवाद तथा कठोरता ने पैर जमा दिया। समय समय पर बाहरी प्रभाव के बचाव के साथ आपस में छुआ छूत पहले से ही घुस आई थी। अब पीड़ित और अशिक्षित जनता में अन्धविश्वास, साहसहीनता, कलह, भय, आदि कुत्सित भाव और भी अधिक प्रबल हो गये। यह माना जा सकता है कि अन्धविश्वास ने अन्धकार के समय में भारतीय सभ्यता के बचाने में बहुत कार्य किया था, परन्तु यह बात भी माननी पड़ेगी कि मुसलमान धर्म के अन्धविश्वास ने उनको सङ्गठित शक्ति का बल दिया और हिन्दू अन्धविश्वास ने हिन्दुओं की शक्ति को कभी सङ्गठित नहीं होने दिया।

समय-समय पर देश की सामाजिक दशा सुधारने के लिए धर्माचार्य भी हुये, जैसे १४वीं (ई०) शताब्दी में स्वामी रामानन्द ने भक्ति के प्रचार के साथ समाज सुधार का भी कार्य किया था। उन्होंने अछूत और दलित हिन्दू-जातियों को भी अपनाया। स्वामी रामानन्द के बाद कबीर ने साम्प्रदायिक कट्टरता तथा जाति-पाँति के बन्धनों को तोड़ना चाहा। कृष्णभक्ति के सम्प्रदायों में भी श्री वल्लभाचार्य तथा श्री विट्ठलनाथ जैसे उदार आचार्य हुये जिन्होंने भङ्गी, चमार, नाई, धोबी, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मण, हिन्दुओं की सभी जातियों को यहाँ तक कि मुसलमानों को भी, वैष्णव हिन्दू कहलाने का अधिकारी बना कर सबको एक भगवान के प्रसाद का, बिना छुआछूत के, भागी बनाया।[1] अष्टछाप भक्तों ने अपनी रचनाओं

---

1. "८४ तथा २५२ वैष्णवन" की वार्ता में दिये हुये वैष्णवों की नाम सूची:—
"८४ वार्ता," यादवेन्द्र कुम्हार, पृ० ११८, विष्णुदास छीपी, पृ० २१२।
'२५२ वार्ता" रसखान पठान, पृ० ४३२। मेहा धीमर, पृ० ३२६। चूहड़ों, ३१६।
एक धोबी, पृ० २७४।

के अनेक स्थलों पर जाति-पाँति के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया है। परन्तु इस प्रकार के असङ्गठित तथा साम्प्रदायिक धर्म की क्रियाओं से प्रतिबन्धित इन उदार आन्दोलनों का प्रभाव इतने विस्तृत देश तथा अशिक्षित, छिन्न-भिन्न हिन्दू समाज को जोड़ने में कभी भली-भाँति कारगर नहीं हुआ। फलतः न तो अष्टछाप के समय में आपस की फ़िर्क़ेबन्दी ने हिन्दू समाज में एकता की भावना आने दी, और न उसके बाद आज तक वह भावना आई है। महात्मा तुलसीदास ने रामचरित-मानस के उत्तरकाण्ड में जो कलियुग के धर्म और समाज का वर्णन किया है, उसमें उन्होंने वस्तुतः अपने समय के हिन्दू समाज का ही चित्र अङ्कित किया है।

अष्टछाप के समय में देश की धार्मिक दशा

सुल्तान बादशाहों की राज-व्यवस्था के विवरण से ज्ञात होता है कि उन्होंने राज्य का सञ्चालन 'तलवार' तथा धार्मिक आज्ञाओं के बल पर किया। उनका ध्येय राज्य-प्रसार के साथ मुसलमान धर्म का प्रसार करना भी था। इसलाम धर्म के प्रचार के लिए प्रचारकों को राजकीय सहायता मिलती थी। उधर राजनैतिक स्वतन्त्रता खोकर छिन्न-भिन्न हिन्दू-समाज ने अपना धर्म और अपनी सभ्यता बचाने के लिए दबे रूप में आन्दोलन भी खड़े किये थे। मुसलमान काल के धार्मिक आन्दोलनों के प्रतिफल हमें जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें एक बड़ी विशेषता यह ज्ञात होती है कि जहाँ उन्होंने देश में स्थित अनेक धार्मिक मतों, पन्थों का खण्डन-मण्डन किया है वहाँ उन्होंने मुसलमान धर्म के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। हाँ, सूफ़ी मुसलमान ऐसे कुछ अवश्य हुये हैं जिन्होंने हिन्दू-धर्म को उदार भावना से देखा तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की आलोचना की थी, हिन्दी के हिन्दू लेखकों में से किसी ने भी यह साहस नहीं किया। सम्भव है, आचार्य और पण्डितों को राजदण्ड का भय रहा हो, और ज्ञानी महात्मा तथा भक्तों को, व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति के ध्यान में, मुसलमान धर्म की ओर से उदासीनता रही हो। इस प्रकार देश में एक ओर मुसलमान धर्म का प्रचार था तथा दूसरी ओर हिन्दू धर्म में भिन्न-भिन्न प्रकार के धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे। हिन्दू धर्म के ये आन्दोलन अन्तर्प्रदेशीय आने-जाने की असुविधाओं के कारण तथा जनता की अशिक्षा के कारण अनेक धर्माचारियों के हाथ में तथा उनके चलाये हुये मत-पंथों के रूप में थे।

मुसलमान तथा भारतीय धर्मों के पारस्परिक भेद-भाव के बीच अष्टछाप-काल के पूर्व कुछ ऐसे महात्मा भी हुये जिन्होंने यह अनुभव किया कि मुसलमान भारत से जा नहीं सकते और हिन्दू-जाति का नाश असम्भव है। उन्होंने इन दोनों धर्मों की कड़ी आलोचना की और दोनों धर्म और जातियों को मिलाने का प्रयत्न किया। भारतीय मुसलमान धर्म के अन्तर्गत ऐसे महात्मा 'सूफ़ी फ़क़ीर' कहलाते थे और हिन्दू धर्म में सन्त। प्राचीन मुसलमानी सूफ़ी मत, भारत में आकर यहाँ के तत्वज्ञान तथा यहाँ के आचार-विचारों से प्रभावित होकर फैला, उधर हिन्दू सन्त मत भी अनेक पन्थों में चला। इन सूफ़ी और सन्त मतों ने एक

ओर वेद-उपनिषद् आदि श्रुति तथा अनेक स्मृति-ग्रन्थों की अवहेलना कर दी थी तो दूसरी ओर उन्होंने 'कुरान की शरीयत' की उपेक्षा भी की। भारतीय धार्मिक आन्दोलन मुसलमान धर्म-प्रचार की, प्रतिक्रिया रूप में होने के अतिरिक्त, जैन, मायावाद, शून्यवाद, शैव, शाक्त, वैष्णव, ज्ञानी, योगी, भक्त अनेक रूपों में एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता में भी फैल रहा था। अष्टछाप के समय में आकर इन भिन्न-भिन्न मतों में से धार्मिक क्षेत्र में भक्ति के आन्दोलन ने बहुत प्रबलता पाई थी। और अकबर के राजत्व-काल में तो यह भक्ति का आन्दोलन देश-व्यापी हो गया था।

ईसा की दसवीं शताब्दी तथा उसके आगे बौद्ध-धर्म के पूर्ण निर्वासन के बाद शङ्कर के मायावाद, सन्यास, ज्ञान तथा योग के मार्गों का देश के धार्मिक क्षेत्र में इतना प्रचार हुआ कि जनता लोक-धर्म से उदासीन होने लगी। धर्म ने लोक-धर्म का रूप छोड़कर व्यक्तिगत साधन का रूप ले लिया। अधिकारी साधकों की देखा-देखी साधारण बुद्धिवाले लोग, जो बुद्धि के परिष्कार और ज्ञान के साधन के लिए बहुत अंश में अयोग्य थे, अपने को ब्रह्म समझने तथा परम तत्व के पहचानने का ढोंग भरने लगे। इस प्रवृत्ति ने एक ओर तो समाज में दम्भ को जन्म दिया और दूसरी ओर देश में इसके कारण अकर्मण्यता[1] फैली। फिर भी मुसलमान काल तक तो इन पन्थों में से अधिक पन्थ तात्विक दृष्टि से गम्भीर शास्त्रीय मनन और अभ्यास के फल रहे तथा उनका आचार भी सद् रहा, परन्तु मुसलमान काल में जब बुद्धि का विकास कुण्ठित हो गया और धर्म के दार्शनिक तत्व को समझने की क्षमता अशिक्षा के कारण कम हो गई तथा चित्त का निरोध और इन्द्रियों के निग्रह का मानसिक बल घट गया, बुद्धिप्रधान धर्मों का उनके सच्चे रूप में चलना कठिन था। उस समय कुछ ऐसे मत-पन्थ भी चल पड़े जिनके धर्माचार्यों को वेदशास्त्र का ज्ञान तक न था और जो इधर-उधर से धर्म की दस-पाँच बातें समेट कर तथा मूढ़ जनता में एक पन्थ खड़ा कर सिद्ध गुरु बनने का दावा करते थे। श्री वल्लभाचार्यजी ने अपने कृष्णाश्रय ग्रन्थ में अनेक वादों के रूप में प्रचलित पाखण्ड पन्थ का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि नास्तिकों के अनेक वादों के प्रभाव से सम्पूर्ण कर्म और व्रत नष्ट हो गये। जो कर्म और व्रत किये जाते हैं वे पाखण्ड के लिए। ऐसे समय में केवल कृष्ण ही रक्षा करनेवाले हैं।[2] अष्टछाप कवियों ने भी अपने समय के पूर्व की धार्मिक अवस्था तथा भिन्न भिन्न मत-पन्थों का अल्प उल्लेख किया है। परमानन्ददास जी ने कहा है कि इस कलियुग में पाखण्ड-दम्भ से युक्त धर्म का प्रचार है, सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का है कि वेदपाठी ब्राह्मण जो

१—गीता-रहस्य, पृ० ४०१।

२—नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु
पाषंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम। ६।
कृष्णाश्रय, षोडश ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ, पृ० ६८।

अपने को वेद-ज्ञान का अधिकारी कहते हैं वे ही बिगड़ गए हैं। फिर और किस पर क्रोध किया जाय[1]।

उत्तरी भारत में वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान तथा १६ वीं शताब्दी ई० में ब्रज में भक्ति का प्रचार

भारतवर्ष में धर्म के साधन पक्ष में बहुत प्राचीन काल से ही तीन मुख्य मार्ग प्रचलित रहे हैं—कर्म, ज्ञान तथा उपासना। इनमें से कभी प्रधानता कर्म की, कभी ज्ञान की और कभी उपासना-मार्ग की रही है। इन तीनों मार्गों का मूल स्रोत वेद है। बौद्ध धर्म, ब्राह्मण-काल के कर्मकाण्ड के विरुद्ध ज्ञान और वैराग्य-प्रधान होकर उठा था। जब ज्ञान-मार्ग के बौद्धिक परिश्रम से जनता ऊब उठी तब उपासना और कर्म-प्रधान धर्म पुनर्जीवित हो उसके विरुद्ध खड़े हुये। ईसा की आठवीं शताब्दी में बौद्ध-धर्म को निर्वासित कर श्री शङ्कराचार्यजी ने वेद-सम्मत धर्म की पुनः स्थापना की थी। उसी समय कुमारिल भट्टाचार्य ने वेदोक्त कर्म-काण्ड को जगाना चाहा तथा श्रीनाथ मुनि ने दक्षिण भारत में उठकर भागवद्-धर्म का उत्थान किया। इन सब आचार्यों में श्री शङ्कराचार्य अपने कार्य में अधिक सफल हुये; क्योंकि उन्होंने वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को लिया था, जो ज्ञान-प्रधान बौद्ध-धर्म-मतावलम्बी जनता ने परिवर्तन-रूप में अपना लिया। श्री शङ्कराचार्य जी के भीषण प्रयत्न ने बौद्ध-धर्म का देश में अन्त कर दिया, परन्तु ज्ञान और वैराग्य के बौद्धिक संस्कारपूर्ण शङ्कर के संन्यास-धर्म को भी लोगों ने छोड़ना आरम्भ कर दिया। उस समय उपासना-धर्म प्रबल हुआ और बाद को इसी धर्म ने सम्पूर्ण भारत में प्रचार पाया।

उपासना धर्म मुख्यतः दो रूपों में प्रचलित हुआ—१. निर्गुण ब्रह्मोपासना और २. सगुण ब्रह्मोपासना। सगुण ब्रह्मोपासना के अन्तर्गत, पञ्चोपासना, ईश्वर के लीला-विग्रह की उपासना, चतुर्व्यूहोपासना, ऋषि देवता, पितृगण की उपासना तथा क्षुद्रदेव और प्रेतादि की उपासना सम्मिलित हुई। पञ्चोपासना में सगुण ईश्वर के इन पाँच रूपों—शिव,

---

१—माधो, या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी, मर्यादा न टरी।
जो गोपिन के प्रेम न होतो, अरु भागवत पुरान।
तो सब बौधरु पथिहि होतो, कथत गमैया ज्ञान॥
बारह बरस को भयो दिगम्बर, ज्ञानहीन सन्यासी।
खान पान घर घर सबहिन के, भसम लगाय उदासी॥
पाखण्ड दम्भ बढ्यो कलियुग में, श्रद्धा धर्म भयो लोप।
परमानन्द वेद पढ़ि बिगरयो, का पर कीजे कोप॥

शक्ति, विष्णु, सूर्य, और गणेश—की उपासना रही है। तत्वज्ञान की दृष्टि से भारतवर्ष के आस्तिक मतों में, अद्वैतवाद शङ्कर वेदान्त, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद, आदि अनेक मत प्रचलित रहे हैं। इस देश के भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की पृथकता, तत्वज्ञान, ब्रह्म, जीव, जगत, सम्बन्धी विचार-वैषम्य तथा साधन और आचार-क्रियाओं की विभिन्न प्रणाली के कारण रही है। कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो तात्विक सिद्धान्तों की दृष्टि से तो एक मत हैं, परन्तु केवल साधन और आचार-क्रिया की दृष्टि से उनमें पृथकता है।

वैष्णव-भक्ति

सगुणोपासना के अन्तर्गत वैष्णवभक्ति तथा उसके भिन्न-भिन्न रूपों का विकास किस-किस समय और किस प्रकार भारतवर्ष में हुआ, यह भारतीय धार्मिक इतिहास का कठिन विषय है। डा० भण्डारकर, लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक, श्री हेमचन्द्रराय चौधरी आदि आधुनिक विद्वानों के इस विषय पर महत्वपूर्ण लेख हैं। यहाँ वैष्णव भक्ति के क्रमिक विकासवाले विषय के विवेचन में नहीं घुसा जायगा। यहाँ केवल उत्तरी भारत में भागवत धर्म अथवा वैष्णव भक्ति के पुनरुत्थान का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयत्न ही अभीष्ट है।

ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के अर्द्धभाग तक गुप्तवंश के राजाओं ने भारतवर्ष में वैष्णव भक्ति तथा भागवत-धर्म का बहुत प्रचार किया। गुप्त साम्राज्य के समाप्त होते ही उत्तरी भारत में शैव और बौद्ध धर्मों की प्रबलता हो गई; भागवत धर्म, उत्तर भारतीय सम्राटों से, जैसे हर्षवर्धन (सन् ६३० ई०)[1] उपेक्षित होकर बहुत निर्बल रूप में रह गया। उस समय यह उत्तरी भारत में तो दब गया, परन्तु दक्षिण भारत में इसका प्रचार बढ़ने लगा। दक्षिण भारत में भागवत धर्म की विद्यमानता आड्वार भक्तों के तामिल गीतों के रूप में मिलती है।[2] आड्वार भक्ति के उत्कर्ष का समय ईसा की सातवीं शताब्दी से नवीं के आरम्भ तक बताया जाता है। ये आड्वार भक्त बारह हुये हैं जिन्होंने भागवत धर्म (वैष्णव भक्ति) का दक्षिण भारत में प्रचार किया था। इन भक्तों में स्त्री प्रचारिकाएँ भी थीं। इन्होंने लगभग चार हज़ार गीत तामिल भाषा में लिखे थे जो 'प्रबन्धम्' के नाम से सङ्गृहीत मिलते हैं। इन गीतों का सङ्ग्रह तथा सम्पादन 'प्रबन्धम्' रूप में एक भागवत धर्मावलम्बी 'नाथमुनि' नामक विद्वान ने ईसा की दसवीं शताब्दी में किया था। इन आड्वार भक्तों के सिद्धान्त, उनके बाद में प्रचार

१—हिस्ट्री आफ़ ऐंशेंट इण्डिया, डा० रामशङ्कर त्रिपाठी, १९४२ पृ० २९७।

२—दि कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया सीरीज़, भाग २, पृ० ७२।

पानेवाले भिन्न-भिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों की पृष्ठभूमि है। आडवार भक्तों के सिद्धान्त[1] संक्षेप में यहाँ दिये जाते हैं।

आडवार भक्त सांसारिक विषयों को अनित्य कहते थे। उनका विचार था,—'भक्ति के साधन और प्रपत्ति (पूर्ण आत्मसमर्पण) द्वारा संसार के आवागमन से मुक्ति तथा विष्णु भगवान का सम्मिलन मिलता है'। वे केवल विष्णु के ही उपासक एकान्तिक धर्म को मानने वाले थे। वे विष्णु को वासुदेव, नारायण, भगवद् पुरुष आदि नामों से भी पुकारते थे। उनके मतानुसार भगवान विष्णु नित्य, अनन्त और अखण्ड हैं। वे सत्‌चित् और आनन्द-स्वरूप हैं, और जीवों पर कृपा कर अवतार भी लेते हैं। परन्तु अवतार लेने पर भी उनकी अनन्त आदि और सतत् सत्ता ज्यों की त्यों रहती है। वे मूर्ति रूप में भी अवतार लेते हैं। राम और कृष्ण उन्हीं के रूप हैं। कृष्ण की आनन्द-क्रीड़ाओं के रूप में वह विष्णु जीवों को आनन्ददान देता है। गोपियों के साथ की लीलाओं द्वारा वह पूर्णानन्द की अनुभूति कराता है। आडवार भक्त विष्णु तथा उसके अवतार कृष्ण और राम की भक्ति, वात्सल्य, दास्य तथा कान्ता भाव से करते थे, जिन भावों पर उन्होंने अनेक गीत लिखे हैं। उनके विचारानुसार भगवद्भक्तों की सेवा भी भगवान की सेवा का एक अङ्ग है। भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति को उन्होंने बड़ा स्थान दिया था। उनका विश्वास था कि विष्णु भगवान की कृपा, उनके प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण से मिलती है। सबसे बड़ी बात इस धर्म की यह थी कि आडवारों का यह धर्म सभी जाति और सभी श्रेणी के मनुष्यों के लिए खुला हुआ था।

आडवार भक्तों के उपरान्त दक्षिण भारत में कुछ आचार्य हुये जिन्होंने विष्णु-भक्ति की प्रेरणा उक्त आडवारों के गीतों से ली और भागवत्-धर्म के प्रचार को उत्तरी भारत में भी ले गये। आचार्यों ने आडवरों के 'प्रबन्धम्' से लिये हुये विचारों का प्रतिपादन बहुधा वेद, उपनिषद् तथा ब्रह्म सूत्रों के प्रमाणों के आधार पर किया। उन्होंने वैष्णव-धर्म मे एक विशेषता यह भी की कि आडवारों की एकान्तिक भक्ति में कर्म और ज्ञान का समावेश भी कर दिया और इस प्रकार उन्होंने 'प्रबन्धम्' तथा ब्रह्मसूत्रों के कथनों का समन्वय करने का प्रयत्न किया। आचार्यों में प्रथम आचार्य नाथमुनि[2] हुये जिनका समय सन् ८२४ ई० से सन् ९२४ ई० तक बताया जाता है। इनके पूर्वज उत्तरी भारत से आये हुये एक भागवत् धर्मावलम्बी वैष्णव थे। नाथमुनि के बाद इस धर्म के प्रचारक आचार्य पुण्डरीकाक्ष, राम मिश्र तथा श्री यामुनाचार्य हुये। श्री यामुनाचार्य, नाथमुनि के पौत्र थे। इन्होंने ही

१—कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया सिरीज, भाग २, के, तथा" The Historical Evolution of Sri Vaishnavism in South India by V. Rangacharya, M. A., Lecturer in History & Economics, Govt. College, Palghat, के आधार पर दिये हैं।

२—दि कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया, भाग २, पृ० ८१।

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत की नींव तैयार की थी। निम्बार्कसम्प्रदाय के भेदाभेदवाद की पृष्ठभूमि तैयार करनेवाले एक आचार्य श्री भास्कराचार्य भी थे जिन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर महत्वशाली भाष्य लिखा था। महामहोपाध्याय श्री पं० गोपीनाथ कविराज जी ने अपने एक लेख में बताया है कि भास्कराचार्य ई० नौवीं शताब्दी में प्रादुर्भूत हुये थे। वे श्रीरामानुज के पूर्ववर्ती थे, क्योंकि रामानुज के श्री भाष्य में उनके नाम का उल्लेख मिलता है। न्यायाचार्य उदयन द्वारा रचित न्याय कुसुमाञ्जलि, द्वितीय स्तवक में भास्कर का उल्लेख है और उनकी समालोचना है। उदयन का आविर्भाव[1] काल ६८४ ई० माना जाता है। भास्कराचार्य शङ्कर के परवर्ती और उदयनाचार्य के पूर्ववर्ती थे। कुछ लोगों ने श्री भास्कराचार्य तथा निम्बार्काचार्य को एक ही व्यक्ति माना है। श्री कविराज जी का मत है कि वस्तुतः ये दो भिन्न-भिन्न आचार्य थे। इन आचार्यों के बाद ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में श्री रामानुजाचार्य हुये जिन्होंने शङ्कराचार्य के मायावाद का खण्डन कर विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना की और उत्तरी भारत में विष्णु भक्ति का पुनरुत्थान किया। उत्तरी भारत में विष्णुभक्ति की अधिक प्रबलता तो वस्तुतः ईसा की १५वीं और १६वीं शताब्दियों में हुई थी, परन्तु दक्षिण भारत से आनेवाले आचार्यों, श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य, के प्रयत्न से ईसा की १२वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तक यह धर्म उत्तरी भारत में फैल गया था।

ब्रज-प्रान्त में, कुशनवंशी राजाओं के राजत्व-काल ईसा की प्रथम शताब्दी में, जो बहुधा बौद्ध-मतावलम्बी थे, भागवत-धर्म बहुत शिथिल था। कुशनवंशी राजा कनिष्क[2] ने बौद्धधर्म को ही प्रोत्साहन दिया। इसके अनन्तर गुप्तवंश के राजत्वकाल में वैष्णव धर्म फिर प्रबल हुआ, परन्तु गुप्तसाम्राज्य के ह्रास के साथ (ईसा की छठी शताब्दी का अन्त) इस धर्म का भी ह्रास हो गया। पीछे कहा गया है कि हर्षवर्धन ने बौद्धधर्म को अपनाकर उसी का प्रचार किया। उस समय एक प्रकार से ब्रज में भागवत-धर्म का लोप ही हो गया था, और बौद्ध-धर्म की प्रबलता थी[3], उत्तरी भारत के शैव-धर्म के प्रचार के साथ ब्रज में 'शैवोपासना' का भी प्रचार था। मथुरा नगर की चारों दिशाओं में चार प्राचीन शैव-मन्दिरों की विद्यमानता इस बात का अनुमान देती है। इसके बाद दक्षिण भारत से आनेवाले आचार्यों द्वारा वैष्णव-धर्म के प्रचार ने, ब्रज-प्रान्त में भी फिर से बौद्ध और शैव धर्मों को हटाकर भागवत धर्म का उत्थान कर दिया। पीछे कहे चार आचार्यों में से तीन आचार्य,

---

१—गौडीय वैष्णव-दर्शन, गोपीनाथ कविराज, उत्तरा, अगहन, बँगला संवत् १३३२।

२—हिस्ट्री आफ ऐंशियंट इण्डिया, डा० रामशङ्कर त्रिपाठी, पृ० २२३ से २२८।

३—पुरातत्व वेत्ताओं को महावन के निकट के स्थानों को खोदने से बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक वस्तुएँ मिली हैं, जो आजकल मथुरा म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं।

माध्वाचार्य, विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य, विष्णु के कृष्णरूप के उपासक थे। इसलिए चारों आचार्यों के मतों में से व्रजभूमि में कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण माध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्क-सम्प्रदायों की भक्ति-पद्धति का ही, १५वीं शताब्दी तक विशेष प्रचलन रहा। १५वीं और १६वीं शताब्दी में आकर वहाँ कृष्ण-भक्ति के अनेक और सम्प्रदाय भी चले जिनका प्रभाव वहाँ आज तक है।

जिन आचार्यों ने श्रुति और स्मृति ग्रन्थों के आधार पर वैष्णव-धर्म का पुनरुत्थान दक्षिणी भारत से आकर उत्तरी भारत में किया था, वे और उनके चलाये सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं—

१—श्री रामानुजाचार्य और उनका विशिष्टाद्वैतवादी श्रीसम्प्रदाय। समय—सन् १०३७ : ११३७ ई०[1]।
२—श्री विष्णुस्वामी तथा उनका शुद्धाद्वैतवादी रुद्रसम्प्रदाय।
३—श्री निम्बार्काचार्य तथा उनका द्वैताद्वैतवादी निम्बार्कसम्प्रदाय। समय—११६२ ई०[2]।
४—श्री मध्वाचार्य और उनका द्वैतवादी माध्वसम्प्रदाय। समय—११९७ : १२७६ ई०।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, इन चारों आचार्यों ने तथा इनके अनुयायी अन्य वैष्णव आचार्यों ने वैष्णवभक्ति, और अपने तात्विक सिद्धांत-वाद की स्थापना के साथ शङ्कराचार्य के मायावाद तथा विवर्तवाद का भी खण्डन किया। उक्त चार आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर जो पृथक् सम्प्रदाय ईसा की १४वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी के अन्त तक बने उनमें से मुख्य वैष्णव सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं—

१—श्री रामानन्द जी का रामानन्दीसम्प्रदाय (विशिष्टाद्वैतवादी)।
२—श्री चैतन्य महाप्रभु का चैतन्यसम्प्रदाय, (गौड़ीय सम्प्रदाय), (अचिन्त्य भेदाभेदवादी)।
३—श्री वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग (शुद्धाद्वैतवादी)।
४—राधावल्लभीय सम्प्रदाय।
५—हरिदासीसम्प्रदाय।

व्रजप्रान्त में इन पाँच भक्ति-सम्प्रदायों में से अन्तिम चार का ही अष्टछाप के समय में प्रचार हुआ था और इन्हीं की विद्यमानता का प्रमाण उस समय के व्रजसाहित्य से मिलता है।

१—कल्चरल् हैरिटेज आफ इण्डिया सिरीज़ भाग २, पृ० ८६।
२—वैष्णविज़्म, शैविज़्म...भाण्डारकर पृ० ६२ फुटनोट।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय

श्री वल्लभाचार्य जी से पहले विष्णुस्वामी नाम के कई आचार्य हुये थे। वल्लभसम्प्रदाय के एक ग्रन्थ 'सम्प्रदाय-प्रदीप', द्वितीय प्रकरण में वल्लभमत के एक पूर्व आचार्य विष्णुस्वामी का वृत्तान्त दिया हुआ है। उसमें लिखा है,—"युधिष्ठिर-राज्य-काल के पश्चात् एक क्षत्रिय राजा द्राविड़ देश में राज्य करता था। उसका एक ब्राह्मण मन्त्री था। उसी ब्राह्मण मन्त्री का एक, बुद्धिमान, तेजस्वी तथा भगवद्भक्ति-परायण पुत्र विष्णुस्वामी था जिसने वेद, उपनिषद्, स्मृति, वेदान्त, योग आदि समस्त ज्ञान-साहित्य का अध्ययन करने के बाद आचार्य की पदवी पाई। भगवान् के साक्षात्कार से उसे ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान तथा भक्तिमार्ग की अनुभूति हुई।" इस ग्रन्थ में, भगवद्-प्रबोधन रूप में दिये हुये विष्णुस्वामी के तात्विक सिद्धान्त बहुत करके वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत के समान ही हैं। इस ग्रन्थ में लिखा है,—"विष्णुस्वामी ने बहुत समय तक भक्तिमार्ग का प्रचार किया और भक्ति को मुक्ति से भी अधिक महत्ता दी। इन्होंने वेद तन्त्रोक्त विधान, वेदान्त साङ्ख्य योग, वर्णाश्रम-धर्मादि सम्पूर्ण कर्तव्य भक्ति के ही साधन बताये हैं। इनके बाद इस मार्ग के सात सौ आचार्य हुये। कालान्तर में से इसी सम्प्रदाय के एक आचार्य विल्वमङ्गल जी हुये जो द्राविड़ देशीय थे। विल्वमङ्गलाचार्य के समय में भी भक्ति का बहुत प्रचार हुआ। उसी समय श्री शङ्कराचार्य तथा श्री कुमारिल भट्टाचार्य जी हुये जिन्होंने भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन किया। विल्वमङ्गलाचार्य के बाद श्री रामानुजाचार्य आदि और कई भक्तिमार्ग के आचार्य हुये जिनमें से विष्णुस्वामी तथा विल्वमङ्गलाचार्य के मार्ग को श्री वल्लभाचार्यजी ने ग्रहण किया और उसी का परिष्कार कर अपना मत चलाया।"[1]

'गौडीय दशम खण्ड'[2] के लेख में, श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज का कहना है,—"एक देवतनु विष्णु स्वामी ई० सन् से ३०० वर्ष पहले हुये जो मथुरा में रहते थे। इनके पिता का नाम देवेश्वर भट्ट था। इन विष्णुस्वामी के ७०० वैष्णव त्रिदण्डी सन्यासी इनके मत का प्रचार करते थे। इस मत के सबसे अन्तिम सन्यासी श्री व्यासेश्वर थे। दूसरे एक और विष्णुस्वामी का नाम राजगोपाल विष्णुस्वामी था। इनका जन्म सन् ८३० में हुआ। यह काञ्ची नगर में रहते थे। काञ्ची में उन्होंने श्री राजगोपालदेवजी अथवा श्री वरदराज की मूर्ति की स्थापना की। यह भी प्रसिद्ध है कि इन्होंने ही द्वारिका में रणछोर जी, तथा सप्त नगरियों में से अन्य छ नगरियों में भी विष्णु-मूर्तियों की स्थापना की थी"। श्री सरस्वती महाराज ने विल्वमङ्गलाचार्य को इन्हीं का शिष्य बताया है। "तीसरे एक और विष्णुस्वामी हुये थे। श्री वल्लभाचार्य जी के पूर्व पुरुष इन्हीं तीसरे विष्णुस्वामी के गृहस्थ शिष्य थे।"[3]

१—सम्प्रदाय प्रदीप, पृ० १४ : ३०।

२—गौडीय दशम खण्ड, पृष्ठ ६२४:६२६।

३—गौडीय दशम खण्ड, पृष्ठ ६२४'६२६।

रायबहादुर श्री अमरनाथराय जी का इस विषय पर 'भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट ऐनल्स' में एक लेख है, जिसमें कहा गया है कि माधवाचार्य तथा सायनाचार्य के गुरु श्री विद्याशङ्कर थे और विद्याशङ्कर का ही दूसरा नाम विष्णुस्वामी था।[1]

इस प्रकार के विभिन्न मतों के बीच में, यह पता लगाना कि "विष्णुस्वामी सम्प्रदाय" के प्रवर्तक आचार्य विष्णुस्वामी की स्थिति कब और कहाँ थी, कठिन है। वल्लभसम्प्रदायी ग्रंथों से तथा किंवदन्तियों से यह पता चलता है कि श्री वल्लभाचार्य जी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर बैठे और उन्होंने इसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर अपने सिद्धान्तों को निर्धारित किया। यह भी जनश्रुति है कि महाराष्ट्र सन्त श्री ज्ञानदेव, नामदेव, केशव त्रिलोचन, हीरालाल और श्रीराम, विष्णुस्वामी मतावलम्बी थे। महाराष्ट्र में प्रचार पानेवाला भागवत धर्म, जो पीछे 'वारकरी' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नामदेव आदि उक्त भक्त थे, विष्णुस्वामी मत का ही रूपान्तर है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय

श्री निम्बार्काचार्य के समय के बारे में विद्वानों ने अनिश्चित मत प्रकट किया है। और अनुमान से इनको श्री रामानुजाचार्य (सन् १०३७ . ११३७ ई०) के बाद श्री माध्वाचार्य का समकालीन माना है। डा० भण्डारकर ने इनका समय सन् ११६२ ई० दिया है[2]। निम्बार्काचार्य भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत वेदान्त मत के प्रचारक थे। दार्शनिक साहित्य में इनके निम्बार्काचार्य, निम्बादित्य, निम्बभास्कर, नियमानन्दाचार्य आदि कई नाम मिलते हैं। इनमें से इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम निम्बार्काचार्य ही है। यह भी कहा जाता है कि भेदाभेदवादी श्री भास्कराचार्य तथा निम्बार्काचार्य दोनों एक ही व्यक्ति थे। परन्तु दर्शनशास्त्र के विद्वान इतिहासकारों ने सिद्ध किया है कि ये दोनों आचार्य भिन्न भिन्न व्यक्ति थे[3]। श्री भास्कराचार्य, श्री शङ्कराचार्य के परवर्ती थे तथा निम्बार्काचार्य से बहुत पहले हुये थे।

निम्बार्काचार्य का जन्म बिलारी जिले के निम्बापुर स्थान में हुआ बताया जाता है। इनके विषय में एक कथा यह भी कही जाती है कि इनका नाम पहले नियमानन्द था। एक समय

१—Article by Rai Bahadur Amarnath Rai, Bhandarkar Research Institute annals, 1933 April to July, Vol. 11, parts III, IV, pages 161 118

२—वैष्णविज़्म, शैविज़्म भण्डारकर, पृ० ६२, फुटनोट।

३—गोपीनाथ, कविराज, 'कृष्ण,' जगद्गुरु, बङ्गाली सम्वत् १३३२।

कुछ साधु सायङ्काल को इनके पास आये जो दिन छिपने के बाद भोजन नहीं करते थे। नियमानन्दाचार्य ने अपने आश्रम के निकट स्थित एक निम्ब वृक्ष पर भगवान् कृष्ण के चक्रसुदर्शन का आवाहन किया जिसकी ज्योति सूर्यवत् चमकती थी। अतिथियों ने उसे सूर्यप्रकाश जान कर भोजन कर लिया। परन्तु भोजन समाप्त होते ही सुदर्शन के चल जाने पर अँधेरा हो गया। अतिथि-वर्ग आश्चर्य में पड़ गया। इस अपूर्व घटना का श्रेय नियमानन्दाचार्य की चमत्कार-शक्ति तथा सिद्धि को दिया गया। इस घटना के बाद से ही इनका नाम निम्बार्क अथवा निम्बादित्य चल पड़ा। पीछे इनका चलाया मत भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दक्षिण में विद्याध्ययन करने के बाद तथा सन्यासग्रहण के उपरान्त ये बहुत समय तक भारत की यात्रा करते रहे। इनके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं—'वेदान्त पारिजात सौरभ' तथा 'दश श्लोकी'। 'वेदान्त पारिजात सौरभ' ब्रह्म सूत्रों पर भाष्य ग्रन्थ है तथा 'दश श्लोकी' में संक्षिप्त रीति से ज्ञेय पञ्चविधि पदार्थ का निरूपण है। "सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज" नामक २५ श्लोकात्मक स्तोत्र भी निम्बार्काचार्य द्वारा रचित है। निम्बार्क-सम्प्रदाय को 'सनक-सम्प्रदाय' अथवा 'हंस-सम्प्रदाय' भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि सनक सनन्दन आदि ऋषि इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य हैं।

मत

दश श्लोकी में श्री निम्बार्काचार्य ने निम्नलिखित पाँच पदार्थ ज्ञेय बताए हैं—१—उपास्य का स्वरूप। २—उपासक का स्वरूप। ३—कृपाफल। ४—भक्तिरस तथा ५—फलप्राप्ति में विरोधी। इन्हीं पाँच विषयों के अन्तर्गत निम्बार्क के ब्रह्म, जीव, जगत, मोक्ष तथा मोक्ष-साधन आदि सम्बन्धी सिद्धान्त निहित हैं। पीछे कहा गया है कि इस सम्प्रदाय का तात्विक सिद्धान्त द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद-वाद है। निम्बार्क के मत में जीव और जगत का ब्रह्म से सम्बन्ध द्वैत भी है तथा अद्वैत भी। निम्बादित्य दश श्लोकी के भाष्य में श्री हरिव्यासदेव जी कहते हैं,—"वस्तुत. विज्ञान-स्वरूप एक ही ब्रह्म सर्व जीव-जगत का नियन्ता है। जीव और ब्रह्म म अभेद रहते हुए भी जीव का तथा ब्रह्म का विलक्षण व्यवहार है, जैसे अवतार और अवतारी, गुण और गुणी में अभेद है, परन्तु दृष्टिमात्र से भेद दिखाई देता है, वस्तुत. भेद नहीं है।"[२] इसीसे इस मत में भेदाभेद का समर्थन किया गया है। ब्रह्म, चित् जीव

१—उपास्यरूपं तदुपासकस्य च, कृपा फल भक्तिरसस्तत' परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभि.॥ १०
निम्बादित्य दश श्लोकी', हरिव्यासदेव, श्लोक १०।

२—एकमेव ब्रह्म विज्ञान रूपं वस्तुतः सर्वाकारम्। जीवब्रह्मणोरभेदेऽपि वैलक्षण्य व्यवहारोऽवतारावतारिणोरिव नित्यस्तेन न कापि वाक्यव्याकोपो भक्ति सिद्धिश्च। न च धर्मसाङ्कर्यम्। घटद्रपाजयोर्गुणगुणिनोश्च मत्यप्यभेदे तद्दर्शनात्।
'निम्बादित्य दश श्लोकी' हरिव्यासदेव, पृ० २८।

तथा अचित् (जड़) से भिन्न है, परन्तु चित् तथा अचित् दोनों ही तत्व ब्रह्मात्मक है। जैसे वृक्षों के पत्र, प्रदीप की प्रभा, ये वृक्ष और प्रदीप से पृथक् भाव में रह कर कार्य करने में समर्थ नहीं हैं, वृक्ष और प्रदीप-ज्योति के अंश-रूप पत्र और प्रभा वृक्षादि से अभिन्न है। उसी प्रकार चित-अचित भी ब्रह्म के अंश हैं। मुक्ति-अवस्था में जीवों की स्थिति ब्रह्म से भिन्न नहीं है। प्रत्येक मुक्त आत्मा, आपस में भिन्न रहते हुए भी परमात्मा से अपने को अविभक्त अनुभव करता है। इस मत में जीव ईश्वरात्मक तथा उससे अविभाज्य कहा गया है। अचेतन पदार्थ का भी ब्रह्म से अविभाग है। जैसे मकड़ी का तन्तु मकड़ी से अलग भी स्थित है तथा उसके भीतर भी ; इसी तरह जगत भी ब्रह्म में ही स्थित है तथा ब्रह्म जगत से अतीत भी स्थित है। "इस प्रकार विभाग-सहिष्णु अविभाग ही जीव, जगत तथा ब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध है।"[1]

निम्बार्क मतानुसार तत्व के तीन भेद हैं—चित्, अचित् तथा ब्रह्म। ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा अच्युत विभव से पूर्ण है। ब्रह्म ही जगत का उपादान कारण है और ब्रह्म ही निमित्त कारण है। वही कर्त्ता है तथा कृति का विषय है। इसलिए उसे अभिन्न निमित्तोपादान कहा गया है। ब्रह्मपराख्या शक्ति, जीवाख्या शक्ति तथा मायाख्या शक्ति, तीन प्रकार की शक्ति में रहनेवाली अनन्त-शक्ति से पूर्ण है।[2] वह स्वाधिष्ठित अपनी शक्ति को विक्षिप्त करके जगदाकार में अपनी आत्मा को परिणत करता है। ब्रह्म की शक्ति का विक्षेप ही परिणाम का स्वरूप है। और यह परिणाम, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, मकड़ी के तन्तु की सृष्टि के समान है।

ब्रह्म

निम्बार्क के मत में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। वे दोषहीन, कल्याण-गुण की राशि, व्यूहसमूह में अङ्गी तथा 'पर' हैं।[3] श्री हरिव्यासदेव जी 'दश श्लोकी' के भाष्य में ब्रह्म को अद्वैत बताते हुये कहते हैं कि कृष्ण की शक्ति व्यक्त और अव्यक्त, तथा अंश और अंशीरूप से व्याप्त है। इसलिए उसमें द्वैत नहीं है।[4] वह जीव-जगत से विलक्षण है

१—'गौडीय वैष्णव दर्शन' गोपीनाथ कविराज, "उत्तरा", अगहन, बङ्गाली संवत् १३३२।

२—... ..इत्यादिश्रुतिवर्णिताभिः पराख्या-जीवाख्या-मायाख्याभिः शक्तिभिश्च यः पूर्णस्तमित्यर्थः —निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० २०,।,

३—स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
, निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ४।

४—एकस्यैव ब्रह्मणः कृष्णस्य शक्तिव्यक्त्यव्यक्तिभ्यामंशित्वांशत्वव्यपदेशाच्च तस्मिन् द्वैतगन्धोऽपि। अतः श्रूयते "एकोऽपि सन् बहुधा योऽवभाति।"
निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० २१।

इसलिए द्वैत भी है। कृष्ण की शक्ति अचिंत्य तथा अनन्त है। वे ऐश्वर्य तथा माधुर्य दोनों के आश्रय हैं। उनकी 'रमा', 'लक्ष्मी' या 'भू' शक्ति उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री हैं। तथा गोपी और राधा उनके प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री हैं। भगवान मुक्त, गम्य, योगी, ध्येय, कृपालभ्य तथा स्वतन्त्र सत्तावान हैं। श्री हरिव्यासदेव जी कहते हैं—"उनका सच्चिदानन्दात्मक विग्रह है। ब्रजधाम में नित्य स्थित हैं। ब्रज में वे द्विभुज रूप हैं और द्वारावति में चतुर्भुज हैं। वे सर्वज्ञ, सर्व ऐश्वर्य-पूर्ण, सर्वकारणत्व, सर्वशक्तित्व, सौहार्द, मृदुलता, करुणा आदि गुणों के रत्नाकर तथा भक्तवत्सल हैं।[1] यही ब्रजकृष्ण, जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्लादिनी गोपी स्वरूप शक्तियों से परिवेष्ठित रहते हैं, निम्बार्कसम्प्रदाय के उपास्य देव हैं।"[2]

जीव

चित् तत्व जीवात्मा, देहादि अचित् पदार्थों से भिन्न, ज्ञान-स्वरूप होते हुये भी नित्य ज्ञाता और ज्ञान का आश्रय है। जीव अणु परिमाण है और कर्ता है। प्रत्येक शरीर में जीव भिन्न-भिन्न है तथा प्रत्येक जीवन बन्धन और मोक्ष की योग्यता से युक्त है। जीव मात्र भगवान् का व्याप्य है तथा सर्वदा भगवान् के अधीन है। ईश्वर प्रेरक है तथा जीव प्रेर्यवान है। जीव अनन्त है[3] ब्रह्म अंशी है और जीव अंश है, इसलिए वे सदैव भगवान् के अधीन रहते हैं।[4] जीव अनादि माया से युक्त है। 'निम्बार्क दश श्लोकी' में जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक मुक्त जीव तथा दूसरे बद्ध जीव।[5] मुक्त जीव भी श्री हरिव्यास देव ने अपने भाष्य में दो

१—उपास्यस्य कृष्णस्वामिनो रूपं सच्चिदानन्दविग्रहं स्वमहिमसंव्योमपुरशब्दितव्रजादिनित्यपदस्थितं व्रजे द्विभुजं गोपवेषं द्वारवत्यां चतुर्भुजं च सार्वज्ञ्यसार्वैश्वर्यसर्वकारणत्वसर्वशक्तित्वसौहार्दमार्दवकारुण्यत्वादिगुणरत्नाकरं भक्तवत्सलमित्येतत्।
—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास, पृ० ३८।

२—वृषभानुजाविशिष्टं कृष्णस्यस्वरूप सदोपासनीयं नितरां एकान्तभावेन श्रवणादिभिरनुकूलनीयमित्यर्थः, [निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, पृ० ३२।

३—ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं, ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः।
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास, श्लोक १।

४—सर्वेश्वरस्य हरेरंशोऽयमतो हरेरधीनमित्यर्थः।
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ४।

५—अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तं च बद्धं किल बद्धमुक्त प्रभेद बाहुल्यमथापि बोध्यम्।
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, श्लोक २।

प्रकार के कहे हैं—नित्य मुक्त तथा साधन मुक्त। इस प्रकार निम्बार्क मत से जीव की तीन कोटि हैं—एक बद्ध जीव, एक मुक्त जीव तथा एक नित्य मुक्त जीव।[1]

देव-मनुष्यादि देह में तथा उससे सम्बन्धित वस्तु में, अनादि कर्मरूपिणी अविद्या से बद्ध जीव आत्मा तथा आत्मीय वस्तु का जब अभिमान करता है, उसे बद्ध जीव कहते हैं।

बद्ध जीव

बद्ध जीवों की अवस्था में तारतम्य है। संसार-क्लेशाग्नि के विनाश होने पर मुक्ति होती है। सद्गुरु के आश्रय में उनके बताये मार्ग के अनुसरण से भगवान की अहेतुक कृपा अथवा प्रसाद प्राप्त होता है। फिर, जीव भगवान की कृपा के फलस्वरूप मुक्ति पाता है।

श्री हरिव्यास देव जी ने 'निम्बादित्य दश श्लोकी' के भाष्य में, मुक्ति दो प्रकार की कही है—क्रम मुक्ति तथा सद्योमुक्ति।[2] ये ही दो प्रकार की मुक्ति भी वल्लभाचार्य जी ने भी बताई हैं। जो निष्काम-कर्म तथा विधिपूर्वक अर्चनादि

मुक्ति तथा मुक्त जीव

करके स्वर्गादि लोकों के अनुभव लेते हुये सत्य-लोक में स्थित होते हैं और प्रलय-प्राप्ति पर ब्रह्म में सायुज्यलाभ करते हैं, वे क्रम मुक्ति पाते हैं। और श्रवणादि भक्ति से जिनका संसार-बन्धन टूट गया है, और जो भगवान् की कृपा के भागी हो गये हैं वे सद्योमुक्ति में 'हरिपद' या कृष्ण-लोक में जाते हैं। निम्बार्कसम्प्रदाय में भगवद्-सेवा-भक्ति तथा उनकी कृपा द्वारा प्राप्य मुक्ति ही इष्ट-फल कहा गया है। श्री हरिव्यास जी ने परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के दो स्वरूपों के अनुसार भगवान् के लोकादि-प्राप्ति की मुक्ति भी दो प्रकार की कही है—एक, ऐश्वर्यानन्दप्रधान; दूसरी, सेवानन्दप्रधान[3]। जो जीव निष्काम भाव से भगवान् की सेवा तथा उनसे प्रेम करते हैं उन्हें भगवान् के नैकट्य में भगवान् की सेवा के आनन्द की मुक्ति मिलती है और जो जीव सकाम भक्ति करते हैं उनको भगवान् के ऐश्वर्यादि मिलते हैं और वे भगवान् के लोक में ऐश्वर्यादि का आनन्द पाते हैं।

जो मुक्त जीव भगवद्-सामीप्य लाभ करते हैं, उनके भी वैसे ही भगवान् के समान गुण हो जाते हैं। मुक्त जीवों के देह का संस्थान भगवान् की अनादि तथा अनन्त-रूपिणी इच्छा-शक्ति ही करती है। जीवात्मा जैसे नित्य है उसी प्रकार उसका विग्रह भी नित्य है। कर्मादि बन्धन की अवस्था में जीव की नित्य-देह आवृत्त रहती है। जब जीव भगवान् के प्रसाद से उनका सामीप्य पाता है, उस समय वह प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर अपने नित्य सिद्ध-देह को लाभ करता है। भगवद्-प्रसाद द्वारा प्राप्त देह निर्विकार तथा भगवान् की सेवा के योग्य होती है।

१—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० १४।

२—निम्बादित्य दशश्लोकी, श्री हरिव्यास देव, पृ० १२।

३—निम्बादित्य दशश्लोकी, श्री हरिव्यास देव, पृ० १२।

नित्य सिद्ध जीव सदा संसार-दुःख से मुक्त भगवद्स्वरूप गुणादि का सदैव अनुभव करनेवाले तथा स्वभावतः भगवद्-अनुभावित होते हैं। गरुड़-सनकादि नित्य-सिद्ध अथवा नित्य-मुक्त जीव हैं। समाधिनिष्ठ योगियों को भी उक्त प्रकार के अनुभव का आनन्द मिलता है, परन्तु उनका अनुभव नित्य-सिद्ध जीवों के तुल्य सदाकालीन तथा स्वाभाविक नहीं होता।

नित्य सिद्ध जीव

अचित् तत्व—अचित् तत्व तीन प्रकार का है:—प्राकृत, अप्राकृत तथा काल।[1]

तीन गुणों का आश्रय-तत्व प्राकृत है जो अपने कारण-रूप में नित्य तथा कार्य-रूप में अनित्य है। कारण अवस्था में यह तत्व माया-प्रधान अथवा अव्यक्त भी कहलाता है। महत् तत्व से लेकर ब्रह्माण्ड तक जगत-रूप 'प्राकृत' का कार्य-रूप है। तीनों प्रकार के अचित् की सत्ता भगवान् की अपेक्षा रखती है, उनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। प्रकृति नित्य कालाधीन तथा परिणाम आदि के विकार को लेनेवाली है। सत्व, रज, तथा तम इन तीन गुणों के द्वारा प्रकृति, आत्मा की देह, देहेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि आदि रूप में परिणत होकर जीव का बन्धन करती है। प्राकृत का यह कार्य जीव की मोक्ष का प्रतिबन्धक है।[2] यह त्रिगुणात्मिका है।

प्राकृत

अचित् तत्व का अप्राकृत अंश विशुद्ध सत्व है। यह प्रकृति तथा काल से अलग तथा प्रकृति-राज्य के बाहर स्थित है। यह तत्व सूर्य के समान उज्ज्वल है। नित्य विभूति, विष्णुपद, परमव्योम, परमपद, ब्रह्मलोक, इसी अप्राकृत सत्व के दूसरे नाम हैं। यह भगवान् के सङ्कल्प मात्र से अनेक रूप लेने वाला है। भगवान् और उनके आश्रित नित्य तथा मुक्त जीवों के भोग का उपकरण तथा उनके निवास-स्थान के रूप में अनेक रूप इस शुद्ध तत्व के होते हैं। काल के प्रभाव से अलग होने के कारण यह परिणाम आदि विकार से भी रहित है।

अप्राकृत

काल जड़-तत्व सृष्टि का सहकारी तथा प्राकृत सम्पूर्ण पदार्थों का नियामक है। काल सर्वदा भगवान् के अधीन है। यह तत्व नित्य तथा विभु है और भूत, भविष्य तथा वर्तमान आदि व्यवहार का हेतु है।

काल

१—अप्राकृत प्राकृतरूपकं च, कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।। ३
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, श्लोक ३।

२—'उत्तरा' नामक बँगला मासिक पत्र, अगहन, १३३२ बँगला संवत, 'गौडीय-वैष्णव दर्शन' गोपीनाथ कविराज।

'दशश्लोकी' में श्री निम्बार्काचार्य जी ने कहा है कि ब्रह्मा[1] शिवादि से बन्दित कृष्ण के चरणारविन्द को छोड़ कर अन्य गति मनुष्य की नहीं है। जिस भाव से भक्त भगवान् की उपासना करता है, भगवान् भक्त को उसी भाव से मिलते हैं। वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से सहज में भक्त के कष्ट दूर करनेवाले हैं। श्री हरिव्यास देव जी का कहना है कि अन्य को छोड़ कर केवल कृष्ण ही उपास्य देव हैं।[2] जिस प्रकार वल्लभसम्प्रदाय आदि कई वैष्णव मतों में भक्ति तथा प्रेम की उत्पत्ति तथा प्रेरणा प्रभु-कृपा से मानी गई है उसी प्रकार निम्बार्क मत में भी ईश्वर-कृपा को बड़ा महत्व दिया गया है। निम्बार्काचार्य जी 'दश श्लोकी' में कहते हैं कि भगवान् की कृपा से ही दैन्यादि भाव उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार भगवान् की कृपा से ही प्रेम-रूपा भक्ति मिलती है। अनन्य भक्त महात्मा द्वारा की जाने वाली भक्ति ही उत्तम उपाय है जो दो प्रकार की होती है, साधनरूपा तथा परारूपा।[3] भगवान् की कृपा का फल, लगभग सभी वैष्णव वर्ग ने भगवान् की शरण अथवा उनके प्रति प्रेम-प्राप्ति बताया है। निम्बार्क मत में प्रभु की कृपा का फल प्रभु की शरण प्राप्ति लाभ करना है।[4]

मुक्ति लाभ का साधन

भगवान् की कृपा-बल से उनकी शरण मिलने के बाद भक्त भक्तिरस का आस्वादन करता है। नवधा भक्ति के अभ्यास से भगवान् के प्रति प्रेम अथवा रति मिलती है। प्रेम-भक्ति इस सम्प्रदाय में पाँच भावों से पूर्ण कही गई है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल।[5]

शान्त रस के उदाहरणस्वरूप भक्त वामदेवादि हैं। दास्य के रक्षक, पत्रक उद्धवादि हैं। सख्य के श्रीदामा, सुदामा, अर्जुन हैं। वात्सल्य भाव के यशोदा, नन्दादि हैं। तथा उज्ज्वल रस के भक्त गोपी और राधा हैं। वल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदायों की तरह इसी

१—नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्, संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्।
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ८।

२—तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसेत्तं भजेत्तं यजेदों तत् सदिति।
निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ३६।

३—कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते, यथा भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिका परा।
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ६।

४—कृपाफलं च तत्प्रपत्तिलाभलक्षणमित्येतत्।
निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ३८।

५—निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ३८, ३६, नि० सा० प्रे०।

उज्ज्वल अथवा मधुर भाव को इस सम्प्रदाय में भी उत्कृष्टता दी गई है। श्री निम्बार्काचार्य ने 'दशश्लोकी' में सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाली श्री कृष्ण के वामाङ्ग में विराजित तथा सहस्रों सखियों से सेवित श्री राधादेवी की स्तुति भी कृष्ण की स्तुति के साथ की है।[1] इससे ज्ञात होता है कि श्री निम्बार्काचार्य ने युगल उपासना के साथ भगवान् की माधुर्य तथा प्रेमशक्ति-स्वरूपा राधा की उपासना पर विशेष बल दिया था, क्योंकि वे (राधा) ही सकल कामनाओं को पूर्ण करा सकती हैं।

निम्बार्क-मत में भक्त को राधाकृष्ण की भक्ति-सेवा के साथ साधु-निंदा आदि सेवा-अपराधों को भी, जो फल-प्राप्ति के ३२ विरोधी हैं, जानना चाहिए तथा उनसे बचना चाहिए।[2]

माध्व सम्प्रदाय[1]

श्री माध्वाचार्य का आविर्भाव-काल श्री रामानुजाचार्य के बाद था। इनके दूसरे नाम आनन्दतीर्थ तथा पूर्ण-प्रज्ञ भी हैं। मद्रास प्रान्त के उडीपी ज़िले में 'विल्व' नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ। इन्होंने शङ्कर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खण्डन, विष्णु की प्रधानता का प्रचार तथा द्वैत-सिद्धान्त की स्थापना की। इनकी मृत्यु का समय सन् १२७६ ई० बताया जाता है। इनके मत का उत्तरी भारत में भी प्रचार हुआ।

मत माध्व मत में 'भेद' स्वाभाविक तथा नित्य है। यह स्वाभाविक भेद पाँच प्रकार का है—

१—ईश्वर और जीव-भेद—जीव ईश्वर से तथा ईश्वर जीव से नित्य भिन्न है।

२—ईश्वर और जड़-भेद—जड़ ईश्वर से तथा ईश्वर जड़ से नित्य भिन्न है।

३—जीव और जड़-भेद—जीव जड़ से तथा जड़ जीव से नित्य भिन्न है।

१—अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिषेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।
निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ५।

२—निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० २१।

१—इस लेख में 'उत्तरा' नामक बँगला मासिक पत्र में प्रकाशित, श्री गोपीनाथ कविराज जी कृत 'गौडीय वैष्णव दर्शन' नामक लेख के अन्तर्गत दिये हुये 'माध्व मत' लेख से विशेष सहायता ली गई है। देखिये 'उत्तरा', पौष १३३२ तथा वैशाख, १३३३ बँगला सं०।

४—जीव-जीव-भेद—एक जीव अपर जीव से भिन्न है।

५—जड़-जड़-भेद—एक जड़ दूसरे जड़ से भिन्न है।

भगवान् का जैसे सर्वगुण सत्य है, उसी प्रकार जीव और ईश्वर आदि ये भेद भी सत्य हैं। यह जगत सत्य है और उक्त पञ्च भेद-युक्त जगत का प्रवाह भी सत्य है। उक्त पाँच भेदों के कारण इस जगत को 'प्रपञ्च' कहते हैं। जीव को जब तक इन पञ्चभेदों का ज्ञान नहीं होता तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती।

माध्वमत में पदार्थ दश प्रकार के कहे गये हैं—१—द्रव्य, २—गुण, ३—कर्म, ४—सामान्य, ५—विशेष, ६—विशिष्ट, ७—अंशी, ८—शक्ति, ९—सादृश्य तथा १०—अभाव।

१—द्रव्य पदार्थ बीस प्रकार का है, यथा परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अहङ्कार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा (पञ्चतन्मात्रा), भूत (पञ्चभूत), ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल, प्रतिबिम्ब।

२—गुण-पदार्थ, रूप-रस, सौन्दर्य, धैर्य, शौर्य आदि अनेक प्रकार के हैं।

३—कर्म—तीन प्रकार के हैं—विहित कर्म, निषिद्ध कर्म तथा उदासीन कर्म। नित्य और अनित्य दो प्रकार के भी कर्म होते हैं।

४—सामान्य—सामान्य पदार्थ दो प्रकार का है—जाति, तथा उपाधि, जो नित्य तथा अनित्य भेद से दो प्रकार के हैं। देवत्व-जीवत्व जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षादि अनेक जातियाँ हैं। भौतिक शरीर से सम्बन्धित जातियाँ अनित्य हैं, क्योंकि शरीर की उत्पत्ति तथा विनाश है; परन्तु मुक्तावस्था में जो वस्तुभाव रहता है वह नित्य है। माध्व मत में जीवों की भिन्न-भिन्न स्थितियों का इस संसार में व्यतिक्रम होता रहता है, परन्तु संसार से निवृत्त होने पर जिस जीव का जो स्वाभाविक स्वरूप है उसे वहीं मिल जाता है। मुक्तवर्ग में स्थावर, जङ्गम, वर्ण-आश्रम आदि सभी जातिबोधक विभाग हैं जो नित्य हैं।

५—विशेष—भेद के निर्वाहक पदार्थ का नाम विशेष है।

६—विशिष्ट—विशेषणयुक्त विशेष्य को विशिष्ट कहते हैं। यह भी नित्यानित्य दो प्रकार का है।

७—अंशी—अंश से अतिरिक्त अंशी भी पृथक पदार्थ है।

८—शक्ति—यह चार प्रकार की है:—

क-अचिन्त्य शक्ति, ख-आधेय शक्ति, ग-सहज शक्ति, घ-पदशक्ति।

क—अचिन्त्य शक्ति— यह एक मात्र ईश्वर में ही पूर्ण रूप में है; अन्यत्र वह भगवान् की आपेक्षिक मात्रा में ही रहती है। भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का ही नाम ऐश्वर्य है। ईश्वर में विरुद्ध-धर्मत्व का कारण यही अचिन्त्य शक्ति है।

ख—आधेय शक्ति—यह स्वाभाविक शक्ति नहीं है। जैसे किसी मूर्ति में जब किसी देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं तब उस मूर्ति में जो देवशक्ति का आह्वान अथवा आरोप है, वही आधेय शक्ति कहलाती है।

ग—सहज शक्ति—स्वभाव का नाम सहज शक्ति है। नित्य पदार्थ की सहज शक्ति नित्य तथा अनित्य की अनित्य होती है।

घ—पद शक्ति—पद तथा पदार्थ के वाच्य-वाचक सम्बन्ध को पद शक्ति कहते है। स्यह वर, ध्वनि, वर्ण, पद तथा वाक्य से सम्बन्धित है।

६ तथा १०—सादृश्य तथा अभाव भी दो पृथक पदार्थ हैं।

परमात्मा

माध्व मत में परमात्मा अनन्त गुणपूर्ण है और उसका प्रत्येक गुण असीम है। वह सब प्रकार से पूर्ण है। वह नित्य है। जैसे उसके ऐश्वर्यादि गुण निस्सीम हैं उसी प्रकार उसके आनन्दादि गुण भी अपरिमित हैं। वह आठ प्रकार के कार्यकर्त्ता हैं—(१) सृष्टि, (२) स्थिति, (३) संहार, (४) नियम, (५) आवरण (अज्ञान), (६) बोधन, (७) बन्धन, (८) मोक्ष। इन आठ कार्यों में परमात्मा के अतिरिक्त और किसी चेतन का अधिकार नहीं है। उसकी देह ज्ञानानन्दात्मक, अप्राकृत तथा नित्य है। उसके अङ्ग चिदानन्द के हैं। जीव परतन्त्र है और परमात्मा स्वतन्त्र है, वह अद्वितीय है। इसलिए वही एक है। परमात्मा में अनेक रूप धारण करने की शक्ति है। जीव में वह शक्ति नहीं है। परमात्मा का प्रत्येक रूप उसके सर्व गुणों से पूर्ण होता है। उसके मूल रूप तथा अवतरित रूप में कोई भेद नहीं है। सुख दुख, विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष आदि सब उसकी इच्छा पर निर्भर रहते हैं।

लक्ष्मी

लक्ष्मी परमात्मा से भिन्न चेतन द्रव्य है, जो एकमात्र परमात्मा के ही अधीन रहती है। परमात्मा के इशारे से शक्ति पाकर, लक्ष्मी ही विश्व के सृष्टि आदि ऊपर कहे आठ कार्यों का सम्पादन करती है। सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा की उत्पत्ति लक्ष्मी से ही होती है। लक्ष्मी नित्य तथा सर्वगुण पूर्ण है; परन्तु वह सदैव भगवान् की सेवा में ही रहती है। वह मुक्त-भक्तों में आदर्श स्वरूपा है।

प्रकृति

जड़ तथा अजड़ भेद से प्रकृति दो प्रकार की है। अजड़ प्रकृति चित्स्वरूपा है और वही लक्ष्मी-रूप में स्थित रहती है। भगवान् लक्ष्मी में स्वस्त्रीभाव रखते हैं, 'श्री', 'भू', 'ह्रीं', दक्षिणा, सीता, श्रीनी, सत्या, रुक्मिणी आदि सब लक्ष्मी के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं।

जड़ प्रकृति आठ प्रकार की होती है

जीव

जीवों के तीन प्रकार के वर्ग हैं—१. मुक्ति योग्य, २. नित्य संसारी, ३. तमोयोग्य। जीव की सङ्ख्या अनन्त है। जितने परमाणु हैं उनसे अनन्त गुनी सङ्ख्या जीवों की है। संसारी जीव अज्ञान, भय-दुःख-मोहादि दोषों से युक्त रहता है।

१—मुक्ति-योग्य जीव—ब्रह्मा, अग्नि, वायु आदि देव, नारदादि ऋषि, विश्वामित्रादि पितृगण, रघु, अम्बरीष आदि चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्य, ये ही मुक्त जीव होने के अधिकारी हैं।

२—नित्य संसारी जीव—उत्तम मनुष्यों को छोड़ मध्यम मनुष्य नित्य संसारी जीव हैं। ये निरन्तर पृथ्वी, स्वर्ग, नरक आदि लोकों में संचरण करते हुये सुख-दुःख का भोग करते हैं।

३—तमो-योग्य जीव—दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि तमोमय जीव हैं।

जैसा कि पीछे कहा गया है, संसार से मुक्ति पाने पर भी जीव और ईश्वर तथा जीव और जीव में, आपस में, भिन्नता रहती है; क्योंकि माध्व मत में भेद स्वभावसिद्ध है।

जड़प्रकृति

जड़प्रकृति काल, सत, रज, तम, तीन गुण तथा महदादि तत्त्वों का उपादान कारण है। यह जड़-स्वरूपा प्रकृति तीन गुणों से भिन्न परिणाम धारण करनेवाली तथा नित्या है। प्रकृति की अधिष्ठात्री लक्ष्मी है। जब भगवान् सृष्टि की रचना की इच्छा करते हैं तब वे लक्ष्मी द्वारा उसे सत्, रज, तम तीन भागों में विभाजित करते हैं। इन्हीं त्रिगुणों के अंशों से महत् तत्त्व, अहङ्कार, बुद्धि तथा मन आदि की उत्पत्ति होती है।

इन्द्रियाँ

इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—नित्य तथा अनित्य। परमात्मा, लक्ष्मी तथा जीवमात्र की स्वरूपगत इन्द्रियाँ नित्य हैं। इनमें भी परमात्मा तथा लक्ष्मी की दशों इन्द्रियाँ रूप-रस आदि से युक्त सर्व पदार्थ को ग्रहण करती हैं। परन्तु जीव की इन्द्रियाँ अलग-अलग अपने योग्य पदार्थ के गुण को ही ग्रहण करती हैं।

इन्द्रियाँ, ज्ञान तथा कर्म-भेद से दो प्रकार की हैं।

अविद्या—माध्व मतानुसार पञ्चभूतों की सृष्टि के बाद अविद्या की सृष्टि होती है। अविद्या ब्रह्मा के शरीर में होकर आती है; इसी से इसे ब्राह्मी सृष्टि भी कहते हैं। इससे प्रभावित ब्रह्मा नारदादि भी हुये हैं।

अविद्या के निम्नलिखित प्रकार हैं—

१. जीवाच्छादिका। २. परमाच्छादिका। ३. शैवला। ४. माया। अविद्या प्रत्येक जीव में पृथक्-पृथक् होती है। जीवमात्र में अविद्या का अधिष्ठान नहीं है। संसार-क्लेश का कारण अविद्या है।

मोक्ष-लाभ के उपाय

परमात्मा के अनुग्रह से ही जीव को ज्ञान मिलता है और भगवान्‌के अनन्त कल्याण-गुण-समूह का ज्ञान उत्पन्न होता है। फिर भगवान् के प्रति अखण्ड प्रेम होता है। इस प्रेम का नाम परमभक्ति है। भगवान् के अनुग्रह तथा प्रेम द्वारा ही जीव इस दुःख-रूप संसार से मुक्तिलाभ करता है। भगवान् के परम अनुग्रह से जीव परमात्मा के लोक में तथा अपने स्वरूप में पहुँचता है तथा मध्यम और अधम अनुग्रह से वह स्वर्ग तथा अन्य ऊर्ध्वलोकों में सुखभोग करता है। प्रकृति तथा अविद्या के बन्धन से मुक्ति का एकमात्र उपाय भगवान् की कृपा तथा उनसे प्रेम करना है।

मुक्ति चार प्रकार की है—कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अर्चिरादिमार्ग तथा भोग।

कर्मक्षय—अपरोक्ष ज्ञान से सञ्चित पाप और पुण्य का क्षय होता है। परन्तु प्रारब्ध-कर्मों का क्षय नहीं होता; वे भोग से ही कटते हैं। प्रारब्ध-कर्म क्षय के बाद जीव ब्रह्म नाड़ी का अवलम्बन लेकर उत्क्रमण करता है। ब्रह्म नाड़ी को सुषुम्ना भी कहते हैं।

उत्क्रमणलय—जो सुषुम्ना पद को पार करते हैं उनको जीवत्व का बोध नहीं रहता। उस समय विष्णु-तेज से उस जीव के हृदय का द्वार खुल जाता है। इसी को ब्रह्म-द्वार कहते हैं। फिर हृदयस्थ भगवान् ब्रह्म-द्वार से बाहर आकर जीव को ऊँचे की ओर ले जाते हैं। वैकुण्ठ-लोक में पहुँचकर जीव को भगवान् के तुर्य-रूप का साक्षात्कार होता है। यही उत्क्रमणलय की अवस्था है।

अर्चिरादिमार्ग—जो देहादि के प्रतीक का सहारा लेकर ज्ञान-लाभ करते हैं उनको भी अन्त काल में भगवत्-स्मृति जाग्रत हो जाती है। अज्ञानी की भगवत्-स्मृति जाग्रत नहीं

होती। जिन ज्ञानियों के प्रारब्ध-कर्म का क्षय नहीं हुआ उनको भी भगवत्-स्मृति नहीं होती। ऐसे ज्ञानी सुषुम्ना की पार्श्ववर्ती नाड़ी से ऊर्ध्व गमन करते हैं और उनको अर्चिरादि लोकों की प्राप्ति होती है। फिर वे वायुलोक होते हुये ब्रह्मा के लोक में जाते हैं। ये जीव ब्रह्मा के भोगावसान बाद ही ब्रह्मा के साथ परम पद का लाभ करते हैं।

भोग—एक गुणोपासक ज्ञानी प्रारब्ध के अवसान के बाद देह त्याग कर पृथ्वी आदि स्थानों में ही परमानन्द का भोग करते हैं। यह भोग मुक्ति की अवस्था है। उनको श्वेत-द्वीप में नारायण का दर्शन होता है और वे श्वेत-द्वीपस्थ नारायण की आज्ञा से पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

उक्त अवस्थाओं के साथ साथ माध्व मत में मुक्ति-भोग चार प्रकार का कहा गया है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य। सालोक्य मुक्ति-भोग की अवस्था में मुक्त जीव भगवान् के लोक में पहुँचता है और वहाँ रह कर इच्छानुकूल भोग करता है। सामीप्य मुक्ति की अवस्था में जीव भगवान् के समीप सम्बन्ध में रह कर आनन्द भोग करता है। सारूप्य मुक्ति अवस्था में मुक्त जीव ईश्वर के समान गुण और रूप लाभ करता है। परन्तु भगवान् की समानरूपता को धारण करके भी वह परमानन्द भोग में कभी समर्थ नहीं होता। सायुज्य मुक्ति अवस्था में, इस मतानुसार, भगवान् में प्रविष्ट होकर भगवद् देह द्वारा जो भोग-साधन होता है वही सायुज्य मुक्ति है। देवगण ही सायुज्य मुक्ति के अधिकारी हैं। प्रलयकाल मे सभी को भगवद्-देह में प्रविष्ट करना पड़ता है, केवल लक्ष्मी रह जाती हैं। अन्य कालो में मुक्त जीव सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य मुक्ति अवस्थाओं में अनेक प्रकार से, भगवद् इच्छा प्रदत्त शरीरों में आनन्द का भोग करते हैं। कोई स्त्रियों के साथ जल-केलि में निरत है तो कोई प्रासादों में आनन्द भोग करता है। कोई यज्ञादि क्रियाओं में सलग्न रहता है तो कोई सारूप्य अवस्था में शुद्ध सत्व-मय लीला-शरीर से क्रीड़ा करता है। कोई भगवान् के गुणगान में मग्न है तो कोई उनके समीप नृत्य कर प्रेम-विभोर होता है।

चैतन्य सम्प्रदाय[१]

अष्टछाप के समय में वल्लभ-सम्प्रदाय के साथ ही साथ इस सम्प्रदाय का भी प्रादुर्भाव हुआ। इस सम्प्रदाय को चलानेवाले महात्मा श्री चैतन्य महाप्रभु थे। चैतन्य महाप्रभु का जन्म

१—इस खेरा में लेखक ने श्री राधागोविन्दनाथ के 'कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया सीरीज़', भाग २, में छपे लेख 'ए सरवे आफ श्री चैतन्य मूवमेण्ट' से भी सहायता ली है।

सन् १८८५ ई०[1] में बंगाल के नवद्वीप स्थान में हुआ। उस समय बंगाल में विष्णु-भक्ति का बहुत ही कम प्रचार था। बहुधा लोग काली और मनसा देवी के उपासक थे। शाक्तों का उस समय बंगाल में ज़ोर था। बाईस वर्ष की अवस्था तक श्री चैतन्य की विद्वत्ता की ख्याति नवद्वीप के बाहर बङ्गाल में फैल गई थी। एक बार वे अपने पिता का पिण्डदान करने 'गया' गये और वहाँ उन्हें एक 'ईश्वरपुरी' नाम के परम, वैष्णव मिले जिन्होंने कृष्ण चैतन्य को भक्ति मार्ग में प्रविष्ट कराया। उस समय वे गृहस्थ थे। कुछ समय बाद उन्होंने अपनी माता और स्त्री को छोड़कर संन्यास ले लिया और रामेश्वर, वृन्दावन आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा की। वे कृष्ण का नाम सङ्कीर्तन में करते-करते प्रेम में मस्त होकर नाचा करते थे, और इनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहा करते थे। इनकी प्रेमभक्ति और भक्ति के प्रवचनों को सुनकर इनके अनेक अनुयायी हो गये। फिर इन्होंने, भक्ति और कीर्तन का जगह-जगह प्रचार किया। श्री नित्यानन्द तथा अद्वैत आचार्य, ये दो विद्वान भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के सहकारी शिष्य थे। महाप्रभु ने इन दोनों महात्माओं को बङ्गाल में वैष्णव-धर्म प्रचार के लिए नियत किया था तथा इनके छै शिष्य वृन्दावन में धर्म-प्रचार के लिए रहा करते थे, जिनमें श्री रूपगोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी और श्री जीव गोस्वामी, मुख्यरूप से प्रचार-कार्य करते थे। ये तीनों महात्मा अष्टछाप कवियों के समकालीन थे। इन तीनों भक्तों की प्रशंसा, नाभादास ने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' में की है[2] जिससे पता चलता है कि श्रीकृष्ण चैतन्य और उनके अनुयायी, राधाकृष्ण-युगल-रूप के चरणों के उपासक थे। कृष्ण चैतन्य जिस समय व्रज में गये उस समय वर्तमान वृन्दावन में दो चार घरों के अतिरिक्त कोई बस्ती न थी। चारों ओर जमुना की कछारों के जङ्गल थे। श्रीकृष्ण चैतन्य ने उस स्थान को एक तीर्थ-स्थान बना दिया और तब से अब तक वृन्दावन एक बड़ा तीर्थस्थान समझा जाता है।

श्री जीव गोस्वामी जी ने वृन्दावन में श्री राधादामोदर के मन्दिर की स्थापना की तथा श्री गोपाल भट्ट ने श्री राधारमण जी का मन्दिर बनवाया। ये दोनों मन्दिर अब

१—कल्चरल हेरिटेज़ आफ़ इण्डिया सीरीज़, भाग २, पृ० १३१।

२—श्री रूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गँभीर।

बेला भजन सुपक्व कषायन कबहूँ लागी।
वृन्दावन दृढ़वास जुगल चरननि अनुरागी।
पोथी लेखन पान अघट अक्षर चित दीनौ।
सद् ग्रन्थन कौ सार सबै हस्तामल कीनौ।
संदेह ग्रन्थ छेदन समर्थ, रस रास उपासक परमधीर।
श्रीरूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गँभीर।

भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द ९३, पृ० ६१६।

तक वैभवशाली हैं।[1] भक्तमाल में गोपाल भट्ट के राधारमण जी इष्ट होने का वृत्त तथा उनके साथ अन्य चैतन्य-सम्प्रदायी भक्तों के नाम दिये हुये हैं जो नाभादास जी के समय तक उस सम्प्रदाय के मुख्य भक्त तथा प्रचारक समझे जाते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु का गोलोकवास सन् १५३३ ई० (संवत् १५६० वि०) में हुआ।[2]

श्रीईश्वरपुरी गोस्वामी जिनसे श्रीकृष्णचैतन्य ने राधाकृष्ण की भक्ति का मार्ग ग्रहण किया था, माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी के शिष्य थे।[3] श्रीमाधवेन्द्रपुरी का उल्लेख वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ताओं में भी आता है। '२५२ वार्ता' से ज्ञात होता है कि जिन माधवेन्द्रपुरी की भक्ति-पद्धति की शिक्षा चैतन्य महाप्रभु ने ली थी, वे श्रीविट्ठलनाथजी के भी, उनके बाल्य-काल में, विद्यागुरु थे।[4] इस कथन में कुछ भी सत्यता हो अथवा न हो, परन्तु वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ता-साहित्य से यह बात सिद्ध है कि श्रीवल्लभाचार्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य का समागम तो हुआ ही था, वे एक दूसरे की भक्ति से भी प्रभावित हुए थे। श्रीवल्लभाचार्यजी ने, सम्भव है, श्रीकृष्णचैतन्य की भक्ति से प्रभावित होकर ही बंगाली वैष्णवों को श्रीनाथजी की सेवा में रक्खा हो।

श्रीवल्लभाचार्यजी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुजी लगभग समवयस्क थे। अष्टछाप के प्रथम चार कवियों के जीवन-काल में ही श्रीवल्लभाचार्यजी ने अपने सम्प्रदाय का, सिद्धान्त और साधन, दोनों दृष्टियों से, एक स्वतन्त्र-रूप खड़ा कर दिया था। श्रीविट्ठलनाथजी ने, उनके बाद, केवल उपासना-विधि में, कुछ अधिक आयोजन बढ़ाकर, परिवर्तन अवश्य किये, परन्तु उन्होंने आचार्यजी के सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं किया। चैतन्य सम्प्रदायी राधाकृष्ण की युगल-भक्ति का, तथा नाम और लीला-कीर्तन का भी चैतन्य महाप्रभु के जीवन-काल में ही भली प्रकार प्रचार हो गया था और श्रीकृष्ण चैतन्य के मौलिक उपदेश लेकर

१—श्रीवृन्दावन की माधुरी इनि मिली आस्वादन कियो।
सरवस राधारमन भट्ट गोपाल उजागर।
हृषीकेष भगवान् विपुल बीट्ठल रस सागर।
थानेश्वरी जगन्नाथ, लोकनाथ महामुनि मधु श्रीरंग।
कृष्णदास पंडित उभै अधिकारी हरि अंग।
घमंडी जुगलकिशोर भृत्यु भूगर्भ जीव दृढ़ व्रत लियो।
वृन्दावन की माधुरी इनि मिली आस्वादन कियो।

भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द ६४, पृष्ठ ६१८।

२—दि कल्चरल हेरिटेज आफ़ इण्डिया सीरीज़, भाग, पृ० १२२

३—चैतन्य-चरितामृत, पृष्ठ १।

४—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ५०४।

एक सुगठित रूप देकर उसके दार्शनिक सिद्धान्तों का भी पूर्ण स्पष्टीकरण किया गया। इसके बाद चैतन्य-सम्प्रदायी, संस्कृत तथा बँगला के कई लेखक हुये। १८ वीं शताब्दी ई० के आरम्भ में एक बलदेव विद्याभूषण[1] नामक विद्वान् भक्त ने पहले पहल ब्रह्मसूत्रों पर अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से 'गोविन्द भाष्य' लिखा और तभी से चैतन्य-सम्प्रदाय वेदान्त-दर्शन-शास्त्र के भिन्न-भिन्न वादों को लेकर चलनेवाले सम्प्रदायों में गिना गया और एक स्वतंत्र सिद्धान्तवादी मत बना।

चैतन्य सम्प्रदाय के इस इतिहास से तथा उसके दार्शनिक सिद्धान्तों के अवलोकन से पता चलता है कि अष्टछाप के काव्य पर चैतन्य-सम्प्रदायी दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव नहीं पड़ा। भक्ति के साधन पक्ष में श्री वल्लभाचार्यजी के सम्प्रदाय पर श्रीरूप गोस्वामी द्वारा विवेचित भक्ति पद्धति का किसी हद में प्रभाव, श्री विट्ठलनाथजी के समय में, अवश्य हुआ। श्री वल्लभाचार्यजी ने नवधा भक्ति के 'कीर्तन'-साधन में, नाम और लीला-कीर्तन के साथ वाद्यपूर्ण सङ्गीत का भी समावेश किया था। इस कीर्तन की आयोजना को श्री विट्ठलनाथजी ने और अधिक बढ़ाया। उधर, श्री चैतन्य महाप्रभु ने लीला-कीर्तन के साथ नाम-सङ्कीर्तन का विशेष प्रचार किया और उन्होंने भी कीर्तन के साथ गान और वाद्य का प्रयोग रक्खा। सम्भव है, श्रीवल्लभाचार्यजी ने अथवा गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने गान और वाद्य की महत्ता, श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से ली हो। चैतन्यसम्प्रदाय के दार्शनिक तथा भक्ति-सम्बन्धी सिद्धान्तों के देखने से पता चलता है कि उसमें भक्ति के चारों भावों को लेते हुये भी मधुर-भाव पर विशेष बल दिया गया है। और वल्लभ-सम्प्रदाय में चारो भावों को मानते हुये तथा मधुरभाव को सर्वोत्कृष्ट भाव बताते हुये भी, बाल-भाव पर अधिक ज़ोर दिया गया है। इसलिए यह कहना कि अमुक सम्प्रदाय का अमुक पर निश्चयपूर्वक ऐसा प्रभाव पड़ा, कठिन है। प्रस्तुतः भक्ति का पूर्ण विकसित रूप तो जैसा कि पीछे बताया गया है, श्रीमद्भागवत के आधार पर चार पूर्व आचार्यों के समय में ही स्थापित हो गया था। उसी को लेकर श्री वल्लभाचार्य, श्री चैतन्य महाप्रभु आदि के सम्प्रदाय १५वीं शताब्दी में चले थे।

मत

तात्विक सिद्धान्त की दृष्टि से चैतन्य-सम्प्रदाय अचिन्त्य-भेदाभेद- वादी सम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदाय के मतानुसार परम तत्व एक है। वह तत्व सच्चिदानन्द-स्वरूप अनन्त-शक्ति से सम्पन्न तथा अनादि है। जैसे रूप-रसादि गुणों का आश्रय एक पदार्थ दुग्ध, पृथक-पृथक इन्द्रियों द्वारा पृथक-पृथक रूप में दिखाई देता है उसी प्रकार एक ही परमतत्व, उपासना-भेद से, अलग अलग

१—कल्चरल हेरिटेज़ आफ़ इण्डिया सीरीज़, भाग २, पृ० १६९

प्रकार से अनुभूत होता है।[1] तत्ववेत्ता एक अद्वितीय तत्व को ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कह कर निर्दिष्ट करते हैं।[2] परम तत्व की अनन्त शक्ति अचिन्त्य है। इसलिए वह एकत्व, पृथकत्व, अंशत्व तथा अंशित्व धारण करने में समर्थ है।[3] अचिन्त्य शक्ति का आश्रय यह परब्रह्म परस्पर विरुद्ध शक्ति का आश्रय भी है। यह परम तत्व स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति जब प्रकट है तब उसे भगवान् कहते हैं, जब उनकी यह अनन्त शक्ति अप्रकट है, उन्हीं में प्रच्छन्न रहती है, तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं और जब उनकी कुछ शक्ति प्रकट और कुछ अप्रकट होती है तब उन्हें परमात्मा कहते हैं। ब्रह्म विशुद्ध ज्ञान का विषय है, ज्ञान-मार्गीय ब्रह्म में सायुज्य-मुक्ति-लाभ करते हैं। परमात्मा, योग का लक्ष्य है और भगवान् का भक्ति से साक्षात्कार होता है। श्री रूपगोस्वामी जी ने 'लघुभागवतामृत' ग्रन्थ में कहा है,—"श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं, वे असङ्ख्य अप्राकृत गुणशाली और अपरिमित शक्ति से विशिष्ट हैं और पूर्णानन्द-घन उनका विग्रह है। जो ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष और अमूर्त कहा गया है वह सूर्य-तुल्य श्रीकृष्ण के प्रकाश-तुल्य है।[4]"

परब्रह्म के तीन रूप हैं—स्वयंरूप, तदेकात्मरूप तथा आवेशरूप।[5] परब्रह्म स्वयंरूप श्रीकृष्ण हैं। वे सर्वकारणों के कारण हैं, उनका रूप किसी की अपेक्षा करके प्रकट नहीं होता। वे स्वतः सिद्ध हैं। उनका स्वयंरूप भी पूर्ण, पूर्णतर तथा पूर्णतम रूप से तीन प्रकार का है। श्रीकृष्ण का द्वारिका-रूप पूर्ण है, मथुरा रूप पूर्णतर है और वृन्दावन, ब्रजलीला रूप पूर्णतम है।

तदेकात्मरूप—परब्रह्म श्रीकृष्ण का तदेकात्म रूप दो प्रकार से प्रकाशित होता है—विलास रूप तथा स्वांश रूप। उनका जो रूप लीला-विशेष के लिए, व्यक्त होता है वह विलास रूप है जैसे भगवान् का विलास रूप वैकुण्ठवासी नारायण हैं तथा नारायण का विलास रूप वासुदेव रूप है। अपने स्वयंरूप से जब भगवान् अपनी थोड़ी शक्ति का

१—तत्तत् श्री भगवन्येव स्वरूपं भूरि विद्यते।
उपासनानुसारेण भाति तत्तदुपासके॥
यथा रूपरसादीनां गुणानामाश्रयः सदा।
क्षीरादिरेक एवार्थो जायते बहुधेन्द्रियैः॥
लघुभागवतामृत, पृ० १२६।

२—वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते। ६४। लघु० भा०, पृ० १२८।

३—लघु भागवतामृत, श्लोक ४०, पृष्ठ १२४, १२५।

४—लघुभागवतामृत, श्लोक ६८-६६ पृष्ठ १६३, १६४।

५—लघुभागवतामृत, श्लोक ११, पृष्ठ ६, वें० प्रे०

प्रकाश करते हैं तब उनका वह अंश शक्ति रूप स्वांश होता है, जैसे भगवान् के भिन्न-भिन्न मत्स्यादि लीलावतार।

आवेशरूप—जब भगवान ज्ञान, शक्ति की कला के विभाग से महान जीवों में प्रकट होते हैं तब वे महान जीव भगवान् के आवेशरूप होते हैं जैसे, नारद, शेष, सनकादि ऋषि भगवान् के आवेश रूप हैं।

भगवान के तीन प्रकार के अवतार हैं। पुरुषावतार, गुणावतार तथा लीलावतार।[1] परब्रह्म श्रीकृष्ण का आदि अवतार पुरुष है जिसे वासुदेव भी कहते हैं। आदि पुरुषावतार वासुदेव के तीन प्रकार के भेद हैं—प्रथम पुरुष सङ्कर्षण, द्वितीय पुरुष प्रद्युम्न तथा तृतीय पुरुष अनिरुद्ध। वासुदेव माया-प्रकृति के अधिष्ठाता हैं। ये प्रकृति के वीक्षण कर्ता हैं। जब वासुदेव वीक्षण से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करते हैं तब वे अपने सङ्कर्षण रूप से गए क्षोभ द्वारा उसमें महत्तत्व का प्रादुर्भाव करते हैं। उसके बाद अहङ्कार, मन तथा इन्द्रियादि और पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के रच जाने पर जो जीव समष्टि के अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करता है वह द्वितीय पुरुष प्रद्युम्न है। प्रत्येक देह के पृथक पृथक रूप से अन्तर्यामी पुरुष को तृतीय पुरुष कहते हैं। इसका नाम अनिरुद्ध है। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, चतुर्व्यूह का स्थान नारायण के धाम, वैकुण्ठ राज्य में है।

गुणावतार[2]—द्वितीय पुरुष से विश्व के पालन, सृष्टि तथा संहार के लिए प्रकृति के तीन गुण सत, रज, तम के अधिष्ठाता तीन गुणावतार विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र उत्पन्न होते हैं। ये श्रीकृष्ण के स्वांश हैं।

लीलावतार—सनकादि, नारद, आदि भगवान् के आवेश रूप अवतार तथा वाराह, मत्स्य, से लेकर रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि तक उनके स्वांशरूप भगवान् के लीला-अवतार हैं।

जीव पीछे कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं। उनकी शक्तियाँ तीन प्रकार की हैं—

अन्तरङ्गा शक्ति—यह उनकी स्वरूप शक्ति है।

बहिरङ्गा शक्ति—यह माया या जड़शक्ति है।

१—लघुभागवतामृत, श्लोक ३, पृष्ठ १७।

२—लघुभागवतामृत, पृष्ठ २४।

तटस्थ शक्ति—यह जीव शक्ति है।

भगवान् की अन्तरङ्गा स्वरूप शक्ति सत्, चित् तथा आनन्द, तीन रूपिणी है। जीव, इन तीनों शक्तियों से प्रकटित नहीं है। वल्लभसम्प्रदाय में जीव भगवान् को चिद्शक्ति के ही अंश कहे गये हैं। भगवान् की स्वरूपसत्-शक्ति को चैतन्य सम्प्रदाय में 'सन्धिनी' शक्ति भी कहते हैं। इस शक्ति से भगवान् स्वयं स्थित हैं और इसी के प्रसार से सब की स्थिति करते हैं। स्वरूप चिद्शक्ति से जिसे 'संविदशक्ति' भी कहते हैं, भगवान् स्वयं प्रकाशवान हैं तथा समग्र जगत को प्रकाशित करते हैं। स्वरूप आनन्दशक्ति से, जिसे आह्लादिनी शक्ति भी कहते हैं, भगवान् स्वयं आनन्दमग्न रहते हैं और अन्यत्र भी आनन्द-वितरण करते हैं। ये तीनों स्वरूप-शक्तियाँ भगवान् से प्रसूत होकर इस प्रकार विस्तरित हैं जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित होते हुए अपनी किरणों के प्रसार से अन्यत्र प्रकाश फैलाता है। ये भगवान् के स्वरूप से अभिन्न हैं; इसलिए उन्हें स्वरूपशक्ति कहा जाता है। इस प्रकार भगवान् की सच्चिदानन्दमयी स्वरूपशक्ति से इतर भगवान् की तटस्थशक्ति से जीव की उत्पत्ति है। जैसे सूर्य से किरणें निकली हैं उसी प्रकार भगवान् की तटस्थशक्ति से जीव भी प्रसूत है। जीव अणु है और भगवान् को नित्यशक्ति से प्रसूत होने के कारण नित्य है। जीव नित्य भगवान् के स्वरूप में लीन भी हो सकता है।

जीव भगवान् की अन्तरङ्गा तथा बहिरङ्गा दोनों शक्तियों के बीच की तटस्थशक्ति से सम्बन्ध रखता है। इसलिए इसे दर्पण-तुल्य कहा गया है। वह न बहिरङ्गाशक्तिरूपा माया रूप है और न भगवद्स्वरूप है। वह मायाशक्ति तथा स्वरूपशक्ति के बीच में है; कभी माया को छूता है तो कभी भगवान् के स्वरूप के प्रकाश को। जीव आदि काल से माया के उन्मुख हैं, इसलिए भगवान् की स्वरूपशक्ति से अलग विमुख हैं, माया राज्य में आकर जीव अनेक संसृति में भ्रमता है। यदि वह स्वरूपशक्ति की ओर मुख कर ले, क्योंकि स्वभावतः वह माया-राज्य का निवासी नहीं है, तो वह दुःख से मुक्ति पाकर आनन्द का भागी हो जाय। माया और जीव का सम्बन्ध अनादि है, परन्तु सान्त भी है। भगवद् स्वरूपशक्ति और जीव का सम्बन्ध सादि है परन्तु अनन्त है।

भगवान् की बहिरङ्गा माया के, जिससे जड़-प्रकृति प्रसूत है, दो रूप हैं—द्रव्य-माया तथा गुणमाया। द्रव्यमाया, जगत का उपादान कारण है और गुणमाया, जो भगवान् के सङ्कल्प अथवा इच्छा रूप में प्रकट होती है, जगत का निमित्त कारण है।

जगत

भगवान् की स्वरूपशक्ति प्रकाश तुल्य है और मायाशक्ति छाया-तुल्य है। पीछे कहा गया है कि माया या प्रकृति के साथ आदि पुरुष के संसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति और प्रसार होता है।

परब्रह्म श्रीकृष्ण अपने तीन स्वयंरूपों से तीन[1] धामों में सर्वदा रहते हैं। पूर्ण रूप से द्वारिका धाम में, पूर्णतर रूप से मथुरा में तथा पूर्णतम रूप से गोकुल, गोलोक अथवा वृन्दावन धाम में। मथुरा-द्वारिका में भगवान् श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य रूप है तथा गोलोक अथवा व्रज-वृन्दावन में उनका मधुर-रस रूप है। गोलोक की अपेक्षा गोकुल में उनका सर्वाधिक माधुर्य रूप है। गोलोक गोकुल की ही विभूति है।[2] इस प्रकार पूर्णतम भगवान् का धाम गोकुल, गोलोक है, नारायण का निवास विरजा से परिवेष्ठित वैकुण्ठ नगर में है तथा वासुदेव तथा अवतार आदि का स्थान वैकुण्ठ राज्य में है।

भगवान् के धाम

ब्रह्म स्वरूप जीव ज्ञान द्वारा जड़ माया से मुक्त होकर ब्रह्म सायुज्य कैवल्य मुक्ति पाता है। और भगवान् की भक्ति द्वारा जीव स्वरूपानुभव से वैकुण्ठ और भगवान् के गोलोक धाम में जाता है। परन्तु जीव को भक्ति, भगवान् की कृपा से ही मिलती है। भक्ति दो प्रकारकी है—वैधी तथा रागानुगा। वैधी-भक्ति भगवान् के ऐश्वर्य का मार्ग है। इस भक्ति के अनुगामी जीव भगवान् के मथुरा द्वारिका धाम में प्रवेश पाते हैं। और राग-भक्ति का मार्ग माधुर्य मार्ग है, इसके अनुकरण से जीव भगवान् के मधुर रूप के पास गोलोक धाम में जाते हैं। भक्त जीव का स्थूल शरीर उसकी मृत्यु पर छूटता है। फिर वह सूर्य मण्डल में जाता है, वहाँ उसका सूक्ष्म शरीर रह जाता है। तब वह विरजा नदी में निमग्न होता है, वहाँ उसका कारण-शरीर छुटता है। इसके बाद वह दिव्य स्वरूप धारण कर वैकुण्ठ नगर में पहुँचता है। वहाँ से भगवान् उसे अपने निज धाम में लेते हैं।

मोक्ष तथा मोक्ष मार्ग

चैतन्य-सम्प्रदायी भक्ति-ग्रंथ 'भक्ति-रसामृतसिन्धु' में वैधी तथा रागानुगा भक्ति के शास्त्र पर बड़े विस्तार से लिखा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण की भावमयी गोलोक-लीला चार भावों से सम्बन्ध रखती है—दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। इन्हीं चार भावों से कृष्ण चैतन्य सम्प्रदाय में प्रेम-भक्ति होती है। इन भावों में सबसे अधिक उत्कर्ष माधुर्य-भाव का है क्योंकि इस प्रेम के अन्तर्गत अन्य प्रेम भावों का भी समावेश हो जाता है। भगवान्

१—इति धामत्रये कृष्णो विहरत्येव सर्व्वदा।
तत्रापि गोकुले तस्य माधुरी सर्वतोऽधिका।
लघुभागवतामृत, पृष्ठ २२४।

२—धामास्य द्विविधं प्रोक्तं माथुरं द्वार्व्वती तथा।
माथुरंच द्विधा प्राहुर्गोकुलं पुरमेव च॥
यत्त गोलोक नाम स्यात्तच्च गोकुलवैभयम्।

लघु भागवतामृत, पृ० २४१।

के गोलोक[1] धाम की लीला नित्य तथा अप्राकृत हैं। वहाँ के गोप गोपी, गोवत्स आदि भी अप्राकृत हैं। प्रेम और आनन्द की शक्ति-स्वरूपा गोपियों मे राधा 'महाभाव' स्वरूपा है। मधुर भाव की रति तीन प्रकार की होती है—साधारणी रति, समञ्जसा रति तथा समर्था रति। साधारण रति का दृष्टान्त कुब्जा है, इस भक्ति से भगवान् का मथुरा-धाम का रूप मिलता है। ऐसे भक्त भगवान् से प्रेम और उनकी सेवा अपने आनन्द-लाभ के लिए करते हैं। यह काम रूपा भक्ति हैं। दूसरी समञ्जसा रति का उदाहरण रुक्मिणी, जामवन्ती आदि महिषी वर्ग हैं। इस भाव को धारण करनेवाले भक्त भगवान् से रति अपना कर्तव्य अथवा जीव का धर्म समझ कर करते हैं। ऐसे भक्तों को भगवान् का द्वारिका रूप मिलता है। तीसरी समर्था रति का दृष्टान्त ब्रजगोपी हैं जिस भाव को धारण कर भक्त भगवान् से प्रेम और उनकी सेवा भगवान् के आनन्द के लिए करते हैं। इसमें शास्त्र मर्यादा का ध्यान नहीं है। भगवान् की सेवा के लिए यदि शास्त्र-मर्यादा का भी उल्लङ्घन करना पड़े तो उस उल्लङ्घन के करने में इस प्रकार के मधुर भाव को रखनेवाला भक्त बिना सङ्कोच के करता है। यही भाव अपने उत्कर्ष पर पहुँच कर महाभाव अथवा 'राधा' भाव में परिणत हो जाता है।

अन्य भक्ति-सम्प्रदायों के समान चैतन्य सम्प्रदाय में भी सत्सङ्ग, नाम तथा लीला कीर्तन, ब्रजवृन्दावन-वास, कृष्ण-मूर्ति की सेवा-पूजा आदि भक्ति के साधनों पर बल दिया गया है।

महात्मा चैतन्य ने श्रीवल्लभाचार्य जी की तरह प्रत्येक जाति के लोगों को भगवद्-भक्ति का समान अधिकार दिया था। समस्त जाति के लोगों को, यहाँ तक कि मुसलमानों को भी दोनों आचार्यों ने दीक्षा दी थी।

चैतन्य महाप्रभु जी की, भक्त नाभादास ने अपने ग्रन्थ 'भक्त माल' में निम्नलिखित शब्दों में प्रसंशा की है:—

गौड देश पाखंड मेटि कियो भजन परायन।
करुणा सिंधु कृतज्ञ भये अगनित गतिदायन।
दशधा रस आक्रान्ति महत जन चरन उपासे।
नाम लेत निहपाप दुरित तिहि नर के नासे।
अवतार विदित पूरब मही, उभै महत देही धरी।
श्री नित्यानद कृष्ण चैतन्य की भक्ति दसों दिसि बिस्तरी[2]।

१—लघु भागवतामृत, श्लोक १२२, पृष्ठ २२६।

२—भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, रूपकला, छन्द ७२, पृ० ५११।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

अष्टछाप कवियों के समकालीन ब्रज में कृष्ण-पूजा का एक सम्प्रदाय राधावल्लभीय भी प्रचार पा रहा था। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी हितहरिवंश जी थे। राधावल्लभ की पूजा-विधि चलाने से पहले श्री हित जी का नाम हरिवंश था। ये सहारनपुर जिले के देवबन गाँव के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम श्री व्यास था। इनके वंशज आजकल, देवबन और वृन्दावन दोनों स्थानों पर रहते हैं। इनका जन्म[1] संवत् १५५६ वि० में हुआ था। ये पहले माध्व सम्प्रदायी थे, बाद को ये निम्बार्क स्वामी की श्रीकृष्ण-भक्ति-पद्धति का अनुसरण करने लगे। एक बार जब वे वृन्दावन को आ रहे थे तो एक ब्राह्मण ने इनको अपनी दो कन्याएँ और एक कृष्ण मूर्ति दी। इन्होंने वृंदावन में आकर इस राधावल्लभ जी की मूर्ति की स्थापना की और एक मन्दिर बनवाया। वृन्दावन में रहकर फिर ये इसी मन्दिर में अपने आराध्य देव राधावल्लभ की भक्ति और पूजा करने लगे। संवत् १५६१ वि० में इस मन्दिर का प्रथम 'पट-महोत्सव' हुआ और कुछ समय बाद इन्होंने अपनी चलाई हुई कृष्ण-भक्ति-पद्धति का प्रचार करना आरम्भ किया। इन्होंने कर्म और ज्ञान के साधनों का खण्डन कर प्रेम-भक्तिमार्ग का प्रचार किया। और राधा और

१—मिश्रबन्धु विनोद संवत् १६६४ संस्करण के पृ० २४० पर इनका जन्म संवत् १५३० वि० दिया हुआ है। हितहरिवंश सम्प्रदायी एक भगवत्मुदित भक्त द्वारा लिखा हुआ 'हितहरिवंश चरित्र' नामक ग्रन्थ लेखक ने पं० मयाशंकर याज्ञिक-संग्रहालय में देखा है। यह ग्रन्थ संवत् १८१७ वि० की प्रतिलिपि है। इसमें हितहरिवंश जी का जन्म संवत् तथा सम्प्रदाय के 'पट महोत्सव' का संवत् जब इन्होंने अपनी पूजा-विधि मन्दिर में आरम्भ की थी, दिये हुये हैं। इसमें हित जी तथा उनके शिष्यों का भी परिचय है। लेखक ने उक्त संवत् इसी ग्रन्थ के आधार से दिया है।

जन्म संवत् इस प्रकार दिया हुआ है।

> पन्द्रह सौ उनसठ सम्वतसर, वैसाखी सुदि ग्यार सोमवर।
> तहँ प्रगटे हरिवंश हित, रसिक मुकुट मणिमाल।
> कर्म ज्ञान खंडन करन, प्रेम भक्ति प्रतिपाल।

मन्दिर-निर्माण के बाद पट महोत्सव—

> पंद्रह सै इक्यानबे सुहायो, कातिक सुदि तेरस सुख छायो।
> पट महोत्सव तादिन कियो, याचक गुनियन बहु धन दियो।

इस ग्रन्थ से पता चलता है कि हितहरिवंश जी ने युगल उपासना को ही ग्रहण किया था और इसी का उन्होंने प्रचार किया।

नोटः—'मिश्रबन्धु विनोद' पृ० ४२२ पर भगवत म[illegible]

कृष्ण दोनों की युगल उपासना का उपदेश दिया। राधाकृष्ण की प्रेम और आनन्द लीला के ध्यान और मनन में तथा युगल की पूजा में परमानन्द प्राप्ति का साधन इन्होंने बताया। कृष्ण से राधा की पूजा और भक्ति को इन्होंने अधिक महत्वशालिनी और शीघ्र फलदायिनी माना था। इसी भक्ति-पद्धति का अनुसरण आज तक इनके अनुयायी करते हैं।

जैसा कि पीछे कहा गया है, यह सम्प्रदाय केवल एक साधन मार्ग था, तात्विक सिद्धान्त की दृष्टि से वेदान्त के भिन्न-भिन्न वादों के अन्तर्गत आनेवाला कोई 'वाद' नहीं था। इसके अनुयायियों ने भी बहुत काल तक इस सम्प्रदाय के तात्विक सिद्धान्तों की ओर ध्यान नहीं दिया। श्री हितहरिवंश जी के लगभग समकालीन भक्त नाभादास जी ने 'भक्ति-माल' में इनकी कृष्णोपासना-विधि का एक छन्द में इस प्रकार वर्णन किया है :—

श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत[1] कोउ जानि है।
श्री राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दम्पति तहाँ की करत खवासी।
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट मत धारी।
श्री व्यास सुवन पथ अनुसरै सोई भलै पहिचानि है।
श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है।

इस छन्द में नाभादास जी ने हरिवंश गुसाईं की राधावल्लभीय भजन-पद्धति को समझने में दुरूह बताया है और कहा है कि जो इनके शिष्य होकर मार्ग के अनुगामी बन जायँ वे भले ही जान लें। राधाकृष्ण, दम्पति की शृङ्गारिक केलि में आनन्द लेते हुये और विधिनिषिद्ध का ध्यान न रखते हुये अपनी मानसिक वृत्ति को लौकिक वासनाओं से बचाए रखना, वास्तव में बड़ा कठिन योग है। साधारण लोगों को तो 'दम्पति कुञ्जकेलि' के मनन से वासना के कूप से उभरने के बजाय उसमें और डूबने की सम्भावना रहती है। इसीसे नाभादास जी ने इसे समझने में कठिन कहा है। इस प्रकार की शृङ्गारमयी भक्ति कृष्ण-पूजा के सभी सम्प्रदायों ने अपनाई है। जिन लोगों की मनोवृत्ति लौकिक रति की वासना में इतनी लिप्त हो गई है, जिनके मन में अन्य दास्य आदि भाव बैठने की गुञ्जाइश ही नहीं है, उनके लिए, सम्भव है, यह उपदेश लाभकर हो कि वे अपनी लौकिक वासनाओं को अपने हृदयों में देखने के बजाय, कृष्ण और राधा की शृङ्गार लीलाओं में देखें। इस अभ्यास से धीरे-धीरे वे वासनाएँ लुप्त हो जायँगी और 'परमानन्द' प्राप्त हो जायगा। चैतन्य और वल्लभ सम्प्रदायों में इस प्रकार की भक्ति के साथ, मधुर भक्ति का साधन कान्ता अथवा परकीया भाव से भी माना गया है। हितहरिवंश जी के यहाँ केवल राधाकृष्ण-केलि की खवासी

१—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक रूपकला पाठान्तर 'सुकृत' छन्द नं० ९०, पृष्ठ ६०५।

अथवा परिचर्या करने का ही आदेश था। इस भक्ति-पद्धति को प्रियादास जी ने कुछ अधिक स्पष्ट किया है—

श्री हित जू की रति कोऊ लाखनि में एक जाने।
राधाई प्रधान माने पाछे कृष्ण ध्याइये।
निपट विकट भाव, होत न सुभाव ऐसो
उनहीं की कृपा दृष्टि नेकु क्योंहूँ पाइये।
विधि और निषेध छेद डारे, प्रान प्यारे हिये
जिये निजदास निस दिन वहै गाइये।
सुखद चरित्र सब रसिक विचित्र नीके
जानत प्रसिद्ध कहा कहि के सुनाइये।[1]

इस सम्प्रदाय के अनुयायी भक्तों ने प्रेम-शृङ्गार को केवल संयोग लीलाओं का ही अवलम्बन लिया है, वियोग-भावना इस सम्प्रदाय में नहीं है। इस राधाकृष्ण की कुञ्ज-लीला के मनन के आनंद को इस सम्प्रदाय में 'परम रस माधुरी भाव' कहा गया है। इस सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने इस माधुरी भाव का चित्रण ब्रजभाषा पदों में बहुत किया है। अष्टछाप भक्तों ने भी इस प्रकार का वर्णन किया है। सम्भव है, हित जी के शृङ्गारिक पदों का प्रभाव अष्टछाप पर भी पड़ा हो। सिद्धान्त की दृष्टि से वैसे वल्लभसम्प्रदाय में प्रेम-शृङ्गार के सभी भावों की भक्ति श्रीवल्लभाचार्य जी के उत्तर जीवन काल तथा श्रीविट्ठल नाथ जी के काल में ही मान्य हो गई थी।

हित जी के लिखे हुये दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—एक 'राधा सुधानिधि' जो संस्कृत में है और दूसरा 'चौरासी पद' अथवा 'हितचौरासी' जो ब्रजभाषा में है। इनमें सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का कोई शास्त्रीय विवेचन नहीं है। इनमें राधाकृष्ण के विहार और प्रेम लीला का शृङ्गारिक वर्णन तथा उस भाव की अनुभूति का आनन्द वर्णित है। इस वर्णन में हितजी की युगल उपासना तथा राधा-उपासना का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। हितचौरासी पदों में से कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

आजु प्रभात लता मंदिर में, सुख बरषत अति जुगलवर।
गौर स्याम अभिराम रंग रंग भरे, लटकि लटकि पग धरत अवनि पर।
कुच कुमकुम रंजित मालावलि, सुरत नाथ श्रीश्याम धामधर।
प्रिया प्रेम अंक अलङ्कृत चित्रित, चतुर सिरोमणि निजकर।

1—भक्तमाल, भक्ति सुधा स्वाद तिलक, रूपकला, पृ० ६०५।

दम्पति अति अनुराग मुदित कल, गान करत मन हरत परस्पर।
जै श्री हित हरिवंश प्रसंस परायन, गाइन अलि सुर देत मधुरतर।

तथा— , राग विभास

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावे,
भावै मोहि जोई सोई सोई करैं प्यारे।
मोको तो भावती ठौर प्यारे के नैनन में,
प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे।
मेरे तो तन मन प्राण हू में प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे।
जै श्रीहित हरिवंस हंस हंसिनी साँवल गौर,
कहौ कौन करै जल तरंगनि न्यारे।

धार्मिक भक्ति-भावना के अतिरिक्त हित जी के पदों में काव्य-कला का भी समावेश है। हित जी के परम प्रिय शिष्य व्यासदेव (हरिराम व्यास) जी थे जो ओरछा के रहनेवाले थे। इनकी समाधि अब तक वृन्दावन में मौजूद है। ब्रजभाषा में व्यास जी के पद भी बहुत प्रसिद्ध हैं। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के एक और परम भक्त और कवि श्री ध्रुवदास जी हुये हैं जिन्होंने ४२ ग्रन्थों की रचना की थी। इन्होंने अपने ग्रन्थों द्वारा हित सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का, वास्तव में, स्पष्टीकरण किया था। इनके कुछ ग्रन्थों के नाम नीचे दिये जाते हैं—

जीव दशा, वेदज्ञान, मनशिक्षा, वृन्दावन सत्, भक्त नामावलि, वृहदवामन पुराण, ख्याल हुलास, सिद्धान्त विचार, प्रीतितोषनी, आनन्दाष्टक, भजनाष्टक, भजन कुण्डलिया, भजनसत्, शृङ्गार सत्, मन शृङ्गार, हित शृङ्गार, सभा मण्डल, रस मुक्तावलि, रस हीरावलि, रस रत्नावलि, प्रेमावलि, श्री प्रिया जी की नामावलि, रहस्यमञ्जरी, सुखमञ्जरी, रतिमञ्जरी, नेहमञ्जरी, मन विहार, रास विहार, रङ्ग हुलास, रङ्ग विनोद, आनन्द दशा रहस्य लता, आनन्द लता, अनुराग लता, प्रेमलता, रसआनन्द, जुगल ध्यान, नृत्य विलास, दान लीला, मानलीला, ब्रजलीला।

इस सम्प्रदाय के अन्य लेखकों द्वारा लिखित ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं जैसे सेवक वाणी, वल्लभ रसिक की वाणी, दामोदरदास कृत गुरु प्रताप, तथा हरिनाम महिमा। श्री हितहरिवंश सम्प्रदाय के कृष्णभक्त कवियों ने भी प्रेमभक्ति और काव्य, दोनों के भावों की रस धारा प्रवाहित की है, परन्तु इस सम्प्रदाय के कवियों की रचनाओं में भाव की वह प्रभावात्मकता नहीं है जो अष्टछाप-काव्य में है।

स्वामी हरिदास जी का हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास जी भी अष्टछाप कवियों के समकालीन भक्त और धर्म-प्रचारक थे। यह सम्प्रदाय भी भक्ति का एक साधन-मार्ग है, और अपने आरम्भिक काल में वेदान्त के किसी वाद अथवा किसी अन्य दार्शनिक सिद्धान्त का प्रचारक मत नहीं था। स्वामी हरिदास जी ने राधाकृष्ण की युगल उपासना का केवल सखी-भाव से प्रचार किया। स्वामी हरिदास जी के ही समय का बना हुआ, इस सम्प्रदाय का बिहारी जी का मन्दिर वृन्दावन में बहुत प्रसिद्ध है। हरिदास जी के समकालीन भक्त नाभादास जी, भक्तमाल में, इनकी, और इनकी उपासना-पद्धति का वर्णन करते हुये कहते हैं :—

"स्वामी हरिदास जी 'रसिक' नाम की छाप से प्रसिद्ध हुये। इन्होंने आसधीरजी के नाम को प्रकाशित किया। आपकी प्रेम भक्ति का नियम राधाकृष्ण युगल पूजा का था। ये कुञ्ज विहारी कृष्ण का नाम सदैव जपा करते थे। राधाकृष्ण के आनन्द-विहार का अवलोकन सदा सखी-भाव से किया करते थे और इसी भाव से युगल-केलि के रस को लूटा करते थे। गान विद्या में ये गन्धर्व थे और अपने गान से, सखी की तरह सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को तुष्ट किया करते थे। भगवान् का उत्तम भोग लगाते थे और उसे बन्दर और मोरों को खिलाया करते थे। ये इतने प्रसिद्ध और उच्चकोटि के महात्मा थे कि दर्शनों के लिए राजा लोग भी आपके द्वार पर खड़े रहते थे।"[1] स्वामी हरिदास जी के विषय की कुछ चारित्रिक घटनाओं का वर्णन भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने भी एक छन्द में किया है। अकबर के दरबार का प्रसिद्ध गवैया, तानसेन इन्हीं स्वामी हरिदास जी का शिष्य था और इन्हीं से उसने गान-विद्या सीखी थी। अकबर भी इनकी भक्ति, इनके सङ्गीत शास्त्र तथा कला के गुणों की प्रशंसा सुनकर इनसे मिलने गया था।

प्रोफेसर विल्सन[2] ने अपने ग्रन्थ 'ऐसेज ऑन द रिलिजन ऑफ़ द हिंदूज़', भाग १,

---

१—आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नेम जपत नित कुंज बिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी।
गान कला गन्धर्व स्याम स्यामा कों तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं।
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दर्शन आसा जास की।
आस धीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की।
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद, रूपकला, पृ० ६०७।

२. Essays on the religions of the Hindus, Vol I. by H H Wilson, pp 159

में एक हरिदास को चैतन्य महाप्रभु का शिष्य बताया है। हरिदासी सम्प्रदाय के गोस्वामी लोग चैतन्य महाप्रभु को श्रीहरिदास जी का गुरू अथवा अपने सम्प्रदाय से सम्बन्धित गुरू नहीं मानते। और न इस सम्प्रदाय की लिखित गुरू-परम्परा में चैतन्य महाप्रभु का कहीं नाम आता है। इसलिए विल्सन द्वारा कथित हरिदास कोई बङ्गाली भक्त, स्वामी हरिदास जी से भिन्न व्यक्ति, रहे होंगे। हरिदासी सम्प्रदाय के एक 'सहचरि शरण', नाम के परम भक्त विक्रम की १६वीं शताब्दी में हो गये हैं। उन्होंने ब्रजभाषा में पदों के अतिरिक्त दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं, एक 'ललित प्रकाश' और दूसरा 'सरसमञ्जावलि।' 'ललित प्रकाश' में हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्त, स्वामी हरिदास जी का चरित्र इस सम्प्रदाय की गुरू-परम्परा दी हुई है। इस गुरू-परम्परा को उन्होंने श्रीआसधीर जी तथा उनके शिष्य स्वामी हरिदास जी से आरम्भ कर श्रीललितकिशोरी जी तक दिया है। इस प्रकरण का नाम 'गुरू प्रणालिका' है। इस प्रणालिका के अनुसार इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरू अलीगढ़ निवासी आसधीर हुये, उनके बाद इस भक्ति-पद्धति को एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप देनेवाले गुरू, अलीगढ़ के निकट स्थित हरिदासपुर स्थान के निवासी स्वामी हरिदास जी हुये। इनके बाद, श्रीविट्ठल विपुल जो स्वामी हरिदास जी के मामा थे और जो कदाचित् पहले चैतन्य सम्प्रदायी थे, इस गद्दी पर आये। इनके बाद मथुरानिवासी बिहारिनीदास, सरस देव जी, नरहरिदेव जी, बुन्देलखण्ड के रसिकदेवी जी तथा ललित किशोरी जी ये पाँच गुरू हुये। यह गद्दी और सम्प्रदाय वर्तमान काल में भी ब्रज में प्रचलित है।

श्रीग्राउज़[1] महाशय ने आसधीर जी को स्वामी हरिदास जी का पिता माना है, और इन दोनों को अलीगढ़ के निकट स्थित हरिदासपुर गाँव का रहनेवाला कहा है। लेखक ने 'हरिदासपुर' स्थान को अनेक बार देखा है। यहाँ आजकल महादेव जी का मन्दिर है, आसपास के यात्री शिवजी पर जल चढ़ाने आया करते हैं। यह स्थान और गाँव हरदासपुर और हरिदासपुर दोनों नामों से प्रसिद्ध है। वृन्दावनवाले स्वामी हरिदास जी के इसी स्थान के निवासी होने को भी लेखक ने वहाँ कथा सुनी है। बस्ती में ब्राह्मणों के चार-पाँच घर ही हैं।

स्वामी हरिदास जी ने तथा उनके सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों ने ब्रजभाषा में ही रचना की है जो भक्ति-भाव की द्योतक होने के साथ-साथ काव्य-गुण भी रखती हैं। स्वामी हरिदास जी ने दो छोटे-छोटे ग्रन्थ बनाए थे—एक, 'साधारण सिद्धान्त' और दूसरा, 'रास के पद।' 'सिद्धान्त' ग्रन्थ में भक्ति-पद्धति का ही विवेचन है, किसी दार्शनिकवाद का प्रतिपादन नहीं है। इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि, श्रीबिहारिनी दास जी, श्रीभगवत रसिक तथा श्रीललितकिशोरी जी हुये हैं।

१. Growse, Muttra Memoir, pp 219.

श्री वल्लभाचार्य जी और उनका सम्प्रदाय

विक्रम की १६वीं शताब्दी में विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर श्रीवल्लभाचार्य जी बैठे और उन्होंने श्री विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा भगवद्-अनुग्रह अथवा पुष्टि द्वारा प्राप्त प्रेम-भक्ति के मार्ग की स्थापना की। हिन्दी ब्रजभाषा के अष्टछाप कवि इसी सम्प्रदाय के भक्त थे। श्रीवल्लभाचार्य जी के पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। वे एक दक्षिणी तैलंग ब्राह्मण थे और कृष्ण के परम भक्त थे। एक बार ये अपने परिवार सहित तीर्थ-यात्रा का निकले और काशी में आये। यहाँ आकर उन्होंने देखा कि काशी पर मुसलमानों का आक्रमण हो रहा है। इस उपद्रव के कारण उन्हें काशी से भागना पड़ा और वे चम्पारण्य में पहुँचे। वहीं रास्ते में श्रीवल्भाचार्यजी का जन्म, संवत् १५३५[1] वि० के वैसाख मास में, हुआ। जब काशी का उपद्रव समाप्त हो गया तब लक्ष्मण भट्ट जी नवजात शिशु को लेकर काशी वापिस आ गये और वहीं हनूमान घाट पर रहने लगे। वल्लभाचार्य जी की प्रतिभा का विकास बाल्यकाल ही से होने लगा था। आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ और फिर कई आचार्यों के शिष्यत्व में इनके पिता ने इन्हें विद्याध्ययन के लिए रक्खा। १२ वर्ष की अवस्था तक वेद, वेदाङ्ग, पुराण आदि ग्रन्थ इन्होंने पढ़ लिये।

कुछ समय बाद ही इनके पिता का गोलोकवास हो गया। इसके बाद ये अपनी माता सहित अपने मामा के घर विद्यानगर (विजयनगर, दक्षिण भारत) में गये। वहाँ से लौटते-लौटते इनके अनेक शिष्य बन गये। सोरों गङ्गा का रहनेवाला एक क्षत्री कृष्णदास मेघन, उसी समय काशी में, इनका सेवक हो गया।

काशी में विद्याध्ययन और ब्रह्म ज्ञान के शास्त्रों का पारायण करने के बाद माता की आज्ञा से वल्लभाचार्य जी ने देश की यात्रा आरम्भ की। इन यात्राओं में इनका सोरों निवासी शिष्य कृष्णदास मेघन इनके साथ अवश्य रहता था। प्रथम यात्रा में विद्यानगर (विजयनगर) में आचार्य जी ने वहाँ के राजा कृष्णदेवराज की आज्ञा से जोड़ी हुई पण्डितों की सभा में शङ्कर के मायावाद का खण्डन किया। उसी समय आचार्य की उपाधि से ये विभूषित किये गये। उसी घटना के बाद विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रचारक भक्त हरिस्वामी तथा शेष स्वामी द्वारा विष्णुस्वामी की उच्छिन्न गद्दी पर आचार्य बनाये गये।[2] राजा ने इनका स्वर्णमुद्राओं से अभिषेक किया। वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने सब द्रव्य धर्मार्थ में लगवा दिया तथा वहाँ के ब्राह्मणों में बटवा दिया। वल्लभसम्प्रदाय में यह घटना आचार्य

१—वल्लभ दिग्विजय, पृ० ७।

२—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० १६।

जी का 'कनकाभिषेक' नाम से प्रसिद्ध है। उसी समय से इन्होंने शुद्धाद्वैत मत का प्रचार करना आरम्भ किया।

वल्लभाचार्य जी ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के तीर्थ तथा मुख्य-मुख्य स्थानों की कई बार यात्राएँ की थीं। ये यात्राएँ वल्लभ - सम्प्रदाय में आचार्य जी की 'पृथ्वी-प्रदक्षिणाएँ' कहलाती हैं।[1] संवत् १५४९ वि० में आचार्य जी व्रज में आये और उन्होंने गोवर्द्धन से श्रीनाथ जी के स्वरूप को निकाल कर वहीं उन्हें एक छोटे मन्दिर में स्थापित किया। उसी समय उन्होंने अष्टछाप के भक्त कवि कुम्भनदास जी को शरण में लिया। मन्दिर की सेवा रामदास चौहान को सौंप कर वे फिर यात्रा को चल दिये। उनकी माता जी बहुधा इनके साथ में अथवा इनके मामा के पास रहती थीं। एक बार ये दक्षिण यात्रा करते हुये महाराष्ट्र देश में 'पण्ढरपुर' में पहुँचे तथा श्री विट्ठल मूर्त्ति के भव्य दर्शनों से ये बहुत प्रभावित हुये। वहीं इन्हें प्रेरणा हुई कि विवाह करना चाहिए, परन्तु वहाँ से लौटने पर भी इन्होंने कुछ समय तक विवाह नहीं किया और ये देश में घूम घूमकर लोगों को वैष्णव भक्ति का उपदेश देते रहे।

एक बार यात्रा करते-करते उन्हें व्रज और श्रीनाथ जी की सेवा की प्रेरणा हुई। हरिद्वार आदि स्थानों में होते हुये वे गोवर्द्धन पर आये। इसी अवसर पर अम्बाले के एक सेठ पूरनमल्ल ने श्रीनाथ जी का बड़ा मन्दिर बनवाने के लिए इन्हें द्रव्य दिया और उसी समय आचार्य जी ने उसे अपने सम्प्रदाय में लिया। और तभी वैशाख शुक्ल तृतीया संवत् १५५६ में इस मन्दिर की नींव गोवर्द्धन पर डाली गई। इसके बाद आचार्य जी अनेक शिष्यों को प्रबोधन देते हुये फिर अलर्कपुर (अड़ैल) वापिस चले गये। इस समय तक उन्होंने कई शिष्यों को कृष्ण-स्वरूप सेवा के लिए दे दिये थे जिनमें मुख्य ये हैं—गोकुल के नारायण ब्रह्मचारी को श्री गोकुलचन्द्रमाजी, गज्जन धावन को नवनीत-प्रियाजी, दामोदर सेठ को श्री द्वारिकानाथ जी और पद्मनाभदास को श्री मथुरेश जी।

इसके बाद आचार्य जी ने लगभग २८ वर्ष की अवस्था में काशी जाकर अपना विवाह किया। उस समय तक इनकी माता दक्षिण देश में रहती थीं। विवाह करने के बाद अपने कुटुम्ब को काशी छोड़ ये फिर यात्रा को चल दिये। इसी यात्रा में इन्होंने प्रयाग के पास अलर्कपुर (अड़ैल) को अपना निवासस्थान बनाया और अपने कुटुम्ब को वहीं ले आये। अपने द्विरागमन के बाद एक बार ये अड़ैल से व्रज को फिर गये। वहाँ आगरे से मथुरा जानेवाली सड़क पर स्थित गऊघाट स्थान पर सारस्वत ब्राह्मण सूरदास जी को अपने सम्प्रदाय में लिया और वहाँ से गोकुल होते हुए गोवर्द्धन पहुँचे। वहाँ अष्टछाप के एक और भक्त कृष्णदास को शरण में लिया। उसी समय वैसाख शुक्ल तीज को श्री-

1—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ६।

गोवर्द्धन नाथ (श्रीनाथ जी) की, अर्द्धनिर्मित नवीन मन्दिर में स्थापना हुई। उस समय आचार्य जी ने वृन्दावन के महन्त भी बुलाए थे[१]। यह घटना लगभग संवत् १५६६ वि० की है। उसी समय आचार्य जी ने मन्दिर में कीर्तन की आयोजना की थी और कुम्भनदास जी को कीर्तन सेवा का कार्य सौंपा था। उन दिनों मथुरा में बहुत से हिन्दू मुसलमान बनाये जा रहे थे। यह समय सिकन्दर लोदी के राजत्व काल का था। इस विषय में 'वल्लभ-दिग्विजय' में एक कथा इस प्रकार आती है,[२]—"मथुरा में बादशाह के एक राजकर्मचारी ने विश्रान्त घाट पर ऐसा यन्त्र लगा रक्खा था कि जो हिन्दू उसके नीचे होकर निकलता था वह मुसलमान हो जाता था। श्रीवल्लभाचार्य जी ने यह बात देखकर नगर के द्वार पर ऐसा यन्त्र बाँधा कि मुसलमान फिर हिन्दू होने लगे। सिकन्दर लोदी आचार्य जी के इस चमत्कार से प्रभावित हुआ।" इस कथा से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य जी ने जबरदस्ती बने हुये मुसलमानों को फिर से हिन्दू धर्म में वापिस ले लिया था। इसके बाद आचार्य जी अड़ैल को वापिस चले गये।

अड़ैल में संवत् १५६७ वि० आश्विन कृष्ण द्वादशी को आचार्य जी के बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथ जी का जन्म हुआ। इसके कुछ समय बाद ये सकुटुम्ब जगदीश-यात्रा को गये। वहाँ से काशी होते हुए चरणाद्री (चुनार) पहुँचे। उस जगह संवत् १५७२[३] वि० में इनके दूसरे पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का जन्म हुआ। वहाँ से नवजात शिशु को लेकर ये अड़ैल पहुँचे और वहीं बालक का संस्कार हुआ। इसी समय इन्होंने फिर ब्रज-यात्रा की और ब्रज में ही गोपीनाथ जी के यज्ञोपवीत का उत्सव किया और श्रीविट्ठलनाथ जी के पैदा होने पर गोकुल में नन्दोत्सव मनाया गया। उस समय सूरदास जी ने श्री-विट्ठलनाथ जी के जन्म की बधाई गाई थी। वहाँ से आचार्य जी जगदीश्वर-यात्रा को फिर गये और वहाँ इनकी भेंट श्रीचैतन्य महाप्रभु से हुई, इसके बाद ये अड़ैल वापिस गये। वहाँ पर अष्टछाप के भक्त परमानन्ददास[४] कान्यकुब्ज को शरण में लिया। इसके बाद आचार्य जी चातुर्मास, प्रत्येक वर्ष, ब्रज में बिताया करते थे। इस समय तक उनके अनेक अनुयायी हो गये थे जिनमें से मुख्य ८४ भक्तों का वृत्तान्त वल्लभसम्प्रदायी '८४ वैष्णवन की वार्ता' में दिया हुआ है।

संवत् १५८० वि० में श्रीविट्ठलनाथ जी का यज्ञोपवीत अड़ैल में हुआ। श्रीवल्लभा-चार्य जी ने कई भक्तों के घर कृष्ण के स्वरूप (मूर्तियाँ) स्थापित किये थे। इन भक्तों ने

१—वल्लभ-दिग्विजय, पृष्ठ ४०।

२— ,, ,, ,, ४०।

३— ,, ,, ,, ४२।

४—वल्लभ दिग्विजय, पृ० ४२, तथा श्रीद्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ४४।

अपने अन्तिम काल में ये कृष्ण-मूर्तियाँ श्रीवल्लभाचार्य जी के पास ही अड़ैल में पहुँचा दीं। संवत् १५७६ वि० में जब दामोदरदास सम्भलवाले का देहान्त हुआ, उस समय अड़ैल में आचार्य जी के घर पाँच स्वरूपों की पूजा होती थी—श्रीनवनीत प्रिय जी, श्रीमदनमोहन जी, श्रीविट्ठलनाथ जी, श्रीद्वारिकानाथ जी तथा श्रीगोकुलनाथ जी।[1] संवत् १५८७ वि० में आचार्य जी का काशी में गङ्गा-प्रवाह-अवस्था में गोलोकवास हुआ। इस समय आचार्य जी की अवस्था ५२ वर्ष की थी।

श्रीवल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा भक्तिमार्ग पर अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। 'वल्लभ-दिग्विजय' ग्रन्थ में लिखा है कि आचार्य जी ने ८४ ग्रन्थों[2] की रचना की; परन्तु इनके केवल ३० छोटे-बड़े ग्रन्थ ही वल्लभसम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं, और कदाचित् इतने ही उपलब्ध हैं। इनके समस्त उपलब्ध ग्रन्थों का विषय शङ्कर-वेदान्त के मायावाद का खण्डन, अपने मत ब्रह्मवाद, अविकृत परिणामवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन तथा प्रेम-भक्ति के सिद्धान्तों का कथन है। परम विद्वान् श्रीनटवरलाल गोकुलदास शाह ने श्रीवल्लभाचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र अँग्रेज़ी में लिखा है। उन्होंने उक्त ग्रन्थ में तथा श्रीगुरुप्रसाद टण्डन ने 'मेटीरियलस् फ़ार स्टडी आफ़ दी पुष्टिमार्ग' में श्रीवल्लभाचार्य जी के ग्रन्थों के नाम दिये हैं। इनमें कुछ टीका ग्रन्थ हैं और कुछ मौलिक हैं। आचार्य जी ने अपने सब ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही लिखे हैं।

आचार्य जी द्वारा लिखित ये ग्रन्थ हैं—

१—तत्वदीप निबन्ध—इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं, शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्व निर्णय प्रकरण, भागवतार्थ प्रकरण।

२—पूर्व मीमांसा भाष्य अथवा जैमिनि सूत्र भाष्य।

३—प्रकरणानि—यह ग्रन्थ अप्राप्य है।[3]

४—भागवत टीका—कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने 'तत्वदीप निबन्ध' के 'भागवतार्थ' प्रकरण को लिखने से पहले यह टीका लिखी थी; परन्तु ग्रन्थ का केवल प्रथम अध्याय ही प्राप्त है, पूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता।

१—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५१, तथा श्रीद्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ६२।
२—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५६।
३—इस ग्रन्थ के विषय में कुछ पुष्टिमार्गीय विद्वानों का मत है कि आचार्य जी के षोडश ग्रन्थों का नाम ही प्रकरणानि है।

५—अणु भाष्य—यह श्रीवादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्रों पर लिखा भाष्य है। वेदान्त सूत्रों पर आचार्य जी से पहले कई आचार्य भाष्य लिख चुके थे, जैसे शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य। इस ग्रन्थ में वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत मत की स्थापना की है।

६—सुबोधिनी—यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत की टीका है। परन्तु यह पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम तथा एकादश स्कन्ध ही उपलब्ध हैं।

७—२२ -षोडश ग्रन्थ—श्रीआचार्य जी के १६ ग्रन्थों का यह एक सङ्ग्रह है जिसमें निम्नलिखित ग्रन्थ हैं —

७—यमुनाष्टक। ८—बालबोध। ९—सिद्धान्त मुक्तावली।
१०—पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद। ११—नवरत्न। १२—सिद्धान्त रहस्य।
१३—अन्त करण प्रबोध। १४—विवेक-धैर्याश्रय। १५—कृष्णाश्रय।
१६—चतु श्लोकी। १७—भक्ति-वर्धिनी। १८—जलभेद।
१९—पञ्च पद्य। २०—सन्यास निर्णय। २१—निरोध-लक्षण।
२२—सेवा-फल।

२३—पत्रावलम्बन।
२४—शिक्षा श्लोक—इसमें केवल पाँच श्लोक हैं।
२५—मधुराष्टक।
२६—न्यासादेश।
२७—प्रेमामृत।
२८—पुरुषोत्तम-सहस्रनाम।
२९—त्रिविधि नामावली।
३०—सेवाफल विवरण।

श्रीवल्लभाचार्य जी के शुद्धाद्वैत वेदान्तवाद तथा पुष्टि भक्ति मार्ग का प्रचार ब्रज-मण्डल, राजपूताना, तथा गुजरात में सबसे अधिक हुआ। इस सम्प्रदाय के दार्शनिक विचार तथा इसकी भक्ति-पद्धति का विवरण आगे, अष्टछाप-दर्शन तथा भक्ति के विवेचन के साथ दिया जायगा।

श्रीनटवरलाल गोकुलदास शाह ने अपने अँग्रेज़ी में लिखे "श्रीवल्लभाचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र" नामक ग्रन्थ[1] के ११वें अध्याय में श्रीवल्लभाचार्य जी के एक पुराने चित्र का हवाला दिया है। वे कहते हैं कि वल्लभाचार्य जी का समकालीन दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी उनका बहुत सम्मान करता था। बादशाह ने उस समय के एक प्रसिद्ध चित्रकार 'होनहार' से उनका एक चित्र खिंचवाया था। श्री शाह ने इस चित्र के

1 Short Biographical Sketch of Shrimad Vallabhacharya's life

निर्माण का संवत् १५६७ दिया है। सिकन्दर लोदी से यह चित्र मुग़ल बादशाहों के अधिकार में आया और शाहजहाँ ने उसे कृष्णगढ़ राज्य के निर्माता श्रीरूपसिंह जी को पुरस्कार में दिया। अभी तक यह चित्र कृष्णगढ़ में विद्यमान है। इस चित्र का निर्माण-काल तथा आचार्य जी के मथुरा में मुसलमान बने हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बनाने के लिए यत्न लगाने का समय, जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, दोनों मिलते हैं।[1] सम्भव है, सिकन्दर लोदी आचार्य जी के प्रभाव तथा चमत्कार से प्रभावित हुआ हो और उधर बादशाह के बुलाने पर आचार्य जी भी उससे विनम्र भाव से मिले हों और तभी बादशाह आचार्य जी पर प्रसन्न हुआ हो।

श्रीगोपीनाथ जी तथा गो० श्री विट्ठलनाथ जी

श्रीवल्लभाचार्य जी के गोलोकवास (संवत् १५८७ वि०) के बाद, उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी आचार्य हुये और उन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार किया। उनके प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात प्रान्त था। गोपीनाथ जी के केवल एक पुत्र, श्री पुरुषोत्तम जी थे जिनका देहान्त उन्हीं के जीवन-काल में ही हो गया। पुत्र-निधन के कुछ समय बाद संवत् १५९५ वि० में, लगभग २८ वर्ष की अवस्था में श्री गोपीनाथ जी का भी देहान्त हो गया। इसके बाद श्रीवल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र श्रीविट्ठलनाथ जी आचार्य पद पर आसीन हुये और उन्होंने इस सम्प्रदाय के वैभव को बहुत बढ़ाया।

पीछे कहा गया है कि गो० विट्ठलनाथ जी का जन्म संवत् १५७२ वि० में हुआ। इनकी आरम्भिक शिक्षा 'अड़ैल' में ही हुई। विट्ठलनाथ जी के दो विवाह हुये थे। प्रथम विवाह लगभग संवत् १५८९ वि० में और दूसरा संवत् १६२४ के लगभग हुआ। इनकी प्रथम पत्नी का नाम रुक्मिणी तथा दूसरी का नाम पद्मावती था। प्रथम पत्नी से छै पुत्र तथा दूसरी से केवल एक पुत्र घनश्याम जी हुये। 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' तथा 'काँकरौली का इतिहास' नामक ग्रन्थों के अनुसार श्रीगोस्वामी जी के सात पुत्रों के नाम तथा उनकी जन्म और विवाह-तिथियाँ इस प्रकार हैं —

नाम	जन्म संवत्	विवाह संवत्
१—श्री गिरिधर जी	१५९७ वि०	१६०६ वि०
२—श्री गोविन्द राय जी	१५९९ ,,	१६०६ ,,
३—श्री बालकृष्ण जी	१६०६ ,,	१६१५ ,,

१—वल्लभ दिग्विजय, पृ० ५०।

नाम	जन्म संवत्	विवाह संवत्
४—श्री गोकुल नाथ जी	१६०८ ,,	१६१५ ,,[1]
५—श्री रघुनाथ जी	१६११ ,,	१६१५ ,,
६—श्री यदुनाथ जी	१६१५ ,,	...
७—श्री घनश्याम जी	१६२८ ,,	...

श्री विट्ठलनाथ जी के ग्रन्थ —[2]

श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता श्री वल्लभाचार्य जी के ग्रन्थों का अध्ययन कर उन पर टीकाएँ लिखीं तथा कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे। उनके रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

१—विद्वन्मण्डन।
२—निबन्ध प्रकाश टीका।
३—अणुभाष्य का अन्तिम डेढ़ अध्याय।
४—सुबोधिनी पर टिप्पणी।
५—भक्ति हंस।
६—भक्ति हेतु।

१—कांकरौली का इतिहास, पृ० ६४ ६५।
गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ तथा उनके सात पुत्रों का उल्लेख भक्त नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में इस प्रकार किया है —
श्रीविट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों, लाड़ लड़ाय के सुख लियो।
राग भोग नित विविध रहत परिचर्या तत्पर।
सज्या भूषन बसन रचित रचना अपने कर।
वह गोकुल वह नंद सदन दीक्षित को सोहै।
प्रगट विभौ जहाँ घोस देखि सुरपति मन मोहै।
वल्लभ सुत बल भजन के, कलियुग में द्वापर कियौ।
श्री विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों लाड़ लड़ाय कै सुख लियौ।
भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, रूपकला, छन्द ७६, पृ० ५७५।
श्री विट्ठलेश सुत सुहृद श्री गोवर्धनधर ध्याइये।
श्री गिरिधर जू सरस शील गोविंद जु साथहिं।
बालकृष्ण जसबीर धीर श्री गोकुल नाथहिं।
श्री रघुनाथ जू महाराज श्री यदुनाथहिं भजि न
श्री घनश्याम जु पगे प्रभु अनुरागी सुधि सजि।
ए सात प्रगट विभु भजन जग तारन तस जस गाइये।
श्री विट्ठलेस सुत सुहृद श्री गोवर्धनधर ध्याइये।
भक्तमाल, भक्ति सुधा-स्वाद तिलक रूपकला, छन्द ८०, पृ० ५७६।
२—कांकरौली का इतिहास पृ० ६१।

७—भक्ति निर्णय।
८—पोडश ग्रन्थ पर टीका।
९—विज्ञप्ति।
१०—शृङ्गार रस मण्डन।
११—निर्णय ग्रन्थ।
१२—स्फुट स्तोत्रादि तथा टीकाएँ।

लगभग सवत् १६२३ वि० में गो० विट्ठलनाथ जी ने अड़ैल स्थान को छोड़ दिया और ब्रज में आकर सपरिवार निवास करने लगे। गोकुल में कुछ महीने रहने के बाद वे मथुरा में लगभग चार साल रहे। सवत् १६२८ में उन्होंने गोकुल को अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया[1]। गोकुल को स्थायी निवास स्थान बनाने से पहले श्री गोस्वामी जी, अड़ैल से ब्रज आकर प्रत्येक वर्ष गोकुल में कुछ महीने रहा करते थे। इसी सम्वत् में आकर उन्होंने श्री वल्लभाचार्य जी के सेव्यस्वरूपों को गोकुल में स्थापित किया। सम्वत् १६२३ वि० के लगभग, उन्हें, अकबर से फरमान द्वारा, गोकुल की ज़मीन मिली थी। इसके बाद भी सम्राट् की ओर से गोस्वामी जी को गोकुल में निर्भय पूर्वक रहने के कई फरमान मिले थे। गोस्वामी जी ने अपने उत्तर जीवन काल में, अपने सातों पुत्रों को सात स्वरूपों की सेवा देकर उनका बटवारा कर दिया। वल्लभसम्प्रदायी जिन सात पीठों की बाद में स्थापना हुई उनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के भी अनेक भक्त हुये जिनमें से २५२ वैष्णव भक्त सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध हुये। आचार्य जी के शिष्यों की तरह इन भक्तों में भी भाषा के उच्चकोटि के कवि और गवैये हुये। उन्होंने चार सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि अपने, तथा चार अपने पिता के, मिलाकर अष्टछाप भक्त कवियों की स्थापना की। जैसा कि पीछे कहा गया है, ये आठों भक्त 'अष्ट सखा' भी कहलाते थे। श्री वल्लभाचार्य जी की तरह श्री गो० विट्ठलनाथ जी ने भी अपने सम्प्रदाय की भक्ति का, सभी जाति के व्यक्तियों को अधिकार दिया। उनका परिचय भारत के सम्राट् अकबर तथा उसके दरबार के उच्च पदाधिकारी राजा मानसिंह,[1] बीरबल आदि से भी था जो उनका भारी सम्मान करते थे। वार्ता साहित्य से पता चलता है कि बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह[2], राजा आशुकरण[3], रानी दुर्गावती[4] आदि कई राजा भी उसके शिष्य हो गये थे।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने गुजरात तथा उत्तरी भारत की यात्रा भी कई बार की

१—अब्देऽष्टनेत्राक मही प्रमाणे (सवत् १६२८) तपस्य मासस्य च सितपक्षे।
दिने दिनेशस्य शुभे मुहूर्ते श्रीगोकुलग्राम निवास आसीत्। १२।
श्रीमधुसूदन कृत यशावली।

तथा, इम्पीरियल फरमांस, झावेरी, विट्ठलनाथ जी का जीवन चरित्र। तथा, कांकरौली का इतिहास, पृ० १०२।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ४८२।

३—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० १६१।

४—२५२ वैष्णवन की वार्ता वें० प्रे०, पृ० ४८४।

थी। गोकुल को निवास-स्थान बनाने के[1] बाद दो बार सम्वत् १६३१ तथा सम्वत् १६३८ में ये धर्म प्रचार के लिए गुजरात गये थे। सम्वत् १६४२ में गोवर्द्धन की एक कन्दरा में प्रवेश कर इन्होंने अपनी जीवन लीला समाप्त की। अष्टछाप के कुछ भक्त तो इनके गोलोकवास से पहले ही देह त्याग कर चुके थे और कुछ ने इनकी मृत्यु के थोड़े समय बाद ही देह का त्याग किया।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नित्य लीला प्रवेश की संवत् १६४२ वि० की तिथि वल्लभसम्प्रदाय के विद्वानों तथा गोस्वामियों में बहुमत से मान्य है। सम्राट अकबर ने उक्त गोस्वामी जी से प्रसन्न होकर उनको गोवर्द्धन और गोकुल की भूमि माफी में भेंट की थी। उसने गोस्वामी जी तथा उनके वंशजों के लिए, इस भेंट के तथा माफी के फरमान भी जारी किये थे, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस ग्रंथ में पीछे हो चुका है। सम्राट अकबर ने ही नहीं, शाहजहाँ तथा अन्य मुग़ल बादशाहों ने भी इस प्रकार के आज्ञापत्र गोस्वामी आचार्यों को दिये थे। इन फरमानों की खोज करके बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज श्रीकृष्णलाल मोहनलाल झावेरी ने इनको, अनुवाद-सहित इनका सम्पादन कर, प्रकाशित किया है।

कुछ विद्वान अकबर के फरमानों के आधार पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की स्थिति संवत् १६५१ वि० तक ले गये हैं। अकबर और शाहजहाँ के फरमान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नाम संवत् १६५१ तक ही नहीं वरन् संवत् १६६० के कुछ समय बाद तक जारी होते रहे हैं। यदि मुगल बादशाहों के फरमानों में विट्ठलनाथ का नाम देखकर ही उनकी स्थिति उस समय मान ली जाय तब तो उन्हें शाहजहाँ के समय में संवत् १६६० के कुछ समय बाद तक जीवित मानना पड़ेगा जो बात असङ्गत सी है। संवत् १६३८ के पहले तथा इसके बाद के फरमानों में यह अन्तर है कि संवत् १६३८ के अकबर के फरमानों में केवल विट्ठलनाथ जी का ही नाम है। इसके बाद के जो शाही फरमान उनके नाम जारी हुये उनमें उनके वंशजों के लिए "नसलन बाद नसल" शब्दों का प्रयोग है। इससे पता चलता है कि यद्यपि फरमान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नाम ही जारी हुये, परन्तु वे उनकी मृत्यु के बाद उनके वंशजों पर लागू थे। बहुधा देखा जाता है कि किसी व्यक्ति के मरने के बाद, जब तक उसके उत्तराधिकारियों के नाम उसकी सम्पत्ति के कागज़ों में दाख़िल ख़ारिज नहीं होता, तब तक सरकारी कागज़ उसी के नाम जारी होते रहते हैं।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के बाद उनकी भूमि तथा गद्दी उनके सात पुत्रों में विभाजित हो गई। यद्यपि गिरधर जी उनके बड़े पुत्र थे, परन्तु सम्प्रदाय में वे विख्यात व्यक्ति न थे। उनके चौथे पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जी अधिक विख्यात आचार्य हुये। गोस्वामी जी के बाद जब तक सम्प्रदाय का मुख्य आचार्यत्व सात पुत्रों में से किसी एक के नाम स्थापित नहीं हुआ, तब तक शाही फरमान गोस्वामी विट्ठलनाथ अथवा विट्ठल राय जी के नाम ही जारी होते रहे। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, उन फरमानों में 'नसलनदर नसल' शब्द और लगा दिये गये। अकबर के संवत् १६५१ के तथा शाहजहाँ के संवत् १६६० विक्रमी के

1—काँकरौली का इतिहास, पृ० ११।

फरमानों में से एक एक का अनुवाद श्री झावेरी जी के 'इम्पीरियल फरमांस' नामक संग्रह ग्रन्थ से नीचे उद्धत किया जाता है। ये दोनों फरमान गो० विट्ठलनाथ जी के ही नाम हैं। संवत् १६३८ वि० के फरमान उनके मूल रूप सहित पीछे दिये जा चुके हैं।

तरजुमा फरमान बालशाय अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर पादशाह गाजी

इस मुबारिक वक्त में फरमान जारी हुआ कि गुसाई विट्ठलराय साकिन गोकुल मौजे जतीपुरा मुत्तसिल व परगने गोवर्द्धन में जमींदारों को रुपया देकर खरीदकर मकानात व बाग़ात, व गायों के खिड़क व मन्दिर गोवर्द्धननाथ के कारखाने तैयार करा कर रहता है, इसलिये हुक्म जारी हुआ कि ऊपर लिखे मौजे को गुसाई मजकूर के कब्जे में 'नसलनदर नसल' माफ़ व बागुजाश्त छोड़ा गया। इसलिये मौजूदा व आइन्दा होनेवाले हाकिम आमिल, मुहिम्मों के मुनसद्दी कोड़ी जागीरदार व ज़मीदार इस बड़े हुक्म की तामील कर मौजे में 'नसलन बाद नसल' रहने देवें और वजहात व कुल अवारिजात व सर दरख़्ती वहाँ के बाबत मुजाहम न होकर ऐतराज न करें और हर साल नया फरमान व परवाना न मांगें व इसके खिलाफ न करें ताके, मारफ्त आगाह यानी ईश्वर को पहचाननेवाला गुसाई बादशाही मेहरबानियों से मशकूर होकर इस सल्तनत के हमेशा क़याम की दुआ करता रहे। तारीख ६ खुरदाद माह इलाही सन् ३८ जलूसी, मुताबिक सन् १५९४ ई० व संवत् १६५१ विक्रमी।[1]

तरजुमा फरमान अतिये अब्बुल मुजफर शाहबुद्दीन मोहम्मद साहिब किरानसानी शाहजहाँ बादशाह गाजी।

परगने सिहार के मौजूदा व आइन्दा होनेवाले मुतसद्दियों को मालूम हो कि इस वक्त मालूम हुआ है कि गुसाई साकिन गोकुल विट्ठलराय टिकैत गोरधननाथ मौजे जतीपुरा उर्फ गोपालपुर मुतसिल गोरधन में जमीदारों को रुपया देकर जमीन खरीद करके मकानात व गायों के खिड़क व बाग़ात, व ठाकुर गोवरधननाथ के कारखानेजात तैयार कराकर वहाँ रहता है। लिहाजा हुक्म शादिर फरमाया गया कि मौजे मज़कूर ज़मीन ठाकुरद्वारे के खर्चे वास्ते हुजूर में से माफ और बागुजाश्त की गई। चाहिये कि हाकिम आमिल व जागीरदार लोग मौजूदा व आइन्दा होनेवाले, इस हुक्म की तामील कर मजकूर के कब्जे में 'नसलनदरनसल' छोड़े और इसमें जरा भी अदला बदली न करें। मौजे मजकूर की इल्लत माल व जहात व इखराजात पेशकश सरकार दहनीमी, मुकद्दमी, सद्दही, कानूँगोई व कुल तकालीफ़ दीवानी व मतालबात सुल्तानी, मौजे मजकूर बाबत मुजाहमत न करें। और इस बारे में नया फ़रमान व परवाना न माँगें और हुक्म के खिलाफ न करें। तहरीर ता० १७ महर माह इलाही सन् ६ जलूसी, मुताबिक सन् १६३२ ई० व संवत् १६६० विक्रमी।[2]

१—फरमान न० ४ नागरी अनुवाद, इम्पीरियल फारमांस—के० एम० झावेरी, बम्बई

२—फ़रमान न० ६ नागरी अनुवाद, इम्पीरियल फारमान्स—के० ए० झावेरी, बम्बई।

श्रीकृष्णलाल मोहनलाल झावेरी जी ने उक्त अनेक फरमानों को प्रकाशित करते हुये गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का, अँग्रेजी में संक्षिप्त जीवनचरित्र भी दिया है। इसमें उन्होंने भी, श्री तैलीवाला की सहमति में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का निधन समय संवत् १६४२ वि० के लगभग ही माना है। पीछे कहा गया है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की निधन तिथि का, अष्टछाप के कई कवियों की निधन तिथि से सम्बन्ध है। लेखक ने आगे के पृष्ठों में अष्टछाप की निधन तिथि के आकलन में इसी तिथि संवत् १६४२ वि० का प्रयोग किया है। यदि यह तिथि किन्हीं सबल प्रमाणों द्वारा, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुये हैं, किसी अन्य संवत् की वल्लभसम्प्रदायी विद्वानों से सिद्ध की जाती है तो, अष्टछाप के कवियों की निधन तिथियाँ भी बदली जा सकती हैं।

गो० गोकुलनाथ जी तथा श्री हरिराय जी महाप्रभु

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य हुये और उन्होंने अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। यद्यपि मुख्य आचार्यत्व का पद श्री गिरिधर जी को मिला था, परन्तु, जैसा कि पीछे कहा गया है, सम्प्रदाय के मर्म को, समझनेवाले विद्वान् तथा सम्प्रदाय के प्रचार को बढ़ानेवाले उपदेशक श्री विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र श्री गोस्वामी गोकुलनाथ जी हुये। वल्लभसम्प्रदाय में श्री वल्लभाचार्य के बाद 'महाप्रभु' अथवा 'प्रभुचरण' की उपाधि से इन्हीं को विभूषित किया गया है। लेखक ने आगे वार्ता-साहित्य के परिचय में कहा है, कि इन्होंने ही, 'वैष्णवन की वार्ता' कहने, सुनने तथा लिखने की प्रथा चलाई थी। इस सम्प्रदाय में श्री गोकुलनाथ जी का समय सम्वत् १६०८ से संवत् १६९७ वि० तक माना गया है।

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के द्वितीय पुत्र श्री गोविन्द राय जी थे। श्री हरिराय जी इन्हीं श्री गोविन्दराय जी के पुत्र श्री कल्याणराय जी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६४७ आश्विन कृष्ण पंचमी में, तथा देहावसान संवत् १७७२ में हुआ। इन्होंने लगभग १२५ वर्ष की अवस्था पाई थी। ये संस्कृत, गुजराती, तथा ब्रजभाषा के परम विद्वान थे। अपने सम्प्रदाय की भक्ति से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ग्रंथ इन्होंने बनाये हैं। वल्लभसम्प्रदायी आचार्यों में श्री वल्लभाचार्य, गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ, गोस्वामी श्री गोकुलनाथ तथा गो० श्री हरिराय जी परमोच्च कोटि के आचार्य हुये हैं। श्री वल्लभाचार्य और गोकुलनाथ जी की तरह, श्री हरिराय जी को भी 'महाप्रभु' तथा 'प्रभुचरण' की पदवी दी जाती है। ८४ तथा २५२ 'वैष्णवन' की वार्ताओं पर इन्हीं ने 'भावना' लिखी थी। ये केवल ब्रजभाषा वार्ता-साहित्य के ही रचयिता नहीं हैं, वरन् संस्कृत, गुजराती तथा ब्रजभाषा के भक्ति-ग्रन्थों के भी निर्माता, विवरण कर्ता, टीकाकार तथा अपने सम्प्रदाय के उन्नायक व्यक्ति हुये हैं। इन्होंने कई नामों से रचना की थी, रसिक, रसिकराय, हरिधन, हरिदास आदि। जब श्रीनाथजी को वैष्णव लोग औरङ्गज़ेब के भय से श्री गोवर्धन से उदयपुर रियासत में ले गये, उस समय, हरिराय जी भी श्रीनाथजी के साथ गये थे।

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र

अष्टछाप-कवियों की जीवनी तथा रचनाओं के अध्ययन की आधारभूत सामग्री।

क—आन्तरिक आधार—अष्टछाप काव्य में कवियों की जीवनी तथा रचना के आत्मविषयात्मक उल्लेख। (मुख्य सामग्री)

ख—प्राचीन वाह्यआधार। (मुख्य सामग्री)

ग—आधुनिक वाह्यआधार। (गौण सामग्री)

क—अष्टछाप-काव्य में कवियों की जीवनी तथा रचना के आत्म-विषयात्मक उल्लेख।

अष्टछाप कवियों के जीवन तथा उनकी रचना से सम्बन्ध रखनेवाले जो कुछ भी अल्प उल्लेख उनकी रचनाओं में मिलते हैं वे उनके सम्पूर्ण काव्य में जहाँ-तहाँ बिखरे हुये हैं। नीचे की पंक्तियों में आठों कवियों के आत्मचारित्रिक वृत्तान्त दिये जाते हैं।

सूरदास

लेखक ने सूर के केवल तीन ग्रन्थ— सूरसागर, सूरसारावली, तथा साहित्यलहरी ही प्रामाणिक ग्रन्थ माने हैं। सूर के नाम से कहे जानेवाले कई छोटे छोटे ग्रन्थों का समावेश सूरसागर में ही हो जाता है। उक्त तीन-ग्रन्थों के आधार से ही यहाँ कवि के आत्मविषयक उल्लेख दिये गये हैं।

सूरसागर—सूरसागर के कई पदों में कवि ने अपने अन्धे होने का उल्लेख किया है। जैसे—

कहावत ऐसे दानी ।

× × ×

विप्र सुदामा कियो अयाची प्रीति पुरातन जानी ।
सूरदास सों कहा निठुर भये नैनन हू की हानी ।[1]

तथा:—

मेरा तो गति पति तुम अन्तहि दुख पाऊँ ।
हो कहाइ तिहारो अब कौन को कहाऊँ ।

× × ×

सागर की लहर छाँडि खार कत अन्हाऊँ ।
सूर कूर आँधरो मैं द्वार पर्‌यो गाऊँ ।[2]

सूरदास ने अपनी रचनाओं में यह उल्लेख तो किया है कि वे अन्धे थे, परन्तु उनके जन्मान्ध होने के प्रमाण उनकी रचनाओं में नहीं मिलते । सूर के पदों में दृश्यों के वर्णन और भावों के स्वाभाविक चित्रणों से यही ज्ञात होता है कि वे जन्मान्ध नहीं थे, इस संसार को देखने के बाद किसी अवस्था में वे अन्धे हो गये थे ।

निम्नलिखित पद में कवि कहता है कि जिस भागवत का श्रीशुकदेव जी ने बखान किया था उसी को मैं गुरु की कृपा से गाता हूँ । इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने भागवत के अनुसार पद रचना की थी ।

धनि शुक मुनि भागवत बखान्यो ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यो ।
धन्य श्याम वृन्दावन को सुख संत मया ते जान्यो ।
जो रस रास रंग हरि कीन्हे वेद नहीं ठहरान्यो ।
सुर नर मुनि मोहित सब कीन्हे शिवहि समाधि भुलान्यो ।
सूरदास तहँ नैन बसाए और न कहूँ पत्यान्यो ।[3]

सूरदास ने भागवत के क्रमानुसार अपने पदों की रचना की, इस बात का उल्लेख उन्होंने अपने और भी कई पदों में किया है; यथा:—

१—पद नं० ७७, सूरसागर, वें० प्रे०, पृष्ठ १२, सं० १६६४ संस्करण ।

२—सूरसागर, वें० प्रे०, पृष्ठ १७, सं० १६६४ संस्करण ।

३—पद नं० ४७, सूरसागर, वें० प्रे०, पृष्ठ ३६०, सं० १६६४ संस्करण ।

श्रीमुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सों कहे नारद व्यास सुनाइ।
व्यास कहै शुकदेव सों द्वादश स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ।[1]

तथाः—

सुक ज्यों नृप सों कहि समुझायो।
सूरदास त्यों ही कहि गायो।
जैसे सुक कौ व्यास पढ़ायो।
सूरदास तैसे कहि गायो।[2]

कहौं कथा सुनो चित धार सूर कह्यो भागवत अनुसार।[3]

हीनता तथा आत्मग्लानि भाव भी उनके अनेक पदों में व्यक्त हैं।

यथा—

सो कहा जु मैं न कियो जो पै सोइ सोई चित धरिहौ।
पतितपावन, विरद साँच कौन भाँति करिहौ।

× × ×

साधुनिंदक स्वादिलंपट कपटी गुरुद्रोही।
जितने अपराध जगत लागत सब मोही।
गृह गृह गृह द्वार फिर्‍यो तुमको प्रभु छाँड़े।
अध अंध टेक चलै क्यों न परे गाढ़े।
कमल नैन करुनामय सकल अंतर्यामी।
विनय कहा करै सूर क्रूर कुटिल कामी।[4]

कृष्ण के बाल-रूप तथा गोप-विहारी सखा-कृष्ण के उपासक होने के साथ-साथ सूरदास जी राधाकृष्ण के युगल रूप के भी उपासक थे, इस बात को उन्होंने अपने अनेक पदों में प्रकट किया है—

१—सूरसागर, पद नं० ११३, पृ० १७, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।

२—सूरसागर, १ स्कंध, पद नं० ११४, पृ० १८, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण

३—सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पृ० ४७, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण

४—सूरसागर, प्रथम स्कंध, पृ० ११, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण।

जाको ध्यान धरें सुर मुनि जन शंभु समाधि न टारी हो,
सो ठाकुर है सूरदास को गोकुल गोप बिहारी हो।[१]

रास रस रीति नहि बरणि आवे

× × ×

यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान दरश दम्पति भजन सार गाऊँ।
इहे माँग्यों बार बार प्रभु सूर के नैन द्वा रहैं, नर देह पाऊँ।[२]

मैं कैसे रस रासहिं गाऊँ।
श्री राधिका श्याम की प्यारी तुव बिन कृपा वास ब्रज पाऊँ।
अन्य देव सपनेहु न जानौं दम्पति को सिर नाऊँ।
भजन प्रताप सरन महिमा ते गुरु की कृपा दिखाऊँ।
नव निकुंज बन धाम निकट इक आनन्द कुटी रचाऊँ।
सूर कहा विनती करि बिनवै जन्म जन्म यह ध्याऊँ।[३]

निम्नलिखित पद में सूर, श्याम और बलराम दोनों में अपनी अनन्य भक्ति प्रकट करते हैं:—

श्याम बलराम को सदा गाऊँ।
श्याम बलराम बिनु दूसरे देव को स्वप्न हू माँहि हृदय न लाऊँ।[४]

अनन्य भाव से केवल कृष्ण-भक्ति में ही कवि को सन्तोष है। इस भाव के साथ कवि ने अपने भक्त-रूप का बाह्य वेश भी नीचे लिखे पद में दिया है—

हमें नन्दनन्दन मोल लिये।
यम के फंद काटि मुकराए अभय अजात किये।
भाल तिलक श्रवननि तुलसी दल मेटे अंक बिये।
मूँड़े मूड़ कंठ बनमाला मुद्रा चक्र दिये।
सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।
सूरदास को और बड़ो सुख जूठनि खाइ जिये।[५]

१—सूरसागर, पृष्ठ ११७, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
२—सूरसागर, पृष्ठ ३४०, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
३—सूरसागर, पृष्ठ ३६३, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
४— ,, ,, १७ ,, ,, ,, ,, ,,
५— ,, ,, १७ ,, ,, ,, ,, ,,

भक्ति में आकर कवि कहता है,—"मैंने अपनी जाति भी छोड़ दी"। वास्तव में देखा जाता है कि परम भक्तलोग जाति पाँति के बन्धन को छोड़ देते हैं। वल्लभाचार्य के शिष्यों में सभी जाति के भक्त थे।

मन बच क्रम सत भाउ कहत हौं मेरे स्याम धनी।
सूरदास प्रभु तुमरी भक्ति लगि तजी जाति अपनी।[1]

सूर-सारावलि—सूर-सारावलि ग्रन्थ में सूरदास जी ने इस ग्रन्थ की रचना के समय अपनी आयु का उल्लेख किया है।

गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन।[2]

इस पंक्ति से विदित होता है कि कवि ने 'सूरसागरसारावलि' को अपनी ६७ वर्ष की वायु में लिखकर समाप्त किया था। इसी ग्रन्थ के अन्त में कवि लिखता है:—

सरस समतसर लीला गावै युगल चरण चित लावै।
गर्भवास बदीखाने में सूर बहुरि नहिं आवै।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में सूरदास ने ग्रन्थ की रचना के संवत् को 'सरस' संवत् कहा है। बाबू राधाकृष्णदास ने सूरसागर की भूमिका में स्व० पंडित सुधाकर द्विवेदी के मत से 'सरस' के स्थान पर 'परस'[4] पाठ का अनुमान किया और उसके अनुसार उन्होंने इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १५६० अनुमान किया, परन्तु उन्होंने फिर स्वयं इस मत को अस्वीकार कर दिया।[5]

संवत्सरों के ६० नामों में से 'सरस' नाम का कोई संवत्सर नहीं होता। 'सरस' के अर्थ यदि ६० ही लिये जायँ तो उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है,—'साठों संवत्सरों में यानी सदैव (जैसे आठों पहर का अर्थ निरंतर होता है) भगवान् की लीला गावेंगे।' लेखक का विचार है कि 'सरस संवत्सर' कह कर सूर ने किसी संवत् विशेष का निर्देश नहीं किया।

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

१—सूरसागर, पृष्ठ १७ वें० प्रे० सं० १९६४ संस्करण।

२—सूरसागर, सारावलि, पृ० २४ वें० प्रे०, संस्करण सं० १९६४।

३—सूरसागर, सारावलि, पृ० ३८, वें० प्रे०, संस्करण सं० १९६४।

४—सरस—परस, (प—० रस—६)—६०।

५—सूर सागर की भूमिका, सूरदास का जीवनचरित्र, पृष्ठ २, राधाकृष्णदास कृत।

ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बन्द ।
ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनन्द ।[1]

इन पंक्तियों में कवि कहता है,—"आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के जितने मार्ग हैं, उन सब में मैं भ्रमता फिरा, किसी से मेरा भ्रम नहीं गया। जब श्री वल्लभाचार्य गुरु ने मुझे भगवान् की लीला का रहस्य समझाया तब मुझे शान्ति मिली। तभी से मैंने हरि की लीला का गान किया और एक लाख पदों की रचना की। उन्हीं पदों के सारस्वरूप यह सारावलि है जिसको मैं आनन्दपूर्वक गाता हूँ।"

इससे विदित होता है कि सूरदास के गुरु श्री वल्लभाचार्य जी थे तथा उन्होंने एक लाख पद लिखने के बाद सूर सारावलि की रचना की।

साहित्यलहरी—साहित्य लहरी ग्रन्थ मे सूरदास जी का नीचे लिखा एक आत्म-विषयात्मक पद है जिससे 'साहित्यलहरी' की रचना का संवत् ज्ञात होता है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख,
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्वत् पेख ।
नन्दनन्दन मास छै ते हीन त्रितिया वार ।
नन्दनन्दन जनम ते हैं बान सुख आगार ।
तृतीय ऋक्ष सुकर्म योग विचारि सूर नवीन ।
नन्दनन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन । १०६[2]

१—सूरसागर, वें० प्रे०, सूर सारावलि पृ० ३८।

२—मुनि=७, रसन=रसना=१, रसना के रस=६, दसन गौरी नन्द को=१ क्यों कि संवत्-गणना में संख्या की गति उल्टी ली जाती है, इसलिए सं० १६१७ हुआ। नन्दनन्दन मास=वैशाख मास, छै से हीन तृतीया=अक्षय तृतीया नन्दनन्दन जनम से हैं बान=कृष्ण जन्म के दिन बुधवार से पाँचवाँ (बान=५) दिन—रविवार। तथा तृतीय ऋक्ष=तीसरा नक्षत्र कृत्तिका। सुबल=बहुत शक्तिवान=प्रभव देखिये साहित्यलहरी, छन्द नं० १०६, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत।

नोट:—हिन्दी के कुछ विद्वानों ने "मुनि पुनि रसन के रस लेख, दसन गौरीनन्द को सुबल संवत् पेख" पंक्तियों का अर्थ संवत् १६०७ किया है। रसन का अर्थ रस+न=रस से हीन=छूँछ=शून्य उन्होंने किया है। कुछ विद्वानो ने 'पुनि' पाठ के स्थान पर 'सुन' पाठ लेकर उसका अर्थ शून्य लिया है, और 'रसन के रस' के अर्थ ६ लेते हुए 'रसन' को केवल रसों की संख्या का संकेतकर्ता ही माना है। पण्डित मुंशीराम शर्मा जी ने

इस पद म दी हुई सूचना के अनुसार सूरदास ने सुबल सवत् १६१७, वैसाख मास अक्षय तृतीया तिथि, रविवार को कृत्तिका नक्षत्र में साहित्यलहरी ग्रन्थ 'नन्दनन्दन दास हित' बनाया।

'नन्दनन्दन दास हित' के दो अर्थ हो सकते हैं—१—कृष्ण के भक्तों के लिए, २—दूसरा अर्थ नन्ददास के लिए। काँकरौली, विद्या-विभाग के भगवदीय श्री द्वारिका दास जी का मत है कि जब नन्ददास गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण आये, तब गोसाँमी जी ने उन्हें सूरदास जी का सत्सङ्ग दिया। तभी नन्ददास के पाण्डित्य के मद को चूर्ण करने तथा उनको मानसिक एकाग्रता प्राप्त कराने के लिए सूरदास ने दृष्टकूट पदों का सग्रह बनाकर उनको दिया। इस अनुमान का कोई विशेष प्रमाण नहीं है, परन्तु 'नन्दनन्दनदास' शब्द नन्ददास नाम का अनुमान अवश्य देता है। सम्भव हो सकता है कि नन्ददास जी अपने सम्प्रदाय में नन्दनन्दनदास के नाम से भी सम्बोधित किये जाते रहे हों, वैसे नन्ददास, नन्दनन्दनदास तो थे ही।

'सूर सौरभ' में, 'रसन' का अर्थ २ होते हुए उक्त पक्ति में से सवत् १६२७ निकाला है। उन्होंने यह भी कहा है कि गणना से सवत् १६२७ में वैशाख मास शुक्ल तीज को रविवार' दिन पड़ता है तथा 'सुबल' का अर्थ वृषभ है जो सवत् १६२७ में पड़ा था। इस प्रकार साहित्यलहरी ग्रन्थ की रचना शर्मा जी ने सवत् १६२७ में मानी है।

लेखक ने भी उक्त पक्ति का तात्पर्य पहले संवत् १६०७ से ही समझा था। परन्तु लखनऊ विश्व-विद्यालय के गणित विभाग के विद्वान् पंडितों से गणना कराने पर तथा इण्डियन कलेण्डर के देखने पर, बाद को उसे ज्ञात हुआ कि उक्त पक्ति का तात्पर्य सवत् १६१७ से है। ग्रहलाघव (ग्रह लाघवकारण—गणेश दैवज्ञ निर्मित प्रकाशक वें० प्रेस बम्बई, संवत् १९८१ वि० पृ० ८ तथा ११) के अनुसार 'अहर्गण' की गणना करने पर ज्ञात होता है कि १६१७ विक्रमी संवत् में वैसाख शुक्ल अक्षय तृतीया, 'रविवार' के दिन पड़ी थी तथा इण्डियन कलेण्डर (Indian Calendar by Robert Sewell and Sankara Bal Krishna Dikshit—London 1896 Tables Table No. I, page LXXX) टेबल न० १ पृ० ८० के अनुसार सवत् १६१७ का नाम "प्रभव" था जिसका अर्थ 'शक्तिशाली' अथवा सुबल है। ग्रहलाघव ग्रन्थ के अनुसार गणना से यह भी ज्ञात होता है कि सम्वत् १६०७ के वैसाख शुक्ल में तृतीया तो रविवार की थी, परन्तु सम्वत् का नाम पिङ्गल था जिसका किसी भी प्रकार से सुबल अर्थ नहीं होता। इसी गणना से सम्वत् १६२७ वि० में वैसाख शुक्ल तृतीया का दिन बृहस्पतिवार आता है और सम्वत् 'ईश्वर' नाम का पड़ता है जिसका अर्थ 'सुबल' लेना बहुत अच्छा और स्पष्ट नहीं जँचता। 'सुबल' का अर्थ प्रभव स्पष्ट है।

सूरदास के दृष्टकूट पदों में एक पद उनके वंश और उनकी जाति का परिचय देने-वाला भी साहित्य, लहरी के सम्पादकों ने दिया है। उस पद में बताया गया है कि सूरदास जी चन्द्र कवि के वंशज थे। उस पद का अर्थ है,—"पहले एक पृथु (विशाल) अथवा पृथु के यज्ञ से एक महान् अद्भुत पुरुष उत्पन्न हुआ। [1] ब्रह्मा ने विचारपूर्वक उसका नाम ब्रह्मराव रखा। देवी ने उसे दुग्धपान कराया। शिवादि देवताओं ने देवी पर प्रसन्न होकर कहा कि यह पुत्र अत्यन्त श्रेष्ठ होगा। देवताओं के आशीर्वाद से उसी वंश में चन्द नाम का एक प्रशंसनीय व्यक्ति हुआ जिसको पृथ्वीराज चौहान ने ज्वाला देश दान में दिया। उस जगत प्रसिद्ध कवि चन्द के चार पुत्र हुये। दूसरे पुत्र गुणचन्द के शीलचन्द और शील-चन्द के पुत्र वीरचन्द हुये जो रणथम्भौर के राजा हम्मीरदेव के राजकवि बने। इनके वंश में हरिचन्द हुये। उसके पुत्र ने आगरे आकर गोपाचल[2] में निवास किया; उसके सात पुत्र हुये—कृष्णचन्द, उदारचन्द, रूपचन्द, बुधचन्द, देवचन्द, प्रकाशचन्द[3] और सूरजचन्द। इनमें से प्रथम छै बादशाह के साथ लड़ाई में वीर-गति को प्राप्त हो गये और सातवें सूरज चन्द जो अन्धे थे रह गये। 'एक दिन मैं', सूरजचन्द कहता है, 'कुएँ में गिर गया। मेरी पुकार किसी ने न सुनी। सातवें दिन यदुपति श्रीकृष्ण ने आकर मुझे निकाला और मेरे नेत्र खोलकर मुझसे वरदान माँगने को कहा। मैंने कहा—'प्रभु! मैं आपका रूप देखकर और कोई रूप न देखूँ।' यह सुनकर कृष्ण ने कहा 'ऐसा ही होगा। दक्षिण के प्रबल ब्राह्मण से तेरे शत्रुओं का नाश होगा और तेरी बुद्धि और विद्या अचल रहेगी।' कृष्ण भगवान् ने मेरे सूरदास, सूर, सूरज्दास नाम रक्खे। और उसी समय वे अन्तर्धान हो गये। मैंने फिर ब्रजवास की इच्छा की और गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मेरी अष्टछाप में

१—उपर्युक्त भाव को लिए हुए कवि गङ्ग का एक कवित्त बताया जाता है जो इस प्रकार है—

प्रथम विधाता ते प्रकट भये बन्दी जन,
पुनि पृथु यज्ञ ते आभा सरसात है।
मानो सूत शौनकन सुनत पुरान रहे,
यश को बखाने अति सुख बरसात है।
चन्द चहुआन के केदार गौरी शाह जू के,
गङ्ग अकबर के बखाने गुन गात है।
जानत अदेवदेव निगम पुरान जानै,
आदर ब्रह्म भट्टन को जगत में विख्यात है।

२—गोपाचल ग्वालियर के प्राचीन किले के स्थान को भी कहते हैं तथा गोपाचल गोवर्द्धन पर्वत को भी कहा जाता है।

३—प्रबोधचन्द्र पाठान्तर।

स्थापना की। मैं पृथु के यज्ञ का ब्राह्मण अथवा मैं जगात-कुल का ब्राह्मण हूँ और नन्द-नन्दनजी का मोल लिया हुआ गुलाम हूँ।"[1]

1— प्रथम ही प्रथ जगाते (जागते) मे प्राग अद्भुत रूप,
ब्रह्मराव विचार ब्रह्मा नाम राखि अनूप।
पान पय देवी दयो शिव आदि सुर सुख पाय,
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति सुख पाय।
(शुभ) पार पायन सुरन पितु के सहित अस्तुति कीन,
तासु वंश प्रशंस (शुभ) में भो चन्द चारु नवीन।
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देश,
तनय ताके चार कीन्हें प्रथम आप नरेश।
दूसरे गुणचन्द ता सुन शीलचन्द स्वरूप,
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।
रन्तंभोर हमीर भूपति सङ्ग सुख अवदात,
तासु वंश अनूप भा हरचन्द अति विख्यात।
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुन वीर,
पुत्र जनमे सात ताके महाभट्ट गम्भीर।
कृष्णचन्द उदारचन्द जो रूपचन्द सुभाइ,
बुधचन्द प्रकाश चौथो चन्द भै सुखदाइ।
देवचन्द प्रबोध षष्टम चन्द ताको नाम,
भयो सप्तो नाम सुरजचन्द मन्द निकाम।
सो समर कर साहि ते (से) सब गये विधि के लोक,
रह्यो सूरज चन्द दृग से हीन भर वर शोक।
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार,
सातवें दिन आइ यदुपति कियो आप उधार।
दिव्य चख दै कही शिशु सुन (योग) माँग वर जो चाइ,
है कही प्रभु भगति चाहत शत्रु नाश स्वभाव।
दूसरो ना रूप देखों देख राधाश्याम,
सुनत करुणासिंधु भाखी एवमस्तु सुधाम।
प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वैहै नास,
अखिल बुद्धि विचारि विद्यामान माने मास।
नाम राखे हैं सु सूरज दास सूर सुश्याम,
भये अंतरधान बीते पाछिली निशि याम।

इस ग्रन्थ के लेखक के विचार से यह पद अष्टछाप के सूरदास की रचना नहीं है और न इसमें दी हुई वंशावली ही प्रामाणिक है। इसके कारण नीचे दिये जाते हैं।

मोहि गनसा ह्वै ब्रज की बसी सुख चित थाप,
श्री गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।
विप्र प्रथु के याग को हौं भाव भूर निकाम,
सूर है नन्द नन्द जू को लियो मोल गुलाम।

साहित्य लहरी, भा० हरि०, छन्द नं० ११८, सूरदास, दृष्टकूट, सरदारकवि, नवल कि० प्रे०, छं० नं० ११०

इस पद को हिन्दी के बहुत से विद्वानों ने प्रामाणिक माना है और उसके आधार पर सूरदास को भाट या जगा वंश का निर्णय किया है। जिन लोगों को इस पद की प्रामाणिकता पर सन्देह है उन्होंने इसका अर्थ तो दिया है, परन्तु कारण सहित अपना कोई निश्चित मत नहीं प्रकट किया। स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस पद को सूरदास-कृत नहीं माना, परन्तु इसके उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिये। श्री राधाकृष्णदास जी ने सूर की जाति आदि के विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की सम्मति का उल्लेख करते हुए 'सूरसागर की भूमिका' में वंशावली वाले इस पद को प्रामाणिक माना है। डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने इतिहास में इस पद को सन्देह की दृष्टि से तो देखा है, परन्तु निश्चयात्मक रूप से उन्होंने इसे अप्रामाणिक नहीं कहा। वे कहते हैं,—"इस पद के अनुसार सूरदास भाट कुल में उत्पन्न हुए थे; फिर उसी पद में उनको विप्र कहा है।" यह कथन उनको विरोधात्मक प्रतीत हुआ और इसी आधार से उन्होंने लिखा है,—"अतः यह विरोध पद की प्रामाणिकता में सन्देह उपस्थित करता है।" साथ में डा० वर्मा यह भी कहते हैं,—"यदि दृष्टकूट सम्बन्धी यह पद प्रामाणिक है तो इससे यह स्पष्ट होता है कि सूरदास भाट कुल में उत्पन्न हुए थे और राव थे।"

श्री मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रन्थ 'नवरत्न' में इस पद को प्रक्षिप्त माना है। (१ 'हिन्दी नवरत्न' पृष्ठ २२६, सूरदास) उन्होंने कहा है,—"प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वैहैं नास" से दक्षिण के पेशवाओं की ओर सङ्केत है जो सूर के दो सौ वर्ष बाद हुये और पेशवाओं के बाद ही यह पद सूर की रचनाओं में जोड़ा गया है। दूसरे, यह पद चौरासी वार्ता तथा कवि मियाँसिंह के कथनानुसार सूर के ब्राह्मण होने की सूचना के विरुद्ध पड़ता है। इन्हीं दो प्रमाणों से मिश्रबन्धुओं ने इस पद को प्रक्षिप्त कहा है। इन्हीं दो कारणों के आधार पर डाक्टर जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'सूरदास' में इस पद को प्रक्षिप्त माना है। ('सूरदास', डाक्टर जनार्दन मिश्र कृत पृ० ६) मुंशी देवीप्रसाद ने सूर के इस पद को प्रामाणिक मानकर सूरदास को 'भाट' और 'राव' लिखा है। (पृ० ४, श्री सूरदास का जीवनचरित्र।)

(i) सरदार कवि की टीकावाली साहित्यलहरी के प्रथम भाग तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा सङ्गृहीत साहित्यलहरी की प्राचीन प्रति के, जिसका आधार सरदार कवि ने भी संवत् १९०४ में अपनी टीका में लिया था, देखने से ज्ञात होता है कि परम्परागत साहित्य लहरी वस्तुतः "मुनि पुनि रसन के रस लेख" वाले पद पर समाप्त हो जानी चाहिए। कवि या लिपिकार बहुधा ग्रन्थ-समाप्ति का समय तथा उसके लिखने का कारण ग्रन्थ के अन्त में ही दिया करते हैं। लेखक का ऐसा विचार है कि 'मुनि पुनि' वाले पद के बाद के सब पद परम्परागत साहित्यलहरी में प्रक्षिप्त हैं। इन प्रक्षिप्त पदों में, जैसा कि सरदार कवि ने अपनी टीका के अन्त में स्वयं कहा है,[1] कुछ सूरसागर से ही छाँट कर दृष्टकूट पद मिलाये गये हैं और कुछ दो एक लिपिकार अथवा किसी टीकाकार ने अपनी ओर से सूर नाम में बना कर रख दिये हैं। सरदार कवि ने साहित्यलहरी में अपनी ओर से मिलाए हुए ६३ पदों को दूसरे भाग में दिया है; परन्तु बाबू रामदीन सिंह जी[2] हरिश्चन्द वाली साहित्यलहरी में कहते हैं कि सरदार कवि ने सूरसागर से छाँटकर कुछ पद प्रथम भाग में भी मिलाये हैं। इस प्रकार मूल साहित्यलहरी में पदों का मिलना बहुत समय से चला आ रहा है। सूर की वंशावली वाला पद 'मुनि पुनि रसन के रस लेख' पद के बाद में प्राचीन प्रति में आता है।

(ii) सूरदास के गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी थे, जिनकी शरण में वे गऊघाट पर गये थे। यह बात ८४ वार्ता से सिद्ध है तथा सूर ने स्वय सूरसारावलि के एक पद में कहा है कि श्रीवल्लभाचार्य गुरु ने उनका भ्रम दूर किया और उनको भगवान् की लीला का भेद बताया।[3] उक्त वंशावलीवाले पद में कहा गया है कि सूरदास व्रज पहुँचे और वहाँ श्री-गोस्वामी जी ने (विट्ठलनाथ जी ने) उनकी अष्टछाप में गणना की। वास्तव में, यदि यह पद सूर का होता तो सूरदास गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के साथ अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी का उल्लेख अवश्य करते। वस्तुतः सूर की शरणागति के समय में तो श्रीविट्ठलनाथ जी का जन्म भी नहीं हुआ था। इस बात को आगे सिद्ध किया जायगा। सूर की अष्टछाप में गणना गोस्वामी जी के शिष्य, चार भक्त कवियों के ख्याति में आने के बाद हुई थी।

(iii) 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की प्राचीन प्रामाणिक प्रतियों में सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है और किंवदन्ती भी ऐसो ही चली आती है।[4] इस पद में दिये

१— सूरदास का दृष्टकूट सटीक, नवलकिशोर प्रेस, पृ० १४२, सरदार कवि।'

२—साहित्यलहरी खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर पृ० १९ तथा पृ० ३२, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

३—सूरसारावलि, सूरसागर, वें० प्रे०, पृ० ३८।

'श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो।'

४—चौरासी वार्ता—अष्टछाप वार्ता-रहस्य, पृ० १, कांकरौली

हुए सूरदास भाट या राव कहे गये हैं। सारस्वत ब्राह्मणों में ब्रह्मराव या भाट नहीं सुने जाते हैं। इस विरोध को देखते हुए लेखक इस पद को ही प्रक्षिप्त मानने को बाध्य होता है। वार्ता की प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा। लेखक ने उसे प्रामाणिक माना है।

(iv) सूरदास ने अपने एक पद में इस भौतिक जीवन की ओर से उपेक्षा भाव दिखाया है और कहा है कि उस हरि भक्ति की आध्यात्मिक शान्ति के सामने लोक-सग्रह की सांसारिकता का मूल्य ऐसा ही है जैसे अमूल्य मणि के सामने काँच का टुकड़ा। वे यह भी कहते हैं कि श्याम से उन्होंने नाता जोड़ कर अपनी जाति ही त्याग दी।

मेरे जिय सू ऐसी बनी।
छाँडि गुपाल और जो जाँचो तौ लाजै जननी।
कहा काँच को सग्रह कीजै त्याग अमोल मनी।
विष को मेरु कहाँ लौं कीजै अमृत एक कनी।
मन वच क्रम सत भाउ कहत हौं मेरे श्याम धनी।
सूरदास प्रभु तुम्हरी भक्ति लागि तजी जाति अपनी।[1]

प्राकृत जनों का गुण गान छोड़ केवल ईश्वर की महिमा का वर्णन करनेवाले सूर ने अपनी वंशावलि और जाति आदि देने के बारे में विचार भी किया होगा, यह बात सङ्गत नहीं प्रतीत होती। वे तो अपने भौतिक जीवन और परिचय से बिल्कुल उदासीन ही थे। हमारे साहित्य के महारथी महात्मा तुलसीदास और कबीरदास भी इसी प्रकार अपने परिचय के बारे में मौन रहे हैं।

(v) 'चौरासी वार्ता' पर श्रीहरिराय जी ने 'भाव प्रकाश' लिखा था जिसकी प्राचीन प्रति संवत् १७७२ की काँकरोली विद्या विभाग से छप चुकी है और जिसकी संवत् १८७० की प्रति लेखक के पास है। उस '८४ वार्ता भाव प्रकाश ग्रन्थ' में हरिराय जी ने भी सूरदास जी की जाति, सारस्वत ब्राह्मण लिखी है। हरिराय जी बड़े प्रकाण्ड विद्वान्, ब्रज भाषा-साहित्य के मर्मज्ञ, अनेक ग्रंथों के रचयिता तथा बहुश्रुत साम्प्रदायिक रहस्य के ज्ञाता थे। यदि यह पद सूर का होता तो इसका वे अवश्य उल्लेख करते। चौरासी वार्ता में इस छन्द में आये हुये एक भी वृत्तान्त का उल्लेख नहीं है, न तो उनकी उक्त वंशावली का, न सूर के छः भाइयों का बादशाह के साथ युद्ध में मारे जाने का, न कूप पतन और न वरदान की ही घटना का। ज्ञात होता है कि यह पद सरदार कवि तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द जी से पहिले साहित्यलहरी के किसी टीकाकार अथवा लिपिकार ने मिलाया था।

१—सूरदास, पृ० १७, वें० प्रे०

जब हम परमानन्ददास की रचनाओं में आत्मचारित्रिक उल्लेखों की ओर ध्यान देते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि कवि ने स्वयं अपना यथेष्ट परिचय अपने ग्रन्थों में, नहीं दिया है। कहीं-कहीं अपना भक्तिभाव प्रकट करते हुए गुरु श्री वल्लभाचार्य जी का, अपने मन की वैराग्य-वृत्ति का तथा अपने समय की धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख कवि ने अवश्य किया है, परन्तु ये उल्लेख बहुत ही अल्प और अपर्याप्त हैं। व्यक्तिगत कुटुम्ब आदि का परिचय उन्होंने नहीं दिया है; कुछ साधारण ढङ्ग के उल्लेख ही उनके परमानन्द सागर में मिलते हैं। उनका सार नीचे दिया जाता है।

परमानन्ददास

अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी का उल्लेख करते हुये तथा उनकी महिमा गाते हुये परमानन्ददास जी कहते हैं,—"प्रातःकाल उठकर श्री लक्ष्मण-सुत श्री वल्लभप्रभु का गुण गान करना चाहिए, जो भगवान् की भक्ति का दान देते हैं।"[1] आगे एक और पद में कवि के व्रज-प्रेम और वल्लभ-कुल में अपनी भक्ति का भाव प्रकट किया है। रसेश श्रीकृष्ण की भक्ति में आत्मिक सन्तोष प्रकट करते हुये कवि कहता है,—"रस रूप भगवान् की भक्ति सम्बन्धिनी रस-रीति को केवल व्रजवासी ही जानते हैं, जिनके हृदय में श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी भाव का समावेश ही नहीं हो पाता। जो लोग माया की यवनिका अथवा भित्ति की ओट में रहते हैं, वे व्रज-भक्तों की प्रेम-भक्ति के रस को

प्रात समय उठि करिये श्री लछमण-सुत-गान।
प्रकट भये श्री वल्लभ प्रभु देन भक्ति को दान।
श्री विट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान।

× × ×

लेखक के निजी, परमानन्ददास जी के पद संग्रह से, पद नं० २१६।

यथा— राग बिलावल

यह माँगों गोपीजनवल्लभ।

मानुष जन्म और हरि सेवा, व्रज बसिबो दीजै मोहिं सुल्लभ।
श्री वल्लभ-कुल को होंहूँ चेरो वैष्णव जन को दास कहाऊँ।
श्री जमुना जल नित प्रति न्हाऊँ मन क्रम वचन कृष्ण गुन गाऊँ।
श्री भागवत श्रवणसुन नित (प्रति) इन त्यजि चित कहूँ अन्त न लाऊँ।
परमानन्ददास यह मांगत नित निरखौं कबहूँ न अघाऊँ।

ले० के नि०, परमा० पद सं० से, पद नं० २१"

नहीं जान सकते। यह दास परमानन्द गुरुके प्रसाद से कुछ-कुछ उस रसकी प्रतीति पाता है"[1]

एक पद में अपनी अनन्य भक्ति के विषय में कवि ने गोपी रूप बन कर अपने भाव प्रकट किये हैं जिसमें उसने अपने चित्त की वैराग्य-वृत्ति का उल्लेख किया है। "मेरा मन गोविन्द से लगा है; इसलिए अन्य किसी (व्यक्ति अथवा देवता) की ओर मेरा मन नहीं जाता। नित्य यही उत्कण्ठा रहती है कि कोई व्रजनाथ से मुझे मिला दे। आहार, बिहार और शरीर के सब सुख छोड़ दिये। परमानन्द दास घर में ऐसे रहता है जैसे पथिक किसी के घर में ठहरा हो।"[2] इससे ज्ञात होता है कि परमानन्द दास किसी समय घर में ही रहते हुये कृष्ण-भक्ति करते थे।

एक और पद में कवि कहता है कि (मेरे मनको तो सब देवताओं के देवता श्याम-सुन्दर अच्छे लगते हैं। परमानन्ददास गोपी तथा राधिका-वल्लभ श्रीकृष्ण की उपासना करता है।)[3] इस पद में कवि ने अपनी बालकृष्ण की उपासना के अतिरिक्त कृष्ण के राधावल्लभ किशोर रूप की भक्ति का भी परिचय दिया है।

१—व्रजवासी जाने रस रीति,
जाके हृदे और कछु नाहीं नन्दसुवन पद प्रीति,
करत महल में टहल निरन्तर जाम जात सब बीति।
सर्व भाव] आतम निवेदन रहे त्रृगुनातीति,
इनकी गति और नहिं जानत बीच जवनिका मीति।
कछुक लहत दास परमानन्द गुरु प्रसाद परतीति,
लेखक के निजी, परमानन्ददास पद संग्रह से, पद नं० २८०।

२—मेरो मन गोविन्द सों मान्यो, तावे और न जिय भावे,
जागत सोवत यह उत्कण्ठा कोउ व्रजनाथ मिलावे।
बाढ़ी प्रीति आन उर अन्तर चरन कमल चित दीनो,
कृष्ण विरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनो।
छाड़ अहार विहार और देह सुख, औरे चाह न काऊ,
परमानन्द बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ।
ले० के निजी, परमा० पद सं०, पद नं० ३३२।

३—मोहि भावे देवाधिदेवा,
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन गोकुलनाथ एक मेवा,
तीन देवता मुख्य देवता, ब्रह्मा, विष्णु अरु महादेवा।
जे जानिए सकल वरदायक, गुन विचित्र कीजिये सेवा।
सङ्ख चक्र सारङ्ग गदाधर रूप चतुर्भुज आनँदकन्दा।
गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासत परमानंदा।
ले० के नि०, परमा० पद सं०, पद नं० ३०३।

एक पद में कवि ने अपने समय के दम्भ से ज्ञानी बननेवाले सन्यासियों का उल्लेख किया है। वह कहता है—"यदि गोपियों के प्रेम की पद्धति और भागवतपुराण का प्रचार न होता तो सब कोई औघड़-पन्थी हो जाते और गँवार ही ज्ञानोपदेश के अधिकारी होते। इस कलिकाल में बारह वर्ष की ज्ञानहीन अवस्था में ही लोग दिगम्बर बनने का ढोंग रचते हैं।[1] ज्ञानहीन लोग सन्यासी बन रहे हैं कुछ लोग भस्म लगाकर अपने को उदासी कहते हैं। पाखण्ड धर्म चारों ओर इस कलियुग में बढ़ रहा है और श्रद्धा-धर्म का लोप हो गया है। वेदपाठी ब्राह्मणों की जब यह दशा है तो फिर और किस पर कोप किया जाय।"

उपर्युक्त उल्लेखों के अतिरिक्त कवि ने अपनी दीनता, ईश्वर के प्रति विनय और मन की चेतावनी से सम्बन्ध रखनेवाले भाव भी अनेक पदों में व्यक्त किये हैं।

कुम्भनदास जी ने भी अपनी कृतियों में आत्मचारित्रिक उल्लेख बहुत ही अल्प किये हैं। कुम्भनदास ने कुछ पद अपने गुरु, श्रीवल्लभाचार्य जी की प्रशंसा में लिखे हैं और कुछ गुरु के कुल और गुरु भाई श्रीविट्ठलनाथ जी की स्तुति में हैं। इन पदों से केवल इनके गुरु और गुरुकुल का ही परिचय मिलता है। अपनी जाति, कुल, कुटुम्ब आदि के विषय में कवि ने स्वयं कुछ नहीं कहा।

कुम्भनदास

श्री वल्लभाचार्य जी और उनके पुत्र और अपने गुरुभाई श्री विट्ठलनाथ जी के बधाई के पदों को कुम्भनदास आदि भक्तकवि, आचार्य जी और गुसाँई जी के जन्म दिवसों पर गाया करते थे। कुम्भनदास जी के निम्नलिखित पद में आचार्य जी की बधाई के अन्तर्गत, उनके बाल-रूप का वर्णन है—

इलम्म[2] श्री वल्लभ लालहि झुलावे।
लाल झुलावे मन हुलसावे प्रमुदित मगल गावे।

1—माधो या घर बहुत धरी
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन के प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान।
तो सब औघड़ पथिहि होतो कथत गमैंरा ज्ञान।
बारह बरस को भयो दिगम्बर ज्ञानहीन सन्यासी।
खान पान घर घर सबहिन के भस्म लगाय उदासी।
पाखण्ड दम्भ बढ्यो कलियुग में, श्रद्धाधर्म भयो लोप।
परमानन्द वेद पढ़ बिगर्यो का पर कीजै कोप।
खो० नि०, परमानन्द पद स०, पद न ४८३।

2—इलम्मा—श्री वल्लभाचार्य जी की माता का नाम था।

गृह कर डार पाटकी करसों मन ही मन हुलसावे।
कुम्भन प्रभु की छवि निरखत ब्रज-जन मंगल गावे।[1]

इस पद की अन्तिम पंक्ति से इलम्मा के पुत्र वल्लभलाल के प्रति कवि का स्वामि-भाव प्रकट होता है।

आचार्य जी की बधाई के अतिरिक्त कुम्भनदास ने श्री विट्ठलनाथ जी की बहुत प्रशंसा की है और उनके रूप में अपने इष्ट भगवान् कृष्णचन्द्र का ही रूप देखा है—

प्रकटे श्री विट्ठलेश लाल गोपाल।
कलियुग जीव उधारन कारन सत जनन प्रतिपाल।
द्विज कुल मंडन तिलक तैलंग श्री वल्लभ कुल जो अति रसाल।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन घर नित्य उठ नेह करत ब्रज बाल।[2]

कृष्णदास

कृष्णदास ने भी अन्य भक्त कवियों की तरह आत्म-चारित्रिक उल्लेख अपनी रचना में नहीं किये। उनके पदों से उनकी भक्ति का परिचय अवश्य मिलता है। कुछ पदों में उन्होंने अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य[3] जी, गुरुभाई श्रीविट्ठलनाथ जी[4]

१—लेखक के निजी, कुम्भनदास पद संग्रह से, पद नं० ६४।
२—लेखक के निजी, कुम्भनदास पद संग्रह से, पद नं० ६६।
३— राग आसावरी-चचरी ताल।

अहो माई काहे को इन लोगनि बरजत,
भावे सो कहन देउ किन मित्र हू कहा कलियुग ही लरजत।
× × ×
अङ्कुर कबहुँ न होय धान के जो बोइये बवट के बरजत,
कृष्णदास गिरधर के द्वारे श्रीवल्लभ पद रज बल गरजत।

ले० नि०, कृष्णदास पद सं०, पद नं० ४५।

४— जय जय श्रीवल्लभ नन्दन,
सुर नर मुनि जाकी पद रज वन्दन।
मायावाद किये जु निकन्दन,
नाम लिये काटत भव फन्दन।
प्रकट पुरुषोत्तम चरचित चन्दन,
कृष्णदास गावत श्रुति छन्दन।

ले० नि०, कृष्णदास पद सं०, पद नं० १३२।

तथा राग विभास।
श्रीविट्ठलनाथ बसत जिय जाके ताकी रीति प्रीति छवि न्यारी।

ले० नि०, कृष्णदास पद सं०, पद नं० १६०।

तथा गुसाईं जी के सात[1] पुत्रों की महिमा का गान भी किया है।

नन्ददास के वंश, कुल, जाति, जन्म-स्थान आदि के विषय में अब तक के उनके उपलब्ध ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। अपने शिक्षा-गुरु के विषय में भी उन्होंने कुछ नहीं कहा है। साम्प्रदायिक गुरु श्री विट्ठलनाथ जी, ब्रज प्रेम और यमुना जी की महिमा में उन्होंने अनेक पद लिखे हैं—

नन्ददास

राग विभास

प्रात समें श्री वल्लभ सुत को, वदन कमल को दर्शन कीजे।
तीन लोक वन्दित पुरुषोत्तम, उपमा काहि (जो) पटतर दीजे॥
श्रीवल्लभ सुत कुल उदित चन्द्रमा, लखि छबि नैन चकोरन पीजे।
'नन्ददास' श्री वल्लभ सुत पर, तन मन धन न्योछावर कीजे॥[2]

उपर्युक्त पद से नन्ददास की गुरु भक्ति तथा वल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के गुरु होने का परिचय मिलता है।

और भी—

राग रामकली

श्री वल्लभसुत के चरण भजो।
नन्द सुकुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करन भजो।
× × ×
पुष्टि मर्याद, भजन सुख सीमा, निज जन पोषन करन भजो।
'नन्ददास' प्रभु प्रकट भए दोउ, श्री विट्ठलेश गिरधरन भजो।[3]

१— जै श्रीवल्लभनन्दन गाऊँ,[1]
श्रीगिरधरन[1] सदा सुखदायक श्रीगोविन्द[2] सिर नाऊँ।
बालकृष्ण[3] बालक सङ्ग विहरत, गोकुलनाथ[4] लड़ाऊँ,
श्रीरघुनाथ[5] प्रताप विमल जसु श्रवनन सदा सुनाऊँ।
गोकुल में यदुनाथ[6] विराजत, लीला पार न पाऊँ,
कृष्णदास को करो हो कृपा, घनश्याम[7] चरण लपटाऊँ।
ले० नि०, कृष्णदास पद सं० से, पद नं० ११३।

इन सात 'बालकन' की बधाई के अन्य पद भी कृष्णदास के उपलब्ध हैं। जैसे कीर्तन संग्रह, भाग २, बसन्त धमार पृ० १८१, लल्लू भाई छगनलाल देसाई।

२—'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३४१, तथा पुष्टिमार्गीय पद संग्रह, भाग ३, पृ० ६, संग्रह-कर्त्ता वैष्णव ठाकुरदास सूरदास।

३—पुष्टिमार्गीय पदसंग्रह, पृ० ७, संग्रहकर्त्ता वैष्णव ठाकुरदास सूरदास।

इस पद में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि-नन्ददास जी पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के थे और उनकी भक्ति विट्ठलनाथ जी के सिवाय उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर जी में भी थी, जिनका जन्मकाल संवत् १५९७ माना जाता है। नन्ददास ने उक्त पद में इनकी भी बन्दना की है।

और भी— राग विभास।

प्रात समय श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ।
सुन्दर सुभग वदन गिरधर को, निरखि निरखि मैं दृगन सिराऊँ।
मोहन मधुर वचन श्रीमुख के श्रवननि सुनि सुनि हृदय बसाऊँ।
तन मन प्रान निवेदन करिके सकल अपुनपौ सुफल कराऊँ।
रहौं सदा चरनन के आगे महा प्रसाद सो जूठन पाऊँ।[1]

उपर्युक्त पद से विट्ठलनाथ जी के प्रति अनन्य भक्ति के अतिरिक्त यह भी विदित होता है कि नन्ददास जी श्री विट्ठलनाथ जी के पास ही रहा करते थे और उनके कृपा-पात्र थे; यथा, 'रहौं सदा चरनन के आगे महाप्रसाद सों जूठन पाऊँ।'

अपने व्रज-प्रेम के विषय में कवि ने एक पद में कहा है—

जो गिरि रुचै तो बसो श्री गोवर्धन, ग्राम रुचै तो बसो नन्दगाम।
नगर रुचै तो बसो श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम।
सरिता रुचै तो बसो श्री यमुना तट, सफल मनोरथ पूरन काम।
'नन्ददास' कानन रुचै तो बसो भूमि बृन्दावन धाम।[2]

व्रज के स्थानों में वृन्दा-विपिन, गोकुल और नन्दगाँव नन्ददास को बहुत प्रिय थे। इस बात का प्रमाण उनके अनेक पदों में मिलता है—

नन्दगाँव नीको लागत री
प्रात समय दधि मथत ग्वालिनी, विपुल मधुर धुनि गावत री।
× × ×
जहाँ बसत सुरदेव महामुनि एको फल नहि लागत री।
नन्ददास प्रभु-कृपा को इहि फल गिरिधर देखि मन जागत री।[3]

१—पृष्ठ ४३१ 'नन्ददास', शुक्ल, भाग २।

२—इस पद के विषय में '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में उल्लेख है कि नन्ददास ने अपने बड़े भाई महात्मा तुलसीदास को यह पद उनके एक पत्र के उत्तर में लिख कर दिया था, जिसमें उन्होंने अपनी व्रजभक्ति का परिचय दिया था।

३—पृ० ४०३ 'नन्ददास', शुक्ल, भाग २।

जमुने जमुने जो गाँवो ।
सेस सहस मुख गावत निश दिन पार नहीं पावत ताहि पावौ ।
सकल सुख देन हार ताते करो उचार कहत हों बार बार भूलि जिन जानौ ।
'नन्ददास' की आस जमुने पूरण करी ताते कहूँ घरी घरी चित लावौ ।[1]

भाग्य सौभाग्य जमुना जो देरी ।
बात लौकिक तजे पुष्टि यमुना भजे, लालगिरधरन को ताहि वर मिले री ।
भगवती सङ्ग करि बात उनकी ले सदा सन्निद्ध रह केलि में री ।
'नन्ददास' जो जाहि वल्लभ कृपा करें ताके यमुना सदा वश जो रहे री ।[2]

उपर्युक्त दो पदों मे श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है । नन्ददास की कृष्ण-भक्ति तो उनके पदों तथा और ग्रन्थों म प्रत्यक्ष तथा सर्वविदित है, पर कुछ पदों में उन्होंने भगवान् के रामरूप में भी अपनी आस्था प्रकट की है ।[3]

अपने कुछ ग्रन्थों में नन्ददास ने अपने एक रसिक[4] मित्र का उल्लेख किया है,

---

१—नन्ददास की वार्ता, हस्तलिखित तथा पाठ-भेद से, 'नन्ददास', शुक्ल, भाग २, पृ० ४२६ ।

२—'नन्ददास', शुक्ल, ४३० ।

३— रामकृष्ण कहिए उठि भोर ।
ओहि अवधेश ओही ब्रज जीवन धनुषधरन औ' माखन चोर ।
× × ×
इतमें चरण अहिल्या तारी, उत कुब्जा सों कियो है किलोल ।
इतमें जानकी बायें बिराजें उत राधे सङ्ग युगलकिशोर ।
× × ×
इतमें राज विभीषण दीनो, उग्रसेन कियो अपनी ओर ।
नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथ सुत बाबा नन्दकिशोर ।
(पाठान्तर से, 'राग कल्पद्रुम' तथा प० जवाहरलाल जी का पद संग्रह ।)

४—परम रसिक इक मित्र मोहिं तिन आग्या दीनी,
ताही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी । (रास पञ्चाध्यायी)
'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १२७ ।

एक मीत हमसों अस गुन्यौ, मैं नाइका भेद नहिं सुन्यो ।
× × ×
रस मञ्जरी अनुसारि कै नन्द सुमति अनुसार,
बरनत बनिता भेद जहँ, प्रेम सार बिस्तार । (रसमञ्जरी)
'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३६।४० ।

और लिखा है,—"इसी मित्र की आज्ञा से अथवा उसके कहने से मैं ग्रन्थ-रचना कर रहा हूँ।" इस मित्र का नाम स्पष्ट रूप से उन्होंने कहीं नहीं दिया है। 'दशम स्कन्ध' भी कवि ने अपने इसी मित्र के कहने से लिखा था। 'दशम स्कन्ध', 'अनेकार्थ' और 'नाममाला' ग्रन्थों में कवि के कथन से ज्ञात होता है कि उसे संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। मित्र के लिए तथा अन्य उन सज्जनों के लिए जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान न था, कवि ने 'दशम स्कन्ध' और 'नाममाला' की हिन्दी में रचना की।[1] 'दशम स्कन्ध भागवत' के बहुत से अध्यायों के आरम्भ में कवि अपने इस मित्र को सम्बोधन करता है। जैसे—"अब अष्टम अध्याय सुनि मित्र, नाम करन मन हरन पवित्र", वल्लभसम्प्रदायी अष्टकवि तथा अन्य पुष्टिमार्गीय वैष्णव उनके समकालीन मित्र तो थे ही, परन्तु इस रसिक मित्र का उल्लेख कवि ने कई स्थानों पर विशेष रूप से किया है। अष्टकवियों में यह मित्र नहीं हो सकता। क्योंकि वह रसिक मित्र संस्कृत का ज्ञाता नहीं है और वह कृष्ण-भक्ति के रहस्य को जानने के लिए भी उत्सुक है। पुष्टिमार्गीय अष्टकवि सभी विद्वान थे और वल्लभसम्प्रदायी मार्ग के पूर्ण ज्ञाता थे।

'रूपमञ्जरी' ग्रन्थ में कवि ने रूपमञ्जरी की एक सहेली का ज़िक्र किया है। ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह सहेली 'इन्दुमती' स्वयं नन्ददास ही हैं। वाह्य आधारों से ज्ञात होता है कि रूपमञ्जरी एक अति सुंदरी कृष्ण-भक्तिनी थी। इससे नन्ददास की बहुत

१—'दशम स्कन्ध' के आरम्भ में कवि कहता है—

परम विचित्र मित्र इक रहे, कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहे।
तिन कहि दशम स्कन्ध जो आहि, भाषा करि कछु बरनों ताहि।
सबद संस्कृत के हैं जैसे, मो पै समुझि परत नहिं तैसे।
ताते सरल सुभाषा कीजे, परम अमृत पीजे सुख जीजे।
तासों नन्द कहत है तहाँ, अहो मित्र एती मति कहाँ।
जामें बडरे कवि जन अरुझे, ते वे अजहूँ नाहिन सरुझे।
तहाँ हौं कवन निपट मति मन्द, बौना पहिं पकरावहि चन्द।
अरु जु महामति श्रीधर स्वामी, सब ग्रन्थन को अन्तरजामी।
तिन कही यह भागवत ग्रन्थ, जैसे दूध उदधि को मन्थ।

× × ×

तिहि मधि हौं केहि विधि अनुसरौं, क्यों सिद्धान्त रतन उद्धरौं।
मित्र कहत है तो यह ऐसे, अहो नन्द तुम कहत हो जैसे।
ए पर जथासक्ति कछु कीजे, अमृत की एक बुन्दहि दीजे।

पाठ भेद से 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ११६

मित्रता थी। सम्भव है कि यही रूपमञ्जरी कवि का रसिक मित्र हो। इस विषय में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

श्री चतुर्भुजदास जी ने गुरु-महिमा तथा आचार्य-कुल की बधाई के अतिरिक्त अपने तथा अपनी रचना के विषय में और कोई उल्लेख अपने पदों में नहीं किया। इनके विषय में जो वृत्तान्त इनके पदों से ज्ञात होता है, नीचे दिया जाता है।

चतुर्भुजदास

निम्नलिखित पद में कवि ने श्री वल्लभाचार्य जी, अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी तथा उनके सातों पुत्रों की स्तुति करते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया है। इस पद से यह भी सिद्ध होता है कि कवि श्री घनश्याम जी के जन्म समय सम्वत् १६२८ वि० तक जीवित था—

श्री वल्लभ सुजसु सन्तत नित्य गाऊँ।
मन क्रम बचन छिनु एक न बिसराऊँ।
पुरुषोत्तम अवतार सुकृत फल फलित जगत वन्दन श्री विट्ठलेश दुलराऊँ।
परसि पदकमल रज निरखि सौंदर्य-निधि प्रेम पुलकित कलह कोटिक नसाऊँ।
श्री 'गिरिधरन' देव पति मान मर्दन करन घोष रच्छक सुखद लीला सुनाऊँ।
श्री 'गोविंद' ग्वाल संग गाय ले चलत बन रसिक रचना निरखि नैनन सिराऊँ।
श्री 'बाल कृष्ण' सदा सहज बालक दसा कमल लोचन सुहित रुचि बढाऊँ।
भक्ति मारग सुदृढ़ करन गुन रासि ब्रज मण्डन श्री 'गोकुल नाथहि' लड़ाऊँ।
श्री 'रघुनाथ' धर्म धुरन्धर शोभासिन्धु रूप लहरीनि दुख दूर बहाऊँ।
पतित उद्धरन महाराज श्री 'यदुनाथ' विशद अम्बुज हाथ सिर परसाऊँ।
श्री 'घनश्याम' अभिराम रूप बरषा स्वाँति आस ज्यों रस चातक रटाऊँ।
चतुर्भुजदास प्रभु परचो द्वारे प्राणपति को सकल कुल चरणामृत भोर उठि पाऊँ।[1]

एक पद में कवि कहता है,—"जब से मैंने श्री विट्ठलनाथ जी को नेत्र भर कर देखा है, तभी से मेरे मन की सब अभिलाषाएं पूर्ण होगई हैं। उनकी शरण में बिना आए सब दिन व्यर्थ ही गये। हे सब सुख के निधान श्री विट्ठलनाथ जी! आप अपनी कृपा मेरे ऊपर सदैव रखिये।"[2] एक और पद में उन्होंने अपने गुरू विट्ठलनाथ जी तथा श्रीकृष्ण

१—लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ६१।

२— श्री विट्ठलनाथ नैनन भरि देखे।
पूरे मनोरथ भए सब कछु हुती जु जीय आपेखे।
श्री वल्लभ सुत सरन बिना यह लों दिन गए अलेखे।
दास चतुर्भुज प्रभु सब सुख निधि रहिए कृपा विशेषे।
लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पद सं० से, पद नं० ६७।

भगवान् को एक ही रूप करके देखा है। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं कलियुग के जीवों का उद्धार करने के लिए श्री विट्ठल नाथ जी के रूप में शरीर धारण किया है। उन्होंने लोगों को भक्ति, सेवा-प्रकार और भगवान् के युगल-रूप की लीला का अनुभव सिखाया है।[1]

निम्नलिखित पद कवि ने गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के गोलोकवास पर शोक प्रकट करते हुए लिखे हैं, इन से ज्ञात होता है कि चतुर्भुजदास का निधन गुसाँई जी के निधन-समय, सं० १६४२ के बाद हुआ था।

फिर ब्रज बसहु श्री विट्ठलेस।
कृपा करि दरसन दिखावहु वे लीला वे वेस।
सङ्ग ग्वाल 'रु गाय गोकुल गाउ करहु प्रवेस।
नन्दराय ज्यों विलसवो सम्पति, बहु उदास नरेस।
भक्ति मारग प्रगट करि कलि जननि देहु उदेस।
रच्यो रास विलास वेस गिरि गोप धन देस।
वदन इन्दु ते विमुख नैन चकोर तपत विसेष।
सुधा पान कराय मेटो विरह को लवलेस।
श्री वल्लभ-नन्दन दुःख-निकन्दन सुनहु सुचित सन्देस।
चतुर्भुज प्रभु या घोष कुल को हरहु सकल कलेस।[2]

श्री विट्ठलनाथ से प्रभु भए न ह्वैहैं।
पाछें सुने न देखे आगे वह सङ्ग फिर न बनैहैं।
मानुप देह धरि भरि भक्ति हेत कलिकाल जनम को लैहैं।
को फिर नन्दराय को वैभव ब्रजवासिन विलसैहै।

1— श्री विट्ठलनाथ गोकुल भूप।
भक्त हित कलियुग कृपा करि धरे प्रकट स्वरूप।
सकल धर्म धुरन्धर हरि भक्ति निज दृढ़ जूप।
चरण अम्बुज सिरसि परसत सोष कर अन्ध कूप।
आपु ही सेवा सिखावत, सकल रीति अनूप।
भोग राग सिंगारु नाना चरिचि दीप अरु धूप।
चतुर्भुज प्रभु गिरधरन युग वपु लीला अनूप।
नन्दनन्दन श्री वल्लभनन्दन एक मन द्वै रूप।
लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ६१।

२—लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ७०।

को कृतज्ञ करुना सेवक तन कृपा सुदृष्टि चितैहै।
गाय ग्वाल सॅग लैकै को फिरी गोकुल गाँव बसैहै।

× × ×

भूषन बसन गोपाल लाल के को सिंगार सिखैहै।
को आरती वारि श्री मुख पर आनँद-प्रेम बढ़ैहै।
मथुरा मंडल खग मृग कौ को महिमा कहि बरनैहै।
कौ वृन्दावन चन्द कौ गोविन्द को प्रकट स्वरूप बढ़ैहै।

× × ×

श्री वल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोऊ पछितैहै।
चतुर्भुजदास आस इतनी जो सुमिरन जनमु जनमु सिरैहै।[1]

उपर्युक्त उल्लेखों के अतिरिक्त कवि ने विनय के पदों में[2] श्री गिरिधर लाल के सदैव निकट रहने की कामना कई स्थलों पर प्रकट की है जिनसे कवि की भक्ति की गहनता का परिचय मिलता है—

गोविन्ददास (स्वामी) निम्नलिखित पद में गोविन्द स्वामी ने श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की महिमा गाई है—

राग नट

जो पै श्री विट्ठल रूप न धरते।
तो कैसेक घोर कलियुग के महापतित निस्तरते।

१—लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ७१।
२— करत हो सबै सयानी बात।

× × ×

चतुर्भुजदास प्रभु गिरिधरन लाल सङ्ग सदा बसों दिन रात।
लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० १०८।
श्याम सुन्दर प्राण प्यारे छिन जिन होउ न्यारे।
नेक की ओट मीन ज्यों तलफत, इन नैनन के तारे।
मृदु मुसिकान बंक अवलोकनि अरु चलत सहज में सुढारे।
चत्रभुज प्रभु गिरधर बानिक पर, कोटिक मन्मथ वारे।
लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पद सङ्ग्रह से, पद नं० ७८।

निम्नलिखित पद में गोविन्द स्वामी ने अपने गुरु श्रीविट्ठलनाथ जी के पिता श्री वल्लभाचार्य के ईश्वर रूप की महिमा उनकी भक्ति और सेवा प्रकार तथा गोस्वामी जी के सात पुत्रों की महिमा का वर्णन किया है। इस पद से यह भी सिद्ध होता है कि गोविन्द स्वामी सम्वत् १६२८ वि०, गुसाँई जी के सातवें पुत्र श्रीघनश्याम जी के जन्म समय तक जीवित थे।

राग बिलावल

श्रीवल्लभ सुख कारी, पुरुषोत्तम लीला अवतारी।
काल अकाल त न्यारे रस निधि प्रेमभक्ति प्रति पारे।

छन्द

प्रेम भक्ति पुष्टि मर्याद सीमा, श्रवण कीर्तन रमना।
युगल चरण सेवा नित अर्चन, प्रीत पूर्वक बदना।
दासत्व सख्य सदा निवेदन, अखिल आनन्द धारी।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण, श्रीवल्लभ सुखकारी।

युगल रसिक सिर मोर, नव नागर नृप नन्द किशोरे।
वेद परम रुचि राजे, गिरिधर टहल महल बिच साजें।

छन्द

साजे जु टहल महल निरतर नृपति निज जन कारनें।
शृंगार भोजन सुमन शय्या, ललित गिरवर धारनें।
गुन गान नित्य सुतान मानों, अंश सामल गोरें।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण युगल रसिक सिर मोरें।
गुण निधि श्री 'गिरिधारी', पूरण पुरुषोत्तम भक्त हितकारी।
करुणा किये पति परम उदार, अवलोकित गुण पतित उद्धार।

छन्द

पतित उद्धारन विश्व तारन सकल सुरनर सेवई।
गुन गाय 'गोविंदराय', राजा, 'बालकृष्ण' सुदेवई।
भये श्री 'वल्लभराय, 'रघुपति,' श्री 'यदुपति' 'सामल घन'।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण गुण-निधि श्री गिरिधरन।[1]

---

[1] वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह, भाग दो, लल्लूभाई छँगनलाल देसाई, पृ० २१०।

उपर्युक्त आत्मचारित्रिक उल्लेखों के अतिरिक्त और कोई उल्लेख अपने जीवन तथा रचना के विषय में कवि ने अपने पदों में नहीं किया।

छीतदास (स्वामी) अन्य अष्टछाप कवियों की तरह छीत स्वामी जी ने भी उन पदों में जो हमें उपलब्ध हुये हैं, अपना कोई महत्वपूर्ण परिचय नहीं दिया है। उन्होंने कुछ पदों में अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी की तथा व्रज की महिमा, श्री वल्लभाचार्य जी की स्तुति और गोस्वामी जी के सात पुत्रों की बधाई का गान किया है। इन पदों से कवि की गुरु-भक्ति तथा उसकी जीवन-स्थिति का कुछ परिचय अवश्य मिलता है।

निम्नलिखित पद में कवि ने अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी की महिमा का कथन करते हुए कहा है,—"*मैं इस संसार-सागर में बहा जाता था, श्री गुसाँई जी ने मेरा उद्धार किया।*"

राग गौरी

हौं चरनातपत्र की छैयाँ
कृपा सिन्धु श्री वल्लभनन्दन बह्यो जात राख्यो गहि बैयाँ।
*नव नख चद्र सरद मण्डल छबि हरति ताप सुमरति मन मैयाँ।**
छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल सुजस बखान सकति सुति नैयाँ।[1]

निम्नलिखित पद में कवि ने उल्लेख किया है,—"मैं श्री विट्ठलनाथ जी को छलने के लिए आया था। उस समय मेरे मन में अभिमान बैठा हुआ था, परन्तु गुसाँई जी ने मुझे देखते ही अपना लिया।"

राग बिहाग

भई अब गिरिधर सों पैंचान
कपट रूपधरि छलिवे आयो पुरुषोत्तम नहि जान।
*छोटो बड़ो कछू नहि जान्यौ छाइ रह्यो अभिमान।**
छीत स्वामी देखत अपनायो विट्ठल कृपा निधान।[2]

१—लेखक के निजी छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ४१।
* (पाठा०) नव नख चन्द्र शरद राका ससि हरत ताप सुमिरत मनमहियाँ।
२—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ४६।
* पाठा०—अज्ञान

यह पद 'अष्ट सखान की वार्ता' के अन्तर्गत छीतस्वामी की वार्ता में भी दिया हुआ है और इस पद में कहे हुये कवि के 'छल' की कथा भी इस वार्ता में है। इसी प्रकार—

राग रामकली

श्री वल्लभ तन मन, श्री वल्लभ सर्वस्व में,
पाये श्री वल्लभ प्रभु चिंता मणि मेरे।
श्री वल्लभ मम ध्यान, ज्ञान श्री वल्लभ बिन भजु न.,
आन श्री वल्लभ है सुख निधान प्राण जीवन केरे।[1]

और 'जय जय श्री वल्लभ नन्द'[2] आदि कई पदों में उन्होंने आचार्य श्री वल्लभ प्रभु और गुसाँई श्री विट्ठलनाथ जी की स्तुति की है।

निम्नलिखित पद में छीतस्वामी ने गोस्वामी जी के सात पुत्रों की बधाई गाई है :—

रागदेव गन्धार

बिहरत सातों रूप धरैं।
श्री 'गिरिधर' श्री वल्लभ नंदन, द्विज कुल भक्ति बरैं।
श्री 'गिरिधर' राजाधिराज ब्रजराज उदोत करैं।
श्री 'गोविंद' इन्दु जग किरननि, सींचत सुधा धरैं।
'बालकृष्ण' लोचन बिसाल लखि मन्मथ कोटि टरैं।
गुण लावण्य दयालु कृपानिधि 'गोकुलनाथ' भरैं।
श्री 'रघुपति' 'जदुपति' 'घनसावल' मुनिजन सरन परैं।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल जिहि भजि अधम तरैं।[3]

निम्नलिखित पद में कवि ने अपने ब्रज-प्रेम का वर्णन किया है :—

राग गौरी

अहो विधिना! तोपै अँचरा पसारि माँगौं जनम जनम दीजो मोहि याही ब्रज बसिबो।
अहीर की जाति समीप नन्दघर, हेरि हेरि स्याम सुभग घरी घरी हँसिबो।
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिन झकझोरन अंग अंग को परसिबो।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल सरद रैन रस रास बिलसिबो।[4]

१—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० २१।

२—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० २३।

३—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ३६।

४—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० २३।

निम्नलिखित पद में कवि ने अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी में अनन्य भक्ति प्रकट की है और यह भी कहा है कि श्री विट्ठलनाथ की शरण में आने के बाद 'कासी' जाकर अब क्या करूँ। नागरीदास ने छीतस्वामी को वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले "शैव" लिखा है। 'कासी' जाने के उल्लेख से यह ध्वनि निकलती है कि अब काशी विश्वनाथ की उपासना से कवि को कोई प्रयोजन नहीं, जब उसे आत्मतुष्टि गो० विट्ठलनाथ जी के उपदेश से ही मिल गई। नागरीदास जी के कथन की पुष्टि, किसी हद तक, इस पद से की जा सकती है—

राग नट

हम तो विट्ठल नाथ उपासी।
सदा सेउँ श्री वल्लभ नंदन जाइ करों कहा कासी।
इन्हें छाँड़ि जो औरे धावे सो कहिये असुरासी।
छीत स्वामी गिरधरन श्री विट्ठल, बानी निगम प्रकासी।[1]

ख—प्राचीन बाह्य आधार अष्टछाप कवियों के जीवनचरित्र तथा रचना का परिचय देनेवाले प्राचीन बाह्य आधारभूत ग्रन्थों में मुख्य निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

१—भक्तमाल।
२—भक्तमाल पर प्रियादास की तथा अन्य टीकाएँ (रामरसिकावली, महाराज रघुराजसिंहकृत, भक्त विनोद, कवि मियाँसिंह-कृत।)
३—भक्त नामावलि।
४—८४ वैष्णवन की वार्ता।
५—२५२ वैष्णवन की वार्ता।
६—अष्टसखान की वार्ता।
७—श्री गुसाईं जी के सेवकन की वार्ता।
८—चौरासी भक्त नाममाला, सन्तदास-कृत।
९—वल्लभ दिग्विजय।
१०—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम।
११—निजवार्ता, घरु वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र।
१२—श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता।
१३—श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता।
१४—श्री गिरधरलाल जी महाराज के १२० वचनामृत।
१५—नागर-समुच्चय।
१६—आइने अकबरी।
१७—मुन्तखिब उलतवारिख।
१८—मुन्शियात अब्दुलफ़ज़ल।
१९—मूल गुसाईं चरित।
२०—व्यास-वाणी।

१—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद सं० ४२।

इस ग्रन्थ की रचना सं० १६८० विक्रमी के लगभग हुई। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास जी अष्टछाप-कवियों के समकालीन रामोपासक भक्त थे, उन्होंने अपने समय के पूर्ववर्ती तथा समकालीन भक्तों के गुण-गान किये हैं। नाभादास जी ने जो वृत्तान्त इस ग्रन्थ में दिये हैं, वे बहुत अपूर्ण और केवल भक्तों की महिमा-सूचक हैं; फिर भी हिन्दी के भक्त कवियों का जो कुछ भी वृत्तान्त इस ग्रन्थ में दिया हुआ है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ को हिन्दी के सभी विद्वानों ने प्रामाणिक माना है।

भक्तमाल

अष्टछाप के भक्त, सूरदास के समकालीन तथा उनके समय से कुछ आगे-पीछे सूर नाम के अन्य भक्त कवि भी हो गये हैं। इन कई 'सूर' भक्तों का विवरण नाभादास जी ने भी अपने भक्तमाल ग्रन्थ में दिया है जो संक्षेप में यहाँ दिया जाता है।

बिल्वमङ्गल सूरदास—नाभादासकृत भक्तमाल में बिल्वमङ्गल सूरदास के विषय में लिखा है,—"बिल्वमङ्गल जी कृष्ण के परम कृपापात्र मङ्गलस्वरूप हैं। उन्होंने 'श्रीकृष्ण करुणामृत' नामक ग्रन्थ अनुच्छिष्ट रूप में लिखा है। यह ग्रन्थ रसिक जनों का जीवन है। भगवान् ने एक बार इनको अपना हाथ पकराया और फिर छुटा लिया, तब इन्होंने कहा कि हे भगवान्! आप हाथ से चले गये तो क्या हुआ हृदय से आप जायँ तब जानूँ। चिन्तामणि वेश्या के सङ्ग से इनकी लौकिक विषय से विरक्ति हुई और फिर उन्होंने ब्रज-बधुओं की केलि का अद्भुत वर्णन किया।"[1]

नाभादास जी के उपर्युक्त वृत्तान्त पर, प्रियादास ने भी, इनके जीवन की कुछ घटनाएँ बढ़ाकर, इनका परिचय दिया है। वे कहते हैं—कृष्णा वेणा नामक नदी के तट पर ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। ये चिन्तामणि वेश्या के प्रेम में एक बार फँस गये। एक दिन अपने पिता के श्राद्ध के कारण ये अपनी प्रेमिका से दिन भर अलग रहे। रात्रि

नोट—नन्ददास के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले निम्नलिखित ग्रन्थ, सोरों, ज़िला एटा में पण्डित गोविन्दवल्लभ भट्ट जी के पास हैं। इन ग्रन्थों को हिन्दी के विद्वानों ने सन्देह की दृष्टि से देखा है। लेखक ने भी एक बार इन ग्रन्थों को देखा था। ग्रन्थों की फिर से जाँच करने के लिए प्रयत्न करने पर भी, वे लेखक को नहीं मिल सके। इसलिए इन ग्रन्थों से सम्बन्धित नन्ददास विषयक सूचना तथा ग्रन्थों का परिचय, इस पुस्तक के परिशिष्ट भाग में दिया जाता है। इस सामग्री पर, बिना फिर से परीक्षा किये, निर्णय देना लेखक उचित नहीं समझता।

ग्रन्थः—१. रत्नावली चरित। २. रत्नावली दोहा-संग्रह। ३ सूकर-क्षेत्र-माहात्म्य। ४. वर्ष फल। ५. रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति।

१—भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३७३।

को उमड़ती हुई सरिता को एक मुर्दे के सहारे पार कर चिन्तामणि के घर पहुँचे। वहाँ द्वार बन्द था। घर पर लटके हुये एक सर्प को पकड़कर ये अटारी पर चढ़ गये। चिन्तामणि से मिलने पर, उसके भर्त्सनापूर्ण प्रबोधन से इनका मोह छूटा। ये तुरन्त वहाँ से चल दिये और भटकते-भटकते एक महात्मा सोमगिरि के शिष्य हो गये। यहीं पर भक्ति भाव इनके हृदय में जाग्रत हुआ। एक बार मोह की प्रबलता में ये फिर फँस गये और एक रूपवती स्त्री पर आसक्त हो गये। वहाँ भी इन्हें भर्त्सना और प्रबोध मिले। उसी समय इन्होंने 'सूजे' से, लोक-रूप में फँसनेवाली अपनी दोनों आँखें फोड़ डालीं, और कृष्ण का स्मरण करते हुए घूमने लगे। उसी समय एक वन में इनका हाथ कृष्ण ने पकड़ा था। फिर ये वृन्दावन में रहने लगे तथा युगल स्वरूप की उपासना करने लगे। एक बार चिन्तामणि वेश्या प्रेम से खिंचकर इनके पास आई और वह इनके प्रभाव से अपने पूर्व-कृत्यों का प्रायश्चित्त कर भक्ता बन गई।[1]

सूरजदास—'भक्तमाल,' छप्पय नं० ३६, में नाभादास जी ने एक सूरजदास भक्त का विवरण दिया है। इनके विषय में उक्त छन्द में लिखा है कि 'सूरज भक्त,' कृष्णदास पयहारी के के शिष्य थे और श्री सीताराम के उपासक भक्त थे।"[2] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[3] में सूरजदास-कृत दो ग्रन्थों के नाम, 'रामजन्म' तथा एकादशी, माहात्म्य' दिये हुये हैं। सम्भव है कि ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य तथा रामोपासक भक्त कवि के ही द्वारा रचित हों। इन ग्रन्थों पर आगे विचार किया जायगा। भक्तमाल के छप्पय नं० ६८ में भी एक और सूरज नाम के भक्त का उल्लेख हुआ है।

सूरदास मदनमोहन—भक्तमाल में सूरदास मदनमोहन का उल्लेख छप्पय नं० १२६ में हुआ है। इनके विषय में नाभादास जी कहते हैं,—"इनके सूरदास नाम के साथ 'मदनमोहन' का अटल बन्धन बँधा हुआ है। ये गान विद्या तथा काव्यरचना में अत्यन्त प्रवीण हैं और सबके साथ सुहृद्भाव रखनेवाले हैं तथा सहचरी राधा जी के अवतार

१—भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३७४-३८३।

श्रीवल्लभाचार्य जी के जीवन-वृत्तान्त के साथ वैष्णव वार्ताओं तथा 'वल्लभ-दिग्विजय' ग्रन्थ में, एक द्राविड़ देशीय बिल्वमङ्गल का उल्लेख है। काँकरौली में लेखक को ज्ञात हुआ कि गुजरात में भी अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त एक और सूर के गुजराती तथा ब्रज-भाषा-मिश्रित पद प्रचलित हैं। तथा, 'काँकरौली का इतिहास' नामक पुस्तक के पृ० ४० फुटनोट पर, तीन बिल्वमङ्गल नाम के सूरभक्तों का उल्लेख है।

२—भक्तमाल छन्द नं० ३६, भक्ति सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३१४।

३—ना० प्र० स० खो० रि०, सन् १६१७:१६ ई०, नं० १८७ ए तथा नं० १८७ बी।

हैं। ये राधाकृष्ण के उपासक और रासरस के अधिकारी हैं। नवरसों में से आपने शृङ्गार रस का विशेष गान किया है, इनकी कविता चारों ओर विख्यात है।"[1]

नाभा जी के इस वृत्तान्त पर प्रियादास जी टीका करते हैं,—"यद्यपि इनके नेत्र थे, जो कमलदल के समान सुन्दर थे, फिर भी आपका नाम सूरदास था। ये दिल्लीपति की ओर से लखनऊ के निकटवर्ती स्थान सण्डीले के अमीन थे। ईश्वर में इनकी विशेष प्रीति थी और ये साधु-सन्तों के बड़े भक्त थे। एक बार इन्होंने बादशाह का तेरह लाख द्रव्य साधुओं को खिला दिया और बादशाह के पास इन्होंने थैलियों में यह पद लिखकर भेज दिया—

तेरह लाख संडीले उपजे, सब साधुन मिलि गटके,
सूरदास मदनमोहन मिलि वृन्दावन को सटके"।[2]

प्रियादास जी आगे लिखते हैं—"जब टोडरमल को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उसने सूरदास मदनमोहन को वृन्दाबन से पकड़वा मँगाया और उन्हें कारागार में डाल दिया। और जब अकबर को यह बात ज्ञात हुई तो उसने उन्हें क्षमा कर दिया और इनकी भक्ति-भावना से वह बहुत प्रभावित हुआ।"[3]

सूरदास मदनमोहन के अनेक पद वैष्णव-कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। नाम इनका भी सूरदास था, परन्तु इनके समस्त पदों में 'सूरदास मदनमोहन' की छाप मिलती है। 'आइने अकबरी' तथा 'मुन्तख़िब उत्तवारीख़' में जिस लखनवी रामदास के पुत्र सूरदास का उल्लेख है और जिसका अकबरी दरबार से सम्बन्ध बताया गया है, लेखक की समझ में, वह यही भक्त सूरदास मदनमोहन हैं। इस विषय में आगे और विचार किया जायगा।

अष्टछाप सूरदास—नाभादास जी ने अष्टछापी सूरदास के जन्म, जन्म-स्थान, वंश, जाति आदि के विषय में कुछ नहीं कहा। उन्होंने केवल एक छप्पय में उनकी भक्ति और काव्य की प्रशंसा की है। वे कहते हैं,—"ऐसा कौन व्यक्ति है जो सूरदास जी के कवित्त को सुनकर प्रशंसा में सिर न हिला दे। उनकी कविता में सुन्दर उक्तियाँ, चोज, अनूठे अनुप्रास और सुन्दर शब्द-चयन है। कविता में आदि से अन्त तक प्रेम के भाव का निर्वाह किया गया है। उनकी कविता में अद्भुत अर्थ-गाम्भीर्य और मुग्धकारी तुक हैं। ईश्वर ने उनको दिव्य-दृष्टि दी है और इनके हृदय में हरि की लीला प्रतिभासित होती है। इन्होंने कृष्ण के जन्म, कर्म, गुण, और रूप सबको अपनी दिव्य दृष्टि से देखा और अपनी रसना से

१—भक्तमाल, छन्द नं० १२६, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ७२१।
२—नागर-समुच्चय, शृङ्गार-सागर पद प्रसङ्गमाला, पृ० २२३।
३—भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ७२२:७२६ तक।

बताया है और कहा है कि 'औली'-निवासी परमानन्द जी के द्वार पर, धर्म की सबल ध्वजा गड़ी हुई है। 'औली' स्थान की स्थिति लेखक को ज्ञात नहीं है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अष्टछाप के परमानन्ददास यद्यपि सन्त और भक्तसेवी थे, परन्तु उनके द्वार पर मर्यादा-धर्म की ध्वजा नहीं फहराती थी, क्योंकि वे पुष्टि-मार्गीय भक्त थे। वार्ता जैसे अधिक विश्वस्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास कुछ समय कन्नौज में अपने पिता के साथ गृहस्थी में रहने के बाद घर से वैराग्य लेकर श्री नाथ जी की शरण में चले आये थे और फिर अपने जीवन के अन्त समय तक वहीं रहे। अष्टछापवाले परमानन्ददास की भक्ति-पद्धति मर्यादा-धर्म की उपेक्षा रखनेवाली भक्ति थी। दूसरे, वे कन्नौज के रहनेवाले थे। इसलिए औली ग्राम निवासी परमानन्ददास अष्टछाप के परमानन्ददास नहीं हो सकते, हाँ, 'भक्तमाल' में कहे हुये परमानन्दों में इनके नाम का साम्य अष्टछापी परमानन्ददास के साथ अवश्य है।

'भक्तमाल' के छप्पय न० ७४ में[1] 'परमानन्द सारङ्ग' का वृत्तान्त इस प्रकार दिया है,—"द्वापर में जैसे गोपियों की रीति थी, उसी प्रकार परमानन्द जी भी कलियुग में प्रेम की ध्वजा हुये। इन्होंने बाल, पौगण्ड और किशोर कृष्ण की गोप लीलाओं का गान किया है। इनके इस कार्य के करने में आश्चर्य ही क्या है क्योंकि ये कृष्ण के पूर्व के सखा ही थे। आपके नेत्रों से प्रेमवारि सदा बहता रहता है और शरीर सदैव प्रेमपुलकित रहता है। इनकी उदार वाणी सदा गद्‌गद रहती है और श्याम शोभा के जल से तन-मन गीला रहता है। इनकी सारङ्ग छाप है। इनका काव्य सुनने मात्र से प्रेम का आवेश उत्पन्न करता है।"

उपर्युक्त वृत्तान्त 'चौरासी वार्ता' में अष्टछापी परमानन्ददास के विषय में दिये हुये वृत्तान्त से मिलता है। नाभादासजी ने 'परमानन्द सारङ्ग' के काव्य की जो विशेषताएँ बताई हैं वे अष्टछापी परमानन्ददास के काव्य में भी मिलती हैं। केवल एक बात नहीं मिलती, वह है 'सारङ्ग छाप।' परमानन्ददास जी के जितने पद उपलब्ध हैं उनमें दो तीन

1—ब्रज वधू रीति कलियुग बिषै, परमानन्द भयो प्रेमकेत।
पौगंड बाल कैसोर गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतो पहिलो जु सखाई।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन।
गद्‌गद गिरा उदार स्याम शोभा भीज्यौ तन।
सारङ्ग छाप ताकी भई, श्रवण सुनत आवेस देत।
ब्रज वधू रीति कलियुग बिषे परमानन्द भयो प्रेमकेत।
भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, रूपकला पृ० ६१२।

पदों में ही लेखक ने कवि के नाम के साथ सारङ्ग शब्द देखा है[1], अन्यथा सारङ्ग शब्द पदों में नहीं आता। इतनी बात अवश्य देखने में आती है कि परमानन्ददास के आधे से अधिक पद सारङ्ग राग में लिखे हुये हैं।

कुम्भनदास—छप्पय नं० ६८ में नाभादास जी ने भक्तमाल में अन्य भक्तों की प्रशंसा करते हुये कुम्भदास जी की भक्ति के बारे में भी प्रशंसात्मक शब्द ही कहे हैं। इनके विषय में अन्य कोई वृत्तान्त नाभादास जी ने नहीं दिया। उन्होंने उक्त छन्द में केवल यह कहकर,—"कलियुग में ये भगवद्भक्त दूसरों के उपकार में संलग्न कामधेनु के समान हैं,"[2] कुम्भनदास जी का उदार भक्तों में नाम लिया है। भक्तमाल में उनके ग्रन्थों के विषय में कोई परिचय नहीं दिया गया है।

कृष्णदास—नाभादास-कृत भक्तमाल में छः कृष्णदासों का परिचय दिया हुआ है। १. कृष्णदास पयहारी। २. कृष्णदास ब्रह्मचारी। ३. कृष्णदास पण्डित। ४. कृष्णदास चालक। ५. कृष्णदास। ६. कृष्णदास। कृष्णदास[3] पयहारी रामानन्दी सम्प्रदाय के थे जिनकी शिष्य-परम्परा में श्री अग्रदास जी, भक्तमाल के रचयिता श्री नाभादास जी, आदि भक्त हुये। डाक्टर ग्रीयर्सन ने भ्रमवश कृष्णदास पयहारी को अष्टछाप के कृष्णदास मान लिया है। वास्तव में ये अष्टछाप के वल्लभ-सम्प्रदायी भक्त न थे। कृष्णदास ब्रह्मचारी[4] सनातन जी के शिष्य वृन्दावन में रहते थे। ये भी अष्टछाप के कृष्णदास नहीं हैं। कृष्णदास[5] पण्डित का उल्लेख भी नाभादासजी ने कृष्णदास ब्रह्मचारी के साथ किया है और कहा है, 'ये भी वृन्दावन की माधुरी का आस्वादन करते थे।' कृष्णदास[6] चालक के विषय में नाभादास जी ने लिखा है, "श्री कृष्णदास चालक की चर्चरी छन्द की कविता चारों ओर समुद्रपर्यन्त विख्यात हुई। उसी चर्चरी छन्द में उन्होंने 'रास पञ्चाध्यायी', और 'कृष्ण-रुक्मिणी-केलि' ग्रन्थों की रचना की। इनकी कविता में 'गिरिराजधरन' की छाप रहती थी। आपकी वाणी

१—हे भुज माधो कहाँ दुराए।

× × ×

× × ×

जेहि भुज गोवर्धन राख्यो जिहि भुज कमला धर आनी।

जिहि भुज कंसादिक रिपु मारे, परमानन्द प्रभु सारङ्गपानी।

लेखक के निजी, परमानन्ददास पद संग्रह से पृ० १२० पद नं० २०२।

२—पर अर्थपरायन भक्त ये, काम धेनु कलियुग के

भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, छप्पय नं० ६८।

३—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, रूपकला, छन्द नं० ३८।

४—और ५—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, रूपकला, छप्पय न ६४।

६—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, रूपकला, छप्पय नं० १२४।

मेघ-गर्जन के समान है जिसको सुनकर भक्त लोग मोर के समान प्रसन्न होते हैं।" अष्टछापवाले कृष्णदास की रचना न तो चर्चरी छन्द में मिलती है और न उसमें गिरिराजधरन की छाप ही है। इसलिए कृष्णदास चालक भी अष्टछापवाले कृष्णदास नहीं हैं।

उक्त भक्तों के अतिरिक्त भक्तमाल में दो कृष्णदासों का और परिचय है, इनके नाम के सामने कोई विभेद-सूचक उपनाम नहीं जोड़ा गया। छप्पय नं० १८० में नाभादास एक कृष्णदास के विषय में कहते हैं,—"ये खरूज सुनार के पुत्र और हरि-भक्तों की रेणु के उपासक हैं और, नाचने-गाने में बड़े प्रवीण हैं। इन्होंने अपनी भक्ति से राधालाल को रिझा लिया है।" ये कृष्णदास भी कृष्णदास अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि इनका वंश-परिचय वार्ता में दिये हुये वंश-परिचय से नहीं मिलता।

छप्पय नं० ८१ में नाभादास जी ने जिन कृष्णदास का परिचय दिया है, वे ही अष्टछाप के भक्त कवि और श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्य कृष्णदास अधिकारी हैं। नाभादास जी ने इनके वर्णन में इस उपर्युक्त बात को स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं,—"गिरधारी श्रीकृष्ण ने कृष्णदास पर रीझकर अपने नाम में साझा दिया। इनके गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी ने जो भजन की रीति चलाई, उसमें ये पूर्ण और गुणागर हुये। इनकी कविता निर्दोष और अनोखी होती थी और ये श्रीनाथ जी की सेवा में बड़े प्रवीण थे। इनकी वाणी श्री-गोपाल जी के सुजस से अलंकृत रहती थी और उस वाणी की पण्डित लोग बड़े आदर से वन्दना करते थे। ये ब्रज की रज की आराधना करते थे और चित्त में उसे सर्वस्व जान कर धारण करते थे। हरि-दासों का सदा सान्निध्य करते थे।[1] श्रीराधाकृष्ण के भजन का ही एकमात्र इनका दृढ़ व्रत था।"[2]

इस वृत्तान्त से कृष्णदास अधिकारी का निम्नलिखित अल्प परिचय मिलता है:—

१—ये श्रीनाथ जी की सेवा करते थे।

१—अथवा गोवर्धन पर्वत के सदा निकट रहते थे।

२—गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम मांझ साझौ दियौ,
श्रीवल्लभ गुरुदत्त भजन सागर, गुनआगर।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर,
बानी बन्दित बिदुष सुजस गोपाल अलङ्कृत।
ब्रज रज अति आराध्य वहै धारी सर्वसु चित।
सानिध्य सदा हरिदासवर्य गौर स्याम दृढ़ व्रत लियौ,
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम मांझ साझौ दियौ।

भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, पृ० ५८१

२—ये वल्लभ-सिद्धान्तों को तथा साम्प्रदायिक सेवा-विधि को पूर्ण रूप से जानते थे।

३—कृष्णदास के गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी थे।

४—ये कवि थे और इनकी कविता निर्दोष होती थी। पण्डित लोग इनकी कविता का आदर करते थे।

५—ये सदा भक्तों के सत्सङ्ग में रहते थे और व्रज-भूमि के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी।

६—ये राधा-कृष्ण के युगल रूप के उपासक थे।

नन्ददास—नाभादास जी नन्ददास के समकालीन थे। उन्होंने जो कुछ वृत्तान्त नन्ददास के बारे में दिया है वह अवश्य विश्वसनीय है। 'भक्तमाल' में दो नन्ददासों का उल्लेख है। एक नन्ददास बरेली-निवासी और दूसरे रामपुर-निवासी। बरेलीवाले नन्ददास जी का केवल एक पंक्ति में उल्लेख किया गया है—

"नाभा ज्यों नन्ददास, मुई इक बच्छ जिवाई।"[1]

'भक्तमाल' में दूसरे नन्ददास के विषय में निम्नलिखित छप्पय है—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयध लों सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी।

१—इसमें नन्ददास के काव्य-विवेक आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं है। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने इनके परिचय का एक कवित्त अपनी टीका में दिया है। इसका आशय निम्नलिखित है—

नन्ददास ब्राह्मण थे, और बरेली के रहनेवाले थे। वे परम भक्त थे और साधु-सेवा में रहा करते थे। खेती करना उनका व्यवसाय था। परन्तु जो खेती की आय आती, उसे वे साधु-सेवा में लगा दिया करते थे। एक दिन एक दुष्ट ने उनसे वैर मानकर एक मरी हुई बछिया उनके खेत में डाल दी और उन पर हत्या का लाञ्छन लगाया। नन्ददास जी ने इस बछिया को जिला दिया। तब सब लोग उनकी भक्ति के कायल हुये।

भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, पृ० ४६०।

चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे।
श्री नन्ददास आनन्दनिधि, रसिक सु प्रभु हित रङ्ग मगे।[1]

भक्तमाल के बरेलीवाले नन्ददास अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास नहीं हो सकते; क्योंकि नन्ददास के समकालीन भक्त नाभादास जी ने पहले छन्द में वर्णित भक्त की रचना और काव्य के विषय में कुछ नहीं कहा है। दूसरे छन्द में रामपुर वाले नन्ददास के विषय में अष्टछापीय नन्ददास के सभी काव्यगुणों का उल्लेख पाया जाता है। छन्द की प्रथम पंक्ति से विदित होता है कि नन्ददास जी रसिक थे।

रसिक के अर्थ, माधुर्य-भाव से उपासना करनेवाला भक्त, और 'लौकिक शृङ्गार-भाव में आनन्द लेनेवाला व्यक्ति', दो हो सकते हैं। भक्ति-प्रेमरस का अपार समुद्र नन्ददास के हृदय में हिलोरें मारा करता था। इसी से भक्तमाल-रचयिता ने उन्हें रसिक कहा है। नन्ददास की रचनाओं को देखने से तथा उनके रसिकों के सङ्ग से ज्ञात होता है कि नन्ददास वास्तव में एक रसिक पुरुष थे। इन्होंने अपने हृदय के लौकिक रस को लोक से हटाकर भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं में देखा था। इसी भाव से वे कृष्ण की भक्ति करते थे। उनकी लौकिक रसिकता भक्ति-रसिकता में परिणत हो गई थी।

भक्तमाल की दूसरी पंक्ति से ज्ञात होता है कि नन्ददास ने दो प्रकार के ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं—भगवान् की लीला के पद तथा रस-रीति-ग्रन्थ। भगवान् की लीला के पद नन्ददास ने बहुत से लिखे हैं। "रस-रीति-ग्रन्थ-रचना में नागर" का अर्थ भक्ति-रस-रीति-ग्रन्थों की रचना में कुशल और काव्य-रस-रीति-ग्रन्थ रचना में चतुर, दोनों हो सकता है। नन्ददास के उपलब्ध ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने काव्य-लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी पर भी कुछ रचनाएँ की हैं, यद्यपि काव्य-रचना के सभी अङ्गों का लक्षण-सहित विवेचन नहीं किया है। इस कोटि के ग्रन्थों में उनका 'रस-मञ्जरी' ग्रन्थ आता है जो नायक-नायिका-भेद पर लिखा गया है। 'अनेकार्थ मञ्जरी' और 'नाममाला' अनेक अर्थ तथा पर्यायवाची शब्दों के कोष-ग्रन्थ हैं। 'रूप-मञ्जरी' काव्य-ग्रन्थ है; परन्तु उसमें वर्णित हाव-भावों का चित्रण और 'बारह मासा' भी, काव्य-रीति-ग्रन्थ-पद्धति को ही लिये हुये हैं। इस प्रकार नाभा जी का नन्ददास को रस-रीति-ग्रन्थ-रचना में चतुर कहना दोनों अर्थों में सिद्ध होता है। नन्ददास ने भक्ति-रस के लक्षण और भक्ति-रस की रचनाएँ, दोनों लिखी हैं। इस प्रकार नाभा जी की यह पंक्ति नन्ददास के स्वभाव और उनकी रचनाओं के विषय का परिचय देती है। नन्ददास भक्त-कवि थे और साथ ही एक साधारण काव्य आचार्य भी।

1—भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० १०२।

तृतीय पंक्ति में उनकी रचना के गुणों की प्रशंसा है—"उनकी सरस उक्तियाँ हैं।" "वे भक्ति-रस के गाने में प्रसिद्ध हैं।" इस कथन से सिद्ध होता है कि नन्ददास उच्च कोटि के कवि और अच्छे गवैये भी थे। यहाँ तक तो नाभा जी ने उनकी काव्य-रचना का परिचय दिया। आगे की पंक्तियाँ उनकी जीवन-सम्बन्धी कुछ बातों पर प्रकाश डालती हैं, यथा—"उनका यश समुद्र पर्यन्त व्याप्त है और वे रामपुर के रहनेवाले हैं।"

"सुकुल सम्वलित भक्त पद-रेनु उपासी" - पंक्ति से ज्ञात होता है कि नन्ददास जी शुद्ध-वंश में उत्पन्न हुये थे। और उच्च वंश में होते हुये भी, भक्तों की पदरज के, चाहे वे भक्त किसी भी जाति के क्यों न हों, उपासक थे। 'सुकुल सम्वलित' के अर्थ 'उच्च कुल में उत्पन्न' और 'शुक्ल आस्पद वाले ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न', दो हो सकते हैं। नन्ददास के समय में, रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्यों ने, श्री वल्लभाचार्य जी ने, तथा अन्य सन्त भक्तों ने ब्राह्मण से लेकर नाई, चमार, डोम आदि सभी जातियों को, ऊँच-नीच का भेद हटाकर, भगवान् की भक्ति का अधिकारी बनाया था। नन्ददास जी इतने उच्च कोटि के भक्त थे कि उन्होंने जाति-बन्धन तोड़कर भक्तों की, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों, चरण-धूलि शीश चढ़ाई थी। शुक्ल आस्पद, कान्यकुब्ज, सरयूपारी तथा सनाढ्य सभी ब्राह्मणों में होता है। नाभाजी ने इस विषय को स्पष्ट नहीं किया है कि नन्ददास किस जाति के थे। "श्रीचन्द्र-हास अग्रज, सुहृद, परम प्रेम पथ में पगे," में "चन्द्रहास अग्रज सुहृद" का अर्थ लोगों ने कई प्रकार से किया है। 'ब्रज-माधुरी-सार' के सङ्कलनकर्ता श्री वियोगी हरि जी ने नन्ददास को चन्द्रहास के बड़े भाई का मित्र माना है। इस अर्थ के अनुसार चन्द्रहास उस समय के कोई प्रसिद्ध व्यक्ति होने चाहिएँ, क्योंकि नाभाजी इस कथन के अनुसार सीधे शब्दों में नन्द-दास के मित्र का नाम न देकर मित्र के छोटे भाई चन्द्रहास का नाम देते हैं। चन्द्रहास उस समय के कोई भक्त न थे और इतिहास में भी चन्द्रहास नाम का कोई प्रसिद्ध व्यक्ति सुनने में नहीं आता। इसलिए उपर्युक्त अर्थ ठीक नहीं जँचता। राजा प्रतापसिंह ने भक्त-कल्पद्रुम में इस पंक्ति के आधार पर "नन्ददास को चन्द्रहास का पुत्र' लिखा है।" लेखक के विचार से इस पंक्ति का सीधा अर्थ यही है कि नन्ददास चन्द्रहास के बड़े भाई थे।

जी ने की है[1]; परन्तु उससे, स्पष्ट रूप से, ज्ञात होता है कि वह वर्णन अष्टछाप के भक्त कवि चतुर्भुजदास का नहीं है।

गोविन्द स्वामी—'भक्तमाल' में नाभादास जी ने गोविन्द स्वामी का वृत्तान्त किसी स्वतन्त्र छन्द में नहीं दिया। उन्होंने भक्तमाल के छन्द नं० १०२ में[2] कुछ भक्त कवियों के नाम गिनाये हैं, जिनमें गोविन्द कवि का भी नाम आया है। उसमें उन्होंने कहा है,—"इन कवि जनों के गुणों का पार नहीं है; ये अत्यन्त उदार प्रकृति के हैं और इन्होंने हरि के यश का प्रचुर विस्तार जगत में किया है।" इससे केवल इतना ही पता चलता है कि गोविन्द कवि बड़ा उदार चित्त का था और उसने ईश्वर की महिमा का प्रचार जगत में किया। नाभादास जी के उल्लेख से यह स्पष्ट नहीं होता कि जिस गोविन्द स्वामी का वे वृत्तान्त दे रहे हैं वह वल्लभ-सम्प्रदायी अष्टछाप के भक्त कवि गोविन्द स्वामी ही हैं अथवा अन्य कोई गोविन्द कवि। उनकी हरि-भक्ति के उल्लेख के सहारे हम केवल अनुमान से इस वर्णन को उक्त गोविन्द स्वामी पर लागू मान सकते हैं।

नाभादास जी ने 'भक्तमाल' के छन्द नं० १०३[3] में भी एक मथुरावासी गोविन्द

१—(श्री) हरिवंश चरन बल चतुर्भुज गौड़ देश तीरथ कियौ,
गायौ भक्ति प्रताप सबहिं दासत्व दृढ़ायौ।
राधा वल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढ़ायौ,
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अंघ्रि रेनु वहै धारी सिर भूषन,
सतसङ्ग महाआनन्द में प्रेमसहित भीज्यो हियौ।
(श्री) हरिवंश चरन बल चतुर्भुज गौड़ देश तीरथ कियौ।
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छं० नं० १२१।

२—हरि सुजस प्रचुर कर जगत में, ये कवि जन अतिसय उदार,
विद्यापति, ब्रह्मदास, बहोरन, चतुर बिहारी।
गोविन्द, गङ्गा, रामलाल बरसानियाँ मङ्गलकारी,
प्रिय दयाल परस राम भक्त माई खाटी की।
व्यास करन पूरन नृपति भीषम, जनदयाल, गुन नहिंन पार,
हरि सुजस प्रचुर कर जगत में ये कवि जन अतिशय उदार।
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छं० नं० १०२।

३—जे बसे बसत मथुरा मण्डल ते दयादृष्टि मो पर करौ।
× × ×
जदुनन्दन रघुनाथ, रामानन्द, गोविन्द, मुरली सोती।
हरिदास मिश्र भगवान, मुकुंद के सौ दण्डौती।
× × ×
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, छन्द नं० १०३।

का उल्लेख किया है और लिखा है, "जो मथुरा मण्डल में रहते हैं वे 'गोविन्द' मेरे ऊपर दयादृष्टि करें।" इनकी कविता तथा भक्ति के विषय में उन्होंने कुछ नहीं कहा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मथुरा निवासी गोविन्द भी अष्टछाप के गोविन्द स्वामी नहीं हैं, क्योंकि 'अष्ट सखान की वार्ता' में उन्हें आँतरी गाँव का निवासी लिखा है।

छीतस्वामी—'भक्तमाल' में नाभादास जी ने छीतस्वामी का वृत्तान्त भी किसी स्वतन्त्र एक छन्द में नहीं दिया। जैसे उन्होंने अन्य भक्तों के साथ 'गोविन्द' भक्त के नाम का उल्लेख करते हुये उसकी भक्ति की प्रशंसा की है उसी प्रकार छीतस्वामी के नाम का उल्लेख कुछ भक्तों के साथ ही किया है। वे कहते हैं,—"गोपाल' के विशद गुणों के यश का दान देनेवाले इतने सुजन हुये हैं।" छीतस्वामी जी के बारे में इससे केवल इतना पता चलता है कि छीतस्वामी श्रीकृष्ण के भक्त थे और उन्होंने कृष्ण की भक्ति को फैलाया। इसके अतिरिक्त भक्तमाल से और कोई वृत्तान्त छीतस्वामी के विषय में ज्ञात नहीं होता। नाभादास जी के इस छन्द पर प्रियादास जी ने भी कोई टीका नहीं की। इस ग्रन्थ में छीत स्वामी के ग्रन्थों के विषय में भी कुछ नहीं कहा गया।

भक्तमाल की टीकाएँ, प्रियादासकृत टीका

भक्तमाल की रचना के लगभग ६० वर्ष बाद सं० १७६६ में नाभादास जी की शिष्य-परम्परा में होनेवाले भक्त प्रियादास जी ने "भक्ति-रस-बोधिनी" नाम की टीका छन्दों में लिखी। इस टीका में नाभादास जी के दिये हुये वृत्तान्त के अतिरिक्त भक्तों के स्वतन्त्र वृत्तान्त भी अपनी ओर से दिये गये हैं। प्रियादास जी ने भक्तों के वृत्तान्त, बहुधा अपने समय में प्रचलित किंवदन्तियों के ही आधार से दिये हैं और भक्तों की महिमा तथा उनके चरित्रों की चामत्कारिक घटनाओं का विशेष उल्लेख किया है। ऐतिहासिक सामग्री इस ग्रन्थ में न्यून है। इसकी प्रामाणिकता तथा उस टीका के विषय में आचार्य डा० श्यामसुन्दरदास जी अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और साहित्य', नवीन संस्करण में, इस प्रकार कहते हैं,—"प्रियादास नाभाजी के सौ वर्ष उपरान्त हुये थे, फिर भी टीका उन्होंने बड़ी प्रामाणिक रीति से लिखी है।"[2] प्रियादास-कृत टीका की चामत्कारिक अत्युक्तियों को छोड़कर अन्य इतिवृत्त कुछ अंश में ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में अवश्य

१—गुन गन बिसद गोपाल के एते जन भए भूरिदा।
बोहिथ रामगुपाल, कुँवर वर गोविंद माहिमा।
छीतस्वामी जसवंत गदाधर अनन्तानन्द भक्त।
हरिनाम मिश्र, दीनदास, बदुपाल, कन्हर जसु गावन।
× × ×
१ भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द नं० १४६ पृ० नं० ८२१।

२—हिन्दी भाषा और साहित्य, डा० श्यामसुन्दरदास, १९९४ सं०, पृ० ३१४।

प्रमाण-कोटि मे गिने जा सकते हैं। प्रियादास जी के बाद 'भक्तमाल' की और भी अनेक टीकाएँ हुई जिनमें दिये हुये वृत्तान्तों का मूल आधार प्रियादास की टीका ही रही है। साथ मे इन टीकाकारों ने एक नाम के अनेक भक्तों के चरित्रों को एक में मिलाकर एक चरित्र रूप में दे दिया है। इसलिए प्रियादास के बाद की टीकाओं के वृत्तान्त बहुत काट-छाँट और सतर्कता के साथ ग्राह्य होने चाहिएँ। लेखक ने प्रियादास के बाद की टीकाओं मे अष्टछाप कवियों के दिये हुये वृत्तान्तों को बहुत अंश में प्रामाणिक नहीं माना।

सूरदास—प्रियादास जी ने सूरदास के विषय में कुछ नहीं लिखा है।

परमानन्ददास—प्रियादास जी ने तो परमानन्द दास का कोई वृतान्त नहीं लिखा; परन्तु वेंकटेश्वर प्रेस से छपी भक्तमाल की 'हरिभक्ति-प्रकाशिका' नामक टीका में परमानन्द सारङ्ग के विषय में लिखा है कि अष्टछाप में उनकी भी गणना है।[1] भक्तमाल की उक्त टीकाओं के अतिरिक्त अन्य टीकाकारों ने यह स्पष्ट नहीं किया कि जो वृतान्त परमानन्द का वे देते हैं वह कौन से परमानन्ददास का है। श्री प्रतापसिंह-कृत 'भक्त-कल्पद्रुम'[2] नामक भक्तमाल में केवल परमानन्द सारङ्ग का ही वृत्तान्त, नाभादास जी-कृत भक्तमाल के अनुवाद-रूप में दिया हुआ है। रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' नामक भक्तमाल में केवल वृन्दाबनवासी परमानन्द का वर्णन दिया है। बा० राधाकृष्णदास[3] जी ने ध्रुवदास जी की 'भक्त-नामावलि' में वर्णित महात्माओं के सच्चित ऐतिहासिक वृत्तान्त 'भक्त-नामावलि' के साथ दिये हैं। उन वृत्तान्तों में वे लिखते हैं कि परमानन्द इस ग्रन्थ 'में चार लिखे हैं। एक परमानन्द पुरी, चैतन्य महाप्रभु के चौंसठ महन्तों में थे। दूसरे हरिव्यासी-सम्प्रदाय की दूसरी शाखा के कर्णदेव जी के शिष्य परमानन्ददेव जी थे। तीसरे, हरिवंश जी के शिष्य परमानन्द रसिक थे और चौथे, भक्त-नामावलि के छन्द नं० ६५ के अष्टछाप वाले प्रसिद्ध परमानन्ददास थे।'

श्री ध्रुवदास जी के कथनानुसार भक्तमाल के परमानन्द सारङ्ग अष्टछाप के परमानन्द जी ही हैं; इस प्रकार भक्तमाल तथा उसकी टीकाओं से परमानन्ददास जी के विषय में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

१. परमानन्ददास गोपी-भाव तथा सखा-भाव से प्रेमभक्ति करते थे।

२. उनकी भक्ति प्रगाढ़ थी, क्योंकि प्रेम में वे सदैव रोमाञ्चित रहते थे।

३. उन्होंने कृष्ण के जन्म से पाँच वर्ष तक की बाल-लीला, पाँच से दस वर्ष तक की पौगण्ड-लीला और दस से १६ वर्ष तक की किशोर लीलाओं का पदों में गान किया है।

१—भक्तमाल, हरिभक्ति प्रकाशिका टीका, पृ० २३२।

२—श्री प्रतापसिंहजी-कृत भक्त-कल्पद्रुम, भक्तमाल, पृ० ११६।

३—भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्री राधाकृष्णदास, पृ० ४४।

४. वे कवि होने के साथ साथ गवैये भी थे।

५. उनके कीर्तन बहुत प्रभावशाली होते थे।

६. उनके काव्य में उनकी सारङ्ग छाप है।

इस वृत्तान्त के अतिरिक्त कवि के भौतिक जीवन पर भक्तमालकार तथा उसके टीकाकारों ने कोई प्रकाश नहीं डाला।

कुम्भनदास—प्रियादासजी ने कुम्भनदास जी के विषय में कुछ भी विवरण नहीं दिया।

कृष्णदास—प्रियादास जी ने अपनी टीका में इनका निम्नलिखित परिचय दिया है—

१ इन्होंने 'प्रेमरस-राशि' का प्रकाशन किया जिसको श्रीनाथ जी ने स्वीकार किया। 'प्रेमरस-राशि' नाम का इनका कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। हाँ, इनके पदों का वृहत् संग्रह जो लेखक को मिला है, वह प्रेम-रस से ओतप्रोत है। सम्भव है, इस पद-समूह को ही प्रियादास ने 'प्रेम रस-राशि' का नाम दिया हो।

२. दिल्ली के हाट में एक वारमुखी पर रीझ कर ये उसे श्रीनाथ जी के समक्ष ले आये और उसे वहाँ नचाया। इनके प्रभाव से वह वारमुखी उसी समय शरीर छोड़कर परम पद को प्राप्त हो गई। इस घटना का उल्लेख '८४ वार्ता' में भी है।

३—एक बार कृष्णदास और सूरदास में विनोद रूप में काव्य प्रतियोगिता हुई। सूरदास ने कहा,—"कृष्णदास ऐसा पद बनाओ जिसमें मेरी छाया न हो।" कृष्णदास ने इस आह्वान को स्वीकार कर लिया, परन्तु वे बड़े सोच में पड़ गए। उसी रात्रि को श्रीनाथ जी ने एक पद बनाकर उनकी शैय्या पर रख दिया। प्रात ये उस पद को लेकर सूरदास से मिले। सूर ताड़ गए और कहा,—"यह तो श्रीनाथ जी ने पक्षपात किया है।" इस बात पर दोनों भक्त भगवान् के कृपा-रङ्ग में पग गए।

४—कुएँ में गिरकर इनका शरीर छूटा।

कृष्णदास जी के विषय में प्रियादास जी द्वारा कथित उपर्युक्त बातें '८४ वैष्णवन की वार्ता' में भी मिलती हैं।

नन्ददास—नन्ददास जी के विषय में प्रियादास ने कोई वृत्तान्त नहीं दिया। बरेली-निवासी नन्ददास के बछिया जिलानेवाले प्रसङ्ग पर तो उनकी टीका है। प्रियादास के बाद के 'भक्तमाल' की टीकाओं में भी अष्टछापवाले नन्ददास का विशेष हाल इसी से नहीं मिलता।

चतुर्भुजदास—प्रियादास ने इनके विषय में कोई विवरण नहीं दिया है।

गोविन्दस्वामी—प्रियादास जी ने भक्तमाल की टीका में गोविन्दस्वामी का वृत्तान्त कुछ अधिक दिया है।[1] उन्होंने इनके विषय में लिखा है—"ये गोविन्द'स्वामी' नाम से विख्यात थे और सख्य भाव धारण कर सदा गोवर्द्धन नाथ जी के साथ खेलते थे। इनकी बात सुनकर नेत्र प्रेम से सजल हो जाते हैं। एक बार ये श्रीनाथ जी के साथ गुली-डण्डा खेलते थे। श्रीनाथ जी ने अपना दाँव तो ले लिया, परन्तु जब गोविन्दस्वामी का बार आया तो श्रीनाथ जी भाग कर मन्दिर में घुस गये। गोविन्दस्वामी जी पीछे दौड़े आये और उन्होंने खैंचकर श्रीनाथ जी के गुल्ली मारी। जब पुजारी ने देखा तो उसने गोविन्द स्वामी को धक्का देकर बाहर निकाल दिया, वे बाहर बैठ गये और श्रीनाथ जी के बाहर निकलने और अपना बदला लेने की प्रतीक्षा करने लगे। जब गुसाईं जी को श्रीनाथ जी की प्रेरणा से यह बात ज्ञात हुई तब उन्होंने गोविन्दस्वामी को मनाया।" गोविन्दस्वामी के सखा भाव को प्रकट करनेवाली इसी प्रकार की और भी कथाएँ प्रियादास जी ने दी हैं, परन्तु उन्होंने उनके भौतिक जीवन के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया। भक्तमाल की टीका मे प्रियादासजी ने केवल उनकी भक्ति की प्रशसा की है। उनकी काव्य-रचना विषय में कुछ नहीं लिखा।

छीतस्वामी—प्रियादास तथा भक्तमाल के अन्य किसी टीकाकार ने इनके विषय में कुछ भी विवरण नहीं दिया।

भक्तमाल की इस टीका में सूर के सम्बन्ध में कोई महत्व की बात नहीं कही गई है। जो वृत्तान्त दिया है वह प्रशसात्मक और मनगढन्त है। इसमें लिखा है,—"सूरदास उद्धव के अवतार थे। इन्होंने सवा लाख पद लिखने का सङ्कल्प किया जिसमें से २५ हजार स्वय कृष्ण ने इनके लिए बना कर दे दिये। ये जन्म से ही अन्धे थे। इनकी स्त्री ने एक बार इनकी परीक्षा ली और कहा कि हे प्रिय, मुझसे ग्राम की स्त्रियाँ कहती हैं कि तू अन्धे पति के रहते हुये किसके दिखाने को शृङ्गार करती है। सूर के कहने से उनकी स्त्री ने एक दिन सब शृङ्गार किया। सूरदास ने उसके सब शृङ्गारों को बताते हुये पूछा कि भाल पर बिन्दी क्यों नहीं लगाई है। उनकी स्त्री को विश्वास हो गया कि उसका पति दिव्य दृष्टि रखनेवाला कोई सिद्ध पुरुष है।" इसके बाद महाराज रघुराजसिंह ने सूर की भक्ति की प्रशसा की है। सूर की अकबर बादशाह के साथ भेंट का भी उल्लेख है। इस वृत्तान्त से यह नवीन बात ज्ञात होती है कि सूरदास का विवाह हुआ था, परन्तु इस वृत्तान्त को सही अथवा प्रामाणिक मानने का कोई प्रमाण नहीं है। वार्ता के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि सूर अविवाहित ही रहे।

भक्तमाल की टीकाएँ—राम रसिकावली महाराज रघुराजसिंह-कृत

१—भक्तमाल भक्ति-सुधास्वाद तिलक प्रियादास जी के छन्द, पृ० ६५८।

"परमानन्ददास और सूर ने सब ब्रज की रीति गाई है। इनकी गोपियों की प्रीति को सुनकर लोग अन्य प्रकार की सब भक्ति की रीतियों को भूल जाते हैं।"[1] इसमें सूर की केवल भक्ति का ही परिचय दिया हुआ है।

परमानन्ददास—भक्त नामावलि में चार स्थलों पर 'परमानन्द' का उल्लेख हुआ है। छन्द नं० ५०[1], ५१[2], ६५[3] और ८१[4] में दिये हुए परमानन्द के वर्णन अष्टछाप के प्रसिद्ध महात्मा और कवि परमानन्ददास के विषय में नहीं है। ध्रुवदासजी ने स्वय इस बात को स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि इन तीनों स्थानों पर कहे हुये परमानन्द को 'श्री वृन्दावन' से विशेष प्रीति लिखी है और इनको युगल-उपासक बताया है। अष्टछापी परमानन्ददास ने भी वृन्दावन की महिमा गाई है, परन्तु वे रहते थे सदैव गोकुल या गोवर्द्धन पर ही, वृन्दावन नगर से उन्हें प्रेम न था।

भक्त-नामावलि में छन्द नं० ६५ में परमानन्द का जो वर्णन है वह अष्टछापवाले परमानन्ददास का ही प्रतीत होता है। उक्त छन्द में लिखा है,—"परमानन्ददास और सूर ने मिलकर सब ब्रज की रीति गाई है। इन गोपियों की प्रीति को सुनकर लोग अन्य प्रकार के भजन की सब रीतियों को भूल जाते हैं।"[2] इस वर्णन में 'परमानन्ददास और सूरदास' दोनों का नाम एक साथ लिया गया है। अतएव यह अष्टछाप के प्रसिद्ध सागर 'सूर और परमानन्द' पर लागू होता है। इस अल्प वृत्तान्त पर भक्तमाल में परमानन्द सारङ्ग के विषय में कहे हुये वृत्तान्त की निम्नलिखित पंक्तियों की छाया है।—

१—परमानन्द अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति,
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक राधाकृष्णदास, छं० नं० ६२।

१—परमानन्द किसोर दोउ संत मनोहर खेम।
निर्बाही नीके सबनि, सुन्दर भजन को नेम। ५०

२—छाँड़ि मोहि अभिमान सब भक्तनि सों अति दीन।
वृन्दावनय सिर्फ तिनहिं, फिरि मन अनत न कीन। ५१

३—बिहारी दास, दम्पति जुगुल, माधौ परमानन्द।
वृन्दावन नीके रहे, काटि जगत को फन्द। ६५

४—परमानन्द माधौ मुदित, नव किसोर कल केलि।
कही रसीली भाँति सौं, तिहि रस में रहे झेलि। ८१
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्री राधाकृष्णदास।

भक्त नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्री राधाकृष्णदास, छन्द नं० ६२।

कवि मियाँसिंह ने सूर को ब्राह्मण, जन्मान्ध और मथुरा प्रान्त में उनकी जन्म भूमि होना लिखा है। वे कहते हैं,—"जन्मान्ध होने के कारण माता को छोड़ कोई भी कुटुम्बी इनको प्यार नहीं करता था। जब ये आठ वर्ष के हुये तब इनका यज्ञोपवीत हुआ। एकबार इनके माता-पिता इनको लेकर ब्रज-यात्रा को मथुरा गये। सूर ब्रज में वैष्णवों के ही सङ्ग में रह गये और माता पिता के आग्रह करने पर भी वापिस नहीं गये। ये सत्सङ्ग, भगवत् कीर्तन और गायन में समय बिताने लगे। कृष्ण-भक्ति में इनका मन ऐसा रमा कि ये कृष्ण-लीला के पद बनाकर गाने लगे। मथुरा में सूर की ख्याति चारों ओर फैल गई। एक दिन मार्ग में कहीं जाते हुये ये कुएँ में गिर गये। तब भगवान् ने इनको निकाला। उस समय कृष्ण ने इन्हें नेत्र दिये। इन्होंने कहा कि हे भगवान्! जिन आँखों से मैंने आपको देखा है, उनसे अब और कुछ न देखूँ और आपकी माया का प्रभाव मुझे न व्यापे। कृष्ण ने इन्हें ये दोनों वरदान दिये। फिर ये मथुरा आकर रहने लगे। एकबार बादशाह ने इन्हें बुलाया और प्रसन्न होकर इनको द्रव्य दिया। परन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं किया, और अन्तकाल तक कृष्ण भक्ति में ही कालयापन करते रहे।"

भक्तमाल की टीकाएँ—भक्त विनोद कवि मियाँसिंह-कृत

इस वृत्तान्त में सूर के गुरु का कोई उल्लेख नहीं है। यह वृत्तान्त '८४ वार्ता' के वृत्तान्त से नहीं मिलता। ज्ञात होता है कि अन्य सूरदासों की कहानियाँ मिलाकर तथा साहित्यलहरी में दिये हुये सूर की वंशावलीवाले प्रक्षिप्त पद का कुछ अंश में सहारा लेकर यह वृत्तान्त लिखा गया है। कवि मियाँसिंह का यह कथन, कि सूरदास ब्राह्मण थे, वार्ता के इस कथन से, कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे, कुछ अंश में पुष्ट होता है।

ध्रुवदास जी गोस्वामी हितहरिवंश जी के शिष्य थे और ये वृन्दावन में रहा करते थे। इन्होंने भक्ति विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। 'भक्त नामावलि' में इन्होंने नाभादास जी की तरह भक्तों की भक्ति का संक्षेप में परिचय दिया है। यह ग्रन्थ दोहा छन्द में लिखा गया है। ध्रुवदास जी का प्रादुर्भाव अष्टछाप कवियों के बहुत थोड़े समय बाद ही हुआ था। इस ग्रन्थ में इसके रचना काल का उल्लेख नहीं है। ध्रुवदास जी ने अपने ग्रन्थ 'सभा मण्डली', 'वृन्दावन सत' और 'रहसि मञ्जरी' के रचना काल क्रमश सं० १६८१, सं० १६८६ तथा सं० १६६८ दिये हैं। अनुमान से भक्त नामावलि का रचना काल सं० १७०० के लगभग माना जा सकता है। यह ग्रन्थ भी नाभा दास जी के 'भक्तमाल' के आधार पर लिखा जान पड़ता है। इसमें दिये हुये अल्प वृत्तान्त भी प्रमाण कोटि के हैं, क्योंकि यह ग्रन्थ भक्ति-काल की ही रचना है।

भक्त नामावलि ध्रुवदासजी-कृत

सूरदास—नाभादास जी की तरह ध्रुवदास जी ने भी सूर के भौतिक जीवन का कोई वृत्तान्त नहीं दिया। परमानन्ददास के उल्लेख के साथ उन्होंने केवल यह कहा है,

"परमानन्ददास और सूर ने सब ब्रज की रीति गाई है। इनकी गोपियों की प्रीति को सुनकर लोग अन्य प्रकार की सब भक्ति की रीतियों को भूल जाते हैं।"[1] इसमें सूर की केवल भक्ति का ही परिचय दिया हुआ है।

परमानन्ददास—भक्त नामावलि में चार स्थलों पर 'परमानन्द' का उल्लेख हुआ है। छन्द नं० ५०[1], ५१[2], ६५[3], और ८१[4] में दिये हुए परमानन्द के वर्णन अष्टछाप के प्रसिद्ध महात्मा और कवि परमानन्ददास के विषय में नहीं है। ध्रुवदासजी ने स्वयं इस बात को स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि इन तीनों स्थानों पर कहे हुये परमानन्द को 'श्री वृन्दावन' से विशेष प्रीति लिखी है और इनको युगल-उपासक बताया है। अष्टछापी परमानन्ददास ने भी वृन्दावन की महिमा गाई है, परन्तु वे रहते थे सदैव गोकुल या गोवर्द्धन पर ही, वृन्दावन नगर से उन्हें प्रेम न था।

भक्त-नामावलि में छन्द नं० ६५ में परमानन्द का जो वर्णन है वह अष्टछापवाले परमानन्ददास का ही प्रतीत होता है। उक्त छन्द में लिखा है,—"परमानन्ददास और सूर ने मिलकर सब ब्रज की रीति गाई है। इन गोपियों की प्रीति को सुनकर लोग अन्य प्रकार के भजन की सब रीतियों को भूल जाते हैं।"[5] इस वर्णन में 'परमानन्ददास और सूरदास' दोनों का नाम एक साथ लिया गया है। अतएव यह अष्टछाप के प्रसिद्ध सागर 'सूर और परमानन्द' पर लागू होता है। इस अल्प वृत्तान्त पर भक्तमाल में परमानन्द सारङ्ग के विषय में कहे हुये वृत्तान्त की निम्नलिखित पंक्तियों की छाया है।—

१—परमानन्द अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति,
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक राधाकृष्णदास, छं० नं० ६५।

१—परमानन्द किसोर दोउ संत मनोहर खेम।
निर्वाह्यौ नीके सबनि, सुन्दर भजन को नेम। ५०

२—छाँड़ि मोहि अभिमान सब भक्तनि सों अति दीन।
वृन्दाबनय मिले तिनहिं, फिरि मन अनत न कीन। ५१

३—बिहारी दास, दम्पति जुगल, माधौ परमानन्द।
वृन्दावन नीके रहे, काटि जगत को फन्द। ६५

४—परमानन्द माधौ मुदित, नव किसोर कल केलि।
कही रसीली भाँति सौं तिहि रस में रहे झेलि। ८१
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्री राधाकृष्णदास।

भक्त नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्री राधाकृष्णदास, छन्द नं० ६५।

"व्रज वधू रीति कलियुग विषै, परमानन्द भयो प्रेम केत ।
पौगण्ड बाल, कैशोर गोप लीला सब गाई ।"

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भक्तमाल में वर्णित परमानन्द सारङ्ग को ध्रुवदास जी ने अष्टछापवाले परमानन्ददास ही माना है। इन्होंने परमानन्ददास जी के कीर्तनों की प्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कोई विवरण नहीं दिया है।

कुम्भनदास—श्री ध्रुवदास जी ने कुम्भनदास की केवल भक्ति की प्रशंसा की है। इनकी जाति, जन्मस्थान आदि विषयों पर कोई प्रकाश नहीं डाला। कृष्णदास अधिकारी और कुम्भनदास, दोनों का ध्रुवदास जी ने एक ही दोहे में वर्णन किया है। वे कहतेहैं,—'कुम्भन दास और कृष्णदास ने गिरधर कृष्ण से सच्ची प्रीति की। इन्होंने अपने सब कर्म और धार्मिक कृत्य छोड़कर केवल अपनी भक्ति के रस का ही गान किया है।'[1] इसमें ध्रुवदास जी ने कुम्भनदास जी के ग्रन्थों के विषय में कुछ नहीं कहा।

कृष्णदास—ध्रुवदासजी ने भक्त-नामावलि में दो कृष्णदासों का उल्लेख किया है। एक कृष्णदास जङ्गली और दूसरे कृष्णदास। कृष्णदास जङ्गली के बारे में उन्हों ने लिखा है,—'इनका मन युगल प्रेम रस में मग्न रहता था। इन्होंने वृन्दावन की माधुरी को खूब बढ़ा कर गाया है।'[2] दूसरे कृष्णदास का नाम कुम्भनदास के साथ लिया गया है। इसलिए ज्ञात होता है कि अष्टछापवाले कृष्णदास यही दूसरे कृष्णदास हैं; परन्तु ध्रुवदास जी ने उनके बारे में केवल यही कहा है,—'इन्होंने गिरधर से सच्ची प्रीति की, सब कर्म और धर्म छोड़ कर केवल अपनी भक्ति की रस रीति का ही गान किया।'[3] वस्तुतः ध्रुवदास जी ने कोई विशेष उल्लेखनीय बात इनके बारे में नहीं लिखी। इन्होंने जिस रस-रीति के गान के बारे में कहा है उसको भी स्पष्ट नहीं बताया कि वह क्या रस-रीति थी। सम्भव है, इसका अर्थ यह हो कि कृष्णदास ने 'कर्म-धर्म' की मर्यादा का उल्लङ्घन कर प्रेमभाव का वर्णन किया है। कृष्णदास की रचनाओं से इसी बात की पुष्टि होती है।

१—कुम्भन, कृष्णदास गिरधर सा कीनी साँची प्रीति ।
कर्म धर्म पथ छाँड़ि कै गाई निज रस रीति ॥ ६३
भक्त नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्री राधाकृष्णदास जी, छं० न० ६३ ।

२—कृष्णदास हुते जंगली तेज तैसी भाँति,
तिनके उर झलकत रहै हेम नील मनि काँति। २८
जुगल माधुरी रस अब्धि में परयो प्रबोध मनजाइ ।
वृन्दावन रस माधुरी गाई अधिक लड़ाइ । २९
भक्त नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्रीराधाकृष्णदास, छं० नं० २८ तथा २९।

३—भक्त नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक राधाकृष्णदास, छन्द न० ६३ ।

नन्ददास—भक्तनामावलि में नन्ददास की जाति, जन्म-स्थान आदि प्रसङ्गों पर कुछ भी नहीं कहा गया है। इसमें कवि की भक्ति की प्रशंसा, उसके काव्य के गुणों का वर्णन और उसके मन की रसिक वृत्ति का ही परिचय दिया गया है। "नन्ददास ने जो कुछ भी कहा है वह सब 'राग रङ्ग', अथवा 'अनुराग रङ्ग' में रँगा हुआ है। उनकी रचना के अक्षर सरस हैं और सुनते ही चित्त को चमत्कृत कर देते हैं। उनके मन की रसिक दशा है। उनके कवित्त सुन्दर रूप में ढले हुये होते हैं। उनका मन प्रेम में लबालब भरा रहता है। कृष्ण-रस में वे मानों पागल हो गये हैं।"[1] ध्रुवदास जी के समय तक नन्ददास की ख्याति अच्छी तरह फैल चुकी थी। इसीलिए उन्होंने अपने समकालीन भक्त नन्ददास की प्रशंसा की है।

चतुर्भुजदास—ध्रुवदासजी ने केवल एक चतुर्भुज जी का वर्णन भक्त वैष्णवदास के साथ किया है। उससे यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होता कि ध्रुवदास जी ने वह वर्णन श्रीहित हरिवंश जी के शिष्य चतुर्भुजजी का किया है, जिनकी भक्ति और काव्य की प्रशंसा नाभादास जी ने की है, अथवा अष्टछाप के भक्त कवि चतुर्भुजदास जी का। परन्तु उस वर्णन के कुछ शब्दों पर विशेष ध्यान देने तथा वैष्णवदास के संसर्ग का अनुमान करने पर लेखक इस मत के निकट आता है कि वह अष्टछापवाले चतुर्भुजदास जी का ही है। ध्रुवदास जी द्वारा दिया हुआ वृत्तान्त इस प्रकार है—

परम भागवत अति भए भजन माँहि दृढ़ धीर,
चतुर्भुज वैष्णवदास की बानी अति गम्भीर। ४८
सकल देस पावन कियो भगवत जसहि बढ़ाइ,
जहाँ तहाँ निज एक रस गाई भक्ति लड़ाइ। ४९

दो सौ बावन वार्ता में वैष्णवदास का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु वैष्णवदास के पद वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरों में गाये जाते हैं। इस बात का उल्लेख 'भक्त-नामावलि' के सम्पादक स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास जी ने भी भक्त-नामावलि में वर्णित महात्माओं के संक्षिप्त ऐतिहासिक वृत्तान्त में चतुर्भुजदास के वर्णन के अन्तर्गत किया है। उन्होंने भी

१—'भक्तनामावलि' के दोहे नं० ७७:७६ में नन्ददास जी का उल्लेख है—

नन्ददास जो कछु कह्यो राग रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेह मय, सुनत स्रवन उठ जागि।
रसिक दशा अद्भुत हुती कर कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जल धार।
बावरो सो रस में फिरै खोजत नेह की बात।
आछे रस के बचन सुनि बेगि बिबस है जात।

ध्रुवदास जी के चतुर्भुज जी वाले वर्णन को अष्टछाप के भक्तकवि चतुर्भुजदास जी का ही माना है। इससे वैष्णवदास के साथ चतुर्भुज दास का नाम वल्लभ-सम्प्रदायी चतुर्भुज दास जी का ही प्रतीत होता है। भक्त नामावलि के उपर्युक्त वृत्तान्त में लिखा है कि चतुर्भुजदास ने 'गाई भक्ति लड़ाइ'। 'लड़ाना' शब्द 'दुलार' या 'प्यार' के अर्थ में ब्रज भाषा में वात्सल्य-भाव का भी द्योतक होता है। नाभादास जी द्वारा वर्णित हित हरिवंश जी के शिष्य चतुर्भुज जी की भक्ति दास्य-भाव की थी। वल्लभ-सम्प्रदायी चतुर्भुजदास की भक्ति निकुञ्ज लीला की माधुर्य-भक्ति के साथ वात्सल्य-भाव की भी थी। इस प्रकार ध्रुवदास जी के वर्णन से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं.—

१—चतुर्भुजदास जी की वाणी बड़ी गम्भीर थी।

२—इन्होंने भगवान् की भक्ति का यश चारों ओर फैलाया।

३—ये बड़े भगवद्भक्त थे और सदा अपने भजन में लवलीन रहते थे।

४—इन्होंने भगवान् की भक्ति का गान वात्सल्य-भाव से किया।

गोविन्दस्वामी—भक्त नामावलि में ध्रुवदास जी ने गोविन्द स्वामी का उल्लेख गङ्ग और विष्णु भक्तों के साथ किया है। वे कहते हैं,—"गोविन्द स्वामी, गङ्ग और विष्णु ने प्रिय-प्यारी (कृष्ण और राधा) का यश विचित्र राग और रङ्ग से संयुक्त कर गाया है।"[1] ध्रुवदास जी ने भी नाभादास जी का ही अनुकरण किया है, उनके कीर्तनों की प्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कोई वृत्तान्त नहीं दिया। ध्रुवदास जी ने इनके ग्रन्थों के विषय में कुछ नहीं कहा है। इन्होंने 'गोविन्द' नाम के साथ 'स्वामी' शब्द लगाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि यह वृत्तान्त अष्टछाप के स्वामी कहलानेवाले 'गोविन्द' का है।

छीतस्वामी नाभादास जी की तरह ध्रुवदास जी ने भी छीतस्वामी का उल्लेख कुछ भक्तों के नाम के साथ ही किया है। जिन भक्तों के साथ ध्रुवदास जी ने छीतस्वामी का नाम लिया है वे छीतस्वामी के साथ नाभादास जी द्वारा दिये हुये भक्त नहीं हैं, ध्रुवदास जी ने केवल इतना कहा है, -"रामानन्द, अङ्गद, सोभू, हरिव्यास और छीत स्वामी इनमें प्रत्येक के नाम से जगत पवित्र होता है।"[2] इस वृत्तान्त से छीतस्वामी के उच्च कोटि के भक्त होने की सूचना मिलती है।

१—गोविन्द स्वामी, गंग अरु विष्णु विचित्र बनाइ।
प्रिय प्यारी को जस कह्यो राग रङ्ग सों नाइ। ३९
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्रीराधाकृष्णदास, छ० नं० ३९।

२—रामानन्द अङ्गद, सोभू, हरि-व्यास अरु छीत,
एक एक के नाम तें सब जग होइ पुनीत। १०२
भक्तनामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्रीराधाकृष्णदास, पृ० १०।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के रचयिता श्रीवल्लभाचार्य जी के पौत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र श्रीगोकुलनाथ जी (सं० १६०८ से सं० १६६७ वि०) कहे जाते हैं। हिन्दी-संसार के सामने ८४ वार्ता के मुख्यतः तीन संस्करण आये थे—एक, वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा सं० १९४७ में बम्बई से प्रकाशित संस्करण और दूसरा, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित। डाकौर जी का तीसरा संस्करण है जिसके आधार पर श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने 'अष्टछाप' नाम की पुस्तक का सङ्कलन किया है। '८४ वार्ता' नामक यह ग्रन्थ ब्रजभाषा गद्य में लिखा गया है। इसमें श्रीवल्लभाचार्य जी के ८४ शिष्यों का वृत्तान्त दिया हुआ है, जिनमें सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास, ये चार ही अष्टछाप के कवि सम्मिलित हैं। यद्यपि ये वार्ताएँ साम्प्रदायिक दृष्टि से लिखी गई हैं, फिर भी '८४ वार्ता' में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। अष्टछाप के उपर्युक्त चार कवियों की जीवनी के लिए तो यह सबसे अधिक प्रामाणिक सूत्र है। श्री-डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने भी 'अष्टछाप' की प्रस्तावना में[1] वार्ता-साहित्य की ऐतिहासिक तथा भाषा-सम्बन्धी महत्ता पर प्रकाश डाला है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

चौरासी वार्ता के उपर्युक्त छपे संस्करणों के अतिरिक्त वल्लभसम्प्रदायी साहित्य-संग्रहालयों में तथा वैष्णव गृहों में '८४ वार्ता' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इस वार्ता में दिये हुये चरित्रों के दो रूप लेखक के देखने में आये हैं। एक, साधारण वृत्तान्त, दूसरे, हरिराय जी-कृत भाव-प्रकाशयुक्त वर्णन, जिनमें भक्तों के चरित्र कुछ विशेष सूचना के साथ दिये हुये हैं। श्री हरिराय जी भी गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के ही वंशजों में हुये हैं और ये श्री गोकुल नाथ जी के शिष्य थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि हरिराय जी ने बहुत लम्बी आयु पाई थी, जैसा कि इनके जीवन-परिचय में पीछे कहा जा चुका है। इनकी स्थिति सं० १६४७ से संवत् १७७२ तक अर्थात् १२५ वर्ष मानी जाती है। '८४ वैष्णवन की

१—"इस संग्रह को हिन्दी जनता के सम्मुख रखने में मेरे दो मुख्य उद्देश्य हैं। भाषा-सम्बन्धी उद्देश्य तो है, सत्रहवीं सदी के ब्रजभाषा गद्य को सर्व साधारण के लिए सुलभ करना तथा साहित्यिक उद्देश्य सूरदास आदि कुछ प्रसिद्ध हिन्दी कवियों की जीवनियों के इन प्रायः समकालीन जीते-जागते वर्णनों से हिन्दी प्रेमियों का घनिष्ठ परिचय कराना। इसके अतिरिक्त ये जीवनियाँ देश की तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति पर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। राष्ट्रीय जीवन के इन आवश्यक अङ्गों का सच्चा इतिहास लिखने के लिए हिन्दी साहित्य में कितना भण्डार भरा पड़ा है, इसका दिग्दर्शन इस छोटे से संग्रह को आद्योपान्त पढ़ने से भली प्रकार हो सकेगा।" प्रस्तावना, अष्टछाप, डा० धीरेन्द्र वर्मा।

वार्ता' की सबसे प्राचीन प्रति जो लेखक के देखने में आई है वह सं॰ १६६७ की लिखी है, जो काँकरौली विद्या-विभाग में सुरक्षित है। इस प्रति का लेखक ने निरीक्षण किया है और इसकी प्राचीनता पर उसे सन्देह नहीं है। यह वार्ता श्री गोकुलनाथ जी के समय की ही लिखी हुई है। इसके अन्त में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार शिष्य नन्ददास, चतुर्भुज दास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी की भी वार्ताएँ दी हुई हैं। इस प्रति में संवत् इन चारों वार्ताओं के बाद में लिखा है। इस प्रति की पुष्पिका का चित्र इसके साथ दिया जाता है। इसमें हरिराय जी का भावप्रकाश अथवा टिप्पणी नहीं है।

हरिराय जी-कृत भावप्रकाश वाली ८४ वार्ता की एक प्रति सं० १७५२ की है जो काँकरौली विद्या-विभाग को पाटन से प्राप्त हुई थी। इसके साथ 'अष्टसखान की वार्ता' भी है और उसमें हरिराय जी की टिप्पणी भी है। हरिराय जी की टिप्पणी को मूल वृत्तान्तों के साथ, इसी वार्ता के आधार पर काँकरौली-विद्याविभाग ने, अष्टछाप वार्ता (प्राचीन वार्ता-रहस्य, द्वितीय भाग के नाम से) सं० १९९८ में छपवाया है। भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की एक और सचित्र प्राचीन प्रति लेखक ने गोकुल में, 'मोर वाले मन्दिर के मुखिया श्री गोरीलाल साचोहरजी के पास देखी है और जिसमें से उसने सूरदास की वार्ता भी उतार ली है। भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता[१] की एक प्रति सं० १८७० की लेखक के पास भी है, जो उसे गोकुल से प्राप्त हुई थी।

भावप्रकाशवाली अथवा बिना भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की जितनी प्रतियाँ लेखक ने देखी हैं उनमें लेखकों की त्रुटि से ह्रस्व-दीर्घ की और कहीं-कहीं वाक्यों के निर्माण की भी अशुद्धियाँ हैं। इसी कारण भाषा की दृष्टि से वे एक दूसरे से बहुत भिन्न मालूम होती हैं। वृत्तान्त भाव प्रकाशवाली सभी प्रतियों में एक से हैं। जिन उपर्युक्त चौरासी वार्ता की हस्त-लिखित प्रतियों का उल्लेख किया गया है, उनको लेखक प्रामाणिक मानता है।

सूरदास—८४ वैष्णवन की वार्ता तथा चौरासी वार्ता पर हरिराय जी का भाव-प्रकाश, इन दोनों ग्रन्थों में सूरदास का जीवन वृत्तान्त विशेष विस्तार के साथ दिया हुआ है। लेखक के विचार से ये ही दो ग्रन्थ सूर की जीवनी के मुख्य आधार और विश्वसनीय ग्रन्थ हैं। इन्हीं का मुख्य आधार लेकर तथा अन्य सूत्रों के अल्प वृत्तान्तों को मिलाकर आगे के पृष्ठों में सूर की जीवनी की रूपरेखा दी जायगी।

१—प्राचीन वार्ता-रहस्य, भाग २ की प्रस्तावना में इस ग्रन्थ के लेखक के जो लेख हैं उनमें भूल से इस प्रति का संवत् १८२७ छप गया है। वास्तव में प्रति १८७० विक्रमी संवत् की है।

८४ वार्ता[1] में लिखा है,—"वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले सूरदास जी पद कर गाते थे। वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के बाद उन्होंने सुबोधिनी भागवत अनुसार पद बनाये। सूर के पदों में वर्णित विषय, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति-भेद, अनेक भग- अवतारों की लीला का वर्णन है।" उनके पदों के प्रभाव के विषय में वार्ताकार कहता है सूर के पद सुनकर भगवान् का अनुग्रह, मन को बोध और संसार से वैराग्य होता है। वान् के चरणों में मन लगता है। लौकिक आसक्ति छुटकर भगवान् के प्रति प्रेम द्धि होती है। "वार्ताकार (गोकुलनाथ) जी ने कहा है कि सूर ने सहस्रावधि बनाये और वे अपनी महान् रचना के कारण 'सागर' कहाये। श्रीहरिराय जी ने ी वार्ता का भाव स्पष्ट करते हुये सूर के पदों की सङ्ख्या लक्षावधि कही है। कवि ाव्य के विषय में उक्त वार्ता से यह भी सूचना मिलती है कि उसके पदों में उसके ा-काल में ही मैल होने लगा था और लोग सूर की छाप डालकर अपने पद सूर-काव्य लाने को अकबर के पास ले गये थे। वार्ता से सूर की केवल एक रचना (सूरसागर) ी सूचना मिलती है और उनकी कविता के जो भिन्न-भिन्न रूप दिये गये हैं उन सबका ाश इसी एक रचना, सूरसागर में कहा गया है।

परमानन्ददास—परमानन्ददास जी के जीवन-विषयक पीछे कहे हुये अल्प वृत्तान्त के रिक्त जो वृत्तान्त कुछ विस्तार से मिलता है वह चौरासी वार्ता का ही है। वार्ता साहित्य रिचय देते हुये पीछे कहा गया है कि अष्टछाप कवियों की जीवन-सामग्री का मुख्य सूत्र -सम्प्रदायी वार्ता ही है।

कवियों के जो वृत्तान्त सं० १६६७ की ८४ वार्ता तथा अष्ट सखान की वार्ता में दिये उसका समावेश हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली वार्ता में हो जाता है। इसलिए यजी-कृत भाव-प्रकाशवाली ८४ वार्ता के आधार से तथा अन्य सूत्रों से प्राप्त वृत्तान्तों से पुष्ट करके परमानन्ददास का जीवन-वृत्तान्त आगे दिया जायगा। उक्त वार्ता में परमा- ास के जन्मस्थान, जाति, माता-पिता, शिक्षा, शरणागति, मृत्यु, उनकी रचना और पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। वार्ता के कथनों के आधार से अष्ट कवियों की कुछ -तिथियाँ भी परोक्ष रूप से निकाली जा सकती हैं। परमानन्ददास के जीवन पर भी कार के अनुमान वार्ता के आधार से लेखक ने लगाये हैं।

८४ वैष्णवन की वार्ता में कई स्थलों पर यह भी उल्लेख आता है कि परमानन्द- ने सहस्रावधि पद बनाये। वार्ता के इस कथन से,—"ताछों वैष्णव तो अनेक श्री र्य जी के कृपापात्र हैं; परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ सागर भये, इन के कीर्तन की सङ्ख्या नाहीं सो दोउ सागर कहवाए"[2], यह भी सूचना मिलती है कि

1—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० १३, २२, २४, २७, ४६ तथा ५१।

2—'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० ७४ : ७५, परमानन्ददास की वार्ता।

से सूरदास जी की वृहत् रचना सूरसागर है उसी प्रकार परमानन्ददास जी के काव्य का संग्रह परमानन्द-सागर है। वार्ताकार के उपर्युक्त कथन से हम यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि परमानन्द दास की ख्याति सूर की तरह उनके जीवन-काल में ही हो गई थी। सम्भव है कि कवि के समय में ही अथवा उसके गोलोकवास के कुछ ही समय बाद उसकी रचनाओं का संग्रह कर लिया गया हो और उसका नाम परमानन्द-सागर रख दिया गया हो।

कुम्भनदास—कुम्भदास जी का जीवन-वृत्तान्त हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता तथा सं० १६६७ की ८४ वार्ता में विस्तार के साथ दिया हुआ है। चौरासी वार्ता में इस बात का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है कि कुम्भनदास जी गान बहुत अच्छा करते थे और पद स्वयं बनाकर गाते थे। वार्ता से ज्ञात होता है कि कुम्भनदास ने केवल युगल-स्वरूप के ही पद बनाये थे और अन्य किसी विषय पर रचना नहीं की।[1] कुम्भनदास ने कितने पद बनाये, उन पदों का कोई संग्रह उनके जीवन-काल में हुआ था अथवा नहीं, इन बातों का वार्ता से कोई परिचय नहीं मिलता।

कृष्णदास—कृष्णदास की जीवनी के भी सबसे प्रचुर आधार '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा श्री हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता है। उक्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में वल्लभ-सम्प्रदायी पाँच कृष्णदासों का वर्णन है।

१—कृष्णदास मेघन[2]—वार्ता के अनुसार ये श्री आचार्य जी की सेवा में नित्य रहा करते थे। इनकी काव्य-रचना का वार्ता में कोई उल्लेख नहीं है।

२—कृष्णदास घघरिया[3]—इनको वार्ताकार ने बाबा वेणुदास का छोटा भाई और केशोराय जी का भक्त लिखा है। इनके पद और कीर्तनों का भी उल्लेख वार्ता में है, परन्तु इनके पदों के उदाहरण वार्ता मे नहीं दिये गये।

३—कृष्णदास ब्राह्मण[4]—वार्ता में आचार्य जी के सेवक कृष्णदास ब्राह्मण की भक्त-सेवा की विशेष प्रशंसा की गई है।

४—कृष्णदास[5]—ये अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि कुम्भनदास जी के पुत्र थे, जिनको श्रीनाथ जी की गाय चराते हुये, एक सिंह ने मार डाला था। इनके भी कीर्तनों का कोई उल्लेख वार्ता में नहीं है।

१—'अष्टछाप', कांकरौली, पृ० ११७ तथा पृ० १०६।
२—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० ६।
३—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० १८५।
४—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० २५४।
५—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० ३३८।

५—कृष्णदास अधिकारी[1]—इनके विषय में वार्ता में स्पष्ट रूप से लिखा है कि इनके पद अष्टछाप में गाये जाते हैं। हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली वार्ता में इनका वृत्तान्त विस्तार से दिया है। '८४ वैष्णवन की वार्ता' में इनके किसी पद-संग्रह का अथवा किसी ग्रन्थ का नाम नहीं मिलता। वार्ताकार ने इनकी रचनाओं के विषय में लिखा है—"कृष्णदास ने बहुत से कीर्तन गाये और रासादिक कीर्तन अद्भुत और अनुपम किये"[1]

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

अष्टछाप कवियों में से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार शिष्यों का वृत्तान्त '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में दिया हुआ है। इस ग्रन्थ में वस्तुतः गोस्वमी जी के ही २५२ शिष्यों का वर्णन है। २५२ वार्ता पर भी हरिराय जी ने 'भाव-प्रकाश' किया था। जितनी प्राचीन प्रतियाँ ८४ वार्ता की लेखक के देखने में आई हैं उतनी प्राचीन प्रतियाँ २५२ वार्ता की नहीं। परन्तु २५२ वैष्णवन की वार्ता की संवत् १८०० से लेकर संवत् १९२४ तक की पचीसियों प्रतियाँ उसने गोकुल और मथुरा में देखी हैं। इनमें अष्टछाप के चार भक्तों के वृत्तान्त, प्राचीन अष्टसखान की वार्ता तथा संवत् १६९७ की 'गुसाँई जी के अष्टछापी चार सेवकन की वार्ता" के वृत्तान्त से बहुत अंश में मिलते हैं। कुछ प्रतियों में कुछ अधिक प्रसंग भी जुड़े हुये हैं। इससे अनुमान होता है कि हरिराय जी की टिप्पणियाँ भी इन वृत्तान्तों में मिली हुई हैं। सूरदास ठाकुरदास द्वारा संवत् १९४७ में बम्बई से प्रकाशित प्रति, वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित प्रति तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप'—इन तीन प्रतियों के कवियों के वृत्तान्तों से, लेखक की देखी हुई प्राचीन प्रतियों के वृत्तान्तों में बहुत अन्तर है। भाषा का वैषम्य तो प्रत्येक हस्तलिखित प्रति में, ८४ वार्ता की तरह, २५२ वार्ता में भी मिलता है।

हिन्दी में अष्टछाप कवियों के जीवन-वृत्तान्त के लिए, जैसा कि पीछे कहा गया है, वल्लभ सम्प्रदायी वार्ता-साहित्य को छोड़कर अन्य कोई विश्वस्त सूत्र नहीं। हिन्दी के कई विद्वान् इतिहासकारों ने कहीं तो यह कह कर ८४ एवं २५२ वार्ताओं को अप्रामाणिक कह दिया है कि ये साम्प्रदायिक गौरव बढ़ाने के लिए गढ़ी हुई कपोल-कल्पनाएँ हैं[2]। कहीं कुछ

१—चौरासी वैष्णवन की वार्ता वे० प्रे०, पृ० ३४२।

१—"सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदासजी ने गाये"—'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ०२०५। "तासों गुसाँई जी कहे, जो कृष्णदास रासादिक कीर्तन,ऐसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होय।" 'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० २४६।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र, शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २११ तथा पृ० १९६।

"रचना से (चौरासी वैष्णवन की वार्ता) यह वार्ता गोकुलनाथ जी के पीछे उनके किसी गुजराती शिष्य की रचना जान पड़ती है।"

विद्वानों ने दोनों वार्ताओं में भाषा का वैषम्य देखकर २५२ वार्ता को नितान्त बाद की रचना बताया और कुछ लोगों[1] ने छपी वार्ताओं में गोकुलनाथ जी के समय के बाद की दो एक घटनाओं को तथा उनमें दिये हुये शोधित वृत्तान्तों को देखकर सम्पूर्ण २५२ वार्ता तथा वार्ता-साहित्य को अप्रामाणिक कह दिया है। परन्तु जब हिन्दी के इतिहासकार अष्ट कवियों का परिचय देते हैं तो वे अब तक इन्हीं छपी वार्ताओं के विवरण का सहारा भी लेते हैं। हस्तलिखित २५२ वार्ताओं के खोजने तथा उन्हें देखने का कष्ट हिन्दी के इन विद्वानों ने नहीं उठाया। २५२ वार्ता की प्राचीन प्रतियाँ अधिकांश में अवश्य प्रामाणिक हैं। २५२ तथा ८४ दोनों वार्ताओं के सम्बन्ध में जो प्रश्न स्वभावतः उठते हैं, उनको हम इस प्रकार रख सकते हैं:—

१—ये वार्ताएँ गोकुलनाथजी कृत हैं अथवा नहीं?

२—इन वार्ताओं का रचनाकाल क्या है? क्या ८४ वार्ता, २५२ वार्ता तथा अष्ट-सखान की वार्ताएँ एक ही समय की लिखी हैं अथवा किसी अन्तर से इनको लिपिबद्ध किया गया है?

३—इनमें दिये हुये वृत्तान्त कहाँ तक प्रमाण-कोटि में गिने जा सकते हैं?

वल्लभसम्प्रदायी वार्ता-साहित्य तथा अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि वल्लभसम्प्रदायी भक्तों के चारित्रिक दृष्टान्तों द्वारा साम्प्रदायिक उपदेश देने की प्रथा श्री वल्लभाचार्य जी के पौत्र और श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र, श्री गोकुलनाथ जी ने चलाई। लेखक का अनुमान है कि श्री वल्लभाचार्य जी के मुख्य शिष्यों के चरित्रों की वार्ताएँ तो मौखिक रूप से श्री गोकुलनाथ जी के बाल्य-काल में ही आरम्भ हो गई होंगी और उनको उन्होंने सुना होगा। कुछ चरित्र उनके स्वयं देखे हुये थे। गोस्वामी गोकुलनाथ जी मौखिक रूप से अपने सम्प्रदायी भक्तों को आचार्य जी के ८४ और अपने पिता के २५२ शिष्यों की चारित्रिक कथाएँ सुनाया करते थे, जो बाद में उनके जीवन काल में ही लिपि-बद्ध कर ली गईं। इन वार्ताओं को वस्तुतः गोकुलनाथ जी ने अपने हाथ से कभी नहीं लिखा। ये वार्ताएँ उनके द्वारा कथित हैं और इनके लिपिबद्धकर्ता उनके शिष्य हैं। इन दोनों वार्ताओं के रचयिता श्री गोकुलनाथ जी ही हैं, इसके अनेक प्रमाण हैं:—

अ—प्राचीन प्राप्य हस्तलिखित वार्ताओं में इन्हें श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कृत लिखा है। श्री हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली वार्ताओं में भी इन्हें "श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कृत" लिखा है।

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ४४६।

आ—श्री गोकुलनाथ जी के समसामयिक व्यक्ति श्री देवकीनन्दन रचित[1] 'प्रभुचरित चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में वार्ताओं के श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कहे जाने का उल्लेख है।

इ—श्री हरिनाथ जी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा रचित 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' (रचनाकाल सवत् १७२९ वि०) में श्री गोकुलनाथ जी द्वारा बनाए हुये ग्रन्थों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में लिखा है—

"वचनामृत चौबीस किय देवी जन सुख दान।
वल्लभ विट्ठल वारता प्रकट कीन नृप मान।"

इस छन्द में श्री वल्लभाचार्य जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी दोनों की वार्ताओं का उल्लेख है।

ई—"निज वार्ता घरू वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र" नामक छपे हुए ग्रन्थ में श्री गोकुलनाथ जी के भक्तों की चारित्रिक वार्ताओं को मौखिक रूप से कहने का इस प्रकार उल्लेख है—

"श्री गोकुलनाथ जी आप भगवदीयन ते इतनी कथा कहि विराम करत भए, तब भगवदीयन ने बीनती कीनी, महाराज! आपने श्री आचार्य जी महाप्रभु की तीन पृथ्वी परिक्रमा के चरित्र सक्षेप में सुनाए, परि या चरितामृत में हमकों तृप्ति नाहीं होत। तातें और हू श्री आचार्य जी के चरित्र सुनाइवे की कृपा करोगे। तब श्री गोकुलनाथ जी आज्ञा करत भए जो श्री आचार्यजी महाप्रभु के चरित्र तो अनन्त हैं पर औरहू सक्षेप सों तुमको सुनावत हों। ऐसे कहि के आप और हू चरितामृत अपने भगवदीयन को पान करावत भए।"[2]

उ—इन वार्ताओं के प्रचार का ध्येय भक्तों के चारित्रिक उदाहरणों को उपस्थित करके भक्ति भाव का हृदय में उद्रेक करना है। गोकुलनाथ जी इसी विचार से इन वार्ताओं को कथा-रूप से कहते थे। जगदीश्वर प्रेस से सवत् १९५१ में छपी '८४ वैष्णवन' की वार्ता, पृष्ठ २९१ के लेख से तथा कॉंकरौली के भगवदीय श्री द्वारिकादास जी के पास सुरक्षित निज वार्ता की एक प्रति (सवत् १८५१ को) से भी इसकी पुष्टि होती है।

"और श्री गोकुलनाथ जी आप कथा कहते सो एक दिन श्री गोकुलनाथ जी आप

१—"तदपि भगवत्सेवापरे श्री गोकुलनाथे शयनभोगसेवोत्तरलब्धावसरे सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथाकथनानन्तरं श्रीमदाचार्य-तदात्मजचरितकथापि नियमेन परिगृहीता वक्तुम्... प्रभुचरित्र चिन्तामणि।"

२—"निजवार्ता, घरुवार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र", लल्लू भाई छगनलाल देसाई, पृ० ६३।

दामोदरदास सम्भरवारे की वार्ता करत हुते तब एक वैष्णव ने पूछयो जो महाराज, आज कथा न कहोगे। तब गोकुलनाथ जी आप श्रीमुख ते कह्यो जो आज तो कथा को फल कहत हैं। ताते भगवदीयन को अवश्य चौरासी वार्ता कहनी और सुननी, जाते भगवद्भक्ति होय और श्री ठाकुर जी के चरणारविंद में स्नेह होय और श्री नाथ जी प्रसन्न होय।"[1]

प्रथम प्रश्न के उत्तर में दिये हुये उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि ८४ और २५२ वार्ताएँ श्री गोकुलनाथ जी द्वारा ही कथित हैं, इसीलिए वे उनके कर्ता कहे गये हैं। हाँ, इतना अवश्य है, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, ये वार्ताएँ श्री गोकुलनाथ जी के हाथ से नहीं लिखी गई, इनको उनके शिष्यों ने लिखा है और समय समय पर इनकी प्रतिलिपियाँ होती रही हैं।

दूसरा प्रश्न है, ८४ और २५२ वार्ताओं के रचना-काल के सम्बन्ध में।

लेखक के विचार से, श्री कण्ठमणि जी शास्त्री, काँकरौली की सहमति में, उक्त वार्ता-साहित्य के, हस्तलिखित रूप में, तीन संस्करण माने जा सकते हैं।[2]

प्रथम संस्करण—श्री गोकुलनाथ जी के कथा प्रवचन के समय का मूल रूप प्रथम संस्करण है जो उनके हास्य प्रसङ्ग[3] के समान वचनामृत रूप[4] में हमें प्राप्त होता है। इसमें श्री आचार्य जी के ८४ और श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के २५२ भक्तों का वर्गीकरण नहीं था। इसको संग्रहात्मक वार्ता साहित्य कह सकते हैं। इसको श्री गोकुलनाथ जी के शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। श्री गोकुलनाथ जी के वचनों को लिखनेवाले उनके शिष्यों में एक कल्याण भट्ट[5] भी थे।

१—श्री द्वारिकादास, काँकरौली, के पास की निज वार्ता से उद्धृत।

२—प्रस्तावना, प्राचीन वार्ता-रहस्य द्वितीय भाग, काँकरौली से प्रकाशित।

३—"श्री गोकुलनाथ जीना हास्य प्रसङ्गों", भाग १ तथा २।
अहमदाबाद से प्रकाशित।

४—'श्रीमद् गोकुलनाथ जी कृत चौबीस वचनामृत'।
लल्लूभाई छगनलाल देसाई।

५—' तब श्रीगोकुलनाथ जी कल्याण भट्ट के ऊपर बहोत प्रसन्न भये तब श्रीगोकुलनाथ जी कल्याण भट्ट प्रति आज्ञा कीए, जो यह वार्ता और के आगे कहिवे की नाहीं है, तुम भगवद्भक्त हो और तुमकों पुष्टिमार्ग की रीति सुनिवे में अत्यन्त प्रीति है ताते तुमसों कहत हूँ सो मन लगाय के सुनियो। तथा हृदय में धारण करियो। अब श्रीगोकुलनाथ जी भगवदीय के लक्षण तथा पुष्टि मार्गीय सिद्धान्त कल्याण भट्ट प्रति कहत हैं ...."

श्रीमद्गोकुलनाथ जी कृत चौबीस वचनामृत, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, सम्वत् १९७७ संस्करण, पृ० ३।

द्वितीय संस्करण—श्रीगोकुलनाथ जी के समय में ही गो० हरिराय जी (समय सं० १६४७ वि०—सं० १७७२ वि०) ने फिर इनका वर्गीकरण किया और ८४ वार्ता को लिपिबद्ध किया। इसी समय से लिपिबद्ध वार्ताओं पर 'श्रीगोकुलनाथ जी-कृत' लिखा जाने लगा। काँकरौली-विद्याविभाग में जो सम्वत् १६६७ चैत्र सुदी ५ को एक हस्तलिखित, आचार्य जी के ८४ तथा गोस्वामी जी के चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता विद्यमान है वह हरिराय जी के भावप्रकाश से रहित है, इस वार्ता के रूप में इसी दूसरे संस्करण का रूप हमारे सामने आता है।

तृतीय संस्करण—श्रीगोकुलनाथ जी के बाद श्रीहरिराय जी ने ८४ तथा २५२[1] वार्ताओं पर कुछ प्रसङ्ग बढ़ाकर उनके भाव का स्पष्टीकरण किया, जो गोस्वामी हरिराय जी की भावना की वार्ताएँ कही जाती हैं और ऐसी वार्ताओं पर हरिराय जी के भावप्रकाश का उल्लेख है। सम्वत् १७५२ की भाव प्रकाशवाली ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता, मोरवाले मन्दिर गोकुल की ८४ वार्ता, तथा लेखक के पास सुरक्षित ८४ वार्ता की प्रतिलिपि, इस तृतीय संस्करण के प्रमाणस्वरूप नमूने हैं। हरिराय जी ने इन टिप्पणी सहित ८४ और अष्टसखाओं की वार्ताओं को गोकुल में रहकर ही सम्पादित किया था।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होगा कि श्रीहरिराय जी के भावप्रकाश की प्राचीन प्रति ८४ और अष्टसखान की वार्ता की, तो उपलब्ध हैं, परन्तु २५२ वार्ता की सम्वत् १८०० से पहले की कोई प्रति लेखक के देखने में नहीं आई। सुना जाता है कि कामबन के पुस्तकालय में २५२ वार्ता की बहुत प्राचीन प्रति विद्यमान है।[2] लेखक ने २५२ वार्ता को लगभग २०० वर्ष पुरानी अनेक प्रतियाँ गोकुल और मथुरा में देखी हैं। उनके बहुत से प्रसङ्ग वेंकटेश्वर प्रेस, जगदीश्वर प्रेस आदि से छपी वार्ताओं में छोड़ दिये गये हैं। इस वैषम्य का कारण सम्पादकों की स्वच्छन्दता है जिसका स्पष्टीकरण आगे किया जायगा। लेखक का अनुमान है कि श्रीगोकुलनाथ जी के ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्तावाले प्रवचनों का सङ्कलन पहले हुआ और उन पर हरिराय जी ने अपनी टीका-टिप्पणी पहले गोकुल में

१—इस विषय में लेखक को सूरत में श्रीकण्ठमणि जी शास्त्री से एक बात और ज्ञात हुई कि श्रीगोकुलनाथ जी अपने अन्तिम जीवन-काल में नेत्रहीन हो गये थे। परन्तु वे आचार्य जी के ८४ और गुसाईं जी के भक्तों के लिखित चरित्रों की पोथी को अपने सन्दूक में बन्द रखते थे और दिन में एक बार उसको मस्तक से लगाकर रख देते थे। उनके पुत्रों ने उसी पुस्तक की एक प्रतिलिपि कर ली जो, उक्त शास्त्री जी का कहना है, एक वैष्णव के पास है और उसे प्राप्त करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं।

२—यहाँ के श्रीमहाराज नाबालिक हैं तथा यहाँ का निज पुस्तकालय देखने को नहीं मिलता। लेखक के प्रयत्न करने पर भी उक्त वार्ता देखने को न मिल सकी।

रहते हुये ही लिखी। सम्वत् १७२६ में औरङ्गजेब के अत्याचार से वैष्णव लोग श्रीनाथ जी को उनके सम्पूर्ण वैभवसहित गोवर्द्धन से बाहर ले गये और दो वर्ष बाद सम्वत् १७२८ में उनको श्रीनाथद्वार में विराजमान किया। उनके साथ श्रीहरिराय जी, गङ्गाबाई आदि अनेक भक्त गये थे। ज्ञात होता है कि श्रीहरिराय जी ने अपने उत्तर जीवन-काल में २५२ वार्ता पर अपना भावप्रकाश लिखा होगा जो २५२ वार्ता के रूप में हमें, गोकुल आदि स्थानों में मिलता है। उपलब्ध २५२ वार्ता की प्रतियाँ हरिराय जी द्वारा ही सम्पादित और परिवर्धित हैं। मूल २५२ वार्ता, सम्भव है, कहीं छिपी पड़ी हो।

२५२ वार्ता में अजबकुँवरि, गङ्गाबाई, लाड़बाई और धारबाई के चरित्रों में कुछ ऐसे प्रसङ्ग आते हैं जिनमें औरङ्गजेब के मन्दिर तोड़ने का जिक्र आता है। इसी वार्ता में श्रीगोकुलनाथ जी का नाम आदर-प्रदर्शक शब्दों में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के वृत्तान्त स्वभावतः पाठकों के हृदयों में शङ्का उत्पन्न कर सकते हैं कि यह २५२ वार्ता ग्रन्थ गोकुल-नाथ जी कृत नहीं हो सकता, क्योंकि ये घटनाएँ श्रीगोकुलनाथ जी के समय के बाद की हैं। किन्तु इस बात को भी हमें न भूलना चाहिए कि इन[1] वार्ताओं के सम्पादक हरिराय जी हैं और इन प्रसङ्गों का समावेश उन्होंने ही किया था जो औरङ्गजेब के मन्दिर तोड़ने के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। इन प्रसङ्गों में कुछ अतिरञ्जित हो सकते हैं।

अप्रैल, सन् १९३२ की 'हिन्दुस्तानी' में तथा अपने ग्रन्थ 'विचारधारा' में डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने २५२ वार्ता पर अपने विचार प्रकट किये हैं। डा० वर्मा जी ने भाषा की दृष्टि से 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को 'दो सौ बावन वार्ता' की अपेक्षा अधिक पुराना बताया है और दोनों वार्ताओं के रचयिता दो भिन्न व्यक्ति बताये हैं। पीछे कहा गया है कि ऐतिहासिक आधारों से ज्ञात होता है कि ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता वस्तुतः पहले सम्पादित कर ली गई और २५२ वार्ता बाद को हुई। इसी से दोनों की भाषाओं में वैषम्य होना कोई बड़ी बात नहीं है; परन्तु भाषा का वैषम्य केवल ८४ तथा २५२ वार्ताओं में परस्पर ही नहीं वरन् ८४ वार्ता तथा २५२ वार्ता की भिन्न-भिन्न समय की तथा एक ही समय के भिन्न-भिन्न प्रतिलिपिकारों की प्रतियों में भी मिलेगा। प्रतिलिपिकारों का तथा प्रतिलिपि कराने-वाले वैष्णवों का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर कभी नहीं रहा। उनका ध्यान केवल वृत्तान्त के भाव की ओर रहा है। इसीलिए पोथी-प्रतिलिपिकारों ने अपने-अपने प्रान्त और

१—२५२ वार्ता के तृतीय संस्करण के समय, जो सम्वत् १७२९ के बाद श्रीनाथद्वार में हुआ, श्रीहरिराय जी ने लाड़बाई, धारबाई, अजबकुँवरि और उस समय तक विद्यमान गङ्गा क्षत्राणी आदि के, श्रीगोकुलनाथ जी द्वारा प्रकटित अपूर्ण प्रसङ्ग को पूर्ण किया। इससे पहले के बीच के समय में उन्होंने श्रीनाथ जी (गोवर्द्धन नाथ जी) के प्राकट्य की वार्ता लिखी थी जिसका उल्लेख गङ्गाबाई की वार्ता में आता है।

अपनी अपनी शिक्षा-बुद्धि के अनुसार भाषा का रूपान्तर कर मारा है।[1] इसलिए जिस वैष्णव ग्रन्थ में उसकी प्रतिलिपि की जो तिथि दी हो, हम केवल उसी समय और उसी स्थान की भाषा का थोड़ा सा अनुमान उस ग्रन्थ से लगा सकते हैं; परन्तु इस आधार से हम, विशेष रूप से प्रचलित वैष्णव-वार्ताओं की भाषा के आधार से, उसके लेखक के समय का अनुमान नहीं लगा सकते।

पीछे कहा गया है कि छपी हुई ८४ वार्ता और २५२ वार्ताओं के वृत्तान्त और भाषा हस्तलिखित वार्ताओं से नहीं मिलते। छापे की वार्ताओं में बहुत से प्रसङ्ग और वाक्य छोड़ दिये गये हैं। इसका कारण लिखिया, सम्पादक और प्रेसवालों की असावधानी और स्वच्छन्दता है। इस बात का प्रमाण वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा बम्बई से सम्पादित २५२ वार्ता की प्रस्तावना का लेख है। सूरदास ठाकुरदास वाली वार्ताओं के आधार से ही बाद में इन वार्ताओं के संस्करण हिन्दी, गुजराती में छपे थे। इस प्रस्तावना का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

"सर्व भगवदीय वैष्णवन कुँ हाथ जोड़ के विनती करूँ हूँ। मैंने २५२ वैष्णवन की वार्ता अल्पबुद्धि सुँ सोधि के छपाई है..............और सबमें विस्तार बहुत है परन्तु सो विस्तार कैसो है, जो बाँचि के वैष्णवन की वृत्ति स्थिर होवे और चित्त की वृत्ति श्री प्रभुन में लगे सो वा विस्तार में यह गुण नहीं है, सो ऐसो विस्तार काद कें, संकोच कर कें लिखी है।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अब तक छापे में आनेवाली २५२ वार्ता के बहुत से चारित्रिक और विशेष रूप से ऐतिहासिक प्रसङ्ग जो साम्प्रदायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं छोड़ दिये गये हैं। उदाहरण के लिए छपी वार्ताओं में नन्ददास की जाति नहीं लिखी; परन्तु प्रत्येक प्राचीन हस्तलिखित प्रति तथा पीछे कही हुई संवत् १६६७ तथा १७५२ संवत् की अष्टछापी कवियों की वार्ताओं में नन्ददास को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है तथा उन्हें तुलसीदास का भाई कहा गया है।

२५२ वार्ता की प्रस्तावना में वैष्णव सूरदास, ठाकुरदास आगे लिखते हैं —"२५२ *वैष्णवन की वार्ता सम्पूर्ण मिली नहीं जासुँ मैंने वल्लभकुल के बालकन के मुखसों और प्राचीन* वैष्णवन के मुख सूँ सुनी है सो वार्ता मिलाय के २५२ वार्ता सम्पूर्ण करी है।" इससे सिद्ध है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार अष्टछापी सेवकों के जीवन वृत्तान्त के लिए काँकरोली

1—अभी हाल में लेखक ने मथुरा में एक पुराने प्रतिलिपिकार (लिखिया) से २५२ वार्ता की प्रतिलिपि कराना आरम्भ किया था। उस लिखिया ने दो चार पन्नों में ही इतनी स्वतन्त्रता और भाषा के रूपान्तर दिखाये कि लेखक को उसकी प्रतिलिपि कराना बन्द करना पड़ा।

विद्याविभाग के 'वार्ता-रहस्य' नामक संस्करण से पहले की जितनी छपी वार्ताएँ हैं वे बहुत अंश में विश्वस्त और प्रामाणिक नहीं हैं।

अब प्रश्न है कि इन वार्ताओं में दिये हुए वृत्तान्त कहाँ तक प्रमाण-कोटि में गिने जा सकते हैं।

ऊपर कहा गया है कि भक्तों के चरित्रों को श्री हरिराय जी ने परिवर्धित करके लिखा है। उसके बाद छापनेवाले सम्पादकों ने घटा-बढ़ी कर ली, परन्तु प्राचीन प्रतियों में जो वृत्तान्त दिये हैं उनका भौतिक चरित्र बहुत अंश में प्रामाणिक है। इस ग्रन्थ के लेखक के विचार से भक्तों के चरित्र में अलौकिक चरित्रों के कारण प्रसङ्गों की ऐतिहासिक महत्ता अग्राह्य नहीं होनी चाहिए। विशेषरूप से वहाँ, जहाँ अन्य विश्वस्त प्रमाणों का अभाव है। श्री हरिराय जी वल्लभसम्प्रदाय के एक बहुत बड़े विद्वान् आचार्य, भारी लेखक और बहुत अनुभवी व्यक्ति थे। उन्होंने बहुत सी यात्राएँ की थीं। उन्होंने जो कुछ लिखा है, लेखक का अनुमान है, वह अधिकांश में विश्वस्त सूत्र से सूचना लेकर लिखा होगा। इस प्रकार जगदीश्वर प्रेस तथा वेंकटेश्वर प्रेस से छपी वार्ताएँ पूर्ण प्रामाणिक संस्करण नहीं माने जा सकते। २५२ वार्ता को यदि छोड़ भी दिया जाय तब भी 'अष्टसखान' की जीवनियों पर हमें यथेष्ट उपयुक्त प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है। लेखक ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार अष्टछापी सेवकों की जीवनी-भाग में सं० १६९७ की वार्ता तथा सं० १७५२ की भावप्रकाश वाली वार्ता के आधार पर काँकरौली से छपी वार्ता तथा लेखक के पास रक्षित अष्टछाप वार्ता से काम लिया है।

नन्ददास का वृत्तान्त—वेंकटेश्वर प्रेस से छपी २५२ वार्ता तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा जी द्वारा सम्पादित अष्टछाप वार्ता से नन्ददास के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

१—नन्ददास जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समकालीन और उनके शिष्य थे।

२—वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

३—वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले वे राम-भक्त भी थे।

४—वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले वे गोकुल गोवर्द्धन में नहीं रहते थे, कहीं अन्यत्र उनका स्थान था।

५—वे जाति के ब्राह्मण थे, और सौंदर्य-प्रेमी थे।

६—'रामचरितमानस' के रचयिता और राम के अनन्य भक्त महात्मा तुलसीदास के वे छोटे भाई थे।

७—नन्ददास ने सम्पूर्ण भागवत भाषा में लिखना चाहा, परन्तु अपने गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्होंने उसका लिखना बन्द कर दिया।

८—नन्ददास जी एक उच्चकोटि के गवैये थे और श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन किया करते थे।

९—उन्होंने बाललीला के बहुत से पदों की रचना की थी।

१०—उनके बड़े भाई तुलसीदास जी ने, जो काशी में रहते थे, (जिनको अयोध्या, काशी, चित्रकूट और दण्डकारण्य स्थान बहुत प्रिय थे) नन्ददास को एक बार काशी से एक पत्र लिखा था।

११—एक बार तुलसीदास अपने छोटे भाई नन्ददास से मिलने के लिए व्रज में आये थे।

संवत् १७५२ वि० की 'अष्टसखान की वार्ता' तथा लेखक के पास की हस्तलिखित 'वार्ता में नन्ददास का वृत्तान्त, जिसके छः प्रसङ्ग हैं, इस प्रकार है—

अब श्री गुसाँई जी के सेवक नन्ददास सनोढिया ब्राह्मण तिनकी वार्ता तिनके पद गाईयत हैं।[1]

वार्ता १—वे नन्ददास पूर्व[2] में रहते थे। ये दो भाई थे। बड़े तुलसीदास और छोटे नन्ददास। तुलसीदास रामानन्दी थे, उन्हीं के प्रभाव से नन्ददास भी रामानन्द सम्प्रदायी हो गये थे। नन्ददास को लौकिक विषयों से विशेष आसक्ति थी। नाच-तमाशे देखने और वेश्या-गान सुनने वे बहुत जाते थे। तुलसीदास के उपदेश का उन पर कुछ भी असर न होता था। जब दोनों भाई काशी में थे तब वहाँ से एक 'सङ्ग' रणछोर जी (द्वारिका जी) के दर्शन को चला। नन्ददास ने भी उसके साथ जाने की तुलसीदास से आज्ञा माँगी। पहले तो तुलसीदास ने समझाया, पर फिर उनके आग्रह को देखकर उन्हें सङ्ग के मुखिया के सुपुर्द

१—१७५२ की अष्टसखान की वार्ता में, जिसके आधार पर काँकरौली से 'अष्टछाप प्राचीन वार्ता-रहस्य' नामक पुस्तक छपी है 'नन्ददास' का निवास-स्थान 'रामपुर' दिया है। अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ ३२६।

२—यह ग्रन्थ काँकरौली से 'अष्टछाप' नाम से छपा है।

कर दिया। वह सङ्ग चल कर मथुरा आया। यहाँ सङ्ग का विचार कुछ दिन ठहरने का हुआ। नन्ददास का भी मन यहाँ बहुत लगा और उन्होंने यहाँ अधिक समय तक रहने का विचार किया। परन्तु साथ ही रणछोर जी के दर्शन की उत्सुकता होने के कारण उन्हें सङ्ग का ठहरना अच्छा न लगा। उन्होंने विचारा कि पहले जल्दी से रणछोर जी हो आवें फिर मथुरा में निश्चित रूप से रहेंगे। इस विचार से वे उस सङ्ग को छोड़ अकेले ही रणछोर जी को चल दिये। परन्तु मार्ग भूल जाने पर 'सीहनँद' नामक एक गाँव में जा निकले। उस गाँव में एक वैष्णव क्षत्री रहता था। नन्ददास जब उसके घर की ओर से निकले तब उसकी स्त्री नहा कर बाल सुखा रही थी। यद्यपि नन्ददास ने उसको केवल पीछे ही से देखा, पर फिर भी वे उस पर मोहित हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि इस स्त्री की पीठ तो देखी है, पर अब, जब इसका मुख देख लूँगा तभी जलपान करूँगा। यह सोचकर नन्ददास उस क्षत्राणी के द्वार पर खड़े हो गये। सन्ध्या से रात्रि हुई, पर मुग्ध नन्ददास उस क्षत्राणी के मुख की एक झलक के लिए रात्रि भर वहीं खड़े रहे। दूसरे दिन भी खड़े-खड़े उन्हें तीसरा पहर हो गया। पर उस क्षत्राणी के मुख को न देख पाये। उनको सवेरे से खड़ा देखकर घर की लौंडी ने इसका कारण पूछा। नन्ददास ने निष्कपट रूप से कह दिया कि जब तुम्हारी बहू का मुँह देख लूँगा तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगा। यह बात उस लौंडी ने अपनी बहू जी से जाकर कही। पहले तो उसे क्रोध आया, पर जब नन्ददास को खड़े-खड़े शाम हो गई, और लौंडी ने समझाया तब वह अपने बारजे में आई और नन्ददास उसको देख कर चले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ही नन्ददास उसके द्वार पर फिर पहुँच गये और उसको घर से निकलते देख कर लौट गये। इस प्रकार नन्ददास प्रति दिवस उस क्षत्राणी को एक बार देख आते। यह बात उस स्त्री के पति को मालूम हुई। उसने नन्ददास को रोका और कहा कि तुम्हारे इस व्यवहार से हमारी हँसी होती है। पर नन्ददास ने कहा—मैं किसी से कुछ कहता नहीं, माँगता नहीं, केवल दिन में एक बार हो जाता हूँ। अधिक कहने पर नन्ददास ने कहा कि मैं यहाँ प्राण तज दूँगा और तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप पड़ेगा। अस्तु वह क्षत्री नन्ददास को उनके हठ से न हटा सका। जब यह बात सब गाँव में फैल गई तो हारकर उन लोगों ने उस गाँव को छोड़ना ही निश्चय किया।

एक दिन जब प्रातःकाल नन्ददास उस बहू को देख कर लौट गये, उसके बाद वह क्षत्री अपने बेटे-बहू, लौंडी तथा नौकरों को लेकर चुपचाप ही गाड़ी पर गोकुल को चल दिया। दूसरे दिन जब नन्ददास वहाँ पहुँचे तो उन्होंने ताला लगा देखा। तब पड़ोसी से पूछ और सब वृत्तान्त सुन कर ये भी गोकुल को चल दिये, और चलते-चलते उस क्षत्री के पास पहुँच गये। उसके बहुत लड़ने-झगड़ने पर भी नहीं माने और पीछे-पीछे चलते ही गये। ऐसे ही वे लोग गोकुल से एक कोस दूर एक गाँव में पहुँचे। इस गाँव और गोकुल के बीच में यमुना जी बहती थीं। यहाँ वह क्षत्री स्वयं तो सकुटुम्ब पार उतर गया, पर मल्लाहों को कुछ द्रव्य देकर उन्हें नन्ददास को पार उतारने से रोक दिया। वे लोग

गोकुल में श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के दर्शन को गये और नन्ददास यमुना किनारे बैठ यमुना स्तुति के पद गाने लगे—

राग रामकली, ताल चर्चरी

नेह कारन श्री जमुने प्रथम आई।
भक्त के चित्त की वृत्ति सब जानही ताही ते अति आतुर जो धाई।
जैसी जाके मन हती अब इच्छा ताहि तैसी साध जो पुराई।
'नन्ददास' प्रभू नाथ ताही पर रीझत जो श्री यमुना जू के गुन गाई।

राग रामकली

यमुने यमुने जो गावो
सेस सहस मुख गावत ताही निस दिन पार न पावों।
सकल सुख देनहार ताते करों हों ऊचार कहत हों बार बार भूल जिन जावों।
'नन्ददास' की आस पूरन यमुने करी ताते कहों घरी घरी चित लावों।

उधर जब वह क्षत्री अपने बेटे-बहू के सङ्ग श्री गोस्वामी जी के दर्शन को पहुँचा तो गोस्वामी जी ने राज भोग के बाद इनके लिए प्रसाद की चार पत्तलें धरवाईं। उस क्षत्री ने कहा,—महाराज हम तो तीन ही जने हैं, चौथी पत्तल किसके लिए है। तब गोस्वामी जी ने उत्तर दिया कि यह उस ब्राह्मण के लिए है जिसे तुम यमुना पार छोड़ आये हो। इस पर वे लोग बहुत लज्जित हुये और सोचा कि यहाँ भी इस क्लेश से मुक्ति नहीं मिली। तब गोस्वामी जी ने धैर्य दिया और कहा—यह ब्राह्मण अब तुम को दुख नहीं देगा। फिर एक सेवक को नाव पर भेज कर उन्होंने नन्ददास को बुलवा लिया। गोस्वामी जी के कोटि-कन्दर्प लावण्यरूप के दर्शन करते ही नन्ददास का मोह छूट गया और उन्होंने विनती की—"जो महाराज जब ते गुलाम को जनम भयो है और जब ते कछू सुधि भई है तब ते महा बुरी जो कृत कहीये, विशेषकर मैंने किए हैं। और बिसे (विषय-वासना) में तनमय ही रह्यो हूँ। और आप तो परम कृपाल हो। मो पर कृपा करि के अपनी सरन राखिये।" गोस्वामी जी ने, नन्ददास को यमुना स्नान करा के नाम निवेदन करवाया (इष्ट मन्त्र दिया)। नन्ददास का मोह तो छूट ही चुका था, इष्ट मन्त्र मिलते ही उनके हृदय में अपूर्व भक्ति का सञ्चार हुआ और उन्होंने (मोह भङ्ग करनेवाले तथा भावना के ससार में लानेवाले) गोस्वामी जी की स्तुति के पद गाये।

नन्ददास की पद-रचना से गोस्वामी जी बहुत प्रसन्न हुये। फिर नन्ददास महाप्रसाद पाने बैठे तो तन्मय हो गये और भगवान् की लीलाओं का अनुभव करते हुए रात भर बैठे रहे। सबेरे गोस्वामी जी ने आकर कहा—"नन्ददास उठो दर्शन का समय हुआ है।" तब

नन्ददास की तन्मयता का अन्त हुआ और संज्ञा आई। उन्होंने तुरन्त ही गोस्वामी जी को साष्टांग प्रणाम करके उनकी बन्दना के ये पद गाये—

राग विभास

प्रात समै श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजे नाम।
आनँदकारी प्रभु मंगलकारी अशुभ हरन जन पूरन काम।
यही लोक परलोक के बंधू को कहि सकें तिहारे गुनग्राम।
'नन्ददास' प्रभू रसिक सिरोमनि राज करौ श्री गोकुल धाम।

राग विभास

प्रात समै श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ।
सुंदर वदन सुभग गिरधर कों निरषि निरषि दोउ दृगन सिराऊँ।
मोहन बचन मधुर श्रीमुख के श्रवनन सुनि सुनि हृदे बसाऊँ।
तन मन प्रान निवेदन विधि यह आपुनपों सुफल कराऊँ।
रहों सदा चरनन के आगे महाप्रसाद ऊछिष्ट सो पाऊँ।
'नन्ददास' यह माँगत हों श्री वल्लभ सुत को दास कहाऊँ।

तब से नन्ददास पूर्ण वल्लभसम्प्रदायी हो गये और गोस्वामी जी के संसर्ग में रहते हुए भक्ति के पद गाते रहे। इसके बाद श्री नवनीतप्रिया' के दर्शन के बाद उन्होंने निम्नलिखित पद गाया था—[1]

राग विलावल

बाल गोपाल ललन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति।
मुख चुंबत देखत सुंदर तन आनँद भरि भरि गावति।

१—सूरदास जी ने 'साहित्यलहरी' की रचना संवत् १६१७ में 'नन्दनन्दन दासहित' की थी। वल्लभ-सम्प्रदायी शास्त्री पं० कण्ठमणि जी तथा काँकरौली के भगवदीय श्री द्वारिकादास का मत है कि श्री 'नन्दनन्दनदास' का अर्थ कवि नन्ददास ही है। उन्हीं के लिए सूर ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इससे अनुमान होता है कि नन्ददास लगभग संवत् १६१६ में गोस्वामी जी की शरण में आकर फिर अपने घर चले गये। वहाँ से वे संवत् १६२४ के लगभग फिर गोस्वामी जी के पास आये और तभी उन्होंने 'जयति रुक्मिणी नाथ पद्मावती' वाला पद तथा नवनीतप्रिय जी के सम्मुख के पद गाये थे। गुसाईं जी ने पद्मावती जी से विवाह संवत् १६२० में किया था तथा नवनीतप्रिय की आदि स्वरूपों को संवत् १६२४ में अड़ैल से व्रज लाये थे। तुलसीदास जी तथा नन्ददास जी का विछोह काशी से, संवत् १६१६ के लगभग ही हुआ जान पड़ता है।

कबहूँ पलना मेलि झुलावति कबहूँ अस्तन पान करावति।
'नन्ददास' प्रभु गिरधर को रानी निरखि निरखि सुख पावति।

वार्ता २—कुछ समय पश्चात् गोस्वामी जी श्रीनाथजी के दर्शन को गोवर्द्धन पर गये और साथ में नन्ददास को भी ले गये। वहाँ श्रीनाथ जी के दर्शनों के उपरान्त नन्ददास ने कुछ पद गाये, जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

राग गौरी

बन ते आवत गावत गौरी।
हाथ लकुटिया गाइन के पाछें ढोटा जसुमति कौ री।
मुरली अधर धरें मनमोहन मानों लगी ठगोरी।
या ही ते कुल कान हरी हैं ओढें पीत पिछोरी।
ब्रज की बधू अटन चढ़ि निरखत रूप देखि भई बोरी।
'नन्ददास' जिन हरि मुख निरख्यो तिनको भाग बड़ोरी।

राग गौरी

देखि सखी हरि कौ बदन सरोज।
प्रफुलित बदन सुधारस में लुब्ध मधुप मनोज।
गोरज छुरित पराग रह्यो फबि सुन्दर अधर सुकोस।
'नन्ददास' नासा मुक्ता मानों रही एक कन ओस।

वार्ता ३—एक समय में एक 'सङ्घ' गोकुल से जगन्नाथपुरी को चला। मार्ग में यह सङ्घ काशी में ठहरा। इस सङ्घ से पूछने पर तुलसीदास को पता चला कि एक नन्ददास जिसका मन पहले विषय-वासना में बहुत लगता था, अब गोस्वामी जी का शिष्य हो गया है और वह पदा बहुत है। तुलसीदास ने अनुमान किया, "यही मेरा भाई नन्ददास है।" उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गोस्वामी जी की कृपा से नन्ददास का मन लौकिक बातों से हटकर पारलौकिक बातों में लग गया है। तुलसीदास ने फिर एक पत्र में नन्ददास से कृष्णभक्त होने का कारण पूछा और रामभक्ति का उपदेश देने के लिए अपने पास बुलाया। परन्तु नन्ददास ने उत्तर दिया—"आपने पहले तो मेरा विवाह श्री रामचन्द्र जी ही से किया था, पर अनेक अबलाओं के स्वामी सर्वशक्तिमान श्रीकृष्ण ने आकर मुझे लूट लिया। अब तो मैं तन-मन-धन से कृष्ण का भक्त हूँ।" और साथ ही निम्नलिखित पद भी लिखा—

राग आसावरी

कृष्ण नाम जब तें सुन्यों श्रवणन तब तें भूली भवन हों तो बावरी भई री।
भरि भरि आवें नैन चित न रंचिक चैन मुखहूँ न आवें बैन तन की दसा कछू औरै भई री।

जितेक नेम धर्म में कीने री या हों बिधि अङ्ग अङ्ग भई श्रवन मई री।
'नन्ददास' जाके श्रवन सुने यह गति माधुरी मूरति कैधों कैसी दई री।

तुलसीदास को यह पढ़कर निश्चय हो गया कि नन्ददास इधर नहीं आयेगा। नन्ददास की भक्ति गोस्वामी विट्ठलनाथ जी में इतनी दृढ़ हो गई थी कि वे व्रज को छोड़कर कहीं नहीं जाते थे।

वार्ता ४[1]—नन्ददास ने सम्पूर्ण 'दसम स्कन्ध भागवत' की लीला भाषा छन्दों में गाई। यह जानकर मथुरा के कथावाचक पौराणिक ब्राह्मणों ने गोस्वामी जी से विनती की—"इस भाषा भागवत से तो हमारी जीविका चली जायगी।" तब नन्ददास ने गोस्वामी जी की आज्ञा से 'रासलीला' तक का ग्रन्थ छोड़कर बाकी सब ग्रन्थ यमुना में पधरा दिया। अस्तु, परम भक्त नन्ददास गोस्वामी की आज्ञा का पूर्ण पालन करते थे।

वार्ता ५—एक बार जब नन्ददास गोस्वामी जी के साथ श्रीनाथ जी द्वार में थे, तब तुलसीदास भी काशी से गोकुल होकर वहाँ आये। वहाँ वे नन्ददास से गोविन्दकुण्ड पर मिले और कहा कि तुम मेरे साथ चलो और अयोध्या, काशी या चित्रकूट जहाँ मन लगे वहाँ रहो। तब नन्ददास ने उत्तर में यह पद गाया—

राग सारङ्ग

जो गिरि रुचें तो बसों श्रीगोवर्धन, गाम रुचे तो बसो नन्द गाम,
नगर रुचें तो बसो श्रीमधुपुरी सोभा सागर अति अभिराम।
सरिता रुचें तो बसो श्रीजमुना तट सकल मनोरथ पूरन काम,
'नन्ददास' कानन रुचि बसबो सिखर भूमि श्रीवृन्दावन धाम।

तुलसीदास ने गोस्वामी जी से भी नन्ददास की विषयासक्ति छूट जाने और भक्त होने का कारण पूछा। तब उन्होंने उत्तर दिया कि नन्ददास पहले ही से उत्तम पात्र था। पुष्टिमार्ग में आने से इसकी व्यसनी अवस्था सिद्ध अवस्था में बदल गई है और अब यह दृढ़ हो गई है। तुलसीदास वापिस चले गये।[2]

१—'अष्टछाप' काँकरौली, में नन्ददास की वार्ता में प्रसङ्ग ४ तथा ५ का क्रम उलटा है। 'अष्टछाप', काँकरौली तथा 'अष्टछाप' डा॰ वर्मा ने लिखा है कि नन्ददास ने 'भागवत भाषा' तुलसी की रामायण से प्रेरणा लेकर की।

२—काँकरौली से छपी 'अष्टछाप' में इस प्रसङ्ग में श्रीविट्ठलनाथ जी के पुत्र रघुनाथ जी तथा उनकी स्त्री जानकी का रामजानकी-रूप में तुलसीदास को दर्शन देने की कथा और अधिक है।

वार्ता ६—एक समय बादशाह अकबर बीरबल सहित मथुरा-गोकुल आये, और उन्होंने मानसी गङ्गा के पास डेरा किया। वहाँ से बीरबल गोस्वामी जी के दर्शन को श्रीनाथ जी गये। वहाँ नन्ददास को बीरबल से मालूम हुआ कि अकबर ने मानसी गङ्गा पर डेरा किया है। अकबर की एक लौंडी वैष्णव थी। नन्ददास की उससे बहुत मित्रता थी, अस्तु वे (नन्ददास) मिलने के लिए मानसी गङ्गा' पर आये, और उसको एक वृक्ष के नीचे रसोई करते पाया। तब उन्होंने यह पद गाया—

राग टोडी

चित्र सराहत गोपी बहुत सयानी।
एक टक में कृष्ण बदन निहारत पलक न मारत जान गई न दरानी।
परि गये परदा ललित तिवारी कञ्चन थार जब आनी।
'नन्ददास' प्रभू भोजन घर में ऊपर कर धर्यो व, उतते मुसिक्यानी।

उन दोनों ने परस्पर भगवद्चर्चा करते रात्रि व्यतीत की। उस वैष्णव लौंडी ने नन्ददास से यह भी कहा कि मानसी गङ्गा अति उत्तम स्थान है और अब हम दोनों यहीं रहें। अब इन आँखों से लौकिक देखना अच्छा नहीं है। प्रातःकाल नन्ददास श्रीनाथ जी द्वार लौट आये।

उसी रात को तानसेन ने अकबर के सामने नन्ददास का यह पद गाया—

राग केदारो

दखो देखो री नागर नट निर्तत कालिन्दी के तट,
गोपिन मध्य राजे मुकट लटक।
काछनी, किंकिनी कटि पीताम्बर की चटक,
कुण्डल किरन में रवि-रथ की अटक।
ताथेई ताथेई सब्द सकल उघटत,
उरप तिरप मानो पद की पटक।
रास में श्री राधे राध, मुरली में याही रट,
'नन्ददास' जहाँ गाव निपट निकट।

यह पद सुनकर अकबर ने नन्ददास को बीरबल द्वारा बुलवाया और पूछा कि आपने इस पद में गाया है कि 'नन्ददास जहाँ गावे निपट निकट', तो आप रास के निकट कैसे पहुँचे। नन्ददास ने कहा,—आप अपनी अमुक लौंडी (जो नन्ददास की मित्र थी) से पूछिये। बादशाह ने डेरे में जाकर उससे पूछा। वह बादशाह का प्रश्न सुनते ही मूर्च्छित

होकर गिरी और उसके प्राण छूट गये। इधर नन्ददास जी का भी देहावसान हो गया। यह देखकर अकबर को बड़ा आश्चर्य हुआ। जब गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को यह समाचार मिला तो उन्होंने दोनों वैष्णवों की बड़ी सराहना की।

उक्त वृत्तान्त में वेंकटेश्वर प्रेस से छपी वार्ता से कुछ अधिक सूचनाएँ मिलती हैं। ये सूचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१—नन्ददास और तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे।

२—वल्लभसम्प्रदाय में आने के पहले नन्ददास भी तुलसीदास की तरह राम के उपासक थे और श्री रामानन्द जी के सम्प्रदाय के शिष्य थे।

३—नन्ददास की वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले लौकिक विषयों में बहुत आसक्ति थी।

४—नन्ददास जी वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले ही पद-रचना करते थे।

५—नन्ददास ने अपना सम्पूर्ण 'भागवत भाषा' ग्रन्थ यमुना जी में नहीं बहाया। रासलीला तक का दशम स्कन्ध रख लिया।

६—इस वार्ता में नन्ददास की भक्ति की अनन्यता का अधिक परिचय मिलता है। 'अष्टछाप', डा० वर्मा तथा वें० प्रे० से छपी २५२ वैष्णवन की वार्ता के प्रसङ्ग, जो उक्त वार्तो में छूटे हुये हैं, ये हैं—

१[1]—तुलसीदास के सामने कृष्ण के धनुर्धारी वेश धारण की कथा।

२[2]—विट्ठलनाथ जी के पुत्र रघुनाथ जी तथा रघुनाथजी की स्त्री जानकी का रामजानकी-रूप में तुलसीदास को दर्शन देने की कथा।

नन्ददास की मृत्यु की कथा वें० प्रे० से छपी वार्ता में रूपमञ्जरी के प्रसङ्ग में दी हुई है। लेखक की देखी हुई हस्तलिखित वार्ताओं में नन्ददास की मृत्यु की वार्ता छठे प्रसङ्ग में दी हुई है।

१—इन दोनों प्रसङ्गों का तथा लेखक के पास की 'अष्टछाप वार्ता' के नन्ददास विषयक प्रसङ्गों का समावेश काँकरौली से छपी 'अष्टछाप वार्ता' में है।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ४६१।

इन दोनों वार्ताओं में नन्ददास के विषय में कोई तिथि, उनके माता, पिता, जन्म-स्थान आदि के विषय में कोई उल्लेख, नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वें० प्रे० से छपी २५२ वार्ता में श्रीनाथ जी की एक सेविका रूपमञ्जरी का वृत्तान्त दिया हुआ है। उसमें भी लिखा है कि रूपमञ्जरी से नन्ददास की मित्रता थी और उनकी मृत्यु दिल्ली के बादशाह अकबर के सामने हुई थी।

चतुर्भुजदास—'२५२ वैष्णवन की वार्ता' में दो चतुर्भुजदासों का वृत्तान्त दिया हुआ है। एक कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास[1] और दूसरे ब्राह्मण चतुर्भुजदास[2]। ब्राह्मण चतुर्भुजदास के विषय में वार्ता में लिखा है कि ये काव्य-रचना अच्छी करते थे और अकबर बादशाह के कर्मचारी थे। श्री गुसाँई जी की शरण में आने के बाद ये श्री गोवर्द्धननाथ जी के नैकट्य को छोड़कर अन्यत्र नहीं गये। २५२ वार्ता में कुम्भनदास जी के पुत्र तथा अष्टछाप के कवि चतुर्भुजदास के काव्य के विषय में लिखा हुआ है कि इन्होंने कृष्ण-जन्म[3]-महोत्सव, बाल-भाव, पालना, शृङ्गार[4], रासलीला[5], विनय[6] तथा विरह[7] के पद बनाकर गाये। अन्त समय में इन्होंने गुरु-महिमा[8] में भी पद लिखे थे। इनके जीवन-चरित्र का मुख्य आधार '२५२ वैष्णवन की वार्ता' ही है।

गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी के जीवन-वृत्तान्त का भी मुख्य सूत्र 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' ग्रन्थ ही हैं। प्राचीन २५२ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता के वृत्तान्तों में बहुत कम अन्तर है। २५२ वैष्णवन की वार्ता में इनके काव्य की सराहना की गई है। वार्ताकार कहता है कि गोविन्दस्वामी कवीश्वर थे। और

१—'अथ श्री गुसाईं जी के सेवक चत्रभुजदास, कुम्भनदास जी के बेटा, जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं, तिनकी वार्ता।' (अष्टसखान की वार्ता।)

२—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३२२। 'गुसाईं जी के सेवक चतुर्भुजदास ब्राह्मण तिनकी वार्ता।'

३—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३१८, ३१९।

४—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३०१।

५—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३०६।
"सो ऐसे ऐसे बहोत कीर्तन चत्रभुजदास ने रास के गाये।"

६—'सो ऐसे ऐसे प्रार्थना के चत्रभुजदास ने बहुत कीर्तन करिके सूतक के दिन वितीत किये।' अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३०९।

७—'या भाँति सों अत्यन्त विरह के कीर्तन चत्रभुजदास ने किये।'
'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३१३।

८—'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० ३२३।

पद बनाते थे।[1] २५२ वार्ता के अन्तर्गत राजा आसकरन की वार्ता में लिखा है कि गोविन्दस्वामी ने सहस्रावधि पद लिखे और वे तानसेन को भी पद गाकर सिखाते थे।[2] एक स्थान पर अष्टछाप-वार्ता में लिखा है कि गोविन्दस्वामी बसन्त धमार के पद भी बनाकर[4] गाते थे।

उपर्युक्त सूत्रों से गोविन्दस्वामी की पद-रचना और उन पदों की उत्कृष्टता का तो परिचय मिलता है, परन्तु उनके किसी ग्रन्थ का नाम नहीं ज्ञात होता।

छीतस्वामी—छीतस्वामी के जीवन-वृत्तान्त का जितना परिचय '२५२ वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' में दिया हुआ है उतना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। इस वार्ता में लिखा है कि छीतस्वामी के पद अष्टछाप में गाये जाते हैं, तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ की कृपा से ये बड़े कवीश्वर हुये और इन्होंने बहुत कीर्तन बनाये।[3] वार्ता में छीतस्वामी के पदों के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ की सूचना नहीं मिलती।

अष्टछाप-कवियों के वृत्तान्त ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताओं में दिये हुये हैं। इन वार्ताओं के अतिरिक्त ये चरित्र अलग से भी संगृहीत मिलते हैं। लेखक के पास भी

अष्टसखान की वार्ता अथवा अष्टछाप की वार्ता।

अष्टछाप वार्ता की एक प्रतिलिपि है जिसमें कोई संवत् नहीं दिया हुआ है। परन्तु लेख और कागज़ के देखने से प्रति कम से कम २०० वर्ष पुरानी अवश्य जान पड़ती है। इस संग्रह से ज्ञात होता है कि इसमें कुछ वार्ताएँ हरिराय जी के भावप्रकाशसहित भी हैं। अष्टसखान की वार्ता की एक प्रति हरिराय जी के भावप्रकाशसहित ८४ वार्ता के साथ पाटन में विद्यमान है, जिसके आधार से काँकरोली विद्या विभाग ने अष्टछाप-वार्ता का सम्पादन कराया है। लेखक ने श्रीविट्ठलनाथ जी के चार अष्टछापी सेवकों के वृत्तान्त देते समय 'अष्टसखान की वार्ता' से भी सहायता ली है।

सूरदास—'अष्टसखान की वार्ता' में सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। इसमें सूरदास जी का चरित्र गऊघाट से आरम्भ होता है जिससे ज्ञात होता है कि सूरदास जी का चरित्र हरिराय जी के भावप्रकाशसहित नहीं है। इसमें दी हुई परमानन्ददास जी की वार्ता में भी हरिराय जी का भावप्रकाश नहीं है और कुम्भनदास की वार्ता वही है जो डा० वर्मा द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप' में दी हुई है। कृष्णदास की भी वार्ता वही है जो डाक्टर वर्मा द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप' में दी हुई है।

१— अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० २६४।
२—'अष्टछाप' काँकरौली, पृ० २७६।
३—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ११२।
४— अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० २२६।

'अष्टछाप' अथवा 'अष्टसखान की वार्ता' में नन्ददास को सनोढिया ब्राह्मण लिखा है और वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहिले उन्हें रामानन्दी सम्प्रदाय का तथा तुलसीदास का भाई बताया है। इसमें उनकी वार्ता लगभग वही है जो काँकरौली से प्रकाशित 'अष्टछाप' में है। चतुर्भुजदास की वार्ता में जन्म, शरणागति तथा अन्त समय का वृत्तान्त विशेष विस्तार के साथ दिया गया है। चतुर्भुजदास जी के देहावसान के प्रसङ्ग में, इसमें लिखा है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी गोवर्द्धन की कन्दरा में प्रविष्ट होकर अन्तर्द्धान हुये और उसी समय चतुर्भुजदास जी ने देह छोड़ी। 'अष्टसखान की वार्ता' में इनके काव्य के विषय में लिखा है कि इन्होंने कृष्ण-जन्म-महोत्सव, बाल-भाव, पालना, शृङ्गार, रास-लीला, विरह, विनय के पद बनाकर गाये। इस ग्रन्थ में यह भी स्पष्ट लेख है कि इनके पद अष्टछाप में गाये जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि २५२ वार्ता के दो चतुर्भुजदासों में कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास जी ही अष्टछाप के कवि हैं। गोविन्दस्वामी के जीवन-वृत्तान्त के मुख्य सूत्र 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा इस 'अष्टसखान की वार्ता' के वृत्तान्तों में बहुत कम अन्तर है। छीतस्वामी के जीवन-वृत्तान्त का जितना परिचय इस वार्ता में तथा '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में दिया हुआ है उतना अन्य किसी ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलता। इस वार्ता में दिया हुआ छीतस्वामी का वृत्तान्त, काँकरौली से छपी 'अष्टछाप-वार्ता' के वृत्तान्त से कुछ शब्दों के फेर के साथ मिलता है।

पीछे कहा गया है कि सम्वत् १६६७ की ८४ वार्ता के साथ श्रीगुसाईं जी के चार अष्टछापी सेवकन की वार्ता भी दी हुई है। यह श्रीहरिराय जी के भावप्रकाश से रहित है।

श्रीगुसाईं जी के सेवकन की वार्ता

यह प्रति, सबसे अधिक प्रामाणिक है। इसकी पुष्पिका '८४ वैष्णवन की वार्ता' के विवरण के साथ में लगे हुए चित्र से ज्ञात होगी।

इस ग्रन्थ की सं० १७७७ वि० की हस्तलिखित एक प्रतिलिपि लेखक ने, नाथ-द्वारे के निज पुस्तकालय में बस्ता नं० ३६ बटे ३ में देखी थी। इसके रचयिता का नाम इसी

चौरासी भक्त नाममाला सन्तदास-कृत

ग्रन्थ में सन्तदास दिया हुआ है जो श्रीहरिराय जी के शिष्य थे। ग्रन्थ के देखने से ज्ञात होता है कि इसमें भक्तों का गुणगान ८४ वैष्णवन की वार्ता के कथनों के आधार से ही किया गया है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका तथा पूर्ति-भाग में इस प्रकार लेख हैं—

"इति श्रीकलिकल्मषहरन नामभक्तिमाला चौरासी वैष्णव-गुण-वर्णन नाम सम्पूर्ण।"

तथा

"इति श्रीचौरासी भक्तनाम सम्पूर्ण सं० १७७७ मिती चैत्र बदी ६ शनौ लिखितं अनीराय ब्राह्मण।"

जैसा कि अभी कहा गया है इस ग्रन्थ में चौरासी वार्ता के कुछ प्रसङ्ग के पुष्टि-रूप कथनों के अतिरिक्त अन्य नवीन सूचना, अष्टछाप-भक्तों के विषय में नहीं है।

सूरदास—इस ग्रन्थ में सूरदास जी का निम्नलिखित वृत्तान्त है—सूर के समान कोई अन्य भक्त नहीं है। ये श्रीवल्लभाचार्य जी के सेवक थे और इनकी ख्याति तीनों लोकों में थी। श्रीवल्लभाचार्य जी ने इनके ऊपर दया करके श्रीमद्भागवत की सब भक्ति-रीति इनको समझाई। तभी से इन्होंने भक्ति में सब लोक के शोकों को छोड़कर अपनी आत्मा का समर्पण कर दिया। इनके गाने गुणों से पूर्ण हैं। ये जन्म से ही अन्धे थे। इन्होंने दिव्य-चक्षुओं से सुख की खानि भगवान् के खुलकर दर्शन किये थे।[१]

परमानन्ददास—इस ग्रन्थ में परमानन्ददास के विषय में लिखा है,—"परमानन्द स्वामी एक महापुरुष थे। उनकी वाणी में वैराग्य भरा था। उनको भगवान् के साक्षात् दर्शन होते थे। वे कीर्तन बहुत सुन्दर गाते थे जिनको सुनकर लोगों को परम तुष्टि मिलती थी। अड़ैल मे ये आचार्य (वल्लभाचार्य) जी की शरण गये। विरह के अनुभव में ये सुन्दर प्रभावशाली पद गाते थे। इन्होंने आचार्य जी के मुख से भागवत की अनुक्रमणिका सुनी और तभी इन्होंने बाल-लीला के पद बनाये। इन्होंने अनेक प्रकार के पद लिखे हैं।"[२]

१—सूर के समान और भक्त नाहीं पाइये।
सेवक श्री वल्लभ के तिहूँ लोक गाइये।
एक बेर सूरदास फोंकडे करत हुते।
तहाँ ते श्री वल्लभ देख्यो रस संचिते।
दया करी कही सबै रीति भागौत की।
अर्पन करि आत्माहि छाँड़ि लोक सोक को।
गुनी तान गाननि परिपूरन अवलोक को।
जन्मत के अति सूर है, चख मुदित जग जान।
कमल नयन के दरस पै खुलि निरखे सुख खान।
चौरासी भक्तनाममाला से, नाथद्वार निज पुस्तकालय, बस्ता नं० ३१ बटे ३।

२—स्वामी परमानन्द बड़े महापुरुष हैं।
तिनकी बातैं सुनो जगत ते कुरुख हैं।
नित प्रति जिनको हरिदास सुगम हैं।
जगत भजत की बात जिनको अगम है।
आपु करें कीर्तन सुन्दर सुगावहीं।
जो कोउ सुने हिये हरि तोक आवहीं।
एक दिन विरहा अनुभवे बहुते महा।
वैसे ही सुर गावत अनभै बरनों कहा।
× × ×

कृष्णदास—'चौरासी भक्तनाममाला' में इनके विषय में लिखा है कि कृष्णदास की वाणी में महारस से सना हुआ परम तत्त्व का सार होता था। ये पुष्टिमार्गियों के यहाँ भेंटिया रूप में जाते थे। एक बार ये मेवाड़ में मीरा भक्तिनी के घर गये। वह अन्य-मार्गिणी थी। इन्होंने उसकी भेंट स्वीकार नहीं की। उस समय मीरा के पुरोहित रामदास जी भी उपस्थित थे जो श्री जी के सेवक थे।[1]

यह ग्रन्थ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के छठे पुत्र गोस्वामी यदुनाथ जी द्वारा, जिनको

स्वामी आप अड़ैल पधारे दरसन हेत रटन दुख भारे।

× × ×

नाम समर्पन करत भये घर परमानन्द नाम।
तुम्ह कृत पद जो गाइहै पाइये आनंद धाम।
श्री भागवत अनुक्रम कह्यो समुझाइ के।
ताही छन पद गायो एक बनाय के।
सुन्दर स्याम कमल दृग फूलैं पालने।
और विविधि पद किये, लड़ाये लाल ने।

चौरासी भक्तनाममाला से, नाथद्वार निज पुस्तकालय, बस्ता नं० ३१ बटे ३।

1—कृष्णदास अधिकारी की बतियाँ भनौं।
परम तत्त्व कौ सार महारस में सनौं।
चलें भेंटिया ह्वै सबै देस माही।
जहाँ पुष्ट पन्थी तहाँ आपु जाहीं।
गये एक बिरियाँ सुमेवाड़ देसे।
तहाँ बाई मीरा रहे भक्त वेसे।
हुती अन्य मार्गी नहीं भेंट लीनी।
चले प्रात उठिकें भई बाई छीनी।

× × ×

कहाँ लौं कहों और लीला हरी की।
भई बाई मीरा रसामय भरी की।

× × ×

रामदास पुरोहित हते मीरा के कुल माँझ।
श्री जी के सेवक हते महासकल अविद्या बाँझ।

चौरासी भक्तनाममाला से, नाथद्वार निज पुस्तकालय।

गद्दी आजकल बनारस तथा सूरत में है, सम्वत् १९५८ वि० में लिखा गया था।[1] इसमें श्रीवल्लभाचार्य जी का संक्षेप में जीवन-चरित्र दिया हुआ है।

वल्लभ-दिग्विजय आचार्य जी ने अपने धर्म-प्रचार के लिए जो जो यात्राएँ की थीं उनका विवरण ऐतिहासिक क्रम के साथ और कहीं तिथि और संवत् देकर किया गया है। आचार्य जी के भक्तों के उल्लेख इसमें प्रसङ्गानुसार आ गये हैं।

श्री वल्लभाचार्य जी की जीवनी के लिए यह ग्रंथ बहुत प्रामाणिक समझा जाता है। इस ग्रन्थ के अंत में इसके रचयिता श्री यदुनाथ जी ने लिखा है,—"इस चरित्र विजय-ग्रन्थ में मैंने जैसा आचार्य चरण का चरित्र सुना था वैसा लिखा है।"[2] यह ग्रन्थ आचार्य जी के पौत्र द्वारा लिखा गया है। इसलिए इसके कथनों को बहुत अंश में प्रामाणिक माना जा सकता है। इसमें आचार्य जी के अष्टछापी भक्तों के वल्लभसम्प्रदाय में शरण जाने का विवरण भी दिया हुआ है।

सूरदास—इस ग्रन्थ से सूर के वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के समय का अनुमान होता है। वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है[3] कि श्री वल्लभाचार्य जी, अपने विवाह और अपनी

१—वसुबाणरसेन्द्वब्दे तपस्यसितके रवौ,
चमत्कारिपुरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत् सोभमा तटे।

पुष्पिका
वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ

संवत् १९७५ वि० में इस ग्रन्थ को श्री नन्दकिशोर शास्त्री ने श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी के हिन्दी अनुवाद सहित श्रीनाथद्वार विद्याविभाग की ओर से प्रकाशित किया है। लेखक के पास यही संस्करण है।

२—श्रुत्वा निजाचार्यकथा निजेभ्यो देशे विदेशे च बहुश्रुतेभ्यः
संक्षिप्य गूढ़ा लिखिताः प्रसिद्धाः कः कृत्स्नशस्ता लिखितुं क्षमः स्यात्। २।
वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ।

३—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ५०।
ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो व्रजसमागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीतः। ततो गोकुलेप्यावासं विधाय गिरौ समागताः। तत्र कृष्णदासमनुगृह्य मण्डपादिपुरस्सरं कृष्णभट्टमाचार्यत्वे निवेश्य गयाकरवे हरिमिश्रं च यज्ञः कृतः। वैशाखशुक्लतृतीयायां श्रीमद्गोवर्धनधरस्य नूतनाऽऽलये प्रतिष्ठापनं कृतम्। तत्र वैष्णवा विद्वांसश्च वृन्दावनादितो महान्तश्चागताः। तेषां सर्वेषां दानमानादिभिः सत्कारो जातः। पूर्णमल्लेन चन्दनधनयोरर्पणे कृते, अधिकारी कृष्णदासः सेवायां माधवो माधवः सशिष्यो नियुक्तः। परिचरणे पाककार्ये उदीच्य साचीहरौ रामदासौ।...... गायने कुम्भनो नियुक्तः। ततः सकुटुम्बैराचार्यैर्गोकुले समागतम्। तत्र केशवाऽऽचार्यः शिष्यैः सह कथायां समागत.। स च वासुदेवेन

तृतीय यात्रा (पृथ्वी-प्रदक्षिणा) के बाद एक बार अड़ैल से व्रज आये। इससे पहले वे व्रज में आकर श्रीनाथ जी के स्वरूप की स्थापना गोवर्द्धन पर कर चुके थे। इस समय जब ये गऊघाट पर उतरे तब उन्होंने सूरदास सारस्वत पर अनुग्रह किया। वहाँ से चलकर गोकुल होते हुए गिरिराज पहुँचे। वहाँ पर कृष्णदास को शरण में लिया। उस समय वैसाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन गोवर्द्धन का नवीन मन्दिर में स्थापन होनेवाला था। यह घटना सं० १५६७ श्री गोपीनाथ जी के जन्म-समय से लगभग दो साल पहले की है। दिग्विजय में लिखा है कि पाटोत्सव के समय ही आचार्य जी ने कृष्णदास अधिकारी को सेवा दी। इसके बाद पूरनमल ने चन्दन और धन श्रीनाथ जी को अर्पण किया। फिर मथुरा में यवनों के अत्याचार का मुकाबिला किया। वहाँ से सीहनन्द थानेश्वर गये। वहाँ से कुछ समय बाद फिर गोकुल वापिस आये और फिर सङ्कर्षण (गोपीनाथ) गर्भ में आये। स्वभावतः इसके नवमे मास में सं० १५६७ आश्विन कृष्ण द्वादशी को गोपीनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। वल्लभ-सम्प्रदायी कुछ सज्जनों का मत है कि श्रीनाथ जी के अपूर्ण मन्दिर में पाटोत्सव संवत् १५६४ अक्षय तृतीय को हुआ। इस पाटोत्सव के समय को लगभग सं० १५६४ से सम्वत् १५६६ के बीच का कोई समय कहा जा सकता है।

वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने जगदीश यात्रा के बाद अड़ैल में परमानन्द कान्यकुब्ज पर अनुग्रह कर उसे लीला के दर्शन करवाये।[1] उस ग्रन्थ में कुम्भनदास जी के भी आचार्यजी की शरण में जाने का प्रसङ्ग दिया हुआ है। जैसा कि अभी कहा गया है वल्लभदिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने अपनी स्त्री के द्विरागमन के बाद तथा श्री गोपीनाथ जी के जन्म (सं० १५६७) से पहले कृष्णदास को शरण में लिया और उसी समय नये मन्दिर में श्रीनाथ जी को प्रविष्ट किया गया।

यह ग्रन्थ संवत् १७२६ विक्रमी में श्री हरिराय जी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा व्रजभाषा पद्य में लिखा गया था। इसमें श्री वल्लभाचार्य और श्री विट्ठलनाथ जी की

साकमाचार्यैर्विश्रान्तोपरिबद्धयवनयन्त्रप्रहापणाय योगिनीपुरं प्रति प्रेषितः। तत्रत्यगोपुरे तेन निजयन्त्रं निबद्धम्। तेन यवना हिन्दवोऽभवन् ... ... श्रीहनन्दस्थानेश्वरं प्रत्यागतम्। तत्र विरुद्धाऽऽचारं रामानन्दं भगवता स्वीकृतं स्वीकृत्य पुनर्गोकुलं समेत्य संकर्षणं महिलार्थनया गर्भे समागतं वीक्ष्य, शवागमनभीतिमिषेण निजकुटुम्बं निजप्रभूंश्च वासुदेवयादवादिभिरलर्कं प्रति प्रस्थाप्य स्वयमपि दामोदरादिभिः प्रस्थिताः। ... ... गर्भिण्याः संस्कारान् विधाय विक्रमार्कतो 'हय' 'रस' 'शर' 'रसामितेऽब्दे' (१५६७) [आश्विनकृष्णद्वादश्यां श्रीगोपीनाथे प्रादूर्भूते तस्य संस्कारान् दोर्वा चाकलयन्।

1—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५३।

सम्प्रदाय कल्पद्रुम

जीवन घटनाओं का विवरण दिया गया है। इसमें दिये हुये संवत् वल्लभ-सम्प्रदाय में अन्य प्रमाणों के अभाव में मान लिये जाते हैं। सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में चतुर्भुजदास के वल्लभ-सम्प्रदाय में शरण जाने का समय सं० १५६७ वि० दिया है।[1] इस ग्रन्थ में गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी के, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण में आने का समय सं० १५६२ लिखा है।[2]

निज वार्ता, घरुवार्ता तथा चौरासी बैठक चरित्र[3]

८४ और २५२ वार्ताओं की तरह यह वार्ता भी वल्लभसम्प्रदायी वैष्णवों में बहुत प्रचलित है। इस ग्रन्थ में श्री वल्लभाचार्य जी के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं का वर्णन किया गया है। निज वार्ता में आचार्य जी के शिष्यों के संसर्ग की कथाएँ दी हुई हैं। घरुवार्ता में उनके कुटुम्ब, विवाह और यात्राओं का वर्णन है और बैठक-चरित्रों में उन स्थानों का वर्णन है जहाँ जहाँ ठहरकर आचार्य जी ने अपने मत का प्रचार किया था। बैठक चरित्र वर्णनों में उन स्थानों के उन चरित्रों का भी वर्णन है जो आचार्य जी ने वहाँ ठहर कर किये थे। इन वर्णनों में बहुत सा अंश साम्प्रदायिक है; परन्तु ऐतिहासिक सूचना भी इसमें प्रचुर मात्रा में है। ८४ और २५२ वार्ता के अनुसार इसके भी रचयिता श्री गोकुलनाथ जी कहे जाते हैं। लेकिन लेखक का अनुमान है कि मौखिक रूप से ये वार्ताएँ भी श्री गोकुलनाथ जी ने कहीं और इनको लिखित रूप श्री हरिराय जी ने दिलवाया। बाद में इनमें से कुछ घटनाओं में वैष्णवों ने घटा-बढ़ी भी कर ली। निज वार्ता की सं० १८५१ की एक प्रति काँकरौली में श्री द्वारिकादास जी के पास है। सावधानी रखते हुये छाँट के बाद इस ग्रन्थ में से ऐतिहासिक सूचनाएँ निकाली जा सकती हैं।

निज वार्ता में श्री वल्लभाचार्य जी के जीवन-वृत्तान्त के साथ उनके अष्टछापी चार शिष्य सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास के जीवन-सम्बन्धी कुछ प्रसङ्ग

१—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ८७।

२—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ८१।

३—यह ग्रन्थ पहले पहल बम्बई से गोवर्द्धनदास लक्ष्मीदास ने सं० १९४६ के लगभग छपवाया। इसके बाद अहमदाबाद से लल्लूभाई छगनलाल देसाई ने सं० १९७६ में प्रथम संस्करण और संवत् १९९० में दूसरे संस्करण-रूप में छपवाया। लल्लूभाई ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि हमने इस ग्रन्थ को प्राचीन पुस्तकों के आधार से शोध कर छपवाया है। परन्तु सम्पादक ने निजवार्ता, घरुवार्ता की किसी प्राचीन पुस्तक का उसके लिखे जाने के संवत् सहित हवाला नहीं दिया।

दिये हैं जिनका बहुधा समावेश ८४ वार्ता 'में हो गया है । इस ग्रन्थ में सूरदास को श्री वल्लभाचार्य जी के समवयस्क बताया गया है ।[1]

श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राक्ट्य की वार्ता[2]

इसके रचयिता श्री हरिराय जी हैं। इसमें अष्टछाप कवियो के इष्टदेव श्री गोवर्द्धन-नाथ (श्रीनाथ) के स्वरूप के प्राकट्य और उनके समय समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित होने का वृत्तान्त दिया हुआ है। ब्रज में गोवर्द्धन पर श्री गोवर्द्धननाथ जी (श्रीनाथ जी) के मन्दिर में ही रहकर अष्टछाप ने अपने अमर काव्य की रचना की थी। इसके सम्पादक श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है,—"इसमें सं० १४६६ से लेकर सं० १७४२ तक का ही वृत्तान्त है।" ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ को इसी संवत् १७४२ में लिखा और उस साल तक का उसमें वृत्तान्त दे दिया। बाद को श्री हरिराय जी ने इसके वृत्तान्त को आगे नहीं लिखा।

श्री विष्णुलाल पाण्ड्या जी ने आगे इसकी प्रस्तावना में कहा है,—' मैंने यह ग्रन्थ यथाशक्ति और यथामति शोध के . ... समस्त वैष्णव-मण्डली के हस्त में सविनय अर्पण किया है।" इन्होंने यह भी कहा है कि पिछले सम्पादकों ने भी इसके शोध किये हैं। सम्भव है कि सम्पादकों के शोधन से मूल ग्रन्थ का कोई महत्वशाली गुण लुप्त हो गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का बहुत महत्व है। इसमें जो तिथियाँ दी हैं उनमें से कुछ ऐसी भी हो सकती हैं जिनका मेल अन्य सूत्रों से प्राप्त घटना और तिथियों से न होता हो; परन्तु इसमें बहुत सी उपयोगी सामग्री है।[3] लेखक ने इस ग्रन्थ की जिन घटना और तिथियों को ग्रहण किया है उनको अन्य विश्वस्त सूत्रों से प्राप्त घटना और तिथियों से मिलान करने के पश्चात् ग्रहण किया है।

गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से सूरदास और कृष्णदास के वल्लभ-सम्प्रदाय में जाने की तिथि के आकलन में सहायता मिलती है। कृष्णदास के विषय में यह भी

१—निजवार्ता, घरुवार्ता तथा ८४ बैठकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० २१; तथा काँकरौली में स्थित, हस्तलिखित निज वार्ता, सं० १८८१ की प्रतिलिपि।

२—यह ग्रन्थ पहले संवत् १९२२ में चेसवाँ से श्री गिरिधारीसिंह जी ने छपवाया; फिर संवत् १९४१ में मथुरा से लीथो छापे में छपा। इसके बाद श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने इसका सम्पादन किया और वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई से सं० १९६१ में छपवाया।

३—"इस पुस्तक की सामग्री अत्यन्त रोचक और उपयोगी है।" 'विचार-धारा,' डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १०९ तथा पृ० १११।

लिखा है कि श्रीनाथ जी के पाटोत्सव के समय वल्लभाचार्य जी ने उन्हे शरण में लिया। गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के कुछ प्रसङ्गों से, कुम्भनदास जी के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली तिथियों तथा उनके आरम्भिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है जिसका विवरण कवि की जीवनी के साथ दिया जायगा।

द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता[1]

इस ग्रन्थ का एक बड़ा अंश काँकरौली के तृतीय पीठाधीश्वर गोलोकवासी श्री बालकृष्ण लाल जी (सं० १६२४: १६७२ वि० तक) का तैयार किया हुआ है। उनके जीवन काल में यह ग्रन्थ नहीं छपा। उनके गोलोकवास के बाद लल्लू भाई छगनलाल देसाई ने इस ग्रन्थ को बढ़वा कर तैयार कराया और अहमदाबाद से इसे छापा। इसमें श्री वल्लभाचार्य जी, उनके पुत्र श्री गोपीनाथ जी और श्री विट्ठलनाथ जी के सात पुत्र और तृतीय पुत्र श्री बालकृष्ण जी (द्वारिकाधीश के उपासक) के वंशजों का वृत्तान्त दिया हुआ है। इस ग्रन्थ से अष्ट कवियों की जीवन तिथियों के आँकने में बहुत सहायता मिली है। श्री बालकृष्ण लाल जी एक उच्च कोटि के विद्वान् और विद्यानुरागी थे। इसलिए उन्होंने तिथियाँ और घटनाएँ तथासम्भव छानबीन करके ही लिखी थीं, ऐसा वल्लभसम्प्रदायी पण्डित मानते हैं। इसमें दी हुई तिथियों का प्रयोग इस ग्रन्थ के अष्टछाप-जीवनी भाग में किया गया है।

श्री गिरिधर लालजी महाराज के १२० वचनामृत

यह ग्रन्थ वल्लभसम्प्रदायी तृतीय पीठ के १० वें तिलकायित गोस्वामी श्री गिरिधर लाल जी (सं० १८६८ से सं० १६३५ वि० तक स्थिति) के १२० वचनों का संग्रह है। इसमें मौलिक रूप से परम्परागत चली आती हुई कुछ किंवदन्तियों के आधार से और कुछ प्राचीन वार्ताओं के सहारे, भक्तों की वार्ताएँ, सम्प्रदाय के कुछ सिद्धान्त और शिक्षाएँ दी गई हैं। कहा जाता है कि सं० १६२३ में जब गोस्वामी गिरिधर लाल जी डभोई में गये थे, वहाँ उन्होंने व्याख्यान दिये थे। इन्हीं प्रवचनों को उनके शिष्यों ने लिख लिया। सं० १६७६ वि० में लल्लूभाई छगनलाल देसाई (अहमदाबाद) ने इनको छपवा दिया। इन वचनों में दिये हुये ऐतिहासिक वृत्तान्तों को लेखक विश्वस्त सूत्र से बँधी परम्परागत जनश्रुति रूप में ही मिलता है। अष्टछाप कवियों के जो वृत्तान्त इन प्रवचनों में दिये हैं उनको इस ग्रन्थ के लेखक ने अन्य प्रमाणों के अभाव में अपना लिया है।

उक्त वचनामृतों से छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी के गोलोकवास के समय तथा स्थान का पता चलता है।

१—यह ग्रन्थ सं० १६८० विक्रमी में अहमदाबाद से लल्लूभाई छगनलाल देसाई ने छापा था।

यह कई ग्रन्थों का एक संग्रह ग्रंथ है। कृष्णगढ़नरेश महाराज सावन्तसिंह (जन्म सं० १७५६) उपनाम नागरी दास जी के, जो श्री वल्लभाचार्य जी के सम्प्रदाय के शिष्य थे लिखे हुए ग्रन्थों का यह संग्रह है। शृङ्गार-सागर के अन्तर्गत इनका एक ग्रन्थ 'पदप्रसङ्गमाला'[1] भी है। इसमें भक्तों के वृत्तान्त देते हुये उनके कुछ पदों के प्रसङ्ग दिये हैं कि वे किस अवसर पर गाये गये थे। नागरीदास जी ने इन सङ्गों को परम्परागत जनश्रुति, भक्तमाल, ८४ तथा २५२ वार्ता ग्रन्थ आदि सूत्रों से लेकर लिखा है। इसमें दिये हुये पद तो प्रामाणिक हैं परन्तु प्रसङ्गों के विवरण कहीं कहीं अतिरञ्जित भी हैं। इसलिए वे अन्य प्रमाणों के मेल से ही ग्राह्य हैं।

नागर समुच्चय

सूरदास—इस ग्रन्थ में नागरीदास जी ने किंवदन्तियों के आधार से 'पदप्रसङ्ग-माला' में सूरदास के कुछ पदों के गाये जाने के प्रसङ्ग और कथाएँ दी हैं जिनमें घटनाओं का कोई तारतम्य नहीं है। जो कथाएँ नाभादास जी तथा प्रियादास जी ने अन्य सूरदासों के विषय में दी हैं, उनमें से कुछ को नागरीदास ने भूल से अष्टछाप के सूरदास के पदों के प्रसङ्गों के साथ जोड़ दिया है। ८४ वैष्णवन की वार्ता तथा भक्तमाल के विवरण से विरुद्ध पड़नेवाले 'नागर समुच्चय' के प्रसङ्गों को लेखक ने यहाँ ग्रहण नहीं किया। नागर-समुच्चय में अन्य अनेक भक्तों के पदों के प्रसङ्ग भी दिये हुये हैं। व्यासदेव के प्रसङ्ग में भी सूरदास का उल्लेख आता है। एक पद में व्यासदेव ने, सूरदास, परमानन्ददास, मीरा आदि भक्तों को अपना कुटुम्ब कहा है और एक दूसरे पद में वे सूरदास, परमानन्द दास का इस प्रकार नामोल्लेख करते हैं मानों वे कवि अब इस संसार में हैं ही नहीं।[2] व्यासदेव के संसर्ग से सूरदास की विद्यमानता पर कुछ प्रकाश इन प्रसङ्गों से पड़ता है।

छीतस्वामी—भक्तमाल अथवा भक्त नामावली की अपेक्षा नागर समुच्चय में छीत-स्वामी का कुछ अधिक वृत्तान्त दिया गया है। परन्तु इस वृत्तान्त में केवल '२५२ वैष्णवन

१—नागर समुच्चय, सिंगार सार, शिवलाल, पृ० १८१।

२—नागर समुच्चय, शिवलाल, पृ० २११, २१२।

सेन धना नामा पीपा कबीर रैदास चमारौ।
रूप सनातन को सेवक गगल भट्ट सुपारौ।
सूरदास परमानंद मेहा, मीरा भक्ति बिचारौ।
बाँमन राज पुत्र कुल उत्तम करत जात कों गारौ।
आदि अंत भक्तन को सर्वसराधा वल्लभ प्यारौ।

× × ×

इहि विधि चलत स्याम स्यामा के व्यासहि वोरा मायँ तागे।

इस सम्बन्ध के अन्य पद व्यासवाणी के विवरण के साथ दिये जायँगे।

की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' में दिये हुये, उनके वल्लभसम्प्रदाय में शरणागति के प्रसङ्ग का ही विशेष उल्लेख है। नागरीदासजी कहते हैं कि' पहले इनको छीतू मथुरिया कहते थे। ये बहुत झगड़ालू प्रकृति के थे और शैव थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को, यदि कोई उनको ईश्वर का स्वरूप बताते हुए, प्रशंसा करता तो इनको बहुत बुरा लगता। एक दिन एक थोथे नारियल में राख भरकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पास ले गये और उसे उनको भेंट किया। गोस्वामी जी ने जब उसे तुड़वाया तो उसमें गरी निकली। छीतस्वामी बहुत लज्जित हुये और गोस्वामी जी के चमत्कार पर चकित हुये। वे उसी समय उनके शिष्य हो गये और उन्होंने उसी समय निम्नलिखित पद गाया—

राग सारङ्ग

'जे बसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्री वल्लभ देव।
जो गोपाल हुते गोकुल में तेई आनि बसे करि गेह।
जे वे गोप बधू हीं ब्रज में तेई अब वेदरिचा भई येह।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल तेई ऐई ऐई तेई कछु न संदेह।

उपर्युक्त प्रसङ्ग से छीतस्वामी के विषय में यह भी सिद्ध होता है कि ये वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले कविता करते थे और गान विद्या भी जानते थे। तभी तो उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समक्ष तुरन्त पद बनाकर गाया था।

आइने अकबरी, मुन्तखिब उल तवारीख तथा मुंशियात अबुल फजल

इन तीनों ग्रन्थों में महात्मा सूरदास के जीवन से सम्बन्धित कुछ सूचनाएँ हैं। इन ग्रन्थों का परिचय तथा इनमें दिये हुये सूर के वृत्तान्त तथा इन सूचनाओं की प्रामाणिकता के विषय में नीचे की पङ्क्तियों में विचार किया गया है। सूर के विषय में दिये हुये इन वृत्तान्तों को लेखक अष्टछापी सूरदास के जीवन-चरित्र के प्रामाणिक वृत्तान्त नहीं मानता, क्योंकि अन्य विश्वस्त सूत्रों से प्राप्त अष्टछापी सूरदास के वृत्तान्त किसी भी प्रकार इनमें दिये हुये वृत्तान्तों से नहीं मिलते।

सूरदास और आइने अकबरी—आइने अकबरी में लिखा है कि अकबर के दरबार में ग्वालियर निवासी रामदास नामक एक गवैया था। उसका लड़का सूरदास था जो अपने पिता के साथ दरबार में आया करता था, अकबर के दरबार के गवैयों में सूरदास का भी नाम है।[२] डा० ग्रियर्सन ने साहित्यलहरी वाले सूर के आत्मचारित्रिक पद को प्रामाणिक

१—नागर-समुच्चय, पद प्रसङ्ग माला, सिंगार सागर, शिवलाल पृ० २०७।

२—आइने अकबरी, पृ० ६१२।

मानने हुए हरिचन्द का पुन रामचन्द अथवा रामदास माना है और इस तरह उन्होंने पद के वृत्तान्त और आइने अकबरी के कथन को मिला दिया है। लेखक के विचार से डा० ग्रीयर्सन का मत भ्रान्त है।

सूरदास और मुन्तखिबउत्तवारीख[1]— यह ग्रन्थ अलबदाउनी का लिखा है। इसमें सूरदास के पिता कहे जानेवाले रामदास के विषय में लिखा है,—"खानखाना के पास उस समय अधिक द्रव्य नहीं था। फिर भी उन्होंने रामदास लखनवी को जो सलीमशाही कलावन्तों में से एक था और जो गाने की कला में मियाँ तानसेन के समान था, एक लाख सिक्के बख्शिश दिये।"

सूरदास, और मुन्शियात अबुलफ़ज़ल—यह ग्रन्थ अकबर के समय के पत्रों का संग्रह है। इसमें अकबर बादशाह की आज्ञा से अबुलफ़ज़ल का सूरदास के नाम एक पत्र का उल्लेख है और अकबर से सूरदास के मिलने का भी उल्लेख है। मुन्शी देवीप्रसाद जी ने अपने ग्रन्थ 'सूरदास का जीवनचरित्र' में पृ० ३० : ३१ पर इस पत्र का अनुवाद दिया है। उसी को यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"हज़रत बादशाह शीघ्र ही इलाहाबाद को पधारेंगे। आशा है कि आप भी सेवा में उपस्थित होकर सच्चे शिष्य होवें और ईश्वर को धन्यवाद दें कि हज़रत भी आपको परम धर्मज्ञ जानकर मित्र मानते हैं। और जब हज़रत मित्र मानते हैं तो दरगाह के चेलों और भक्तों का उत्तम बर्ताव मित्रता के अतिरिक्त और क्या होगा! ईश्वर शीघ्र ही आपके दर्शन करावे कि जिसमें हम भी आपकी सत्सङ्गति और चित्ताकर्षक वचनों से लाभ उठावें।"

"यह सुनकर कि वहाँ का करोड़ी आपके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता, हज़रत को भी बुरा लगा है और इस विषय में उसके नाम कोपमय फ़र्मान भी जा चुका है और इस तुच्छ शिष्य अबुलफ़ज़ल को भी आज्ञा हुई है कि आपको दो-चार अच्छर लिखे। वह करोड़ी यदि आपकी शिक्षा नहीं मानता तो हम उसका काम उतार लें और जिसको आप उचित समझें जो दीन दुखी और सम्पूर्ण प्रजा की पूरी सँभाल कर सके उसका नाम लिख भेजें तो अर्ज़ करके नियत करा दूँ। हज़रत बादशाह आपको जुदा नहीं समझते; इसलिए उस जगह के काम की व्यवस्था आपकी इच्छा पर छोड़ी हुई है। वहाँ ऐसे हाकिम चाहिए जो आपके

१—मुन्तखिबउत्तवारीख, जिल्द २, पृ० ४२।

व खान खाना हमीं तौर बावजूद आँकि दरख़ज़ीना हेच न दाश्त एकलक तनका ब रामदास लखनवी क अज़ कलावन्तान अमलीम शाही दरबादी मरोद औ सानी मियाँ तानसेन तवान गुफ़्त व दर खिलवात व जलवात व खान हमदम व मुहरिम बूद व अज़ हुस्न सौत ओ पेवस्ता आबदरदीदा मेगरदानीद दर एक मजलिस बजनगदो जिन्स बख़शीदा।

अधीन रहें और जिस प्रकार से आप स्थिर करें, काम करें। आपसे यह पूछना सत्य कहना है और सत्य करना है। खत्रियों वगैरह में से जिस किसी को आप ठीक समझें कि ईश्वर की पहचान कर प्रतिपाल करेगा, उसी का नाम लिख भेजें तो प्रार्थना करके भेजूं। ईश्वर के भक्तों को ईश्वर सम्बन्धी कामों में अज्ञानियों के तिरस्कार करने का समय नहीं होता है। सो ईश्वर कृपा से आपका शरीर ऐसा ही है। परमेश्वर आपको सत्कर्मों की श्रद्धा देवे और सत्कर्म के ऊपर स्थिर रक्खे और ज्यादा सलाम।"

आइने अकबरी, मुन्तखिबउत्तवारीख़ और मुंशियातअबुलफ़ज़ल के वृत्तान्तों पर विचार करने से हमें ज्ञात होता है कि तीनों में एक ही सूरदास का उल्लेख है जो ग्वालियर निवासी तथा बाद को लखनऊ में आकर बसनेवाले रामदास का पुत्र है। दोनों बाप-बेटों का अकबर के दरबार से सम्बन्ध था। अबुलफ़ज़ल के पत्र से ज्ञात होता है कि सूरदास बादशाह का राजकर्मचारी भी था। उधर अष्टछाप के सूरदास की अकबर बादशाह से एक बार भेंट का उल्लेख ८४ वैष्णवन की वार्ता में भी है। परन्तु उस भेंट के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि सूरदास सांसारिक वैभव से विरक्त, दरबार के प्रलोभन से दूर, एक निर्भीक भक्त है, अकबर के लाख प्रयत्न करने पर भी सूरदास ने अकबर से यही माँगा,—"आज पाछे हमको कबहूँ फेरि मति बुलाइयो और मोसों कबहूँ मिलियो मति।" जो व्यक्ति ऐसा त्यागी है वह अकबर का राजकर्मचारी और दरबारी क्यों होगा? लेखक का अनुमान है कि ऊपर का वृत्तान्त भक्तमाल के छप्पय न० १२६ में दिये हुये अकबर के राजकर्मचारी लखनऊ के पास स्थित सण्डीले स्थान के अमीन भगवदीय मदनमोहन सूरदास से सम्बन्ध रखता है।

अबुलफ़ज़ल के पत्र में कोई तिथि नहीं है। अकबरनामा के अनुसार मुंशी देवीप्रसाद अकबर का प्रयाग जाना सं० १६४२ में समझते हैं। पहले तो वार्ता के अनुसार सूरदास का अकबरी दरबार से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, दूसरे सं० १६४२ तक अष्टछापी सूरदास का देहान्त हो चुका था जैसा कि वार्ता के उल्लेखों से आगे सिद्ध किया जायगा। यह पत्र, जैसा कि लेखक ने पीछे कहा है, मदनमोहन सूरदास के नाम हो सकता है। इस विवेचन का निष्कर्ष यही है कि आइने अकबरी, मुन्तखिबउत्तवारीख़ और मुंशियात अबुलफ़ज़ल में अष्टछाप के भक्तवर सूरदास का कोई वृत्तान्त नहीं दिया है।

मूल गुसाईं चरित

यह ग्रन्थ महात्मा तुलसीदास जी के शिष्य बाबा वेणीमाधवदास का बनाया हुआ कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि वेणीमाधवदास जी ने एक बृहद् ग्रन्थ 'गुसाईं चरित्र' लिखा था जिसमें महात्मा तुलसीदास जी का जीवन-वृत्तान्त बहुत विस्तार से दिया हुआ था। उसी ग्रन्थ का एक संक्षिप्त रूप उक्त लेखक ने 'मूलगुसाईंचरित' नाम से भी लिखा था। 'गुसाईं चरित' ग्रन्थ अप्राप्य है और मूलगुसाईंचरित प्राप्य है। इस ग्रन्थ में अष्टछाप के दो भक्त कवि

सूरदास और नन्ददास का भी अल्प वृत्तान्त दिया हुआ है। इस ग्रन्थ की भाषा तथा वर्णित घटनाओं पर विचार करते हुये दो चार सज्जनों को छोड़ सभी हिन्दी-संसार ने इस ग्रन्थ को अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया है। लेखक ने भी इसमें दिये हुये, सूरदास और नन्ददास के वृत्तान्तों को अप्रामाणिक माना है और इसी से उन्हें ग्रहण नहीं किया।

सूरदास—सूरदास के विषय में जो वृत्तान्त इस ग्रन्थ में दिया है, वह असङ्गत है। इसमें लिखा है,—संवत् १६१६ में सूरदास जी चित्रकूट पर महात्मा तुलसीदास जी से मिले। सूरदास जी को भगवत् कृपा-रङ्ग में बोरकर गोकुलनाथ जी ने तुलसीदास के पास भेजा था। तुलसी के पास पहुँचकर सूर ने उनको अपना सूरसागर दिखाया और कुछ पद गाकर भी सुनाये। गाते-गाते सूर ने तुलसी के पद पङ्कजों पर अपना सिर नवा दिया और महात्मा तुलसीदास से आशीर्वाद माँगा कि कृष्ण मेरे ऊपर कृपालु हों और मेरी कीर्ति दिगन्त में फैले। इन वचनों को सुनकर तुलसी ने उनकी प्रशंसा की और उनकी पोथी और उनको हृदय से लगा लिया। सात दिन तक सूर वहाँ रहे। जब चलने लगे तो उन्होंने तुलसी के चरण-स्पर्श किये। तुलसी ने उनको प्रबोधन, आश्वासन दिया और एक पत्र गोकुलनाथ जी के नाम भी दिया।"[1]

इस वृत्तान्त में वृद्ध सूरदास को संवत् १६१६ में आठ वर्ष के श्रीगोकुलनाथ जिनका जन्मकाल संवत् १६०८ वैष्णव-वार्ताओं में प्रसिद्ध है, 'कृष्ण रङ्ग में बोरि' तुलसीदास के पास भेजते हैं। गोकुलनाथ जी के पिता और आचार्य वल्लभ की गद्दी पर प्रतिष्ठित गोस्वामी विट्ठलनाथ सं० १६४२ तक रहे। बूढ़े सूरदास अपने गुरुभाई श्री विट्ठलनाथ जी की आज्ञा न लेकर अबोध बालक गोकुलनाथ की आज्ञा, उनका पत्र और, उनसे भक्ति की स्फूर्ति लेते हैं। यह बात बिल्कुल बेमेल और असङ्गत है। मूल गुसाईंचरित

1—सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरि ढिगवास।
सुचि एकांत प्रदेस महँ आये सूर सुदास।
पठये गोकुलनाथ जी कृष्ण रंग महँ बोरि।
दृग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाइँ छोरि।
कवि सूर दिखायउ सागर को, सुचि प्रेम कथा नट नागर को।
पदद्वय पुनि गाय सुनाय रहे, पदपंकज पै सिर नाय रहे।
अस आशिष देव स्याम ढरै, यहि कीरति मोरि दिगन्त चरै।
सुनि कोमल बैन सुदादि दिये, पद पोथि उठाय लगाये हिये।
× × ×
दिन सात रहे सत्संग पगे, पदपंकज गहे जब जान लगे।
गहि बाँह गोसाइँ प्रबोध किये, पुनि गोकुलनाथ को पत्र दिये।
मूलगुसाईं चरित।

कार ने वृद्ध सूरदास को जो पुष्टिमार्ग का 'जहाज़' और काव्य-रचना के लिए 'सागर' कहलाते थे, तुलसीदास के, जिन्होंने अभी तक 'रामचरितमानस' अथवा 'विनयपत्रिका' आदि ग्रन्थों तक की रचना नहीं की थी, पद-पङ्कजों पर लुटाया है जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मूलगुसाईंचरित में सूरदास के विषय में जो कुछ वृत्तान्त दिया हुआ है वह सब अग्राह्य है।

नन्ददास—लेखक मूलगुसाईंचरित ग्रन्थ को नन्ददास की जीवन घटनाओं का भी विश्वस्त आधार नहीं मानता। इस ग्रन्थ में कथित नन्ददास-विषयक उल्लेखों को, चरितकार के शब्दों में, नीचे दिया जाता है—

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढे, जिन शेष सनातन तीर पढ़े।
सिच्छागुरु बन्धु भये तेहिते, अति प्रेम सों आय मिले यहिते।

इस ग्रन्थ के अनुसार ज्ञात होता है कि नन्ददास जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। काशी में इन्होंने शेष सनातन से विद्या पढ़ी थी। वहीं तुलसीदास उनके सहपाठी थे। तुलसीदास और नन्ददास सगे अथवा चचेरे भाई नहीं थे, वे केवल गुरुभाई थे। इस ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि सं० १६४६ वि० में तुलसीदास ने नैमिषारण्य की यात्रा की और तभी ब्रज में आकर नन्ददास से वे मिले। सूकर-क्षेत्र की स्थिति इस ग्रन्थ में सरयू और घाघरा के सङ्गम के तीर पर मानी गई है, जहाँ तुलसीदास ने अपने गुरु नरहर्यानन्द से विद्या पढ़ी थी। नन्ददास और तुलसीदास के जीवन-विषयक उपर्युक्त वृत्तान्त की एक भी बात प्रचलित किंवदन्ती अथवा पीछे दिये हुये 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के वृत्तान्त से मेल नहीं खाती।

व्यास-वाणी हित हरिवंश जी के शिष्य व्यास जी ने, जो ४५ वर्ष की अवस्था में सं० १६१२ में हितजी के शिष्य हुये थे, कुछ भक्तों का अपने कुछ पदों मे उल्लेख किया है, उससे ज्ञात होता है कि जिन भक्तों का उन्होंने उल्लेख किया है वे उस समय तक परलोक-वासी हो चुके थे। इन पदों की रचना का समय लेखक ठीक निर्धारित नहीं कर सका, इसलिए उन भक्तों के समय पर इन पदों से कोई निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता। यह ज्ञात अवश्य होता है कि वे भक्त व्यास जी की दृष्टि में बहुत प्रशंसनीय थे।

सूरदास और परमानन्द दास—व्यास जी ने सूरदास और परमानन्द दास के कीर्तनों की प्रशंसा की है। जिन पदों में व्यास जी ने इन भक्तों का प्रशंसात्मक शब्दों में उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं—

बिहारहिं स्वामी बिन को गावै

बिनु हरिवंसहि राधिका वल्लभ को रस रीति सुनावे।
रूप सनातन बिनु को• वृन्दाविपिन माधुरी पावे।
कृष्णदास बिनु गिरिधर जू को को अब लाड़ लड़ावे।
मीरा बाई बिनु को भक्तनि पिता जान उर लावे।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सब बन्धु कहावे।
परमानन्द दास बिनु को अब लीला गाय सुनावे।
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कविहि कहि आवे।
और सकल साधन बिनु को यह कलिकाल मिटावे।
व्यास दास इन बिन को तन की तपन बुझावे[1]।

इतनौ है सब कुटुम्ब हमारौ

सैनाधना अरु नाभा पीपा और कबीर रैदास चमारौ।
रुप सनातन कौ सेवक गंगल भट्ट सुढारौ।
सूरदास परमानन्द मेहा मीरा भक्त बिचारौ।
बाह्मन राज पुत्र कुल उत्तम तेऊ करत जाति की गारौ।
आदि अन्त भक्तन को सर्वस राधा वल्लभ प्यारौ।
आसू कौ हरिदास रसिक हरिवंस न मोहि बिसारौ।
इहि पथ चलत स्याम स्यामा के व्यासहि चोरी भावे तारौ[2]

साँचे जु साधु रामानन्द

जिन हरिजू सो हित करि जानौं और जानि दुख द्वन्द।
जाको सेवक कबीर धीर मति अति सुमति सुरसुरानन्द।
तब रैदास उपासक हरिको, सूर सुपरमान्द।

× × ×

जिन बिनु जीवत मृतक भये हम सह्यो बिपति को फंद।
तिनु बिनु उर की सूल मिटै क्यों जिये व्यास अति मंद[3]।

१—व्यास-वाणी, प्रकाशक, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १४।
२—व्यास-वाणी, प्रकाशक, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १२।
३—व्यास-वाणी, प्रकाशक, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १२।

पीछे दी हुई प्राचीन बाह्याधार-रूप सामग्री के अतिरिक्त अष्ट-छाप से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ जन श्रुतियाँ भी वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णवों में तथा हिन्दी जगत में प्रचलित हैं। इन किंवदन्तियों में से कुछ ऐसी भी हैं जो वस्तुत अष्टछाप के कवियों से सम्बन्ध न रख कर, उन कवियों के नामधारी अन्य कवियों से सम्बन्ध रखती हैं। बहुधा भक्तमाल के आधुनिक टीकाकारों ने सूरदास मदनमोहन, सूरजदास, तथा बिल्वमङ्गल सूरदास की मौखिक रूप से प्रचलित कथाओं को अष्टछाप के सूर के वृत्तान्तों के साथ मिला दिया है, भक्तमाल के विवरण में यह बात कही जा चुकी है। सूरदास के विषय की कुछ जन-श्रुतियाँ नीचे दी जाती हैं।

जन श्रुतियाँ

१—सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे, इसकी पुष्टि पीछे कही हुई, हरिराय जी की ८४ वैष्णव की वार्ता से होती है।

२—"सूरदास श्री वल्लभाचार्य जी से दस दिन छोटे थे"। यह जनश्रुति लेखक ने नाथद्वार तथा काँकरौली के वैष्णवों से सुनी थी। इसकी पुष्टि नाथद्वार में मनाये जाने वाले एक उत्सव से होती है। नाथद्वार में सूरदास का जन्मदिवस गुप्त रूप से वैसाख सुदी पञ्चमी को आचार्य जी के जन्म दिवस के दस दिन बाद मनाया जाता है। भक्तों के जन्म दिवसों के उत्सव प्रत्यक्ष समारोह के साथ इसलिए नहीं मनाये जाते कि सम्प्रदाय में आचार्यों के सामने दासों का जन्मदिवस मनाना उत्कर्ष का कार्य नहीं समझा जाता। सूर के जन्म दिवस मनाने की परम्परा नाथद्वार में बहुत प्राचीन काल से चली आती है।

३—"सूरदास जी जन्मान्ध थे।" इस जनश्रुति की पुष्टि हरिराय की ८४ वैष्णवन की वार्ता के कथन से होती है। अलौकिक शक्ति के कार्य पर विश्वास रख कर लोग मान सकते हैं कि सूर को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, परन्तु इस तर्कपूर्ण युग में बुद्धिसङ्गत बात यही जान पड़ती है कि सूर ने अपनी किसी अवस्था में इस ससार को देखा था जिससे वे अपनी विलक्षण बुद्धि और कल्पना के सहारे उसका सजीव चित्र अङ्कित करने में समर्थ हुये।

४—"सूरदास ने सवालाख पद लिखे।" इस कथन की पुष्टि आंशिक रूप में 'साहित्यलहरी' के पीछे दिये हुये उल्लेख[1] तथा हरिराय जी की ८४ वैष्णवन की वार्ता के कथन[2] से होती है। परन्तु इतनी बड़ी सङ्ख्या में आज तक सूर के पद उपलब्ध नहीं हुये।

१— तादिन ते हरिलीला गाई एक लक्ष पद बद।
सूरसागर, वें० प्रे०, सूरसारावली पृ० ३८।

२—'अष्टछाप', काँकरौली, पृष्ठ ४६।
लेखक के पास सुरक्षित हरिराय की भावना सहित '८४ वैष्णवन की वार्ता' में भी सूर के लक्षावधि पद लिखने का उल्लेख है।

५—"सूरदास ने साहित्यलहरी की रचना नंददास के लिए की थी।" यह जनश्रुति लेखक ने काँकरौली में श्री द्वारिकादास भगवदीय, श्रीकण्ठमणि शास्त्री आदि वैष्णवनों से सुनी थी। सम्भव है, इस कहावत का मुख्य आधार 'साहित्यलहरी' के रचनाकाल को देनेवाले इस पद का उल्लेख "नन्दनन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन" हो।

६—"सूरदास एक बार अकबर बादशाह से मिले थे।" इस कथन की पुष्टि वार्ता से होती है। ८४ वार्ता के कथनानुसार यह भेंट मथुरा में हुई थी।

७—"सूरदास का जन्म सीही ग्राम में हुआ था।" इस जनश्रुति की पुष्टि भी हरिराय जी की ८४ वैष्णवन की वार्ता से होती है।[1]

आधुनिक बाह्य आधार रूप गौण सामग्री का निरीक्षण

अष्टछाप कवियों के जीवन चरित्र तथा रचनाओं का विवरण देने वाले आधुनिक लेखकों के मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट।

२—"इसत्वार दे ला लितेरात्यूर एन्दुए हेंदुस्तानी" गासदि तासी।

३—शिव सिंह सरोज।

४—भारतेंदु-रचित भक्तमाल।

५—मिश्रबन्धु-विनोद तथा हिन्दी नवरत्न।

६—"हिन्दी-साहित्य का इतिहास," प० रामचन्द्र शुक्ल।

८—"हिन्दी-भाषा और साहित्य," डा० श्यामसुन्दर दास।

८—"हिन्दी-भाषा का आलोचनात्मक इतिहास," डा० रामकुमार वर्मा।

६—"सूरदास," डा० जनार्दन मिश्र।

१०—"सूर-साहित्य की भूमिका", श्री रामरत्न भटनागर तथा श्री वाचस्पति पाठक।

११—सूर-साहित्य, प० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

१—"सो सूरदास जी दिल्ली के पास चारि कोस उरे में एक सीही ग्राम है, सो ता गाम में एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे।"
'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० २।

नीचे की पंक्तियों में आधुनिक लेखकों द्वारा दिये हुये अष्टछाप सम्बन्धी वृत्तान्त का निरीक्षण किया गया है। उक्त लेखकों के मतों की आलोचना तथा अपना मत लेखक ने अष्टछाप-जीवनी और उनके ग्रन्थों की प्रमाणिकता के विवेचन के साथ दिये हैं। यहाँ संक्षेप में लेखकों के आलोच्य मत का बहुधा दिग्दर्शन ही कराया गया है।

१—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में अष्टछाप कवियों के नाम से दिये हुये ग्रन्थों की जो सूचना मिलती है, उसका विवरण साथ में लगी तालिकाओं में दिया जाता है।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में 'अष्टछाप' के कवियों के नाम पर दिये हुये ग्रन्थ।

कवि तथा पुस्तक का नाम	खोज में रिपोर्ट का हवाला—रचना तथा प्रतिलिपि की तिथि तथा प्रतिलिपि की सुरक्षा का स्थान।	खोज रिपोर्ट का विवरण तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक का वक्तव्य।
श्री सूरदास-कृत सूरसागर	खो॰ रि॰ १६०१ ई॰, नं॰ २३, पृ॰ २६, प्रतिलिपि काल सं॰ १८६६ वि॰, अथवा सन् १८०६ ई॰, सुरक्षा का स्थान, श्याम सुन्दरलाल, मशकगञ्ज, लखनऊ।	खो॰ रि॰ विवरणः—इस सूरसागर में श्री मद्भागवत के बारहों स्कन्धों का आधार लिया गया है। इसमें सब मिलकर ३६६४ पद हैं जिनमें १५१ पद विनय के हैं और शेष स्कन्धों के अनुसार इसप्रकार हैं प्रथम स्कन्ध २६४. सप्तम स्कन्ध ७. द्वितीय ... १३६. अष्टम् .. १६ तृतीय ... १३ नवम् ... १६१. चतुर्थ १३. दशम् ३२०६. पंचम् ... ७ एकादशम् ... ६. षष्ठम् ... ४. द्वादश ... ४. ५५ पृष्ठों में एक सूची पत्र भी इसके साथ दिया हुआ है जिसमें प्रत्येक पद की प्रथम पंक्ति दी है। पुस्तक सचित्र है। इस ग्रन्थ को लेखक ने लखनऊ में दो बार देखा है। आजकल यह ग्रन्थ श्यामसुन्दरलाल जी के उत्तराधिकारी लाला मोहनलाल अग्रवाल मशकगञ्ज के पास है।

सूरसागर

खो० रि० १६०६:८ ई०, नं० २४४, (सी), प्रतिलिपि काल सन् १८१६ ई०, सुरक्षा का स्थान, राजकीय पुस्तकालय, बिजावर।

खो० रि० में कोई उद्धरण नहीं दिये गये। खो० रि० के फुट नोट में लेख है, "दतिया के राज पुस्तकालय में, लिपि अथवा प्रतिलिपि काल रहित इसकी दो प्रतिलिपियाँ हैं।"

सूरसागर

खो० रि० १६१२:१४ ई०, न० १८५, (सी) पृ० २३२, प्रतिलिपि काल १८४३ ई०, सुरक्षा का स्थान, पं० लालमणि वैद्य, पुवायाँ पो०, ज़िला शाहजहाँपुर।

खो० रि० में इस ग्रन्थ के विषय में निम्नलिखित आशय का नोट है—

विषय भागवत के बारहों स्कन्धों तथा रामायण के सातों काण्डों की कथा का वर्णन। यह ग्रन्थ तीन भागों में है—प्रथम भाग में ३५२ पृष्ठ तक प्रथम से नवम् स्कन्ध तक की कथा है। इसी में आगे एकादश तथा द्वादश स्कन्ध हैं।

द्वितीय भाग में कृष्ण-जन्म से रासलीला तक की कथा का वर्णन है। इसमें ३२७ पृष्ठ हैं।

तीसरे भाग में २६४ पत्र हैं, इसमें कुरुक्षेत्र-सम्मेलन और कृष्ण तथा अर्जुन के, ब्राह्मण के मरे हुये बालक के ले आने तक की कथा है।

सूरसागर

खो० रि० १६१७:१६ ई०, न० १८६, (बी०) पृ० २६६, प्रतिलिपिकाल, सं० १७६८ वि०, सुरक्षा का स्थान—ठाकुर रामप्रतापसिंह, गाँव बरौली, पो० पहाड़ी, भरतपुर स्टेट।

खो० रि० के अनुसार इस सूरसागर के बारह स्कन्धों में पद-सङ्ख्या इस प्रकार है—

स्कन्ध	पद सं०	स्कन्ध	पद सं०
१	२१८	७	८
२	३८	८	१४
३	१०	९	१५
४	१२	१०	१
५	५	११	३५
६	४	१२	१७४५

इस विवरण से ज्ञात होता है कि इसमें सूरसागर के मुख्य भाग दशम् स्कन्ध के पद नहीं हैं। बारहवें

		स्कन्ध की पद-सङ्ख्या को देखते हुए यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है।
सूरसागर	खो० रि० १९१७-१९ ई०, नं० १८६, (सी) तथा नं १८६ (डी) प्रतिलिपिकाल, सं० १८७६ वि० अथवा १८१९ ई०, सुरक्षा का स्थान, श्री मतङ्गध्वजप्रतापसिंह, बिसवाँ, ज़िला अलीगढ़।	खोज रि० के अनुसार यह ग्रन्थ दो भागों में है; प्रथम भाग में, १ से ९ स्कन्ध (भागवत) की कथा है और दूसरे में, दस से बारह (१०, ११, १२) स्कन्धों की कथा है। प्रथम भाग में ४६२ पद हैं और दूसरे में २३४२, कुल पद-सङ्ख्या २८०४ है।
सूरसागर, दशम स्कन्ध	खो० रि० १९०६ ई०, नं० १२७।	खो० रि० में इस ग्रंथ के विषय में अन्य कोई सूचना नहीं है।
सूर-कृत भागवत भाषा	खो० रि० १९१२-१४, नं० १८५ ए, प्रतिलिपिकाल सं० १८६७ वि०, सुरक्षा का स्थान, बा० कृष्णजीवन लाल वकील, महावन, जि० मथुरा।	खो० रि० में दिये हुए उद्धरणों से ज्ञात होता है कि कि यह ग्रन्थ सूरसागर का अंश ही है, इसमें दशम को छोड़ कर शेष ११ स्कन्धों का पद्यबद्ध अनुवाद है।
भागवत-भाषा	खो० रि० १९१७-१९ ई०, नं० १८६ ए, प्रतिलिपिकाल सं० १७४५ वि०, सुरक्षा का स्थान—पं० नटवरलाल चतुर्वेदी, कोठीवाला, मथुरा।	खो० रि० में यह खण्डित प्रति बताई गई है, लेखक का विचार है कि यह भी सूरसागर की ही कोई खंडित प्रति है।
दशम स्कन्ध टीका	खो० रि० १९०६-८ ई०, नं० ७४४ (डी)।	खो० रि० में लिखा है कि यह ग्रन्थ दशम खण्ड भागवत का सूर-कृत पदों में अनुवाद है। ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ सूरसागर का ही अङ्ग है।

सूरदास-कृत पद-संग्रह	खो० रि० १६०२ ई०, नं० २६२, सुरक्षा का स्थान— जोधपुर राजकीय पुस्तकालय, खो० रि० १६०६:८ ई०, नं० २४४ (बी), सुरक्षा का स्थान, दतिया राज पुस्तकालय।	खो० रि० में लिखा है कि ये दोनों संग्रह सूर के पदों के हैं। इस कथन के अतिरिक्त खोज रि० में अन्य कोई सूचना नहीं है।
सूरसागर-सार	खो० रि० १६०६: ११ ई०, नं० ३१३ (बी), पृ० ४२१, सुरक्षा का स्थानः— प० रघुनाथराम, गायघाट, बनारस	खो० रि० में रिपोर्ट के लेखक ने लिखा है कि सूरदास का यह एक नया ग्रन्थ मिला है जो सूर की प्रामाणिक रचना ज्ञात होती है। इसमें ५४ पृष्ठ हैं। ग्रन्थ का विषय, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का वर्णन है। इसके अन्त में लिखा है—"इति श्री सूरसागर-सार, संक्षेप प्रथम स्कन्धादि नवम् तरङ्ग समाप्तं।" रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिये गये हैं उनमें ग्रन्थ के अन्तिम भाग के अवतरण सूरसागर नवम् स्कन्ध के अन्तिम भाग के ही उद्धरण हैं।
गोवर्द्धन लीला	खो० रि० १६१७: १६ ई०, नं० १८६ (ई), सुरक्षा का स्थान श्री देवकी-नन्दन, आचार्य-पुस्तकालय, कामवन, भरतपुर स्टेट।	खोज रिपोर्ट मे इस पर कोई वक्तव्य नहीं दिया गया, परन्तु इसके आदि-अन्त के उद्धरण दिये गये हैं। आदि—रागविलावलः— *नन्द हीं कहती रानी,* *सुरपति पूजा तुमहि भुलानी।* *यह नहीं भली तुम्हारी बानी,* *मैं गृहकाज रही लपटानी।*
नागलीला	खो० रि० १६०६:	रिपोर्ट का कहना है कि ग्रन्थ मे कृष्ण द्वारा काली-

	८ ई०, नं० २४४ (ई), प्रतिलिपिकाल सन् १८७७ ई०, सुरक्षा का स्थान-ला० राधिका प्रसाद मुतसद्दी छतरपुर।	नाग के नाथे जाने की कथा से सम्बन्धित पद हैं। रिपोर्ट में इसके उद्धरण नहीं दिये गये।
नाग-लीला	खो० रि० १९०६ ई० नं० १२७, प्रतिलिपि काल सन् १८३२ ई०।	खोज-रिपोर्ट में इसके विषय में अन्य कोई विवरण अथवा वक्तव्य नहीं है।
सूरदास-कृत ब्याहलो	खो० रि० १९०६: ८ ई०, न० २४४(ए)। पृष्ठ ३२३ तथा ९१, सुरक्षा का स्थान-दतिया राज पुस्तकालय।	खो० रि० का कहना है कि यह ग्रन्थ राधाकृष्ण-विवाह विषयक पदों का संग्रह है। रि० में ग्रन्थ से उद्धरण नहीं दिये गये। खो० रि० १९०६: ८ ई०, नं० २१८ (ए) में एक विहारिन-दास द्वारा पदों में लिखे हुये राधाकृष्ण-विवाह विषयक 'ब्याहलो' ग्रन्थ का भी उल्लेख है जिसकी प्रतिलिपि दतिया राज के पुस्तकालय में सुरक्षित बताई गई है। खो० रि० १९०९ : ११ ई०, नं० ७३ (एल) पृ० १३८ पर हित हरिवंश सम्प्रदाय के श्री ध्रुवदास जी-कृत पदों में लिखे 'ब्याहलो' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख है जिसमें राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन है।
सूरदास-कृत प्राण प्यारी,	खो० रि० १९१७. १९ ई०, न० १८६ (एफ), पृ० ३६९, सुरक्षा का स्थान, देवकी नन्दन पुष्टिमार्गीय पुस्तकालय, कामवन, भरतपुर स्टेट।	खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का विषय श्याम-सगाई बताया गया है। रिपोर्ट में पूरी रचना उद्धृत है जिससे कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं— आदि **राग विलावल—चाल,** *बरसाने बृषभान दुलारी,* *चंद वदन लोचन मृगचारी।* *चरन कमल और बचन रसाल,* *खेलन चली तहाँ नंद जू के लाल।*

निरखि बदन तन नंद जु की रानी।
छन्द—गोद उठाये भवन में जु,
आनि आभूपन पेहराइये।
सूर के प्रभु साजि नख सिख,
प्यारी जु घरा रहे पहुँचाइये।
अहो मेरी प्रान जु प्यारी,
भोरहि खेलन कहाँ लों सिधारी।
कुसुम माल तिलक किन कीनों,
किन मृगमद बिंदा जी दीनो।
अन्त-चाल.—
बिध बत भरी है बिविधि जु कीनी,
मंडप बिबिध कुसुम बरखायो।
भरे हैं भावरे है भवरान्हि,
ब्रजजुवतिन अनंदभर गायो,
छंद—आनन्द भर ब्रज जुवति गायो।
हरसि कंकन छोरहि,
नाहि गिर उचि लेनों।
स्याम हंसि मुख मोरहि,
छाँड्यो न छूटे डोरन जहाँ।
रीति प्रीति जु अति बढ़ी,
सूर के प्रभु ब्रज जुवति मिली।
गारी मन भावति दई,
इति प्राण प्यारी संपूर्ण।

सूर-पचीसी	खो० रि०१६१२: १४ ई०, नं० १८५ (बी), पृ० २३२।	खो० रि० के अनुसार इसका विषय ज्ञानोपदेश के दोहे हैं। रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

आदि—मना र करि माधों सोंप्रीति।
काम क्रोध मद लोभ मोह,
छाँडि सबै बिपरीत।
भौंरा भोगी :बन भंवे,
मोद न मानै पाय.।
सब कुसमन नीरस करै,
केवल बँधावै आय।

अन्त—*जो पै जीय लजा नहीं*
कहा कहै सौ बार।
एकै अकन हरि भजै
तू सठ सूर गँवार।

सूरदास जी के दृष्टकूट अथवा सूरशतक सटीक

खो० रि० १६०० ई०, नं ६, पृ० २०, टीका रचनाकाल सम्वत् १८८५ वि० से सम्वत् १६०० वि० तक। सुरक्षा का स्थान—बा० हरिश्चन्द्र पुस्तकालय, चौखम्भा बनारस।

सूर के दृष्टकूट पदों की इस टीका के विषय में खो० रि० में लिखा है कि यह टीका तथा संग्रह, श्री वल्लभसम्प्रदाय के आचार्य, काशीस्थ गो० गोपाललाल जी के शिष्य बालकृष्ण ने अपने गुरु की आज्ञा से गुजरात भागनगर में किये।

सूरजदास-कृत रामजन्म।

खो० रि० १६१७-१६ ई०, नं० १८७ (ए), सुरक्षा का स्थान— रामचन्द्र टण्डन, बी० ए०, रामभवन, शाहजादा पुर, फैज़ाबाद।

खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के विषय में कोई वक्तव्य नहीं दिया गया। उक्त रिपोर्ट में ग्रन्थ से उद्धरण दिये गये हैं जिनके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

आदि—*श्रीरामजन्म कथा लिख्यते।*
कंठ में बसहि सरस्वती,
हिरदय बसहु महेस
मूलल अच्छर प्रगासूह,
गौरी के पुत्र गनेस।

चौपाई—*बरनो गणपति विघन बिनासा,*
राम नाम तोह पुरवहु आसा।
बरनो सरसति अमृत बानी,
राम रूप तोहि भलि गतिजानी।
बरणों चाँद सुरज की जोती,
रामरूप जासु निर्मल मोती।
बरनों मातु पिता गुरु पाऊ,
जिन मोहि निर्मल ज्ञान सिखाऊ।

दोहा—सूरजदास कवि बरनों,
प्राननाथ जीश्रा मोर।
राम कथा कछु भाखों,
कहत न लागे मोर।

चौपाई— × × ×
× × ×

दोहा—कोटि तीरथ जो कीन्हा,
जनु गहने दीनेहु दान।
सूरजदास कवि बिनवों,
सुनत राम पुरान।

इन उद्धरणों को देखते हुए ग्रन्थ श्रष्टछापी सूर-कृत नहीं जान पड़ता। इसका विवेचन सूर के ग्रन्थों के विवेचन में किया जायगा।

सूरदास-कृत एकादशी-माहात्म्य

खो० रि० १९१७: १९ ई०, नं० १८७ (बी)। प्रतिलिपि काल सन् १८६६ ई० अथवा संवत् १९२३ वि०। सुरक्षा का स्थान—पं० जगन्नाथ मुहरी गाँव, तहसील कछुना, (कराचना) ज़िला इलाहाबाद।

खो० रि० के अनुसार इसका विषय यह है,—"प्रथम बन्दना, तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी और उसके पुत्र रोहितास की प्रशंसा तथा कथा वार्ता आदि का वर्णन"। खो० रि० में दिये हुये इस ग्रन्थ के कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं—

आदिः—श्री गणेशाय नमः

बन्दौं गुरु गन पति कर जोरी,
बन्दौं सुर तैंतीस करोरी।
बन्दौं सारद चरन मुरारी,
बन्दौं अमर देव त्रिपुरारी।
बन्दौं मात पिता गुरु दाया,
अच्छर भेद देहु रघुराया।
गावों कथा सुनहु मनलाई,
कहत सुनत पातप मिटिजाई।
करौं कथा बन्दौं हरि पाऊ,
सूर्जदास चरनन चित लाऊ।

अन्त :—*सो फल एकादसी यह ,*
सूरजदास कवि गाइ ।
जनम जनम कर पातक ,
कथा सुनत मिटिजाइ ।

उक्त उद्धरणों की भाषा-शैली को देखते हुए यह ग्रन्थ भी अष्टछापी सूर-कृत नहीं प्रतीत होता। इसका भी विवेचन आगे किया जायगा।

परमानन्ददास

परमानन्द-कृत दानलीला	खो० रि० १९०२ ई० नं० १४२। सुरक्षा का स्थान—दतिया राज पुस्तकालय	ग्रन्थ के विषय में खो० रि० मे कोई विवरण नहीं दिया गया है।
परमानन्द दास-कृत ध्रुव-चरित्र	खो० रि० १९०६: ८ ई०, न० २०३ (ए) सुरक्षा का स्थान—राज पुस्तकालय दतिया	इस ग्रन्थ के विषय में, खो० रि० में, कोई वक्तव्य अथवा उद्धरण नहीं दिये गये। खो० रि० में दो और ध्रुवचरित्रों का हवाला दिया हुआ है जिनके भी उक्त रिपोर्ट में उद्धरण नहीं हैं। १—खो० रि० १९०६: ८ ई०, नं० १७५ (ए), ध्रुव-चरित्र जनगोपाल-कृत, दतिया स्टेट पुस्तकालय २—खो० रि० १९०६: ८ ई०, नं० २७२ (ए), ध्रुव-चरित्र जन जगदेव-कृत, स्टेट पुस्तकालय दतिया।
परमानन्द-कृत हनुमन्नाटक की टीका	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० ८८, पृ०४८	खो० रि० में ग्रन्थ के आधार से इस परमानन्द कवि को ब्रजचन्द का पुत्र लिखा है। ग्रन्थ के विषय मे अन्य कोई वृत्तान्त नहीं दिया गया और न उद्धरण ही दिये गये हैं। ग्रन्थ की प्रमाणिकता पर विचार आगे किया जायगा।
परमानन्द हित कृत। क. हित हरिवंश की जनम बधाई ख. गुरुभक्ति	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० २०४ (ए) से २०४ (जी) तक सुरक्षा का स्थान—स्टेट लाइब्रेरी दतिया	खो० रि० मे इन ग्रन्थों से कोई उद्धरण नहीं दिये गये और न इनके विषय मे कोई विवरण अथवा वक्तव्य दिया गया है। एक परमानन्ददास भक्त कवि, श्री हितहरिवंश के भी शिष्य थे, जो परमानन्द हित के नाम

विलास ग गुरु प्रताप महिमा। घ राधाष्टक ङ. रसविवाह भोजन च. जमुनामङ्गल छ. जमुना माहात्म्य		प्रसिद्ध थे। लेखक ने दतिया पुस्तकालय से इन ग्रन्थों के उद्धरण मँगाये थे। वहाँ से प्राप्त 'रस विवाह भोजन', 'जमुनामङ्गल' तथा 'गुरुप्रताप महिमा' ग्रन्थों के उद्धरणों में "राधावल्लभहित परमानन्द" की छाप देखने को मिलती है। उन उद्धरणों के पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि ये परमानन्ददास राधावल्लभीय हितजी के सम्प्रदाय के हैं। लेखक का विचार है कि उक्त प्रमाण से ये ग्रन्थ अष्टछाप के परमानन्ददास के नहीं हैं।
परमानन्द किशोर कृत कृष्ण चौंतीसी	खो० रि० १६०६ ८ ई०, न० ३०६ (ए)।	इस ग्रन्थ के विषय में खो० रि० में और कोई सूचना नहीं दी गई। अष्टछाप के परमानन्ददास के उपलब्ध पदों में 'परमानन्द किशोर' की छाप लेखक के देखने में नहीं आई। काँकरौली, नाथद्वार, सूरत, कामबन आदि स्थानों पर सुरक्षित अष्टछाप के पद-सग्रहों में भी इस छाप के पद नहीं हैं। कवि के नाम से ज्ञात होता है कि यह ग्रथ अष्टछापी परमानन्ददास-कृत नहीं है।
परमानन्ददास जी का 'पद'	खो० रि० १६०२ ई०, न० ६२। ग्रन्थ का रचनाकाल—स० १७६३ अथवा सन् १७३६ ई०। सुरक्षा का स्थान—राजे० पुस्तकालय जोधपुर स्टेट।	खो० रि० में इस ग्रन्थ के विषय में निम्नलिखित वक्तव्य दिया हुआ है— "ग्रन्थ व्रजभाषा में स्वामी परमानन्ददास जी का बनाया हुआ है। ये कोई भक्त थे। इनका हाल मालूम नहीं हो सका है।" खो० रि० में इस पद सग्रह के आदि और अ त से उद्धरण भी दियें हुये हैं, जिनके कुछ अश नीचे दिये जाते हैं।— **आदि**—अथ परमानन्ददासजी कृत्य लिख्यते। *अहो, तुम काहे न बरजो चद मंद किरन कुद जारे।* *स्यामसु दर गोविन्द बिन का यहु पीर निवारे,* **टेक**—*ससि हर गुर सीतलता सतन सुषदाई,* *कठिन काल रवित होई, हमकों दो लाई।* *जा जल तो एता करे मध बिमल हाई,* *परमानन्द सतनि में, भला न कहै कोई।*

रागटोड़ी-गोविंद तुम्हारे दीदार बाज मुई हूये परदा,
नैक नजरि कीन करौ मरदन के मरदा।

अन्त—चरन कमल अनुराग न उपज्यो,
भूत दया नहीं पाली।
परमानन्द प्रभु संत संगति मिली,
कथा पुनीत न चाली।

इति श्री परमानन्ददास जी कृत पद इकतालीस सम्पूर्ण (४१) श्री रामायनमः

नन्ददास

नन्ददास-कृत दशम स्कन्ध भागवत	खो० रि० १६०१ ई०, नं० ११। खो० रि० १६०६:८, न० २०० (बी)।	
रास पञ्चाध्यायी अथवा पञ्चाध्यायी	खो० रि० १६०२ ई०, नं० ६६। खो० रि० १६०६:८ ई०, नं० २०० (ए)। खो० रि० १६१७ ई०-१६ ई०, नं० ११६।	
नाम चिन्तामणि माला	खो० रि० १६०१ ई०, खो० रि० १६०६:८ ई०।	
जोग-लीला	खो० रि० १६०६:८ ई०, नं० २०० (डी), सुरक्षा का स्थानः— स्टेट पुस्तकालय बिजावर। खो० रि० १६१० ई० न० ६८। प्रतिलिपि का संवत् १६०४।	खो० रि० में उसके उद्धरण दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं— आदि—श्री गणेशाय नमः ऐसे मन मित्र मोहि आज्ञा यह दीनी। याही ते मन उकति जोग लीला यह कीनी। शिव सनकादिक सारदा नारद सेष गनेस। देउ बुद्धि बर उदै उर अक्षर उकति बिसेष।

स्याम-सगाई	खो० रि० १९०६:८ ई०
नासकेतु पुराण भाषा गद्य	खो० रि० १९०९:११ ई०, नं० २०८ (ए)। खो० रि० १९०२ ई०, नं० २०९। खो० रि० १९०३ ई०, नं० १५४।
मानमञ्जरी	खो० रि० १९०९:११ ई०, नं० २०८ (सी)।
रसमञ्जरी	खो० रि० १९०९:११ ई०
विरहमञ्जरी	× × ×
राजनीति हितोपदेश	खो० रि० १९०५ ई०
रुक्मिणीमङ्गल	खो० रि० १९१२:१४ ई०
भँवर गीत	खो० रि० १९२०:२२ ई०, नं० १२६ (सी)
अनेकार्थमञ्जरी	खो० रि० १९०२ ई०, नं० ५८। खो० रि० १९२०:२२ ई०, नं० १२६ (बी)। खो० रि० १९०९:११ ई०, नं० २०८ (डी)। खो० रि० १९०३ ई० नं० १५३।
नाममञ्जरी	× × ×
फूलमञ्जरी	खो० रि० १९३९ ई०
रानी माँगो	खो० रि० १९३९ ई०

आध्यात्म पञ्चाध्यायी	हि॰ खो॰ रि॰ पञ्जाब, सन् १६२२:२४ ई॰, नं॰ ७२ (ए), पृ॰ ४३।	रिपोर्ट में लिखा है कि यह ग्रन्थ कृष्ण की प्रशंसा में लिखा गया है। इसकी कोई तिथि अथवा स्थान नहीं दिया गया।
रूपमञ्जरी	हिं॰ खो॰ रि॰ पञ्जाब। सन् १६२२:२४ ई॰ नं॰ ७२ (सी)	

कृष्णदास

कृष्णदास-कृत विहारी सतसई की टीका।	खो॰ रि॰ १६०१ ई॰, नं॰ ५२, प्रतिलिपि काल सं॰ १८३७ वि॰	खोज-रिपोर्ट के कथन से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी का नहीं है।
कृष्णदास-कृत दानलीला।	खो॰ रि॰ १६०३ ई॰, नं॰ १४८, प्र॰ लि॰ का॰ सं॰ १८२६ वि॰।	खो॰ रि॰ में ग्रन्थ से उद्धरण नहीं दिये गये, परन्तु रिपोर्टकार ने लिखा है कि यह कृति किसी बहुत साधारण कवि की है। कृष्णदास अधिकारी के पदों में दानलीला विषयक न तो कोई लम्बा पद ही लेखक के देखने में आया है और न स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप में उसने यह ग्रन्थ देखा है।
कृष्णदास-कृत श्री मद्भागवत माहात्म्य।	खो॰ रि॰ १६०५ ई॰ नं॰ ६। ग्रन्थ रचना-काल संवत् १८५५।	खो॰ रि॰ कार का वक्तव्य है,—"यह ग्रन्थ पद्मपुराण के भागवत माहात्म्य का छन्दोबद्ध अनुवाद है। सम्भव है कि बिहारी सतसई के टीकाकार कृष्णदास अथवा कृष्ण कवि का यह ग्रन्थ हो" खो॰ रि॰ में दिये हुये रचनाकाल के आधार से यह ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी-कृत नहीं कहा जा सकता।
	खो॰ रि॰ १६०६:११ ई॰, नं॰ १५८ (बी) ग्रन्थ रचनाकाल १८५५ वि॰।	इस खो॰ रि॰ में श्रीमद्भागवत-माहात्म्य के रचयिता कवि कृष्णदास को, ग्रन्थ में दिये हुये उल्लेख के आधार पर मिरज़ापुर अथवा गिरिजापुर निवासी, तथा गङ्गा के निकट रहनेवाला कहा गया है। ग्रन्थ-रचना-काल के अनुसार भी यह ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी का नहीं है।

कृष्णदास-कृत तीज कथा, महालक्ष्मी-कथा, तथा हरिश्चन्द्र कथा।	खो० रि० १६०६ ८ई० न० ६४।	खोज रि० में ये तीनों ग्रंथ दतिया निवासी बिहारी के शिष्य कृष्णदास कवि के लिखे कहे गये हैं।
कृष्णदास कृत सिंहासन ब त्तीसी।	खो० रि० १६०६ ८ ई०, न० १८४, प्रतिलिपि-काल — १८६३ ई०।	खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के कर्ता कवि कृष्णदास को उज्जैन का निवासी एक ब्राह्मण लिखा है। यह कवि कृष्णदास अधिकारी से भिन्न है।
कृष्णदास-कृत भागवत भाषा द्वादश-स्कन्ध	खो० रि० १६०६ ११ ई०, न० १५८ (ए) ग्रंथ रचना काल-सं० १८५२ वि०।	खोज रिपोर्ट म दिये हुये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ युगलविहारी कृष्ण के उपासक कृष्णदास का लिखा हुआ है जिसका रचनाकाल उक्त रिपोर्ट में संवत् १८५२ वि० बताया है। ग्रंथ के रचनाकाल के आधार से यह कवि अष्टछाप का कवि नहीं है।
कृष्णदास (कृष्ण चन्द्र गोस्वामी) कृत सिद्धान्त के पद।	खो० रि० १६१२ १४ ई०, न० ६५ (ए), पृ० १२७।	खोज रिपोर्ट में लिखा है कि इनके पदा में श्री हितहरिवंश जी का उल्लेख और राधिकावल्लभ कृष्ण की उपासना का भाव है। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कृष्णदास का है, वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कृष्णदास का नहीं है।
कृष्णदास-कृत पदावली अथवा कृष्णदास क पद।	खो० रि० १६१२ १४ न० ६५ (बी)। सुरक्षा का स्थान फौजदार माधव गोपाल शर्मा, वृन्दावन।	खोज रिपोर्ट में इस ग्रंथ के विषय में कोई वक्तव्य नहीं दिया हुआ, ग्रंथ के उद्धरण अवश्य दिये गये हैं। जो पद खोज रिपोर्ट में उद्धृत हैं, उनमें कृष्णदास की छाप के साथ 'हित' शब्द लगा हुआ है जैसे, "श्री कृष्णदास हितप्रिया वचन सुनि नागर नगधर नैकु हँसे।" कृष्णदास अधिकारी के पदों में उनके नाम की छाप के साथ 'हित' शब्द नहीं देखा गया। इस ग्रंथ का लेखक भी 'हित-सम्प्रदायी' कृष्णदास है।
समयप्रबंध	खो० रि० १६१२ १४ ई०, न० ६६।	खोज रिपोर्ट में इस ग्रंथ का विषय "राधा-कृष्ण की सात समय की लीलाओं का परिचय" दिया

	प्रतिलिपिकाल सं० १६१५ वि०, सुरक्षा का स्थान—राधा वल्लभ का मन्दिर, वृन्दावन।	हुआ है। खोज-रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों के आरम्भिक छंदों मे श्री हितहरिवंश जी की वन्दना है। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का रचनेवाला कवि कृष्णदास राधावल्लभीय है।
कृष्णदास के मङ्गल	खो० रि० १६१२ १४ ई०, न० ६७ (ए) सुरक्षा का स्थान—गोरेलालजी की कुञ्ज, वृंदावन।	खो० रि० में इस ग्रन्थ का विषय "स्वामी हरिदास जी का यश-वर्णन" दिया हुआ है। खोज रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ये कृष्ण दास, हरिदासी सम्प्रदाय के स्वामी बिहारिनीदास के शिष्य थे।
कृष्णदास-कृत 'माधुर्यलहरी'	खो०रि०वि० १६१२ १४ ई०, न० ६७ (बी)। ग्रन्थ-रचना-काल—सं० १८५२ वि०।	खो० रि० में इस ग्रन्थ का विषय "राधाकृष्ण की आठ पहर की निकुञ्ज लीला की मानसिक पूजा का वर्णन दिया हुआ है। ग्रन्थ के रचनाकाल के आधार से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी का नहीं है। खो० रि० के उद्धरणों में आरम्भ में प्रतिलिपिकार ने श्री राधाकृष्ण को और फिर श्री निम्बार्काचार्य को नमस्कार किया है।
कृष्णदास-कृत वृन्दावनाष्टक	खो० रि० १६१२ १४ ई०, न० ६८।	खोज रिपोर्ट में ग्रन्थ का विषय "वृन्दावन माहात्म्य" दिया है। उद्धरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये हितहरिवंश-सम्प्रदाय के कृष्णदास हैं।
कृष्णदास-कृत भागवत भाषा	खो० रि० १६२० २२ ई०, न० ८७, पृ० २८०। प्रति लिपिकाल—सं० १८५५ वि०	खोज रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ भी पीछे इस तालिका में दिये हुये न० ३ ग्रन्थ के रचयिता मिर्जापुर निवासी कृष्ण दास का है। खोज रिपोर्ट में दियेहुये उद्धरणों की आरम्भिक पङ्क्तियों में कवि ने हरिदास को गुरु कहकर उनके चरणों की स्तुति की है।

नोट—इस प्रकार उक्त विवरण में 'दानलीला' ग्रन्थ को छोड़कर, खोज रिपोर्ट में कृष्णदास के नाम से दिये हुये अन्य सभी ग्रंथ कृष्णदास अधिकारी के नहीं कहे जा सकते। 'दानलीला की' प्रामाणिकता का विवेचन आगे होगा।

चतुर्भुजदास

चतुर्भुज दास-कृत 'मधु मालतीकी कथा'	खो० रि० १९०२ ई०, नं० ४४, प्रतिलिपि काल सं० १८३७, सन् १७८० ई०।	खो० रि० के अनुसार ये चतुर्भुजदास जाति के निगम कायस्थ, और राजपूताने के रहनेवाले व्यक्ति थे।[1]
	खो० रि० १९२२:२४ ई०, नं० ४।	खोज-रिपोर्टकार ने रिपोर्ट में इस ग्रन्थ और उसके रचयिता चतुर्भुजदास पर अपनी टिप्पणी दी है, जो इस प्रकार है, "चतुर्भुजदास 'मधुमालती की कथा' के रचयिता हैं, रिपोर्ट के अनुसार एक ही नाम के दो चतुर्भुजदास हुये हैं—एक हित-हरिवंश जी के शिष्य, दूसरे राजपूताने के निगम कायस्थ (खो० रि० १९०२ ई०)। परन्तु 'विनोद' में ये तीन ग्रन्थ, 'मधुमालती', 'भक्ति प्रताप', 'द्वादशयश,' कुम्भनदास के पुत्र तथा गो० विट्ठलनाथ जी के शिष्य चतुर्भुजदास द्वारा रचित कहे गये हैं। (पृ० ४७९ 'विनोद') इसमें कुछ गड़बड़ी है, आगे की खोजें कदाचित् इस गड़बड़ी को सुलझावें।"
	खो० रि० १९२२:२४ ई०, नं० १६, पृ० २३।	इस रिपोर्ट में भी खोज-रिपोर्टकार ने ऊपर कहे आशय का वक्तव्य दिया है।
चतुर्भुजदास-कृत द्वादश यश।	खो० रि० १९०६ ई०, नं० २१, प्रतिलिपि काल, सन् १८४२ ई०, सुरक्षा का स्थान—ला० राधिकाप्रसाद, बिजावर।	खो० रि० में लिखा है कि ये चतुर्भुजदास ब्रज के रहनेवाले थे। इस रि० में कवि के विषय में अन्य कोई वृत्तान्त अथवा उद्धरण नहीं दिये गये।
	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० १४८ (ए), पृ० ६६, प्रतिलिपि-काल १८४२ ई०।	खोज-रिपोर्ट के कथनानुसार इस ग्रन्थ में बारह विषयों का वर्णन है जैसे भक्ति, धर्माचार, शिक्षा आदि। खो० रि० में ग्रन्थ से कोई उद्धरण नहीं दिये गये। रिपोर्टकार का कहना है, यह कवि प्रसिद्ध श्रीहित-हरिवंश जी के सम्प्रदाय का अनुयायी ज्ञात होता है, क्योंकि कवि ने आरम्भ में हितहरिवंश जी का

		— नाम -आदरसूचक शब्दों में लिया है। रिपोर्ट में ग्रन्थ से उद्धरण नहीं दिये गये।
चतुर्भुजदास-कृत 'भक्ति प्रताप।'	खो० रि० १६०६ ८ ई०, न० १४८ (बी), प्रतिलिपिकाल सन् १७३७ ई०, सुरक्षा का स्थान—राजकीय पुस्तकालय, दतिया।	खो० रि० के अनुसार इस ग्रन्थ का विषय 'भक्ति की महिमा' का वर्णन है। इस ग्रन्थ के रचयिता चतुर्भुजदास के विषय में भी रिपोर्टकार का वही वक्तव्य है जो खो० रि० १६०६ ८ ई०, न० १४८ (बी) में दिया गया है।
चतुर्भुजदास-कृत श्री हितजू को मङ्गल।	खो० रि० १६०६ ८ ई०, न० १४८ (सी), सुरक्षा का स्थान—राजकीय पुस्तकालय दतिया स्टेट।	खो० रि० के अनुसार यह ग्रन्थ श्री हितहरिवंश जी की स्तुति में लिखा गया है। खोज रि० में ग्रन्थ से कोई उद्धरण नहीं दिये गये।
चतुर्भुजस्वामी-कृत 'पद'।	खो० रि० १६१२ १४ ई०, न० ४० पृ० ५८,	खो० रि० में इस ग्रन्थ का विषय 'रस सिद्धान्त के पद' दिया हुआ है। रिपोर्ट में जो उद्धरण दिये गये हैं उनमें से आरम्भिक पद में श्री हरिवंश जी की 'जै' कवि ने, गाई है, जैसे— **राग भैरव** *जै जै श्री हरिवंश रसिकवर।* *रस सागर जैति मथि कथि करि प्रकट,* *कियौ पुहमी पर।* साथ में इसी पद में राधा के भजन की ओर भी सकेत है। इससे ज्ञात होता है कि इन पदों के रचयिता हितहरिवंश सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास हैं। पदों में चतुर्भुज छाप आई है।
चतुर्भुज मिश्र कृत 'अलङ्कार आभा'।	खो० रि० १६१७ १६ ई०, न० ३६, पृ० १३१, परिशिष्ट २, ग्रन्थ रचनाकाल सं० १८६६ वि०।	कवि की जाति तथा ग्रन्थ के रचनाकाल से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ 'चतुर्भुज' अष्टछापवाले का नहीं है।

गोविन्दस्वामी

गोविंद-कृत 'गोविन्दानन्द-घन'	खो० रि० १९१२:१४ ई०, नं० ६५। ग्रन्थ रचनाकाल:—सं० १८५८ वि०	खो० रि० में ग्रन्थ का विषय "रस और नायिका-भेद" दिया हुआ है। रि० में अन्य कोई वक्तव्य नहीं है। ग्रन्थ के रचनाकाल से स्पष्ट है कि यह अष्टछाप के गोविन्दस्वामी का नहीं है।
गोविन्द प्रभु-कृत 'गीत चिन्तामणि'	खोज रि० १९१२ १४ ई०, नं० ६६। सुरक्षा का स्थान—राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन।	खोज के दिये हुये उद्धरणों में 'गोविन्द प्रभु' छाप आती है। अष्टछाप के गोविन्दस्वामी के पदों में भी 'गोविन्द प्रभु' अथवा 'गोविन्द' छाप है। ग्रन्थ की छाप से अष्टछापी कवि का भ्रम होता है, परन्तु खो० रि० में दिये हुये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि कवि चैतन्य महाप्रभु का नाम लेकर ग्रन्थ आरम्भ करता है तथा आरम्भिक पद में "गौर गोपाल" की प्रशंसा करता है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि चैतन्य सम्प्रदायी है। खोज रिपोर्टकार ने भी इस बात का उल्लेख कर दिया है। इस ग्रन्थ का आरम्भिक पद निम्नलिखित है—श्री कृष्ण चैतन्य चन्द्रायनमः। राग कल्यान.— *गौर गोपाल रस रास मण्डल,* *रसिक मण्डली मण्डित सुरङ्गी।* *रचित ताण्डव कला पण्डित सिरोतन,* *वितनु सत कोटि जित चारु भङ्गी।*
गोविन्ददास-कृत 'एकान्त पद'	खोज रि० १९१७ १९ ई०, नं० ६३, पृ० १९२। प्रतिलिपि-काल.—१९२६ ई०	अष्टछाप के कवि गोविन्दस्वामी गोविन्ददास के नाम से भी कहे जाते हैं। वार्ता में इस नाम का उल्लेख अनेक स्थानों पर है, तथा गोविन्दस्वामी के किसी किसी पद में यह छाप भी आई है। इस खोज रिपोर्ट में जो उद्धरण दिये गये हैं, उनकी भाषा में बँगला तथा मैथिली भाषा का बहुत प्रभाव है, जैसे 'समय जानि सखी मिलल आई,' बैठल'

		'देयल,' 'सुतल' यथा 'निकटे' आदि शब्दावली से ज्ञात होता है। ये गौड़ीय सम्प्रदाय के गोविन्द-दास कवि हैं, अष्टछाप के गोविन्ददास नहीं हैं।
गोविन्ददास-कृत 'सीताराम की गीतावली'	खो० रि० १६२०:२२, नं० ५३, परिशिष्ट १, पृष्ठ ६६ तथा परि-शिष्ट २, नं० ५३, पृ० २३२।	इस ग्रन्थ के वर्णित विषय तथा खोज रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों की भाषा के आधार से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ अष्टछाप के गोविन्ददास का नहीं है। खोज रिपोर्टकार का कथन है कि यह कवि कदाचित् 'एकान्त पद' का रचयिता गोविन्द-दास (खो० रि० सन् १६१७:१५ नं० ६३) है। रिपोर्टकार का इस विषय में निश्चित मत नहीं है कि इस ग्रन्थ का रचयिता अमुक कवि है।
गोविन्दकवि-कृत 'करुना भरन'	खो० रि० १६२२-२४, ई०, नं० ३४। ग्रन्थ रचनाकाल सं० १७-८७ वि० "नगनिधि रिषिविधु बरष में"।	खो० रि० में दिये हुये रचनाकाल से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के गोविन्दस्वामी का नहीं है।

'इसत्वार दे ला लितेरात्यूर एँदुए एँदुस्तानी' गार्साद तासी।

तासी ने अपने इस इतिहास ग्रन्थ में परमानन्ददास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी के विषय में कोई वृत्तान्त नहीं दिया। उन्होंने एक चतुर्भुजमिश्र कवि का उल्लेख करते हुये *कहा है कि चतुर्भुजमिश्र*[1] ने दोहा-चौपाई छंद तथा ब्रजभाषा में दशम स्कन्ध भागवत लिखा है। उन्होंने ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं दिया। परन्तु कवि के नाम से स्पष्ट है कि यह चतुर्भुजमिश्र अष्टछाप के गोरवा चत्री चतुर्भुजदास नहीं है। तासी ने अपने इस ग्रन्थ में एक कृष्णदास का भी उल्लेख किया है। वे कहते हैं,—"कृष्णदास वैष्णव सम्प्रदाय के भक्तों के जीवन वृत्तान्त संग्रह भक्तमाल के टीकाकार हैं। मेरे विचार से ये वही कृष्णदास हैं' जिनका बुन्देलखण्डी भाषा में लिखा 'भँवरगीत' बताया जाता है। कृष्णदास 'प्रेम-सत्व-निरूप' नामक एक धार्मिक ग्रन्थ के भी रचयिता हैं। विल्सन के पास इस ग्रन्थ की देवनागरी

१—इसत्वार दे ला लितेरात्यूर एँदुए एँदुस्तानी, भाग १, पृ० १४२।

अक्षरों में लिखी एक प्रतिलिपि है।"[1] इस कथन से यह ज्ञात होता है कि यह वृत्तान्त अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी से सम्बन्ध नहीं रखता है। तासी महोदय ने वस्तुतः अष्टछाप के दो ही कवि सूरदास और नन्ददास का अल्प वृत्तान्त दिया है जो नीचे दिया जाता है—

"सूरदास ईसा की १६वीं शताब्दी के अन्त और १७वीं शताब्दी के आरंभ में हुये। ये अन्धे थे। इनके पिता का नाम रामदास था जो एक गवैया था। इन्होंने बहुत से विष्णु-पद लिखे। इनकी एक कृति 'सूरसागर' है जिसकी एक प्रति रागरागिनियों के क्रमानुसार लिखी हुई है। मि० वार्ड के कथनानुसार इनका एक ग्रन्थ 'सूरदास-कबित्त' है। इनका लिखा हुआ एक ग्रन्थ 'नलदमन भाषा' भी है जिसकी एक प्रति हमारे (तासी के) संग्रह में है। कदाचित् यह वही कृति है जिसका, अब्बुलफ़ैज़ी ने फारसी में अनुवाद किया था, क्योंकि आइने अकबरी भाग १, पृ० ११४ पर इस बात की सूचना है।[2]

तासी महोदय के उक्त कथन का मुख्य आधार आइनेअकबरी है जिसमें दिये हुये सूरदास विषयक वृत्तान्त को लेखक ने अष्टछापी सूर के वृतान्त के रूप में अप्रामाणिक माना है। तासी ने सूर-कृत जिन दो ग्रन्थों—'सूरसागर' तथा 'नलदमन भाषा'—की सूचना दी है, उनकी प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा।

अपने इस इतिहास-ग्रन्थ में तासी ने नन्ददास के ग्रन्थों की सूची तो दी है, परन्तु कवि के जीवन-वृत्तान्त का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। तासी के इस ग्रन्थमे नन्ददास के निम्नलिखित १४ ग्रन्थों का हवाला दिया गया है।[3]

१. रास पञ्चाध्यायी। २. नाममञ्जरी अथवा नाममाला। ३. अनेकार्थ मञ्जरी। ४. रुक्मिणी मङ्गल। ५. भँवर गीत। ६. सुदामा-चरित। ७. विरह मञ्जरी। ८. प्रबोध चन्द्रोदय नाटक। ६. गोवर्द्धन-लीला। १०. दशम स्कन्ध। ११. रासमञ्जरी। १२. रस मञ्जरी। १३. रूप मञ्जरी। १४. मान मञ्जरी।

पहले तीन ग्रन्थ तासी ने स्वयं देखे थे। बाकी ११ के विषय मे वे कहते है कि उन्हें अपने मित्र डा० स्प्रेंज़र द्वारा ज्ञात हुआ है कि एक ५७६ पन्नों का ग्रन्थ उनके मित्र स्प्रेंज़र साहब के पास है जिसमें नन्ददास की रचनाएँ दी हुई है। इसी के आधार पर उन्होंने ११

१—इसत्वार दे ला लितेरात्यूर ऐंदुए एंदुस्तानी, भाग १, पृ० ३०२।

२—इसत्वार देला लितेरात्यूर ऐंदुए एँदुस्तानी, भाग १, पृ० ४८६।

३—'इसत्वार देला लितेरात्यूर ऐंदुए एँदुस्तानी', भाग २, पृ० ४४५:४७।

सब गढ़िया नन्ददास जड़िया'। इस अल्प वृत्तान्त के साथ उन्होंने नन्ददास के ग्रन्थों की नीचे लिखी सूची दी है—

१. अनेकार्थ। २. नाममाला। ३. पञ्चाध्यायी। ४. रुक्मिणीमङ्गल। ५. दशम स्कन्ध। ६. दानलीला। ७. मानलीला। सरोजकार ने यह भी लिखा है कि नन्ददास ने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी हजारों पद बनाये। सरोजकार ने परमानंददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी का कोई उल्लेखनीय वृत्तान्त नहीं दिया। इनके ग्रंथों के विषय में केवल यह सूचना दी है कि इनके पद, रागसागरोद्भव में मिलते हैं। 'सरोज' का आधार लेकर सर जार्ज ग्रियर्सन ने स० १९४६ में 'मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान' नाम का ग्रन्थ लिखा। इसमें शिवसिंह सरोज का ही अनुकरण किया गया है और केवल उन्हीं सात ग्रन्थों के नाम ग्रियर्सन महोदय ने दिये हैं, जिनका उल्लेख शिवसिंह सरोज ने किया है।

भारतेन्दु-रचित 'भक्तमाल'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी नाभा जी के भक्तमाल और 'वैष्णवन की वार्ता के आधार पर भक्तमाल' की रचना की है। उसमें दिये हुये ८०वें छन्द' से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने नन्ददास के वृत्तान्त में 'दो सौ बावन वार्ता' और नाभा जी के 'भक्तमाल' का ही आश्रय लिया है। वे लिखते हैं,—"नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। उन्होंने भाषा में भागवत तथा रास पञ्चाध्यायी की रचना की और रास-रस में सदैव अनुरक्त रहते थे। ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी भी इस बात को मानते थे कि नन्ददास जी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे।

मिश्रबन्धु-विनोद तथा हिन्दी-नवरत्न

मिश्रबन्धुओं ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। उन्होंने विल्वमङ्गल सूरदास के एक स्त्री पर मोहित होकर आँख फोड़ लेने की घटना को अष्टछाप के सूरदास के जीवन-वृत्त में मिला दिया है।

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ४४२।

२—तुलसीदास के अनुज सदा विट्ठल पदचारी।
अन्तरङ्ग हरि सखा, नित्य जेहि प्रिय गिरधारी।
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई।
गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल माहिं डुबाई।
पञ्चाध्यायी हठ करि रखी तब गुरुवर द्विज भय हरन।
श्री नन्ददास रस रास रत प्रान तज्यो सुधि सो करन।
भारतेंदु रचित भक्तमाल।

ग्रन्थों के और नाम दिये हैं। सङ्ख्या ४ और ५ वे ग्रन्थ तासी ने छपे हुये देखे थे। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा।

शिवसिंह सरोज

शिवसिंह सरोज में सूरदास का यह वृतान्त दिया हुआ है,—"सूरदास ब्राह्मण ब्रज वासी, बाबा रामदास के पुत्र, वल्लभाचार्य के शिष्य स० १६४० में उदय। इन महाराज के जीवन चरित्र से सब छोटे बड़े आगाह हैं, भक्तमाल इत्यादि में इनकी कथा विस्तारपूर्वक है। इनका बनाया सूरसागर ग्रन्थ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हजार तक देखे हैं। समग्र ग्रन्थ कहीं नहीं देखा। इनकी गिनती अष्टछाप अर्थात् ब्रज के आठ महाकवीश्वरों में है।"[1]

सरोजकार के इस कथन से,—"इन महाराज के जीवन-चरित्र से सब छोटे बड़े आगाह हैं, भक्तमाल में इनकी कथा विस्तारपूर्वक है"—ज्ञात होता है कि उनका लक्ष्य सूर के उसी परम्परागत मौखिक वृत्तान्त से है जो भक्तमाल की विभिन्न टीकाओं की कल्पना और सब सूरदासों की कहानियों के आधार पर एक मिश्रित रूप में प्रचलित है। सरोजकार ने अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया। सूर के जिन ६० हजार पदों की सूचना उन्होंने दी है उनकी सुरक्षा के स्थान का पता भी उन्होंने नहीं बताया।

शिवसिंह सेंगर ने कृष्णदास की रचनाओं के विषय में यह वृत्तान्त दिया है—"इनके बहुत पद रागसागरोद्भव में लिखे हैं और इनकी कविता अत्यन्त ललित और मधुर है।...कृष्णदास का बनाया हुआ 'प्रेम-रस-रास' ग्रन्थ बहुत सुन्दर है।" सरोजकार ने इनके 'प्रेम रस-रास' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है और उस ग्रन्थ को बहुत सुन्दर लिखा है। इससे दो बातें सम्भव हो सकती हैं। या तो सरोजकार ने कृष्णदास के उक्त ग्रन्थ को देखा और पढ़ा है और उसकी कविता को जाँचकर उसे सुन्दर कहा है अथवा प्रियादास के कथन के आधार से ही उन्होंने कृष्णदास के 'प्रेम-रस-रास ग्रन्थ' की कल्पना कर ली है। काँकरौली विद्या विभाग, नाथद्वार तथा सूरत में, जहाँ अष्टछाप-कवियों के काव्य के विशेष सग्रह हैं, कोई ऐसा ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आया। हाँ, कृष्णदास के कीर्तन-सग्रह वहाँ बहुत हैं जिनका विवरण आगे दिया जायगा। 'प्रेम-रस रास'-ग्रन्थ पर भी आगे और विचार किया जायगा।

सरोजकार ने नन्ददास का कोई विशेष वृत्तान्त नहीं लिखा। उन्होंने केवल इतना लिखा है—"नन्ददास ब्राह्मण रामपुर निवासी, विट्ठलनाथ जी के शिष्य स० १५८५ में उदय। इनकी गणना अष्टछाप में की गई है। इनकी बाबत यह मसल मशहूर है कि और

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ४०२।

सब गढ़िया नन्ददास जड़िया[1] । इस अल्प वृत्तान्त के साथ उन्होंने नन्ददास के ग्रन्थों की नीचे लिखी सूची दी है—

१. अनेकार्थ । २. नाममाला । ३. पञ्चाध्यायी । ४. रुक्मिणीमङ्गल । ५. दशम स्कन्ध । ६. दानलीला । ७ मानलीला । सरोजकार ने यह भी लिखा है कि नन्ददास ने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी हजारों पद बनाये। सरोजकार ने परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी का कोई उल्लेखनीय वृत्तान्त नहीं दिया। इनके ग्रन्थों के विषय में केवल यह सूचना दी है कि इनके पद रागसागरोद्भव में मिलते हैं। 'सरोज' का आधार लेकर सर जार्ज ग्रियर्सन ने सं० १९४६ में 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' नाम का ग्रन्थ लिखा । इसमें शिवसिंह सरोज का ही अनुकरण किया गया है और केवल उन्हीं सात ग्रन्थों के नाम ग्रियर्सन महोदय ने दिये हैं, जिनका उल्लेख शिवसिंह सरोज ने किया है।

भारतेन्दु-रचित 'भक्तमाल'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी नाभा जी के भक्तमाल और 'वैष्णवन की वार्ता के आधार पर भक्तमाल' की रचना की है । उसमें दिये हुये ८०वें छन्द[2] से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने नन्ददास के वृत्तान्त में 'दो सौ बावन वार्ता' और नाभा जी के 'भक्तमाल' का ही आश्रय लिया है । वे लिखते हैं,—"नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। उन्होंने भाषा में भागवत तथा रास पञ्चाध्यायी की रचना की और रास-रस में सदैव अनुरक्त रहते थे। ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी भी इस बात को मानते थे कि नन्ददास जी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे।

मिश्रबन्धु-विनोद तथा हिन्दी-नवरत्न

मिश्रबन्धुओं ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। उन्होंने बिल्वमङ्गल सूरदास के एक स्त्री पर मोहित होकर आँख फोड़ लेने की घटना को अष्टछाप के सूरदास के जीवन वृत्त में मिला दिया है।

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ४४२ ।

२—तुलसीदास के अनुज सदा विट्ठल पदचारी ।
अन्तरङ्ग हरि सखा, नित्य जेहि प्रिय गिरधारी ।
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई ।
गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल माहि डुबाई ।
पञ्चाध्यायी हठ करि रखी तब गुरुवर द्विज भय हरत ।
श्री नन्ददास रस रास रत प्रान तज्यो सुधि सो करत ।
भारतेंदु रचित भक्तमाल ।

इस वृत्तान्त में मिश्रबन्धुओं ने सूर का जन्म काल सं० १५४० और मरण-काल सं० १६२० माना है। 'साहित्यलहरी' और 'सूरसारावली' दोनों को एक ही साल की रचना मानकर तथा सं० १६०७ में से ६७ वर्ष घटाकर उन्होंने सूर का जन्म सम्वत् १५४० निकाला है जिसका 'हिन्दी-नवरत्न' के बाद लिखे जानेवाले सभी इतिहास-ग्रन्थ, कविता-संग्रह और सूर की स्वतन्त्र जीवनी लिखनेवालों ने अनुकरण किया है। 'विनोद' में सूरदास-कृत निम्न-लिखित ग्रन्थ लिखे हैं[1]—

१—सूरसागर, २—सूरसारावली, ३—साहित्यलहरी, ४—व्याहलो, ५—नल-दमयन्ती। इनके अतिरिक्त खोज-रिपोर्ट के आधार से उन्होंने—६—प्रानप्यारी। ७—पद-संग्रह ८—दशम स्कन्ध टीका, ९—नागलीला, १०—तथा सूर-पचीसी नामक सूर के और ग्रन्थ दिये हैं। 'कैटालागस कैटालागोरम' में दिये हुये सूरदास-कृत ११—हरिवंश-टीका नामक ग्रन्थ का भी मिश्रबन्धुओं ने उल्लेख किया है। सूर के दो ग्रन्थों की और सूचना देते हुये मिश्रबन्धु कहते हैं,—"नल-दमयन्ती" और 'व्याहलो' ये दो ग्रन्थ सूर ने और भी लिखे हैं, पर हमारे देखने में नहीं आये"[2]।

परमानन्ददास के ग्रन्थों के विषय में उन्होंने लिखा है,—"आपका रचा हुआ एक ग्रन्थ परमानन्द-सागर सुनने में आया है और स्फुट छंद बहुत से यत्र-तत्र पाये जाते हैं।"[3] इस कथन के साथ विनोद में खोज-रिपोर्ट के आधार से इनके दो ग्रन्थ 'दानलीला' और 'ध्रुवचरित्र' का भी उल्लेख किया गया है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि मिश्रबन्धुओं को भी परमानन्ददास जी के कुछ स्फुट पदों को छोड़कर 'परमानन्द-सागर' अथवा अन्य कोई ग्रन्थ देखने को नहीं मिला। कुम्भनदास की रचनाओं के विषय में वे लिखते हैं—"आपका कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया; परन्तु प्राय: ४० पद हमारे पास हैं।"[4] लेखक ने मिश्रबन्धुओं से ये पद देखने को माँगे थे, परन्तु खोज करने पर ज्ञात हुआ कि उनके संग्रहालय में अब ये पद नहीं हैं।

कृष्णदास अधिकारी के विषय में उन्होंने लिखा है,—"आपके कोई ग्रन्थ हमने नहीं देखे, परन्तु १०४ पद हमारे पास वर्तमान हैं।"

'मिश्रबन्धु-विनोद' में कृष्णदास द्वारा लिखे हुये निम्नलिखित आठ ग्रन्थों की

१—'मिश्रबन्धु-विनोद' सं० १९८३ संस्करण, पृ० २३८, और सं० १९९४ संस्करण, पृ० २१७।

२—'हिन्दी-नवरत्न' पृ० १६१।

३—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग, सं० १९९४ संस्करण, पृ० २२४।

४—'मिश्रबन्धु विनोद' प्रथम भाग सं० १९९४ संस्करण, पृ० २२५।

सूचना है[1]—१—जुगल मान-चरित, २—भक्तमाल पर टीका, ३—भ्रमरगीत, ४—प्रेम-सत्व-निरूप, ५—भागवत का अनुवाद, ६—वैष्णव-वन्दन, ७—कृष्णदास की बानी, ८—प्रेम रस-रास अथवा प्रेम-रस-राशि, इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा।

'मिश्रबन्धु-विनोद' में मिश्रबन्धुओं ने नन्ददास को किसी तुलसीदास का भाई अवश्य माना है; परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि रामचरितमानसकार तुलसीदास ही उनके भाई थे अथवा कोई अन्य व्यक्ति, उन्होंने वेंकटेश्वर प्रेस से छपी २५२ वार्ता के अनुसार ही नन्ददास का संक्षेप में जीवन-वृत्त दिया है और उनके निम्नलिखित १८ ग्रन्थों का उल्लेख किया है—

१—अनेकार्थ-नाममाला, २—रास पञ्चाध्यायी, ३—रुक्मिणी-मङ्गल, ४—हितोपदेश, ५—दशम स्कन्ध, ६—दानलीला, ७—मानलीला, ८—ज्ञान-मञ्जरी, ९—अनेकार्थ-मञ्जरी, १०—रूपमञ्जरी, ११—नाममंञ्जरी, १२—नाम-चिन्तामणि-माला, १३—रसमञ्जरी १४—नाममाला, १५—विरहमञ्जरी, १६—नासकेतु-पुराण-भाषा, १७—श्याम-सगाई और १८—विज्ञानार्थ प्रकाशिका। इनमें से अन्तिम ग्रन्थ के विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है,—"यह ग्रन्थ उन्होंने छतरपुर में देखा है।"

उपर्युक्त ग्रन्थों में दो ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनका भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख हुआ है। वस्तुत. 'नाममाला', 'नाममञ्जरी' और 'नामचिन्तामणि-माला' ये तीनों ग्रन्थ एक ही हैं तथा 'अनेकार्थमाला' और 'अनेकार्थमञ्जरी' ये दोनों एक हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों में चतुर्भुजदास का सबसे अधिक वृत्तान्त मिश्रबन्धुओं ने ही दिया है। 'मिश्रबन्धु-विनोद'[2] के कथनानुसार अष्टछाप के चतुर्भुजदास के नीचे लिखे ग्रन्थ हैं—

१. मधुमालती-कथा। २. भक्ति-प्रताप। ३. पद तथा सवैया के पद ४. द्वादश यश। ५. हितूज को मङ्गल। इनमें से 'द्वादश यश' नामक ग्रन्थ को मिश्रबन्धुओं ने सन्दिग्ध ठहराया है। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता का भी आगे विवेचन किया जायगा। मिश्रबन्धुओं ने गोविन्दस्वामी[3] तथा छीतस्वामी[4] की जीवनी तथा ग्रन्थों के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं दी।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पं० रामचन्द्र शुक्ल।

स्वर्गीय आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास,'

१—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग, सं० १९९४ संस्करण, पृ० २२३।

२—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग, सं० १९९४ संस्करण, भाग १, पृ० २२६।

३—'मिश्रबंधु विनोद', स० १९९४ संस्करण, भाग १, पृ० २३०।

४—'मिश्रबंधु विनोद', सं० १९९४ संस्करण, भाग १, पृ० २२७।

स० १९९० के संस्करण में[1] सूर के परिचय के साथ चौरासी वार्ता की टीका का उल्लेख किया था और उन्होंने उसके आधार से लिखा था,—"चौरासी वैष्णवन की टीका के अनुसार इनकी जन्मभूमि रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गाँव है जो मथुरा से आगरे जानेवाली सड़क पर है। उक्त वार्ता के अनुसार ये सारस्वत ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रामदास था।" आगे शुक्ल जी लिखते हैं,—'भक्तमाल' में भी ये ब्राह्मण कहे गये हैं और आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत होना लिखा है।"

शुक्ल जी ने ८४ वार्ता की टीका देखी थी, इसमें सन्देह है। एक बार लेखक ने उनसे टीका के बारे में पूछा भी था। उन्होंने उत्तर दिया कि बाबू राधाकृष्णदास ने उक्त टीका का उल्लेख किया है। हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की टीका में सूर का जन्म-स्थान न तो रुनकता दिया हुआ है और न उनके पिता का नाम रामदास दिया गया है। उधर 'भक्तमाल' में नाभादास ने भी कहीं नहीं लिखा कि सूरदास ब्राह्मण थे और आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ था। 'भक्तमाल' के प्रमुख टीकाकार प्रियादास जी ने सूरदास का कोई वृत्तान्त नहीं दिया। 'भक्तमाल' के बाद की कुछ टीकाओं में तो, नाभादास जी द्वारा स्पष्ट रूप से अलग अलग दिये हुये कई सूरदासों के वृत्तान्तों को एक में मिला दिया गया है। इसीलिए लेखक ने इन टीकाओं को प्रमाण-कोटि में नहीं लिया। स० १९९७ वाले इतिहास[2] के सस्करण में शुक्ल जी ने ८४ वार्ता की टीका तथा सूर के सारस्वत ब्राह्मण होने के उल्लेख निकाल दिये हैं। इस संस्करण में उन्होंने वेंकटेश्वर प्रेस से छपी ८४ वार्ता के आधार से ही सूर का संक्षेप में परिचय दिया है। इन्होंने भी सूर का जन्म संवत् १५४०, वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश सं० १५८० तथा निधनकाल संवत् १६२० माना है। इन तिथियों के समर्थन में आचार्य शुक्ल ने वे ही प्रमाण दिये हैं जो 'मिश्र-बन्धु विनोद' में दिये हुये हैं। उन्होने अपने इतिहास ग्रन्थ[3] और 'भँवरगीतसार' की भूमिका में सूरदास के ग्रन्थों की कोई सूची नहीं दी है। उन्होंने सूर के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर भी विचार नहीं किया है। सूर की जीवनी का अल्प विवरण देते हुये उन्होंने सूरसागर, साहित्यलहरी तथा सूरसारावली इन तीन ग्रन्थों के हवाले और उद्धरण दिये हैं। सूर के काव्य की महत्ता पर तुलसी और सूर दोनों की तुलना करते हुये उन्होंने अपने महत्वपूर्ण विचार दिये हैं।

शुक्ल जी ने चार-छः पङ्क्तियों में परमानन्ददास जी का लगभग वही परिचय दिया है जो 'मिश्रबन्धु-विनोद' में दिया हुआ है। इसके बाद उन्होंने खोज-रिपोर्ट का हवाला देते हुये

१—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९० संस्करण, पृ० १९९।

२—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० १९३।

३—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० १९४।

इनके पीछे कहे हुये 'पदों का संग्रह' 'ध्रुवचरित्र' और 'दानलीला', इन तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[1] इस कथन से भी यही ज्ञात होता है कि स्वर्गीय प० रामचन्द्र शुक्ल जी को भी परमानन्ददास जी का कोई पद-संग्रह अथवा ग्रन्थ देखने को नहीं मिला था। उन्होंने कृष्णदास का वृत्तान्त वैंकटेश्वर प्रेस से छपी ८४ वार्ता के आधार से ही बहुत संक्षेप में दिया है। उनके ग्रन्थों के विषय में उन्होंने लिखा है,— "इन्होंने भी और सब कृष्ण-भक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर शृङ्गार रस के ही पद गाये हैं। 'जुगल-मान-चरित्र' नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ इनका मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाये दो ग्रन्थ और कहे जाते हैं—'भ्रमरगीत' और 'प्रेम-तत्व-निरूपण'। फुटकल पदों के संग्रह इधर-उधर मिलते हैं। सूरदास और नन्ददास के सामने इनकी कविता साधारण कोटि की है।"[2] शुक्ल जी के उक्त विवरण में मिश्रबन्धु-विनोद से अधिक कोई नई सूचना नहीं है। 'जुगल-मान-चरित्र' ग्रन्थ के बारे में शुक्ल जी कहते हैं—"यह ग्रन्थ मिलता है।" परन्तु उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा कि उन्होंने यह ग्रन्थ देखा था अथवा नहीं। शुक्ल जी द्वारा दिया हुआ वृत्तान्त कृष्णदास के ग्रन्थों का कोई निश्चयात्मक परिचय नहीं देता।

अपने इतिहास में शुक्ल जी ने नन्ददास के १६ ग्रन्थों के नाम दिये हैं।[3] उनकी इस सूची का आधार नागरीप्रचारिणी सभा की 'खोज-रिपोर्ट' और 'मिश्रबन्धु-विनोद' जान पड़ते हैं। उन्होंने भी नन्ददास का वर्णन बहुत थोड़ा दिया है। १६ ग्रन्थों के नाम गिनाने के बाद शुक्ल जी का कहना है,—"दो ग्रन्थ इनके लिखे और कहे जाते हैं—'हितोपदेश' और 'नासिकेतपुराण' (गद्य); पर ये सब ग्रन्थ मिलते नहीं हैं। जहाँ तक ज्ञात हुआ है, इनकी चार पुस्तकें ही छपी हैं।" इस सूची में भी एक ही ग्रन्थ कई नामों से अलग-अलग शुक्ल जी ने दे दिया है। इतिहास के नये संस्करण में शुक्ल जी ने एक ग्रन्थ का और नाम दिया है; वह है 'सिद्धान्त-पञ्चाध्यायी'। "इनके जीवन-वृत्तान्त के बारे में उन्होंने लिखा है कि इनका जीवन-वृत्त पूरा पूरा और ठीक ठीक नहीं मिलता।" इस कथन के बाद उन्होंने नाभादास के छप्पय और छपी हुई २५२ वार्ता के आधार पर संक्षेप में विवरण दिया है; परन्तु इस विवरण को वे प्रामाणिक नहीं मानते।

चतुर्भुजदास[4] का शुक्ल जी ने बहुत अल्प वृत्तान्त दिया है। इनके ग्रन्थों के विषय

१—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० ११२।

२—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७, पृ० २१४।

३—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७, संस्करण, पृ० २१२।

४—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१६।

में वे 'मिश्रबन्धु-विनोद' का अनुकरण करते हुये लिखते हैं,—"ये भी अष्टछाप के कवियों में हैं। भाषा इनकी चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाये तीन ग्रन्थ मिले हैं—'द्वादश यश,' 'भक्ति-प्रताप' और 'हितजू को मङ्गल'। इनके अतिरिक्त फुटकल पदों के संग्रह भी इधर-उधर पाये जाते हैं।" शुक्ल जी का यह वर्णन बहुत गोल-मोल है। कवि के तीन ग्रन्थों को, जिनके नाम शुक्ल जी ने दिये हैं, उन्होंने देखा था अथवा नहीं, इस बात को उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। फुटकल पदों के विषय में भी उन्होंने उनके मिलने का कोई निश्चित सूत्र नहीं बताया। उन्होंने कुम्भनदास[१], गोविन्दस्वामी[२] तथा छीतस्वामी[३] के विषय में बहुत अल्प वृत्तान्त दिया है और कोई उल्लेखनीय बात नहीं लिखी। जान पड़ता है कि शुक्ल जी ने मिश्रबन्धु-विनोद के आधार पर अष्टछाप की जीवनी और उनके ग्रन्थों का विवरण अपने इतिहास में दिया है।

हिन्दी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास।

आचार्य डा० श्यामसुन्दरदास जी ने अपने उक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूरदास के 'सूरसागर' तथा उनके 'दृष्टकूट-पद' इन दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[४] उन्होंने सूर के काव्य का विवेचन संक्षेप में ही दिया है। उन्होंने नन्ददास के ग्रन्थों का तो विवरण नहीं दिया, परन्तु उनके काव्य की प्रशंसा अवश्य की है[५]।

आचार्य जी ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में हिन्दी साहित्य के भिन्न-भिन्न कालों की विचार-धारा और उस समय के आन्दोलनों का अधिक विस्तार से विवरण दिया है, कदाचित् सभी कवियों का विस्तारपूर्वक विवरण देना उनके इतिहास का ध्येय नहीं है, इसीसे अष्टछाप के सूर और नन्ददास को छोड़ कर अन्य छः कवियों के विषय में मौन रहे हैं।[६] इस इतिहास ग्रन्थ में भी अष्टछाप के विषय की कोई मौलिक अथवा खोज की सामग्री नहीं है।

१—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१६।

२—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१७।

३—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्रशुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१७।

४—'हिन्दी भाषा और साहित्य,' सं० १९९४ संस्करण, डा० श्यामसुन्दरदास। पृ० ३२३, ३२६, तथा ३२७।

५—'हिन्दी भाषा और साहित्य', सं० १९९४ संस्करण, डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ३२७।

६—'हिन्दी भाषा और साहित्य', सं० १९९४ संस्करण, डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ३२७।

'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'—डा० रामकुमार वर्मा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में, डा० रामकुमार वर्मा जो ने अपने इतिहास ग्रन्थों में अष्टछाप के कवियों का, विशेष रूप से सूरदास और नंददास का सबसे अधिक वृत्तान्त दिया है।

उन्होंने सूरदास-कृत निम्नलिखित ग्रन्थ[1] दिये हैं। १—गोवर्धन-लीला बड़ी, २—दशम स्कन्ध टीका, ३—नाग-लीला, ४—पद-संग्रह, ५—प्राणप्यारी, ६—व्याहलो, ७—भागवत, ८—सूर-पचीसी, ९—सूरदास जी का पद, १०—सूरसागर, ११—सूरसागर-सार, १२—एकादशी-माहात्म्य, १३—राम-जन्म १४—सूरसारावली, १५—साहित्यलहरी, १६—नल-दमयन्ती। इन ग्रन्थों को डाक्टर वर्मा ने नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों के आधार से ही दिया है, उन्होंने सूर के ग्रन्थों की प्रामाणिकता की परीक्षा नहीं की।

डा० वर्मा ने कृष्णदास का तथा उनके काव्य का वृत्तान्त केवल दस-ग्यारह पङ्क्तियों ही में दिया है[2]। और इनके केवल तीन ग्रन्थ बताये हैं—'भ्रमर-गीत', 'प्रेम-तत्व-निरूपण और 'जुगल-मान-चरित्र। 'जुगल-मान-चरित्र' के बारे में उन्होंने भी लिखा है कि यह रचना भक्तों में अधिक मान्य है। उन्होंने भी यह नहीं बताया कि यह ग्रन्थ कहाँ पर प्राप्य है और उन्होंने स्वयं इसको देखा है अथवा नहीं। उन्होंने अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी और नाभादास जी के गुरु रामोपासक स्वामी अग्रदास के गुरु कृष्णदास पयहारी 'दोनों को' एक ही व्यक्ति मान लिया है, वास्तव में उनकी इस भूल का आधार नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट १९०९ : ११ ई० तथा १९०६ : ८ ई० हैं। अग्रदास जी के वृत्तान्त के अन्तर्गत अपने इतिहास के पृ० ५४० पर वे लिखते हैं—'यद्यपि अग्रदास अष्टछाप के श्री कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे, तथापि इनकी प्रवृत्ति रामोपासना की ओर अधिक थी।' अष्टछाप के कृष्णदास वल्लभसम्प्रदाय में अधिकारी के नाम से ही कहे गये हैं, 'पयहारी' नाम से नहीं पुकारे गये; वस्तुतः कृष्णदास पयहारी कृष्णदास अधिकारी से भिन्न व्यक्ति हैं।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास मे नन्ददास के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण दिया है[3]। उन्होंने नन्ददास के जीवन, उनके ग्रन्थ, काव्य-शैली और काव्य-गुणों पर विस्तार से और गम्भीरता के साथ लिखा है। इस विवरण में जीवन-चरित्र पर कोई नया प्रकाश डाल कर अपना मत स्थिर नहीं किया गया। नन्ददास के जिन ग्रन्थों का ब्योरा उन्होंने

१—'हिन्द साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६१७ : ६२१।

२—'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७१।

३—'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६४९।

लेखक ने सूरदास आदि अष्टछाप के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर प्रस्तुत ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में विचार किया है।

दिया है, उसका आधार नागरी-प्रचारिणी-सभा की सन् १६२२ तक की खोज-रिपोर्ट ही है। इसलिए उनके दिये हुये ग्रन्थों की सूची वही है जो उक्त सभा की सन् १६२२ तक की खोज की सूची है। उन्होंने चतुर्भुजदास जी के ग्रन्थों का उल्लेख करते हुये मिश्रबन्धु और प० रामचन्द्र शुक्ल का ही अनुकरण किया है, उनके ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार नहीं किया। ये लिखते हैं,—"इनके तीन ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं—१. द्वादश यश। २. भक्ति प्रताप और ३. हित जू को मङ्गल। इनके पदों के अनेक संग्रह हैं जिनमें भक्ति और प्रेम के सुथरे चित्र मिलते हैं।" डा० रामकुमार वर्मा ने उक्त तीन ग्रन्थों के मिलने के सूत्रों का कोई उल्लेख नहीं किया, न यह बताया है कि ये ग्रन्थ और संग्रह उन्होंने स्वयं देखे हैं, अथवा नहीं। गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी का उन्होंने केवल नामोल्लेख ही किया है, इनका कोई उल्लेखनीय विवरण नहीं दिया।

'सूरदास'—डा० जनार्दन मिश्र

डा० जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'सूरदास' में सूर की रचनाओं के विषय में कहा है,—"कहा जाता है कि सूरदास ने तीन ग्रन्थ लिखे—१. सूरसागर। २. सूरसारावली। ३. साहित्यलहरी।"[1] स्वर्गीय ला० सीताराम के 'सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर' नामक ग्रन्थ में दिये हुये नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट के उल्लेख के आधार से, उन्होंने एक ग्रन्थ 'सूरसागर-सार' की और सूचना दी है,[2] परन्तु पुस्तक अप्राप्य होने के कारण इस पर उन्होंने अपना कोई मत प्रकट नहीं किया। 'नल-दमयन्ती' और 'ब्याहलो' नामक सूर की कही जानेवाली दो और रचनाओं के विषय में उन्होंने कहा है—"इनका सूर-कृत होना सन्देहात्मक है।" सूर के ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्टों में सूर के नाम से दी हुई रचनाओं का उल्लेख तथा डा० जनार्दन मिश्र से पहले सूर के ग्रन्थों की सूचना देनेवाले लेखादि का डा० मिश्र ने अपने थीसिस में कोई उल्लेख नहीं किया। उन्होंने सूरसागर के 'सूरज', 'सूरजदास', तथा 'सूरस्याम' छाप के साथ आनेवाले पदों को प्रक्षिप्त कहा है; परन्तु इसका उन्होंने कोई प्रतीति-जनक प्रमाण नहीं दिया। लेखक ने इन नामों की छापों को भी अष्टछाप के सूरदास की छाप माना है; क्योंकि उक्त छाप के पद वल्लभ-सम्प्रदायी प्राचीन संग्रहालयों में भी उपलब्ध होते हैं और उन पदों में सूर के साम्प्रदायिक विचारों की छाप है। डा० मिश्र ने सूर के जीवन-वृत्तान्त में 'मिश्रबन्धु-विनोद' के कथनों के अतिरिक्त कोई नवीन सामग्री नहीं दी है।[3] डा० मिश्र के मत की आलोचना, सूर की जीवनी के भाग में लेखक ने आगे की है।

१—'सूरदास', डा० जनार्दन मिश्र पृ० ३७।

२—'सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर', भाग २, कलकत्ता, १९२६ ई०, पृ० १०।

३—'सूरदास', लेखक डा० जनार्दन मिश्र, पृ० ३२, ३३।

'सूर-साहित्य की भूमिका'—श्री रामरत्न भटनागर तथा श्री वाचस्पति पाठक।

"सूर-साहित्य की भूमिका" सूरदास के ऊपर लिखा हुआ एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसमें विद्वान् लेखकों ने अब तक प्रचलित वैंक्टेश्वर प्रेस से छपी ८४ वार्ता का ही प्रयोग किया है। वार्ता की किसी प्राचीन प्रति अथवा भावप्रकाशवाली वार्ता को उन्होंने नहीं देखा। उन्होंने भी सूर का जन्म सं० १५४० तथा भूमि ब्रज-प्रदेश मानी है। उनकी सम्मति में सूर वृद्धावस्था में नेत्रहीन हुये थे। इन विद्वानों ने अपने इस ग्रन्थ में लिखा है,—"चौरासी वार्ता की टीका में उनका जन्मस्थान रुनकता ग्राम बताया है, जिसकी स्थिति आगरे और मथुरा के बीच में है।"[1] न तो हरिराय जी-कृत चौरासी वार्ता में सूर का जन्म-स्थान रुनकता लिखा है और न बिना भावप्रकाशवाली ८४ वैष्णवन की वार्ता में सूर का जन्म-स्थान रुनकता या गऊघाट लिखा है। लेखक के विचार से 'सूर-साहित्य की भूमिका' की यह भूल है। इस ग्रन्थ में सूर के तीन ग्रन्थ प्रामाणिक कहे गये हैं[2]—१. 'सूरसागर', २. 'सूरसारावलि' और ३ 'साहित्य लहरी'। अन्य ग्रन्थों के सूर कृत न होने के सबल प्रमाण नहीं दिये गये। सूरसागर के 'सूर-स्याम' और 'सूरजदास' छापवाले पदों के विषय में श्री भटनागर तथा श्री पाठक कहते हैं,—"डा० जनार्दन मिश्र का कथन प्रमाणसिद्ध न होने तक हम इस विषय मे निश्चिन्त रूप से कुछ नहीं कह सकते।"

सूर-साहित्य,—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

'सूर-साहित्य' सूरदास के काव्य पर लिखा हुआ एक विवेचनात्मक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में सूरदास द्वारा रचित कहे जानेवाले ग्रन्थों की प्रामाणिकता की जाँच नहीं की गई है, और न इसम सूर को जीवन-वृत्तान्त सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री को परीक्षा ही की गई है। कवि का जो जीवन-वृत्तान्त इसमें दिया हुआ है, वह एक भावात्मक तथा रोचक कहानी मात्र है। धार्मिक दृष्टि से इस ग्रन्थ में सूर के काव्य की सुन्दर समालोचना है, परन्तु श्री वल्लभाचार्य के दार्शनिक तथा भक्ति सिद्धान्तों का, जो सूर-काव्य के मुख्य आधार थे, बहुत ही अल्प सहारा लिया गया है।

१—'सूर-साहित्य की भूमिका', पृ० १७।
२—'सूर साहित्य की भूमिका', पृ० २१।

तृतीय अध्याय

अष्टछाप : जीवन-चरित्र।

सूरदास के जीवन-चरित्र की रूपरेखा।

जन्म-स्थान

श्रीहरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली '८४ वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि सूरदास का जन्म दिल्ली से चार कोस ब्रज की ओर स्थित एक सीही[1] नामक ग्राम में हुआ। भाव-प्रकाश-रहित वार्ता में, जिसकी सबसे प्राचीन सं० १६९७ की प्रति काँकरौली विद्याविभाग में है, सूर के जन्म-स्थान के विषय में कुछ नहीं लिखा है। हरिराय जी के कथन के अतिरिक्त सूरदास की जन्म-भूमि सीही होने की जनश्रुति भी चली आती है जिसका आधार लेकर हिन्दी के कुछ विद्वानों ने सन्देहात्मक रूप से सूरदास की जन्म-भूमि इस सीही स्थान को बताया है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने सूर की जन्म-भूमि भ्रमवश रुनकता स्थान भी लिखी है[2]। रुनकता गाँव से, जो आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क पर है, दो मील की

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३।

२—पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास, संस्करण सं० १९९० के पृष्ठ १९९ पर सूर का जन्म-स्थान रुनकता लिखा था, परन्तु अपने इतिहास के नये संस्करण सं० १९९७ में उन्होंने सूर का कोई जन्मस्थान नहीं दिया। डा० श्याम-सुन्दरदास ने भी अपने इतिहास 'हिन्दी भाषा और साहित्य' के पृष्ठ ३२२ (सं० १९९४ के संस्करण) पर सूर की जन्मभूमि रुनकता लिखी है।

नोटः—लेखक रुनकता और गऊघाट दोनों स्थानों पर गया था। रुनकता गाँव में उसने वहाँ के वृद्ध-जनों और पण्डितों से सूरदास के विषय में पूछताछ की, रुनकता में सूर के जन्मस्थान होने की कोई चर्चा तक नहीं है। हाँ, इतना अवश्य प्रसिद्ध है कि सूरदास गऊघाट पर रहते थे, जहाँ अब भी कुछ साधु-महात्मा आकर कभी-कभी ठहर जाया करते हैं।

दूरी पर यमुना के किनारे 'रेणुका' स्थान है, वहाँ परशुराम जी का मन्दिर है। वह स्थान रमणीक है और वहाँ बहुत से साधु-महात्मा रहा करते हैं। वहाँ कोई बड़ी बस्ती नहीं है। गऊघाट, रेणुका स्थान से आगे लगभग एक मील है। गऊघाट के आस-पास कच्चे मकानों के बहुत से खँडहरों की ठेकी बनी है। एक वृद्ध महात्मा ने, जो लेखक के साथ गऊघाट गये थे, बताया कि प्राचीन समय में रुनकता गाँव इसी स्थान पर बसा था, परन्तु किसी आपत्ति के कारण, सम्भवतः औरङ्गजेब के अत्याचार से, यह स्थान लोगों ने छोड़ दिया और अब नये स्थान पर रुनकता गाँव बस गया है। लेखक ने वहाँ किसी महात्मा अथवा वहाँ के किसी निवासी से यह कहावत नहीं सुनी कि सूरदास की जन्मभूमि रुनकता थी।

लेखक ने, साहित्यलहरी में दिये हुये कवि की वंशावली वाले पद को तथा आइने-अकबरी, मुन्तखिबउत्तवारीख़ और मुंशियात अब्बुलफ़ज़ल को सूर की जीवन-सामग्री के लिए अप्रामाणिक सूत्र माना है। इसलिए इन आधारों में कथित सूर की जन्मभूमि ग्वालियर अथवा लखनऊ मान्य नहीं है। हरिराय जी की भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता के अनुसार सूरदास की जन्मभूमि 'सीही' ग्राम ही ठहरती है।

सूर के अन्य निवास स्थान

इसी भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास जी अपनी १८ वर्ष की आयु तक सीही गाँव से चार कोस दूर एक तालाब के किनारे के स्थान पर रहे[1]। वार्ताकार कहता है कि एक बार यहाँ पर उन्होंने एक ज़मींदार की खोई हुई गायों का पता अपनी आन्तरिक दृष्टि से बता दिया। इससे प्रभावित हो उस ज़मीदार ने सूरदास के रहने के लिए एक झोंपड़ी बनवा दी और दो-चार चाकर उनकी टहल को रख दिये। उस ज़मींदार ने सूर से मिलते समय एक बार कहा था—अरे, तू फलाने सारस्वत को बेटा है और नेत्र तेरे हैं नाहीं, सो तू अपने घर को छोड़ि के रूठि के यहाँ क्यों बैठ्यो है, नेत्र हैं नाहीं, कैसे दिन कटेंगे[2]। जब ज़मींदार की गायों के पाने की कथा चार-छे स्थानों पर फैली तो सूर की ख्याति बढ़ने लगी। लोग उसे सिद्ध समझकर उसके शिष्य होने लगे। उस स्थान पर, वार्ताकार के कथानुसार, सूर का बड़ा मकान भी बन गया। सेवकों की एक बड़ी सङ्ख्या हो गई और सूरदास 'स्वामी' कहलाने लगे। यहीं रहते हुये सूर ने गाना भी सीख लिया था। गाना सीखने के लिए भी उनके पास बहुत लोग आने लगे। थोड़े ही समय बाद कवि की गणना वैभवशाली लोगों में होगई।

एक रात्रि सूरदास को वैराग्य हुआ। उन्होंने गाँव से अपने माता-पिता को बुलवाया और पूरा घर उनको सौंपकर वहाँ से ब्रजधाम को चल दिये। कुछ सेवक भी

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १।
२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १।

उनके साथ चले[1]। चलते-चलते वे मथुरा आये, वहाँ से आगरा और मथुरा के बीच यमुना के किनारे के एक स्थान, गऊघाट पर रहने लगे।[2]

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, सूरदास जी कभी-कभी गऊघाट से रेणुका स्थान पर भी आते थे और वहाँ रहा करते थे। सम्भव है, किसी जनश्रुति के आधार से लोगों ने उनका जन्मस्थान 'रुनकता' मान लिया हो। यहाँ गऊघाट पर वे वल्लभ सम्प्रदाय में आने के समय तक रहे। वल्लभसम्प्रदाय में आने के बाद सूरदास जी श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में पहुँचे। वहाँ वे गोवर्द्धन पर ही रहा करते थे। बीच-बीच में वे मथुरा, गोकुल आदि स्थानों पर भी आते-जाते रहते थे। वार्ता में लिखा है कि अकबर बादशाह से इनकी भेंट मथुरा में हुई थी।[3] *ब्रज छोड़कर सूरदास कभी अन्यत्र भी गये, इस बात का उल्लेख दोनों* प्रकार की ८४ वार्ताओं में कोई नहीं है।

जाति

हरिराय जी की ८४ वार्ता में सूरदास जी को कई स्थानों पर सारस्वत[4] ब्राह्मण लिखा है। वार्ता के अतिरिक्त वल्लभ-दिग्विजय[5] के अनुसार भी सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण थे। सूरदास ने अपने एक पद में तो यह कहा है कि भगवान् से नाता जोड़कर उन्होंने सब जाति-पाँति छोड़ दी।[6] वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ताओं के चरित्रों को देखने से पता चलता है कि भगवद्भक्तों में सभी जाति के लोगों का समावेश था और वे भगवान् की दासता के नाते एक दूसरे से जाति-पाँति का भेदभाव नहीं रखते थे। जनश्रुति भी उन्हें सारस्वत ब्राह्मण बताती है।

हरिराय जी की ८४ वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास जी के माता-पिता एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण थे। इनसे बड़े तीन भाई और थे।[7] सूरदास अन्धे थे; इसलिए माँ-बाप

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४।

४—"अथ श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण, तिनकी वार्ता" हरिराय जी-कृत भावप्रकाश, अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १।
'सो सूरदास .... एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे।'
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४।

५—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ५०।

६—सूरदास प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि तजी जाति अपनी।
सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस पृ० १७।

७—अष्टछाप काँकरौली, पृ० ४ तथा ५।

नोट—मुंशी देवीप्रसाद जी का कथन—कि सूरदास जी 'भाट या राव' थे—ग्राह्य नहीं है जिसके कारण पीछे दिये जा चुके हैं।

इनकी ओर से उदासीन रहते थे। उपेक्षा और निर्धनता के कारण इन्होंने अपना घर छोड़ दिया। वार्ता में इनके विवाह होने का कोई उल्लेख नहीं है। एक स्थल पर यह तो लिखा है कि जब सूरदास अपने गाँव से चार कोस की दूरी पर तालाब के किनारे रहने लगे तो उनके सेवकों का समाज बहुत बढ़ गया और सूरदास का वैभव भी मकान, गाय, आदि से खूब बढ़ा। उस स्थल पर उन्होंने एक बार मन में वैराग्य होते समय स्वयं सोचा,—"जो देखो मैं श्री भगवान् के मिलन अर्थ वैराग्य करि के घर सों निकस्यौ हतो सो यहाँ माया ने ग्रसि लियो। मोकूँ अपनो जस काहे को बढ़ावनो हतो, जो मैं श्री प्रभु को जस बढ़ावतो तो आछो। और यामे तो मेरो बिगार भयो!"[1] इस कथन से केवल यह प्रकट होता है कि सूरदास अपने जीवन में सांसारिक वैभव का सुख भोग चुके थे, परन्तु विवाह करके उन्होंने ऐसा किया था, इसका कोई प्रमाण नहीं है। अपने विनय और प्रबोधन के पदों में उन्होंने आत्मग्लानि प्रकट करते हुये कई स्थलों पर सांसारिक माया में लिप्त होने का पश्चाताप प्रकट किया है। उन स्थलों पर जहाँ उन्होंने 'बनिता-विनोद' की निन्दा की है, वस्तुतः आत्मचारित्रिक वैवाहिक सुख का वर्णन नहीं किया, वरन् स्त्री-सुख तथा माया-लिप्त सांसारिक लोगों के मन को लगनेवाली चेतावनी तथा प्रबोधन से जगी मानसिक वृत्तियों के प्रति समष्टि रूप से, ग्लानि प्रकट की है।[2] इस प्रकार सूरदास जी ने कभी विवाह नहीं किया।

माता-पिता तथा कुटुम्ब

सूरदास ने अपनी रचनाओं में अपने अन्धे, निपट अन्धे होने का तो कई स्थलों पर उल्लेख किया है, परन्तु यह कहीं नहीं कहा कि वे जमान्ध थे अथवा अमुक अवस्था में अन्धे हुये थे। 'किसी युवती पर आसक्त होकर इन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं', इस कथन में इनके सम्बन्ध में कोई सत्यता नहीं है। यह बात विल्वमङ्गल सूरदास के पीछे दिये हुये वृत्तान्त से सिद्ध है। श्री हरिराय जी ने सूर के जन्मान्ध होने पर बहुत जोर दिया है।

सूरदास जी अन्धे थे अथवा जन्मान्ध

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०।

२—अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।

काम क्रोध को पहरि चोलना कंठ विषय की माल।

× × ×

सुक चंदन बिनोद सुख यह जर जरन बितायो।

× × ×

सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पृ० १२, पद सं० ४५।

कदाचित् भगवत्कृपा के प्रभाव और उसके महत्व को दिखाने के लिए उन्होंने ऐसा किया हो[1]। वे लिखते हैं—"सो सूरदास जी क जन्मत ही सो नेत्र नाहीं है और नेत्रन को आकार गढ़ेला कछु नाहीं ऊपर भौंह मात्र हैं सो या भाँति सों सूरदास जी को स्वरूप है।" आगे हरिराय जी कहते हैं, "जन्मे पाछे नेत्र जायँ तिनको आँधरो कहिये, सूर न कहिये, और ये तो सूर हैं।" भक्तमाल के टीकाकार श्री महाराज रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' में भी यही लिखा है, "जन्महि ते हैं नैन विहीना, दिव्य दृष्टि देखहि सुख मीना"[2]।

सूरसागर का आरम्भिक एक पद है:—

बंदौं श्रीहरि पद सुखदाई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अँधरे को सब कछु दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बंदौं ते पाई।

सूरदास के इस कथन के अनुसार आस्तिक लोग भगवत्कृपा के सहारे सब कुछ सम्भव समझते हैं और सूर को भी जन्मान्ध मानते हुये दिव्य दृष्टिसम्पन्न मानते हैं।

एक ओर तो वाह्य प्रमाण सूर को जन्मान्ध कहते हैं और दूसरी ओर, यदि हम उनकी रचनाओं को अन्ध विश्वास की आँख को हटा कर साधारण बुद्धि की आँख से देखें तो हमें उनके स्वाभाविक और सजीव भाव-चित्रों और वर्णनों के सहारे ज्ञात होगा कि कवि ने संसार के रूप-रङ्ग को किसी अवस्था में अवश्य देखा होगा। वाह्य प्रमाण विरुद्ध होते हुये भी यदि यह मान लिया जाय कि सूरदास अपनी बाल्य अवस्था में ही अन्धे हो गये थे तो इसमें सूर का महत्व कुछ कम नहीं होता। उनकी कल्पनाशक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि जिस संसार को उन्होंने अपरिपक्व बुद्धि से बाल्य अवस्था में देखा उसी को अन्धे होने

नोटः—महाराज रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' में लिखा है जैसा कि पीछे कहा गया है, कि इनका विवाह हुआ था और एक बार इन्होंने अपनी स्त्री के सब शृङ्गारों को बता दिया था। इस घटना का प्राचीन वार्ता-साहित्य में कोई उल्लेख नहीं है। अन्धे सूर की दिव्य दृष्टि के दिखाने के लिए वार्ता में सूर द्वारा नवनीत प्रिय जी के नग्न-शृङ्गार को बताने की कथा दी हुई है। सम्भव है, किसी ने इसी प्रकार उनके विवाह की कल्पना कर स्त्री के शृङ्गार बताने की कथा बना ली हो जिसे रामरसिकावली में भी स्थान मिल गया। लेखक का विचार है कि इनका विवाह नहीं हुआ।

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४ और ५,

२—रामरसिकावली, महाराज रघुराजसिंह जी-कृत में सूरदास।

पर अपनी कल्पनाशक्ति, अनेक ग्रन्थों के श्रवण द्वारा उपार्जित ज्ञान और अपनी कुशाग्र स्मरण-शक्ति के सहारे, प्रौढ और सजीव रूप में चित्रित कर सके। यथार्थ मे देखा जाय तो यह समस्या कोई महत्व की नहीं है कि वे जन्मान्ध थे अथवा बाद में अन्धे हुये। इतना सबको मान्य है और इसके बाह्य और आन्तरिक प्रमाण भी हैं कि सूरदास अन्धे थे और अपनी रचनाकाल की अवस्था में भी वे अन्धे थे।

'सूर-साहित्य की भूमिका' के लेखकों की राय है कि सूरदास वृद्धावस्था में अन्धे हुये थे। लेखक इस बात से सहमत नहीं है। वार्ता उस समय भी सूर को अन्धा ही कहती है जिस समय वे श्री वल्लभाचार्य जी की शरण मे गये। ८४ वार्ता में लिखा है कि शरणागति के समय सूर ने आचार्य जी तथा गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन किये। यहाँ दर्शन का यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने आँख खोलकर देखा। उसका तात्पर्य है कि उन्होंने केवल आचार्य जी के समीप जाकर श्रवणेन्द्रिय से उनका अनुमान किया।

वार्ता में सूर के अन्धे होने और उनकी दिव्य दृष्टि होने की कुछ कथाएँ भी दी हुई हैं। एक कथा अकबर बादशाह के समक्ष सूर द्वारा गाये हुये एक पद के इस चरण पर कि 'सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन प्यास', प्रश्न करने की है। अकबर ने कहा,—"सूरदास जी तुम्हारे नेत्र तो हैं नहीं और तुम दरस कैसे करते हो[1]।" सूर ने उत्तर दिया कि यह भगवान् की कृपा का फल है।

दूसरी कथा[2] वार्ता में यह दी है कि श्री सूरदास जी नवनीतप्रिय जी के दर्शनों को गोकुल जाया करते थे। नवनीतप्रिय जी के शृङ्गार का वे ज्यों का त्यों कीर्तन कर देते थ। एक बार गोस्वामी जी के पुत्र श्री गिरिधरजी से श्री गोकुलनाथ जी ने कहा कि सूरदास जी, जैसा शृङ्गार नवनीतप्रिय जी का होता है वैसा ही वस्त्र-आभूषण वर्णन करते हैं। एक दिन अद्भुत शृङ्गार कर इनकी परीक्षा लो। अस्तु, उन्होंने ऐसा ही किया। आसाढ के दिन थे। ठाकुर जी को कोई वस्त्र नहीं पहिनाये गये, केवल मोती पहना दिये गये। जब शृङ्गार के दर्शन खुले तब सूर को बुलाया गया और उनसे ठाकुर जी के शृङ्गार का कीर्तन करने को कहा गया। उस समय दिव्यदृष्टि से देखकर उन्होंने यह पद गया—

देखे री हरि नगम नगा।
जल सुत भूषन अंग बिराजत बसन-हीन छबि उठत तरगा।
अग अग प्रति अमित माधुरी निरखि लजित रति कोटि अनगा।
किलकत दधि-सुत मुख ले मन भरि सूर हँसत ब्रज जुवतिन संगा।[3]

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६,

२—अष्टछाप, काँकरौली पृ० ३०।

३—लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता, श्री हरिराय की भावना-सहित।

सूर की आरम्भिक शिक्षा के बारे में किसी भी ग्रन्थ में कोई उल्लेख नहीं है। हरिराय जी ८४ वैष्णवन की वार्ता में कहते हैं कि जिस समय सूरदास जी अपने गाँव से चार कोस दूर के एक स्थान पर रहते थे, वहाँ वे पद बनाते थे और गान-विद्या का सब साज उन्होंने इकट्ठा कर लिया था।[१] फिर जब वे गऊघाट पर आ गये उस समय उनके विषय में हरिराय जी कहते हैं,—"सूर को कण्ठ बहोत सुन्दर हतो, सो गान विद्या में चतुर और सगुन बताइवे में चतुर। उहाँ हू सेवक बहुत भये, सो सूरदास जगत में प्रसिद्ध भये।"[२] इस समय सूरदास 'स्वामी' कहलाते थे। सूर ने किस प्रकार कविता करना और गान-विद्या सीखी, इसका कोई उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता। कदाचित् उनमें स्वाभाविक प्रतिभा थी और साधु-संगति से उन्होंने ज्ञान पाया और किसी गुणी भक्त से गान की विद्या सीखी होगी। वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले सूरदास जी गन्धर्व-विद्या में निपुण थे, काव्य-रचना करते थे और उनको वाक्-सिद्धि भी थी। वार्ता के कथन से ज्ञात होता है कि इस समय वे विनय के पद गाते थे।[३] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सूरदास जी दास-भाव से ईश्वर की उपासना करते थे।

शिक्षा और पाण्डित्य

वल्लभसम्प्रदाय में आने के बाद सूर ने अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी से शिक्षा ग्रहण की। वार्ता से तथा आन्तरिक प्रमाणों से यह तो सिद्ध ही है कि सूरदास के दीक्षा-गुरु श्री वल्लभाचार्य जी थे। पहले पहल आचार्य जी ने सूर को श्रीमद्भागवत की स्वयं लिखी सुबोधिनी टीका का बोध कराया।[४]

इसके अनन्तर सूरदास जी ने भी आचार्य जी से सम्प्रदाय का रहस्य समझा[५] और उन्होंने वल्लभसाम्प्रदायिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये भागवत के अनुसार हजारों पद बनाये। वार्ता में सूर के पदों के विषयों का उल्लेख हुआ है। वार्ताकार कहता है,—"तामे ज्ञान वैराग्य के न्यारे-न्यारे भक्ति भेद, अनेक भगवत् अवतार, सो तिन सबन की लीला को बरनन कियो है।"[६] सूर के ज्ञान का तथा उनकी आत्म-अनुभूति का पता उनके अनेक पदों

१—अष्टछाप, काँकरौली पृ० ६।

२—अष्टछाप, काँकरौली पृ० १०।

३—श्रीवल्लभाचार्य जी के समक्ष सूरदास जी ने गऊघाट पर शरणागति से पहले विनय के ही पद गाये थे।

४—"सो सगरी श्री सुबोधिनी जी को ज्ञान श्रीआचार्य जी ने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो तब भगवल्लीला जस वर्णन करिबे को सामर्थ्य भयो।"
८४ वार्ता, हरिराय जी-कृत भाव-प्रकाश, अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १३।

५—"श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो"—सूरसारावली, पृ० ३८, छन्द नं० ११०२, वें० प्रे०।

६—अष्टछाप, काँकरौली पृ० २३।

से प्रत्यक्ष प्रकट होता है। अकबर बादशाह के सामने उन्होंने एक पद—"मना रे करि माधौ सों प्रीति"—गाया[1], जो आजकल सूर पच्चीसी के नाम से प्रसिद्ध है। वार्ताकार ने इस लम्बे पद का विषय वार्ता में दिया है जिससे सूर की अगाध ज्ञान-राशि का परिचय मिलता है। वार्ताकार कहता है—"सो पद कैसो है, जो या पद को सुमिरन रहै, तब भगवत् अनुग्रह होय और संसार सों वैराग्य होय और श्री भगवान् के चरणारविंद में मन लगे। तब दुसङ्ग सों भय होय, सत्सङ्ग में मन लगे। सो देहादिक में ते स्नेह घटे और लौकिक आसक्ति छूटे। जो भगवान् को प्रेम है सो अलौकिक है सो ताके ऊपर प्रीति बढे।"[2]

सूर की शिक्षा का प्रतिफल उनकी अमर कृति 'सूरसागर' है जो सूर की प्रकाण्ड विद्वत्ता तथा अनुभूति का अक्षय भण्डार है। वार्ताकार ने कई स्थानो पर लिखा है कि सूर ने सहस्रावधि पद बनाये और कई स्थलों पर हरिराय जी ने यह लिखा है कि उन्होंने लक्षावधि[3] पद बनाये। ८४ वार्ता के भावप्रकाश में हरिराय जी कहते हैं कि सूरदास के चार नाम हैं[4] और इन चारों की छाप उनके पदों में है—सूर, सूरदास, सूरजदास तथा सूरस्याम। इस विषय में डाक्टर जनार्दन मिश्र जी का मत है[5] कि सूरस्याम और सूरजदास छाप वाले पद सूरदास-कृत नहीं हैं। इस मत के पक्ष में उन्होंने प्रमाण नहीं दिये। सूर के काव्य के विषय में वार्ता से यह भी पता चलता है कि उनके पदों में उनके जीवन-काल में ही मेल हो गया था और लोग सूरदास के नाम से पद बनाकर गाते थे[6]। ८४ वार्ता से तथा 'भक्तमाल' से ज्ञात होता है कि सूर एक उच्च कोटि के कवि थे। लेखक के विचार से उक्त चारों छापों में अष्टछापी सूरदास की कृति हैं। इन छापों के पदों की भाषाशैली, व्यक्त भावावली तथा ८४ वार्ता का कथन, इस विचार के प्रमाण हैं।

१—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण, पृ० ३१।

२—अष्टछाप, पृ० २५,

३—"सो तब सूरदास जी अपने मन में विचारे जो मैं तो अपने मन में सवा लाख कीर्तन प्रकट करिवे को सङ्कल्प कियो हैं सो तामें ते लाख कीर्तन प्रकट भये हैं।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ४९,

तथा:—"और सूरदास जी ने श्री ठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं।"
अष्टछाप, कांकरौल, पृ० ५१।

सूर ने स्वयं एक पद में एक लाख पद लिखने का उल्लेख किया है।
सूरसारावली, वे० प्रे० पृ० ३८, छन्द नं० ११०३।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५५।

५—'सूरदास', डा० जनार्दन मिश्र, पृ० ७।

६—अष्टछाप, पृष्ठ २७, वार्ता-प्रसङ्ग ४, सूरदास।

८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि एक बार वल्लभाचार्य जी दक्षिण देश और काशी में मायावाद का खण्डन और भक्ति-मार्ग की स्थापना करके अड़ेल से ब्रज को आये थे। उस समय रास्ते में वे गऊघाट पर ठहरे। सूरदास जी के सेवकों ने यह सूचना इन्हें दी। जब श्री वल्लभाचार्य जी भोजन आदि से निवृत्त होगये तब वे अपने सेवकों के समाज में गद्दी तकिया पर बैठे[1]। उसी समय सूरदास अपने सेवकों सहित आये। उस समय सूर को देखकर आचार्य जी ने उन्हें बिठाया और उनसे भगवत्-यश वर्णन करने को कहा। सूर ने पद गाया—"हौं हरि सब पतितन को नायक"। आचार्य जी ने यह आत्मदीनता और विनय का पद सुनकर सूरदास से कहा कि तू सूर होकर ऐसा भगवान् के सामने घिघियाता क्यों है। उनकी लीला का यश वर्णन करो। सूर ने कहा—महाराज! लीला का रहस्य मैं नहीं समझता। इसके बाद आचार्य जी ने सूरदास को अपने सम्प्रदाय में लिया। उनको अष्टाक्षर मन्त्र का 'नाम' सुनाया[2] और उनसे समर्पण कराया। तब आचार्य जी ने सूर को श्रीमद्भागवत पर अपनी लिखी टीका सुबोधिनी सुनाई। जब सूर ने भागवत सुन ली तब उनके हृदय में कृष्ण की लीला का स्फुरण हुआ और फिर उन्होंने आचार्य जी के समक्ष एक पद गाया—

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और सूर का साम्प्रदायिक जीवन

राग बिलावल,

चकई री चलि चरन सरोवर जहँ नहि प्रेम बियोग।
जहँ भ्रम निसा होति नही कबहूँ उह सायर सुप जोग।
सनक से हंस मीन से सिव मुनि, नव-रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमय, नहीसंसि डर गुजत निगम सुबास।
जिहि सरसुभग मुकति मुक्ता फल सुक्रति बिमल जल पीजे।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि विहंगम इहाँ कहा रहि कीजे।
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त सोभित सूरज दास।
अब न सुहात बिषय रस छीलर, वा समुद्र की आस[3]।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११ : १५।

२—वल्लभसम्प्रदाय में प्रविष्ट होना 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहलाता है। इसमें गुरु अष्टाक्षर मन्त्र सुनाता है जिसे 'नाम निवेदन' कहते हैं और शिष्य अपना तन-मन-धन, सर्वस्व कृष्ण को अर्पण करता है। ब्रह्म-सम्बन्ध का वर्णन अष्टछाप की भक्ति के प्रसङ्ग में किया गया है।

३—सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० २८, २९, पद नं० १८४, पाठ भेद से। तथा हरिराय जी-कृत भाव-प्रकाश की ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।

इसके बाद सूरदास ने कृष्ण की लीला के पद गाये। सूरदास के जितने सेवक थे, वे भी आचार्यजी की शरण में चले गये। गऊघाट से आचार्यजी सूरको गोकुल ले गये। उस समय उन्होंने (आचार्य जी ने) सोचा कि श्रीनाथजी का नया मन्दिर भी बनकर तैयार हो गया है, इसमें सब सेवा का भी मण्डान हो गया है। इसलिए सूरदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा देनी चाहिए[1]। यह सोच कर आचार्य जी सूर को गोवर्द्धन पर ले गये और वहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष उनसे कीर्तन करने को कहा[2]। सूर ने आत्मदीनता का फिर एक पद गाया। इसपर आचार्य जी ने कहा कि सूरदास भगवान् का ऐसा गान करो जिस में ईश्वर का माहात्म्य-ज्ञान पूर्वक स्नेह हो। इसके बाद सूर ने ऐसे ही पद गाये और श्रीनाथ जी की, कीर्तन द्वारा, सेवा करने लगे।

एक बार सूरदास का एक पद[3] तानसेन ने अकबर के समक्ष दरबार में गाया। अकबर उस पद से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसको उस पद के रचयिता से मिलने की इच्छा हुई। जब अकबर दिल्ली से आगरे आया, तब उसने अपने हलकारों से कहा—"सूरदास की खबर लेकर, कि वे कहाँ हैं, हमको मथुरा में बताओ।" उस समय सूरदास जी भी मथुरा गये हुये थे। अकबर को जब यह बात ज्ञात हुई तब उसने सूरदास को अपने पास मथुरा ही में बुलाया और कवि का बहुत आदर-सम्मान किया। अकबर बादशाह ने कहा—"सूरदास जी कुछ पद सुनाओ।" सूर ने उस समय आत्म-प्रबोधन, वैराग्य और भक्ति से भरा एक पद—"मना रे तू करि माधव सों प्रीति"—बिलावल राग में गाया। पद सुनकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर उसने अपना यश गाने को कहा। सूर तो निर्लिप्त, निर्लोभी भक्त थे। उन्होंने दूसरा पद गाया—

राग केदारा।

नाहिन रह्यो मन में ठौर[4]।
नंद नंदन अछत कैसे आनिये उर और।
चलत चितवत द्यौस जागत सुपन सोवत राति।
हृदय ते वह मदनमूरति छिन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधो लोक लोभ दिखाइ।

१—अष्टछाप, कांकरौली पृ० १६,
२—"पाछे आचार्य जी आपु कहें, जो सूर! तुमको पुष्टि मारग को सिद्धान्त फलित भयो है। तासों अब तुम श्री गोवर्धन के यहाँ समय-समय के कीर्तन करो।" अष्टछाप कांकरौली, पृ० १६,
३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २४,
४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६,

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने स्वयं अपने मुख से इनकी प्रशंसा बड़े भावपूर्ण शब्दों में की है। वार्ता से प्रकट है कि सूर के अन्त समय में गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनके विषय में कहा था—"पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाकों कछू लेनो होय सो लेउ[1]।" सूर भगवान् के अनन्य भक्त थे। भगवान् की लीला और उनके माहात्म्य को छोड़ किसी लौकिक पुरुष का सूर ने गान नहीं किया। यहाँ तक कि अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य की प्रशंसा में भी, जिनको सूर साक्षात् कृष्ण का अवतार मानते थे, केवल एक पद ही, और वह भी अपने जीवन की अन्तिम दशा में, गाया था। सूर के अन्त समय में अनेक वैष्णव उनके पास खड़े थे। उस समय चतुर्भुजदास ने कहा,—"सूरदास ने श्री ठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं, परन्तु श्री आचार्य जी को जस बरनन नाहीं कियो[2]।"

सूरदास का गोलोकवास

सूरदास जी का गोलोकवास परासौली स्थान पर हुआ। अन्त समय में उनका ध्यान युगल-रूप राधा-कृष्ण में लगा था[3]। सूरदास जी इतने सिद्ध महात्मा थे कि उनको अपने अन्त समय का अनुमान हो गया। वे गोवर्द्धन से परासौली (परम रासस्थलि) स्थान पर चले गये और वहाँ शिथिल होकर श्रीनाथ जी की ध्वजा के सम्मुख लेट गये। इधर गोवर्द्धन पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी के शृङ्गार के समय देखा कि आज कीर्तन में सूरदास जी नहीं हैं। उनके पूछने पर एक वैष्णव ने कहा,—"महाराज, सूरदास जी तो आज मङ्गला आरती के दर्शन करके और सब सेवकों को भगवत् स्मरण कराके परासौली चले गये हैं।" गोस्वामी जी समझ गये कि सूरदास का अन्त समय है। उन्होंने वैष्णवों से कहा—"पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाकों कछू लेनों होय सो लेउ"। तब सब वैष्णव सूरदास जी के पास पहुँचे। उधर गोस्वामी जी भी राजभोग की आरती करके उनके पास पहुँच गये। श्रीहरिराय जी ने ८४ वार्ता में लिखा है,—"गुसाईं जी के सङ्ग रामदास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास आदि सगरे वैष्णव आये[4]।"

गोस्वामी जी तथा उनके साथी वैष्णवों ने देखा कि सूरदास जी अचेत पड़े हैं। जब गोस्वामी जी ने सूर को पकड़ कर सचेत किया तो सूरदास जी बहुत प्रसन्न हुये। उसी समय चतुर्भुजदास ने उनसे पूछा,—"आपने लक्षावधि पद किये, परन्तु आचार्य जी का यश-वर्णन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ५०।

२—पृ० ५१ तथा ५२, अष्टछाप, काँकरौली।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ५५—"सूरदास जी जुगल स्वरूप को ध्यान करि के यह लौकिक शरीर छोड़ि लीला में जाय प्राप्त भए।"

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ५५।

कहा करुँ चित प्रेम पूरति घट न सिंधु समाइ।
स्याम गात सरोज आनन ललित,गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस को ए मरत लोचन प्यास।

सूर के पद के अन्तिम चरण पर अकबर ने प्रश्न किया—"सूरदास तुम तो अन्धे हो, तुम्हारे नेत्र दरस को कैसे प्यासे मरते हैं?" सूर ने कहा—"ये नेत्र भगवान् को देखते हैं और उस स्वरूपानन्द का रसपान प्रत्येक क्षण करने पर भी अतृप्त बने रहते हैं"। अकबर ने सूर को धन-द्रव्य और जो वस्तु वे चाहें, लेने को कहा। निर्भीक और त्यागी सूर ने कहा—"आज पाछे हमको कबहूँ फेरि मत बुलाइयो और मोको कबहूँ मिलियो मती।" इस प्रसङ्ग से ज्ञात होता है कि जो कथा सूरदास के अकबरी दरबार से सम्बन्ध रखने की और उनके अकबर से सम्मानपूर्ण पद पाने की कही जाती है वह सूर के इस त्यागपूर्ण व्यवहार पर विचार करने से बिल्कुल बेमेल और असङ्गत प्रतीत होती है।

अष्टछाप कवियों में सूर सबसे अधिक सिद्ध भक्त थे। उनके सत्सङ्ग की कामना बहुत से सज्जन करते थे। सूरदास केवल आत्मानुभूति में मग्न रहनेवाले ही भक्त न थे। वे अपने निकटवर्ती लोगों के प्रबोधन में भी अपना समय व्यतीत करते थे। उनके सत्सङ्ग का लाभ लेने बहुत से भक्त जाया करते थे[१]।

स्वभाव और चरित्र

सूरदास एक त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। ज्ञानोपदेश के जो भाव अपनी रचनाओं में प्रकट किये हैं, उनका उन्होंने अपने जीवन में अनुभव कर लिया था। वल्लभाचार्य के मार्ग के सिद्धान्तों के वे पूर्ण ज्ञाता थे[२]। पुष्टिमार्ग में भगवान की तीन विधि से सेवा बताई गई है—तनजा, वित्तजा और मनसा, और इसमें मानसी सेवा सर्वश्रेष्ठ बताई गई है। सूरदास जी इसी मानसी सेवा के अधिकारी सिद्ध भक्त थे[३]। दीनता-नम्रता की तो वे साक्षात प्रति-मूर्ति थे। जैसा कि पीछे कहा गया है, उनके सत्सङ्ग का बड़ा शान्तिदायी प्रभाव होता था। उन्होंने अपने सत्सङ्ग से एक बनिये को परोपकारी और भक्त बनाया था[४]।

१—अष्टछाप काँकरौली, पृ० ४४।

२—'जो सूरदास जी सों आय के पूछतो तिनको प्रीति सों मारग को सिद्धान्त बतावते और उनको मन प्रभून में लगाय देते तासों सूरदास जी सरीखे भगवदीय कोटिन में दुर्लभ है।"
अष्टछाप, काँकरौली पृ० २७,

३—"या प्रकार सूरदास जी मानसी सेवा में सदा मग्न रहते। ताते इनके माथे श्री आचार्य जी ने भगवत सेवा नाहीं पधराए (सो काहे ते) जो सूरदास जी को मानसी सेवा में फल रूप अनुभव है सो ये सदा लीला-रस में मगन रहते हैं।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६,

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३७,

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने स्वयं अपने मुख से इनकी प्रशंसा बड़े भावपूर्ण शब्दों में की है। वार्ता से प्रकट है कि सूर के अन्त समय में गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनके विषय में कहा था—"पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाकों कछू लेनो होय सो लेउ[1] ।" सूर भगवान् के अनन्य भक्त थे। भगवान् की लीला और उनके माहात्म्य को छोड़ किसी लौकिक पुरुष का सूर ने गान नहीं किया। यहाँ तक कि अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य की प्रशंसा में भी, जिनको सूर साक्षात् कृष्ण का अवतार मानते थे, केवल एक पद ही, और वह भी अपने जीवन की अन्तिम दशा में, गाया था। सूर के अन्त समय में अनेक वैष्णव उनके पास खड़े थे। उस समय चतुर्भुजदास ने कहा,—"सूरदास ने श्री ठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं, परन्तु श्री आचार्य जी को जस बरनन नाहीं कियो[2] ।"

सूरदास का गोलोकवास

सूरदास जी का गोलोकवास परासौली स्थान पर हुआ। अन्त समय में उनका ध्यान युगल-रूप राधा-कृष्ण में लगा था[3]। सूरदास जी इतने सिद्ध महात्मा थे कि उनको अपने अन्त समय का अनुमान हो गया। वे गोवर्द्धन से परासौली (परम रासस्थलि) स्थान पर चले गये और वहाँ शिथिल होकर श्रीनाथ जी की ध्वजा के सम्मुख लेट गये। इधर गोवर्द्धन पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी के शृङ्गार के समय देखा कि आज कीर्तन में सूरदास जी नहीं हैं। उनके पूछने पर एक वैष्णव ने कहा,—"महाराज, सूरदास जी तो आज मङ्गला आरती के दर्शन करके और सब सेवकों को भगवत् स्मरण कराके परासौली चले गये हैं।" गोस्वामी जी समझ गये कि सूरदास का अन्त समय है। उन्होंने वैष्णवों से कहा—"पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाकों कछू लेनों होय सो लेउ"। तब सब वैष्णव सूरदास जी के पास पहुँचे। उधर गोस्वामी जी भी राजभोग की आरती करके उनके पास पहुँच गये। श्रीहरिराय जी ने ८४ वार्ता में लिखा है,—"गुसाईं जी के सङ्ग रामदास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास आदि सगरे वैष्णव आये[4] ।"

गोस्वामी जी तथा उनके साथी वैष्णवों ने देखा कि सूरदास जी अचेत पड़े हैं। जब गोस्वामी जी ने सूर को पकड़ कर सचेत किया तो सूरदास जी बहुत प्रसन्न हुये। उसी समय चतुर्भुजदास ने उनसे पूछा,—"आपने लक्षावधि पद किये, परन्तु आचार्य जी का यश-वर्णन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४०।

२—पृ० ४१ तथा ४२, अष्टछाप, काँकरौली।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४५—"सूरदास जी जुगल स्वरूप को ध्यान करि के यह लौकिक शरीर छोड़ि लीला में जाय प्राप्त भए।"

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४४।

नहीं किया"। सूर ने उत्तर दिया,—"मैंने तो सब यश उन्हीं का वर्णन किया है। मैं उन्हें कृष्ण भगवान् से अलग नहीं देखता"। उसी समय उन्होंने यह पद गाया—

राग विहागरो

भरोसो दृढ इन चरनन केरो।
श्री बल्लभ-नख-चन्द्र-छटा बिन सब जग मौंझि अँधेरो।
साधन और नहीं या कलि में जासो होत निबेरो।
सूर कहा कहे दुबिध आँधरो बिना मोल को चेरो[1]।

इसके बाद चतुर्भुजदास जी ने सूर से कहा—"अब थोरे में श्री आचार्य जी को यह पुष्टिमारग है ताको स्वरुप सुनावो, सों कौन प्रकार सों पुष्टिमारग के रस को अनुभव करिये[2]।" सूर ने एक पद गाकर बताया कि गोपीजनों के भाव से भावक भगवान् कृष्ण को भजने से 'पुष्टि मारग' के रस का अनुभव होता है। इस 'मारग' में वेद-विधि (मर्यादा) का नियम नहीं है। केवल एक प्रेम की ही पहचान है[3]—

राग केदारा

भजि सखि, भाव भावक देव।
कोटि साधन करो कोऊ तऊ न माने सेव।

× × ×

वेद विधि को नेत्र नाहीं न प्रीति की पहचान।
ब्रज बधू बस किए मोहन सूर चतुर सुजान।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से सूर ने पूछा,—"सूरदास तुम्हारे चित्त की वृत्ति कहाँ है।" सूर ने पद गाया—

राग विहागरो

बलि बलि बलि हो कुँवर राधिका नंद सुवन जासों रतिमानी।

१—८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी के भाव प्रकाश सहित, तथा अष्टछाप, काँकरौली; पृ० ४२।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४२।

३—८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी की भावना-सहित सूरदास की वार्ता तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४३।

फिर उसी समय दूसरा पद गाया—

राग बिहागरो

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के उलट फिरत ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके नातर अब उड़ि जाते।

सूर ने युगल-लीला में प्रवेश किया और उनके भौतिक शरीर का अग्नि-संस्कार वैष्णवों ने परासौली में ही किया।

सूरदास की जीवन सम्बन्धी तिथियाँ जन्म-तिथि

कवि द्वारा दिये हुये आन्तरिक उल्लेखों के आधार पर पीछे कहा गया है कि सूरदास ने साहित्यलहरी ग्रन्थ सं० १६१७ वैसाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतिया) रविवार को समाप्त किया[1] और सूरसारावली उन्होंने अपनी ६७ वर्ष की अवस्था में लिखी। हिन्दी के विद्वानों ने साहित्यलहरी और सूरसारावली, दोनों ग्रन्थों को एक ही साल की रचना मानकर तथा उनके द्वारा मान्य साहित्यलहरी के रचना-काल संवत् १६०७ में से ६७ वर्ष घटाकर सूर का जन्म संवत् लगभग संवत् १५४० विक्रमी निकाला है। विद्वानों का मत है कि सूरसारावली, सूरसागर और साहित्यलहरी ग्रन्थों के बाद रची गई, क्योंकि सूरसारावली में दृष्ट-कूट पदों के विषय की भी सूची है जो एक प्रकार से सूरसागर के ही अंश हैं। इस विषय में लेखक की सम्मति है कि सूरसारावली यद्यपि सूरसागर के आशय को बहुत अंश में सूची अवश्य है, जिसमें दृष्ट-कूट पद भी सम्मिलित हैं और जिसमें कुछ भागवत के अनुसार सूरसागर से स्वतन्त्र स्थल भी हैं, परन्तु सूर ने साहित्य-लहरी नाम से अपने दृष्ट-कूट पदों का स्वतन्त्र संग्रह सूरसारावली के बाद में ही किया। यदि हम सूरसारावली की रचना 'साहित्यलहरी' से लगभग पन्द्रह साल पहले मान लें, दूसरे शब्दों में, सूर की ६७ वर्ष की अवस्था में सूरसारावली की तथा ६७+१५=८२ वर्ष की अवस्था में (१६१७ सं० विक्रमी में) साहित्यलहरी की रचना मानें तो सूर की आयु के विषय में वल्लभसम्प्रदाय में प्रचलित यह किंवदन्ती,—"सूर श्री वल्लभाचार्य जी से १० दिन छोटे थे" और निजवार्ता का यह उल्लेख, "सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है"—ये दोनों कथन मेल खा जाते हैं[2]। आचार्य जी

१—देखिये इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ८६ : ८७ फुटनोट।

२—निज वार्ता, घरू वार्ता तथा ८४ बैठकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० २१, तथा कांकरौली में स्थित, हस्तलिखित निज वार्ता, सं० १८८१ की प्रतिलिपि।

ऊपर बैठाना आरम्भ किया था। उससे पहले वे अपने ब्रह्मचर्य-व्रत से आसन पर ही बैठते थे।

वार्ता तथा 'वल्लभ-दिग्विजय' से यह भी विदित है कि जिस समय श्री वल्लभाचार्य जी ने गऊघाट पर सूरदास को और मथुरा में कृष्णदास को शरण में लिया, उस समय श्रीनाथ जी का नया मन्दिर बना था। गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से विदित है[1] कि गोवर्द्धननाथ जी का मन्दिर पूरणमल खत्री के द्रव्य-दान से सं० १५५६ विक्रमी में बनना आरम्भ हुआ और बीच में द्रव्य समाप्त होने के कारण वह अधूरा ही छोड़ दिया गया; फिर सं० १५५६ के बीस साल बाद, सं० १५७६ में वह पूरा किया गया और उसी समय श्री नाथ जी का बृहत् पाटोत्सव हुआ[2]। परन्तु वल्लभ-दिग्विजय से यह ज्ञात होता है कि आचार्य जी ने सं० १५६६ के लगभग (श्री गोपी नाथ जी के जन्म समय स० १५६७ आश्विन १२ से पहले) अधूरे नूतन आलय में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा कर दी थी और फिर सं० १५७६ में पूरणमल द्वारा दिये हुये द्रव्य से मन्दिर की पूर्ति की गई और तभी श्रीनाथ जी का पाटोत्सव हुआ। काँकरौली और नाथद्वारे में लेखक ने इस विषय में सम्प्रदाय के मर्मज्ञ तथा वृद्ध जनों से पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि श्रीनाथ जी का नवीन मंदिर में प्रवेश (प्रतिष्ठा)[3] सं० १५६५ या सं० १५६६ में हुआ था। इस सम्मति को मान लेने से दिग्विजय तथा वार्ता के कथनों की सङ्गति भी बैठ जाती है। इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार से ज्ञात होता है कि सूरदास जी लगभग स० १५६६ में श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में गये। इस समय सूरदास जी की आयु लगभग ३१ वर्ष की थी। डा० जनार्दन मिश्र जी का विचार है कि सूरदास एक बड़ी आयु के बाद श्री वल्लभाचार्य के शिष्य हुये थे[4]। यदि इस कथन से उनका तात्पर्य ४० वर्ष की युवावस्था के बाद का है तो उनका यह कथन मान्य नहीं है।

श्री सूरदास जी सं० १५७६ के पाटोत्सव के समय श्री वल्लभाचार्य की शरण में नहीं गये, वरन् उससे पहले ही गये थे, इस बात का प्रमाण निजवार्ता ग्रन्थ से भी मिलता है[5]। निजवार्ता में एक प्रसङ्ग आता है कि जब सं० १५७२ में श्री विट्ठलनाथ जी का जन्म हुआ,

---

१—श्री गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता।

२—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ४०।

३—वल्लभसम्प्रदाय में स्वरूपों की मंदिर में प्रतिष्ठा नहीं होती, इस क्रिया को प्रवेश कराना तथा पाट बिठाना कहते हैं।

४—सूरदास, डा० जनार्दन मिश्र,

५—निजवार्ता, घर वार्ता तथा ८४ बैठकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० २८ तथा २९।

की जन्म-तिथि सं० १५३५ है और सं० १६१७ से ८२ वर्ष निकालने पर १५३५ सूर की जन्म-तिथि भी आ जाती है।

पीछे कहा गया है कि श्री नाथद्वारे में सूरदास जी का जन्मोत्सव श्री वल्लभाचार्य जी के जन्म-दिन बैसाख वदी ११ के बाद बैसाख सुदी ५ को मनाया जाता है[1]। सूर के इस जन्म-दिवस का मनाने का उत्सव सम्प्रदाय में नया नहीं है; यह परम्परा बहुत प्राचीन है। इस प्रकार हम सूरदास को जन्म समय स० १५३५ बैसाख सुदी पञ्चमी निर्धारित करते हैं।

श्री हरिराय-कृत भाव-प्रकाश वाली ८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखे वृत्तान्त के आधार से पीछे कहा गया है कि सूरदास जी गऊघाट पर श्री वल्लभाचार्य जी की शरण गये थे[1]।

सूर का वल्लभ सम्प्रदाय में शरणागति समय।

वल्लभ-दिग्विजय से विदित है कि वल्लभाचार्य जी अपने विवाह तथा द्विरागमन के बाद एक बार व्रज में आये और उस समय उन्होंने सूर को शरण लिया। आचार्य जी का विवाह सं० १५६३ के लगभग हुआ था और उस समय उनकी आयु २८ वर्ष की थी। वल्लभाचार्य जी, गऊघाट पर सूर को शरण लेते समय विवाहित थे, इस बात की पुष्टि ८४ वार्ता के एक कथन से भी होती है। उक्त वार्ता के अन्तर्गत सूरदास की वार्ता में लिखा है,—"आचार्य जी गऊघाट पर गद्दी तकियान के ऊपर विराजे"[3]। वल्लभसम्प्रदाय के सिद्धान्त और प्रचलित तथा परम्परागत प्रथाओं के ज्ञाता वैष्णवों से लेखक को ज्ञात हुआ कि आचार्य जी ने अपने विवाह के बाद ही 'गद्दी' के

१—श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म-समय सं० १५३५ बैसाख बदी ११।

नोट—सूर की आयु के विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि सूर श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। इसलिए वे अपने गुरु से अवश्य चार-पाँच साल छोटे रहे होंगे। यह बात अधिक अंश में सत्य है कि बहुधा शिष्य गुरु से छोटा होता है; परन्तु सर्वत्र ऐसा होना आवश्यक नहीं है कि दीक्षा-गुरु शिष्य से आयु में बड़ा ही हो। श्री वल्लभाचार्य जी सूर के दीक्षा-गुरु थे, शिक्षा गुरु नहीं। यदि वल्लभसम्प्रदायी ग्रन्थ और प्रचलित किंवदन्तियों से यह सिद्ध होता है कि गुरु और शिष्य समवयस्क थे तो इसमें हम कोई असङ्गत बात नहीं समझते।

२—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ४६ तथा श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० २४।

'श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' में आचार्य जी की तृतीय यात्रा की समाप्ति का सं० १५६७ दिया है। वल्लभसम्प्रदायी लेखकों ने बहुधा गुर्जर संवत लिखे हैं। व्रज संवतों के साथ मिलान करने पर दोनों प्रकार के संवतों में लगभग एक वर्ष का अन्तर आता है।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११।

ऊपर बैठाना आरम्भ किया था। उससे पहले वे अपने ब्रह्मचर्य-व्रत से आसन पर ही बैठते थे।

वार्ता तथा 'वल्लभ-दिग्विजय' से यह भी विदित है कि जिस समय श्री वल्लभाचार्य जी ने गऊघाट पर सूरदास को और मथुरा में कृष्णदास को शरण में लिया, उस समय श्रीनाथ जी का नया मन्दिर बना था। गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से विदित है[1] कि गोवर्द्धननाथ जी का मन्दिर पूरणमल खत्री के द्रव्य-दान से सं० १५५६ विक्रमी में बनना आरम्भ हुआ और बीच में द्रव्य समाप्त होने के कारण वह अधूरा ही छोड़ दिया गया; फिर सं० १५५६ के बीस साल बाद, सं० १५७६ में वह पूरा किया गया और उसी समय श्री नाथ जी का बृहत् पाटोत्सव हुआ[2]। परन्तु वल्लभ-दिग्विजय से यह ज्ञात होता है कि आचार्य जी ने सं० १५६६ के लगभग (श्री गोपी नाथ जी के जन्म समय सं० १५६७ आश्विन १२ से पहले) अधूरे नूतन आलय में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा कर दी थी और फिर सं० १५७६ में पूरणमल द्वारा दिये हुये द्रव्य से मन्दिर की पूर्ति की गई और तभी श्रीनाथ जी का पाटोत्सव हुआ। काँकरौली और नाथद्वारे में लेखक ने इस विषय में सम्प्रदाय के मर्मज्ञ तथा वृद्ध जनों से पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि श्रीनाथ जी का नवीन मन्दिर मे प्रवेश (प्रतिष्ठा)[3] सं० १५६५ या सं० १५६६ में हुआ था। इस सम्मति को मान लेने से दिग्विजय तथा वार्ता के कथनों की सङ्गति भी बैठ जाती है। इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार से ज्ञात होता है कि सूरदास जी लगभग सं० १५६६ में श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में गये। इस समय सूरदास जी की आयु लगभग ३१ वर्ष की थी। डा० जनार्दन मिश्र जी का विचार है कि सूरदास एक बड़ी आयु के बाद श्री वल्लभाचार्य के शिष्य हुये थे[4]। यदि इस कथन से उनका तात्पर्य ४० वर्ष की युवावस्था के बाद का है तो उनका यह कथन मान्य नहीं है।

श्री सूरदास जी सं० १५७६ के पाटोत्सव के समय श्री वल्लभाचार्य की शरण में नहीं गये, वरन् उससे पहले ही गये थे, इस बात का प्रमाण निजवार्ता ग्रन्थ से भी मिलता है[5]। निजवार्ता में एक प्रसङ्ग आता है कि जब सं० १५७२ में श्री विट्ठलनाथ जी का जन्म हुआ,

---

१—श्री गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता।

२—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ५०।

३—वल्लभसम्प्रदाय में स्वरूपों की मंदिर में प्रतिष्ठा नहीं होती, इस क्रिया को प्रवेश कराना तथा पाट बिठाना कहते हैं।

४—सूरदास, डा० जनार्दन मिश्र,

५—निजवार्ता, घर वार्ता तथा ८४ बैठकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० २८ तथा २९।

उसके कुछ समय बाद ही श्री आचार्य जी शिशु विट्ठलनाथ जी को लेकर श्रीनाथ जी के चरण स्पर्श कराने के लिए गोवर्द्धन से गोपालपुर आये थे। उस समय सूरदास जी ने आचार्य जी को श्री नन्दराय और श्री विट्ठलनाथ जी को कृष्ण-रूप मान कर तथा अपने को ढाढी रूप देकर उनकी बधाई गाई थी। इस बधाई का यह पद सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है—

नन्द जू मेरे मन आनन्द भयो हों सुनि गोवर्धन त आयो ।

सूर के गोलोकवास की तिथि

हिन्दी-साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार तथा सूर क लेखकों ने मिश्रबन्धुओं का अनुकरण करते हुए सूरदास का गोलोकवास समय स० १६२० माना है। डा० रामकुमार वर्मा ने सूर की मृत्यु का सवत् सन्दिग्ध रूप से स० १६४२ दिया है और अपने इतिहास में लिखा है[2], —"सूर की मृत्यु गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने ही हुई थी जैसा कि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा हुआ है। विट्ठलनाथ की मृत्यु सवत् १६४२ में हुई, अतएव सूरदास जी सवत् १६४२ में या उससे पहले ही मरे होंगे।" इस कथन के बाद डा० वर्मा ने सूर का सम्बन्ध अकबरी दरबार से स्थापित करते हुये कहा है,—"स० १६४२ के श्रावण कृष्ण में सूरदास को अबुल फजल द्वारा पत्र लिखा गया . अभी तक के प्रमाणों से ज्ञात होता है कि सूरदास का ज म स० १५४० और मृत्यु स० १६४२ है।" डा० वर्मा ने सूर के निधन काल के विषय में कोई प्रतीतिजनक प्रमाण नहीं दिया। केवल एक प्रमाण, सूरदास के नाम अकबर के हुक्म से लिखा गया अबुल फ़ज़ल का पत्र उन्होंने दिया है। पीछे इस ग्रन्थ में इस पत्र का अष्टछापी सूरदास के सम्ब ध में होना अप्रामाणिक सिद्ध किया गया है, जहाँ इस ग्रन्थ के लेखक ने कहा है कि सूरदास का अकबर के दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसलिए डा० रामकुमार वर्मा जी द्वारा दिया हुआ तर्क तथा सूर का निधन-सम्वत् लेखक को मान्य नहीं है।

शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज'[3] में सूरदास का ज म अथवा निधन समय तो नहीं दिया, परन्तु सूर का उदय उन्होंने स० १६४० लिखा है। इस कथन की पुष्टि में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिये। सूर-काव्य पर लिखनेवाले हिन्दी के विद्वानों ने जैसे श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा 'सूर साहित्य की भूमिका' के लेखक ने सूर के निधन का कोई सम्वत् नहीं दिया।

सूरदास के गोलोकवास की तिथि निश्चित करने से पहले यह देखा जायगा कि उपलब्ध प्रमाण उनकी स्थिति किस सम्वत् तक ले जाते हैं। ८४ वार्ता के अन्तर्गत सूर की

१—सूरसागर, वें० प्रे०, पृ० १०४।

२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ०६१५, ६१६।

३—शिवसिंह सरोज, सातवाँ सस्करण, पृ० ४०२।

वार्ता में लिखा है,—"सो बीच बीच में जब कुम्भनदास, परमानन्ददास के कीर्तन के 'ओसरा' आवते तब सूरदास जी श्री गोकुल में नवनीतप्रिय जी के दर्शन कूं आवते।"[1] सूर का नवनीतप्रिय जी के दर्शनों को गोकुल जाना और नवनीतप्रिय जी के नग्न-शृङ्गार पर उनके मन्दिर में पद गाना, ये कार्य सम्वत् १६२८ के एक दो साल बाद के होने चाहिए; क्योंकि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का गोकुल में स्थायी निवास सं० १६२८ में हुआ था।[2] और तभी नवनीतप्रिय जी के मन्दिर की स्थापना हुई थी। इससे पहले लगभग सम्वत् १६२४ तक आचार्य जी के शिष्य गजनधावन क्षत्री द्वारा प्रदत्त श्री नवनीतप्रिय जी का स्वरूप, गुसाईं जी के अड़ैल छोड़कर ब्रज-निवास तक, अड़ैल में ही विराजमान था।[3] वार्ता के इस कथन से यह निष्कर्ष, अनुमान के रूप में, निकाला जा सकता है कि सूरदास जी लगभग सं० १६३० वि० तक जीवित थे।

८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि अकबर एक बार दिल्ली से आगरे जाते समय मथुरा में सूरदास जी से मिला। श्री महाराज रघुराजसिंह, मुन्शी देवीप्रसाद आदि ने अकबर और सूर की भेंट के भिन्न-भिन्न स्थान दिये हैं। परन्तु इन सब कथनों में लेखक वार्ता के लेख को सबसे अधिक प्रामाणिक मानता है। वार्ता की प्रामाणिकता का विवेचन पीछे किया जा चुका है। सं० १६४२ से पहले सूर की मृत्यु का प्रमाण तो, जैसा कि अन्य इतिहासकारों ने भी दिया है, यह है ही कि सूर की मृत्यु स्वामी विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी जो सं० १६४२ में गोलोकवासी हुये। अब अगर हमें अकबर और सूर की भेंट का समय ज्ञात हो जाय तो उस समय तक भी हम सूर की स्थिति मान सकते हैं।

श्रीमाखनलाल राय चौधरी, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया के लेखक, इतिहासकार वी० ए० स्मिथ तथा पं० श्रीराम शर्मा आदि मुग़ल राज्य के इतिहासकारों का बदायुनी

1—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१।

2—......अथ स्वाधिकृतैर्भूमेः पत्रं संलेख्य भूपतिः स्वनाममुद्रा सहितं दीक्षितेभ्यस्तदार्पयत्। ५ ततो मौहुर्तिकादिष्टे मुहूर्ते विधिपूर्वकम्। ग्रामगोकुलनामानं स्थले तत्र न्यवासयन् ६ अब्देऽष्ट नैत्रांग मही प्रमार्थे, (१६२८). तपस्य मासस्य तमिस्र पक्षे। दिने ७ दिनेशस्य शुभे मुहूर्ते, श्री गोकुल ग्राम निवास आसीद् ७

वंशावली, मधुसूदन भट्ट-कृत। तथा इम्पीरियल फरमान, झावेरी, पृ० १६५।

3—निजवार्ता, लल्लूभाई छगनलाल, पृ० ६३।

"श्री द्वारिकानाथ जी नाव में विराजि कें अड़ैल में श्री आचार्यजी महाप्रभुन के घर पधारे। तब सिंहासन पे पाँच स्वरूप विराजे।

1. नवनीतप्रिय जी। 2. श्री विट्ठलनाथ जी। 3. श्री द्वारिकानाथ जी 4. श्री गोकुलनाथ जी। 5. श्री मदन मोहन जी, ये पाँचों स्वरूप एक सिंहासन पें विराजे।

तथा अब्दुलफजल के कथनों के आधार पर कहना[1] है कि अकबर के जीवन में एक ऐसा समय आया था, जिसमें उसकी मानसिक प्रवृत्ति धार्मिक सत्य की खोज में लगी थी और वह भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के फ़कीर, साधु-महात्मा तथा आचार्यों से मिलता था। अकबर की इस मानसिक परिस्थिति को स्मिथ महोदय ने बदायुनी तथा अब्दुल फजल के लेखों से प्रमाण देते हुये तीन अवस्थाओं में विभाजित किया है।[2] राज्यारोहण के कुछ साल बाद, आरम्भ में कई वर्ष तक अकबर एक उत्साही कट्टर सुन्नी मुसलमान रहा। इसके बाद[3] सन् १५७४ ई० से १५८२ ई० तक उसकी धार्मिक वृत्ति उदार रही। इस समय ही वह सभी धर्मों के साधु-महात्मा तथा पण्डितों से एक जिज्ञासु के रूप मे मिलता था। सन् १५७८:७६ ई० में उसकी धार्मिक जिज्ञासा अतुल हो गई और इस समय उसने अनेक धर्मों के प्रतिनिधियों को फतहपुर सीकरी में अपने इबादतखाने में निमन्त्रित किया। और उनसे धर्म के सिद्धान्तों पर बहस सुनी। फिर सन् १५८२[6] में उसने अपने को ईश्वर का दूत

१—दीनइलाही, रायचौधरी, सन १९४१ संस्करण, पृ० ७२, ८२ तथा ६६। तथा अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ३४२।

२—For many years he was zealous, tolerably orthodox Sunni Musalman willing to execute Shias and other heretics. Next he passed through a stage (1574–82 A. D.) in which he may be described as a sceptical rationalizing Muslim and finally rejecting Islam, utterly he evolved an eclectic religion of his own with himself as its prohet. (1582--1605 A. D.) pp 348. Akbar the Great Mogul by V. Smith 1917 Edition.

३—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ५७ : ६६।

४—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ७०। 'पीरियड आफ़ डैप' चैपटर तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भा० ४, पृ० १२०, १२१।

५—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२१।
तथा, अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ११२।
और अकबर दी ग्रेट मुगल, स्मिथ, पृ० १२५।
तथा, अकबरनामा, भाग ३, पृ० ३६५ : ६६।
तथा, मुगल ऐम्पायर इन इण्डिया, श्रीराम शर्मा पृ० ३३२, ३४७:४८।
तथा, दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ७२ टिप्पणी।

६—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० २७६।
तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२६।
तथा अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ४२६, क्रानालोजी।

मानकर तथा हिन्दू, मुसलमान, पारसी, जैन आदि धर्मों से विचार चुनकर एक स्वतन्त्र 'दीनइलाही' मत चलाया। अकबर की यह धार्मिक उदारता और जिज्ञासा चाहे उसके मन की सच्ची धार्मिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप रही हो और चाहे राजनैतिक गुप्त नीति के उद्देश्य से हो, इस विषय में स्मिथ तथा रायचौधरी में मतभेद है[१], परन्तु इतना सभी इतिहासकार मानते हैं कि यह समय अकबर के जीवन में उसकी धार्मिक उदारता का था। दीनइलाही मत चलाने के पहले उसके जिज्ञासु मन की दैन्य वृत्ति अवश्य कुछ अहङ्कार से रञ्जित हो गई होगी और ईश्वर के गुणगान के साथ वह अपने गुणगान सुनने का भी इच्छुक हो गया होगा। अपने को ईश्वर के दूतत्व-पद का अधिकारी कहना उसके अहङ्कार भाव का द्योतक था। पीछे कहा गया है कि अकबर ने सूरदास से भी ईश्वर के गुणगान के अतिरिक्त अपना (अकबर के) गुण-गान करने को कहा था और सूर ने इसके उत्तर में गाया था—

नाहिन रह्यो मनमें ठौर ,
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और

× × ×

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि अकबर सूरदास से सन् १५७४ ई० और सन् १५८२ ई० के बीच के समय में कभी मिला।

'अकबरनामा' तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से पता चलता है कि अकबर अजमेर-शरीफ़ की पवित्र यात्रा करने कई साल तक गया। सन् १५६८ से १५७६ ई० तक वह वहाँ की प्रत्येक वर्ष यात्रा करता रहा। बहुधा वह अजमेर की यात्रा से दिल्ली होकर आगरे या फ़तहपुर सीकरी लौटता था। सन् १५७६ ई० की यात्रा से लौटकर वह फिर अजमेर नहीं गया।[२] इस समय तक उसकी धार्मिक वृत्ति मुसलमान धर्म की कट्टरता से हटकर उदार हो चुकी थी।

इस संवत् के कुछ ही समय पहले सन् १५७७ ई० में अकबर ने गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के नाम एक फर्मान[३] भी जारी किया था जिसमें उसने वल्लभसम्प्रदाय और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी श्रद्धा का भाव प्रकट किया है। इसके बाद सन् १५८१ ई० में भी उसने गोस्वामी जी के लिए एक उदार फ़रमान जारी किया था।[४]

१—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ६२।
२—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२३।
और, अकबर दी ग्रेट मुगल, स्मिथ, पृ० १८१।
तथा अकबरनामा, भाग ३, पृ० ४०२।
३—इम्पीरियल फरमान, झावेरी, पृ० ४१।
४—इम्पीरियल फरमान, झावेरी, पृ० ४२।

वल्लभसम्प्रदाय और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के परिचय के साथ-साथ अकबर को इस सम्प्रदाय के प्रमुख भक्तों से मिलने की अभिलाषा हुई होगी। लेखक का अनुमान है कि अकबर सूरदास जी से या तो सन् १५७७ ई० की अजमेर-यात्रा से लौटकर मिला हो अथवा सन् १५७६ ई० की अजमेर-यात्रा से फ़तहपुर सीकरी को[1] लौटता हुआ रास्ते में मथुरा में उनसे मिला हो। सन् १५७६ ई० में मिलना अधिक सङ्गत जँचता है, क्योंकि अकबर ने उसी साल में धार्मिक आचार्यों की बहसें सुनी थीं और अपने दरबार में भी भिन्न-भिन्न मतों के महात्माओं को बुलाया था। इसके बाद इतिहास से ज्ञात होता है कि अकबर कई स्थानों पर उपद्रवों को शान्त करने, राज्यों को जीतने तथा राजकीय प्रबन्ध करने में व्यस्त हो गया। सन् १५८१ का समय उसके लिए बड़ी चिन्ता का था। अनेक स्थानों पर खड़े होनेवाले उपद्रवों को शान्त करके वह पूरे एक वर्ष बाद अपनी राजधानी लौटा और आते ही सन् १५८२ में उसने, जैसा कि अभी कहा गया है, अपना स्वतन्त्र धर्म स्थापित कर दिया। इसलिए सन् १५८१ के बाद सूरदास, कुम्भनदास आदि भक्तों से अकबर की भेंट का स्थापित करना उचित प्रतीत नहीं होता। साधु और धर्माचार्यों से वह उसी समय अधिक जिज्ञासा के साथ मिला था, जब उसकी धार्मिक खोज प्रबल थी। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सूरदास जी सन् १५७६ ई० अथवा सं० १६३६ वि० तक जीवित थे।

यदि हम सूरदास की मृत्यु का समय सं० १६२० मान लें, जैसा कि अब तक हिन्दी के विद्वानों ने माना है तो सं० १६२० (सन् १५६३) से पहले अकबर का, जो थोड़े समय पहले ही राजगद्दी के सम्हालने में समर्थ हुआ था और जिसकी धार्मिक प्रवृत्ति उस समय तक प्रबल और उदार नहीं हुई थी, सूर से मथुरा में मिलना असङ्गत ही प्रतीत होता है।

८४ वष्णवन की वार्ता में हरिराय जी ने 'सूरदास के अन्त समय के बारे में लिखा है कि जैसे कृष्ण ने पहले यादवों का अन्तर्द्धान किया और फिर स्वयं अन्तर्द्धान हुये उसी प्रकार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का भी पुरुषोत्तम का स्वरूप है और वे अपने प्रमुख भक्तों को लीला में प्रवेश कराकर उनके पीछे ही स्वयं जायँगे। हरिराय जी कहते हैं,—"जो प्रभून को यही रीति है; जो अब वैकुण्ठ सों भूमि पर प्रकट होयवे की इच्छा करत हैं, तब वैकुण्ठवासी जो भक्त हैं सो पहले भूमि पर प्रकट करत हैं। पाछे अपने भक्तन को या जगत् सों तिरोधान होय ता पाछे वैकुण्ठ में लीला करत हैं............सो तैसे ही श्री आचार्य जी, श्री गुसाईं श्री पूर्ण पुरुषोत्तम् को प्राकट्य है। सो लीला सम्बन्धी वैष्णव प्रकट किये। अब श्री आचार्य जो आप अन्तर्द्धान लीला किये और श्री गुसाईं जी को करनी है सो पहले

१—कैंब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२३।

भगवदीयन कूं नित्य लीला में स्थापन करि के आपु पधारेंगे।"[1] हरिराय जी के इस कथन से ज्ञात होता है कि गुसाईं श्री विट्ठलनाथ की मृत्यु के कुछ ही साल पहले अनुमान से तीन चार साल, सूरदास जी का निधन हुआ होगा। पीछे के कथन से सूर की स्थिति सं० १६३६ तक सिद्ध है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का निधन सं० १६४२ माघ कृष्ण ७ को माना जाता है। इस अनुमान से सूरदास जी की मृत्यु लगभग सं० १६३८ अथवा १६३६ वि० में हुई। उस समय सूरदास जी की आयु लगभग १०३ वर्ष की थी।

परमानन्ददास के जीवन की रूपरेखा

जन्म-स्थान, जाति-कुल

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार परमानन्ददास का जन्म स्थान कन्नौज[2] ज़िला फर्रुखाबाद था। कन्नौज एक प्राचीन नगर है जहाँ इत्र का व्यापार प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। वल्लभाचार्य जी की यहाँ पर एक बैठक अभी तक विद्यमान है। वार्ता के अतिरिक्त परमानन्ददास के जीवन वृत्तान्त का परिचय देनेवाले अन्य किसी ग्रन्थ में उनके जन्म-स्थान अथवा बाल्यकाल के निवास-स्थान के विषय में लिखा नहीं मिलता। वार्ता के अनुसार परमानन्ददास का जन्म एक निर्धन कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुल में हुआ था।[3]

माता, पिता, कुटुम्ब तथा गृहस्थी

वार्ता अथवा अन्य किसी भी सूत्र से परमानन्ददास के माता-पिता का नाम ज्ञात नहीं होता। वार्ता में लिखा है कि कवि के माता पिता पहले निर्धन थे; परन्तु कवि के जन्म-दिन ही एक सेठ ने उन्हें बहुत-सा द्रव्य दिया। उस समय उन्हें परमानन्द हुआ। वार्ताकार ने लिखा है कि इसी से कवि के माता-पिता ने कवि का नाम परमानन्द रक्खा।[4] परमानन्ददास का बाल्यकाल बड़े सुख से व्यतीत हुआ। इनका यज्ञोपवीत

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४५ : ४६ तथा लेखक के पास रक्षित, हस्तलिखित '८४ वैष्णवन की वार्ता'।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४८।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४८।

व्रज से प्रयाग जाते समय प्राचीनकाल में लोग कन्नौज होते हुये ही जाया करते थे। लाहौर से कलकत्ते जानेवाली ग्रांड ट्रंक सड़क, जिसका जीर्णोद्धार बहुत समय के बाद अकबर के समय में हुआ था, इस स्थान पर होकर भी जाती है। परमानन्ददास के रहने के प्राचीन स्थान का लेखक ने कन्नौज में पता लगाया, परन्तु वहाँ पर कवि के अथवा उसके किसी स्थान के विषय में उसे कोई पता नहीं चला। और न वहाँ कवि के वंशजों का ही कोई पता है।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४६।

भी बड़े उत्सव के साथ हुआ। एक बार कन्नौज में अकाल पड़ा तो वहाँ के हाकिम ने इनके पिता का सब द्रव्य लूट लिया।[1] तब इनके माता-पिता ने इनसे कहा—"हम तेरा विवाह भी नहीं कर पाये और सब द्रव्य लुट गया, अब कुछ कमाने की फ़िक्र करो।" परमानन्ददास की वृत्ति बाल्यकाल ही से वैराग्यमयी थी; इसलिए उन्होंने अपना विवाह और द्रव्य-सञ्चय करने से इनकार कर दिया और माता-पिता से कहा,—"आप लोग बैठे-बैठे भजन करो, और खाने के लिए मैं कमाकर दूँगा।" परन्तु इनके पिता को धनी होने की लालसा थी, इसलिए वे धन कमाने के लिए पूर्व देश की ओर चल दिये। परमानन्ददास कन्नौज में ही रहते रहे। पूर्व देश में जब उनको जीविका न मिली तब वे दक्षिण देश गये। वहाँ उन्हें द्रव्य मिला और वे वहीं रहने लगे।[2] इसके बाद परमानन्ददास जी अपने माता-पिता के पास कभी गये अथवा नहीं, इस बात का उल्लेख वार्ताकार ने नहीं किया है। परमानन्ददास ने अपना विवाह नहीं किया। इसलिए इनके गृहस्थी का कोई बन्धन नहीं था। हाँ, कीर्तन करनेवालों का समाज वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले ही इनके साथ बहुत था और उस समाज में ये स्वामी कहलाते थे।[3] पदों के आत्मचारित्रिक उल्लेखों में जहाँ उन्होंने कहा है कि परमानन्द घर में बटोही की तरह रहता है, वहाँ वार्ता के आधार से यही ज्ञात होता है कि घर का तात्पर्य वे अपने माता-पिता के संसर्ग को ही लेते हैं न कि स्त्री-पुत्रादि की पूरी गृहस्थी। वार्ताकार ने कवि के किसी भाई अथवा बहिन का उल्लेख नहीं किया। सम्भव है, इनके माता के दक्षिण देश में कोई अन्य सन्तान हुई हो; परन्तु इस बात का कोई वृत्त नहीं मिलता।

शिक्षा

परमानन्ददास जी की शिक्षा कन्नौज में ही हुई होगी। "वे कहीं अन्यत्र विद्या पढ़ने गये", इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उनके शिक्षागुरु कौन थे, इसका भी उल्लेख वार्ता अथवा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं है। वार्ता से ज्ञात होता है कि कविता करने और गाने का शौक इन्हें बचपन ही से था और साधु-सङ्गति में इनका मन बहुत लगता था। वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले ही ये एक योग्य व्यक्ति, कवीश्वर, उच्चकोटि के गवैये और कीर्तनियाँ प्रसिद्ध हो गये थे।[4]

१—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५९।

२—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ६०।

३—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५९।

४—सो परमानन्ददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो, सो गाम गाम में प्रसिद्ध भये। सो परमानन्ददास गान-विद्या में परम चतुर हते।

अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६०।

पाछे ये बड़े योग्य भये और कवीश्वर हू भये। वे अनेक पद बनाय के गावते सो स्वामी कहावते और सेवक हूँ करते सो परमानन्ददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनीजन सङ्ग रहते। अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ५९।

उस समय इनके कीर्तन का समाज बहुत बड़ा था। उस समाज में परमानन्ददास 'स्वामी' की पदवी से सुशोभित थे, यह बात पीछे कही जा चुकी है। कविता और गान-विद्या सीखने के लिए इनके अनेक शिष्य हो गये थे तथा हमेशा गुणीजनों का ही इनका सङ्ग रहता था।

परमानन्ददास के मन की वृत्ति बाल्यकाल से ही वैराग्यमयी थी। पीछे कहा गया है कि इनकी कविता और कीर्तन की कीर्ति दूर-दूर फैल गई थी। एक बार परमानन्ददास

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश

जी मकर स्नान के लिए प्रयाग गये। वहाँ भी इनके कीर्तन की ख्याति फैली। उस समय आचार्य वल्लभजी प्रयाग के निकट अड़ेल स्थान पर रहा करते थे। अड़ेल के लोगों ने भी परमानन्ददास के कीर्तन सुने और इनके विषय में श्री वल्लभाचार्य जी से कहा। वार्ता में लिखा है कि एक समय उष्णकाल का था।[1] इस समय परमानन्ददास जी विरह के पद ही गाते थे।[2] एकादशी की सम्पूर्ण रात्रि को कीर्तन करने के बाद, दूसरे दिन परमानन्ददास जी, स्वप्न में प्रेरणा पाकर अड़ेल गये। वहाँ वे श्री वल्लभाचार्य जी के अद्भुत-अलौकिक दर्शन से बहुत प्रभावित हुये। जब आचार्य जी से भेंट हुई तब आचार्य जी ने परमानन्ददास से भगवत् लीला गाने को कहा। परमानन्ददास ने उस समय भी विरह[3] के पद गाये। जब आचार्य जी ने बाललीला के पदगान की आज्ञा दी। उस समय कवि ने कहा,—महाराज, मुझे बाललीला का बोध नहीं है। तब आचार्य जी ने परमानन्ददास

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६९।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६९।

३— राग सारङ्ग

जिय की साध जिय ही रही री,
बहुरि गुपाल देपन नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी।
एक दिन सो जु सखी इहि मारग बेचन जाति दही री।
प्रीति केलि·· दान मिस मोहन मेरी बाँह गही री।
बिनु देखे छिनु जात कलप भरि बिरहा अनल दही री।
परमानन्द स्वामी बिनु दरसन नैनन नदी बही री।

अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ७१ तथा लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता।

राग सारङ्ग

सुधि करत कमल दल नैन की।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर, रति वृन्दावन चैन की।
दे दे गाढ़े आलिंगन मिलती कुंज लता द्रुम रेन की,
वे बतियाँ कैसे करि बिसराँत बाँह उसीसा मैन की।

को स्नान कराकर शरण में लिया। शरणागति की तिथि ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी चौरासी वार्ता के कथन से सिद्ध होती है।[1]

वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने जगदीश-यात्रा के बाद अड़ेल में परमानन्द कान्यकुब्ज पर अनुग्रह कर उसे लीला के दर्शन करवाये। इसके बाद श्री द्वारिकेश जी का आगमन[2] हुआ।

इस प्रकार संवत् १५७६ वि० के लगभग श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के बाद परमानन्ददास जी अड़ेल में ही नवनीतप्रिय जी के समक्ष कीर्तन गाते रहे।[3] कुछ समय बाद परमानन्ददास जी ने श्री वल्लभाचार्य जी के साथ ब्रज को प्रस्थान किया। रास्ते में उनका गाँव कन्नौज पड़ा। वहाँ पर आचार्य जी तथा अन्य वैष्णवों को परमानन्ददास जी

१—'एकादशी के जागरण और व्रत के दूसरे दिन परमानन्ददास आचार्य जी से अड़ेल में मिले थे।' अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६४ : ७० ।

२—तत्र संवत् १५७२ द्विसप्तत्युत्तरपञ्चदशशतेऽब्दे महालक्ष्म्यां गोस्वामिश्रीविट्ठलनाथानां प्रादुर्भावः समभवत्... । अथ पुनर्व्रजयात्रा कृता। ततः श्रीगोपीनाथयज्ञोपवीतमहोत्सवः समभूत्।... "ततो जगदीशयात्रायां गङ्गासागरप्राप्तिः। कृष्णचैतन्यमिलनम्। रथयात्रोत्सवो जातः। ततो जगदीशात्प्रत्यागमनं चाभूत्। ततो हरिद्वारयात्रा।......ततः पुनरलर्कपुरे समागमनमभूत्। तत्र कविराजशिक्षणं कृतम्। कान्यकुब्ज परमानन्दमनुगृह्य लीलादर्शनं च कारितम्।......ततः श्रीविट्ठलेशानां यज्ञोपवीतोत्सवः कृतः। ततः श्रीद्वारकेशागमनम्।

श्री वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ-कृत, पृष्ठ ५०-५३ ।

नोट :—श्री यदुनाथ जी-कृत "श्री वल्लभ-दिग्विजय" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि १५७२ वि० में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रादुर्भाव के बाद आचार्य जी चरणाद्रि से अड़ेल (अलर्कपुर) आये और वहाँ उन्होंने बालक विट्ठलनाथ जी का संस्कार किया। फिर उन्होंने कुछ समय बाद जगदीश्वर की यात्रा की जिसकी पूर्ति का संवत् वल्लभसम्प्रदाय में सं० १५७६ वि० माना जाता है। इस जगदीश्वर यात्रा से लौट कर आचार्य जी अड़ेल आये। उसी समय दामोदरदास सम्भलवाले के पास से 'श्री द्वारिकानाथ जी' का स्वरूप अड़ेल आया। श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में दामोदरदास सम्भलवाले की मृत्यु के बाद श्री द्वारिकानाथ जी के स्वरूप आने की तिथि सं० १५७६ वि० दी है। परमानन्ददास की वार्ता में श्री द्वारिकानाथ जी के आगमन का कोई उल्लेख नहीं है।

३—"तब परमानन्ददास नित्य नये पद करि के समय समय के श्री नवनीतप्रिय जी को सुनावते।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ७६ ।

अपने घर ले गये[1] और सब का अतिथि-सत्कार किया। यहाँ पर परमानन्ददास ने विरह का एक पद गाया जिसको सुनकर आचार्य जी तीन दिन ध्यानावस्थित रहे। पद यह है—

[2]*हरि तेरी लीला की सुधि आवै।*

जब चौथे दिन आचार्य जी सावधान हुये, तब परमानन्ददास जी ने यह पद गाया—

[3]बिमल जस बृन्दावन के चन्द को।

उसी समय परमानन्ददास के जितने सेवक थे वे सब श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आ गये। परमानन्ददास जी ने आचार्य जी से निवेदन किया—"महाराज यह तो पहली दशा में स्वामीपनो हतो, तासो सेवक किये हते और अब तो मैं आपु को दास हों ... मैं अज्ञान दशा मे सेवक किये सो अब आप इनको शरण लेकें उद्धार करियें।"[4] इसके बाद आचार्य जी परमानन्ददास को गोकुल ले गये। वहाँ रह कर परमानन्ददास ने गोकुल की बाल-लीला के अनेक पद बनाये। कुछ समय बाद वे गोकुल से आचार्य जी के साथ गोवर्द्धन

१—"सो ब्रज को आवत मारग में परमानन्ददास को गाम कन्नौज आयो। तब परमानन्ददास ने श्री आचार्य जी सों विनती करि अपने घर पधराये।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ७७

२— राग सोरठ

हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमल नैन मन मोहनी मूरति मन मन चित्र बनावै।
एक बार जाहि मिलत मया करि सो कैसे बिसरावै।
मुख मुसकानि बंक अवलोकनि, चाल मनोहर भावै।
कबहुँक निबड़ तिमर आलिंगित कबहुँक पिक सुर गावै।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि सङ्गहीन उठि धावै।
कबहुँक नैन मूँदि अन्तरगति मनि माला पहिरावै।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गमावै।
हरि तेरी लीला की सुधि आवै।

अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ७८।

राग गौरी

३—बिमल जस बृन्दाबन के चन्द को।
कहत प्रकास सोम सूरज को सो मेरे गोविन्द को।
कहत जसोदा सखियन आगे वैभव आनन्द कंद को।
खेलत फिरत गोप बालक सँग ठाकुर परमानँद को।

अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ७८।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८१।

एकदम फल उठी, उनको प्रतीत हुआ कि भगवान् कृपा करके साक्षात् भक्त-रूप में दर्शन दे रहे हैं।

योग्यता सम्पादन

वार्ताकार और भक्तमाल के रचयिता, दोनों ने परमानन्ददास के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा की है। परमानन्ददास के काव्य और कीर्तन का ऐसा प्रभाव था कि सुननेवाले भावमग्न हो जाते थे। यह बात भक्तमाल में कही गई है।[१] वार्ता में अनेक स्थलों पर परमानन्ददास के कीर्तनों की ख्याति का उल्लेख है। वार्ता और भक्तमाल, दोनों में ही कवि के काव्य-विषय का भी निर्देश हुआ है। भक्तमाल से विदित है कि परमानन्ददास ने कृष्ण की बाल, पौगण्ड और किशोर-लीलाओं का बड़ा प्रभावशाली तथा भक्ति-भाव से ओतप्रोत वर्णन किया। वार्ता में भी परमानन्ददास के एक पद में उनके सम्पूर्ण काव्य का विषय दे दिया गया है। उन्होंने प्रथम अवतार-लीला का वर्णन किया, फिर कुञ्ज की लीला (रासादि) का, फिर चरणारविन्द की बन्दना, स्वरूप-वर्णन और प्रभु का माहात्म्य वर्णन किया।[२] और भी अनेक स्थानों पर वार्ताकार ने बताया है कि परमानन्ददास ने बहुत से पद कृष्ण की बाललीला पर बनाकर गाये।

उक्त वार्ता में आये हुये कई स्थलों के उल्लेखों के आधार से हम कह सकते हैं कि परमानन्ददास ने बालभाव[३], कान्ता-भाव और दास[४]-भाव से भक्ति की और इन्हीं भावों के अनुसार उन्होंने अधिक सङ्ख्या में पद बनाकर गाये। वैसे उनके ग्रन्थों के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि उन्होंने सख्य और सखी भावों से भी कृष्ण की भक्ति की थी।

सूरदास और परमानन्ददास के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा श्री विट्ठलनाथ जी, वार्ताकार श्री गोकुलनाथ जी और हरिराय जी, तीनों ने की है। वार्ता से ज्ञात होता है

१—भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, भक्तमाल, पृ० ५६५।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ ८४।

३—"या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किये, तासों परमानन्ददास के पद में बाल-लीला-भाव, और रहस्यहू झलकत हैं। सो जा लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो, ताही लीला के पद परमानन्ददास गाये।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८६।

४—'या भाँति परमानन्ददास ने बहोत कीर्तन किये। सो श्री गोकुल के दर्शन करि के परमानन्ददास को श्री गोकुल पै बहोत आसक्ति भई। तब आचार्य जी के आगे ऐसे प्रार्थना के पद गाये जो, मोकों श्री गोकुल में आपके चरणारविन्द के पास राखो।·········सो ऐसे कीर्तन परमानन्ददास ने प्रार्थना के गाये"।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८३।

गये और वहाँ पर श्री गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन से उन्हें परम आनन्द मिला। गोवर्द्धननाथ जी के समक्ष उन्होंने अनेक पद गाकर सुनाये। इसके कुछ समय बाद आचार्य जी ने परमानन्ददास को भी मन्दिर में कीर्तन की सेवा दी। और फिर जीवन पर्यन्त इसी सेवा में वे रहे।

स्वभाव और चरित्र

परमानन्ददास जी बाल्यकाल से ही त्यागी और उदार चरित्र के प्राणी थे। यद्यपि इनके माता पिता धनलोलुप थे, परन्तु इन्हें लोभ का लेश भी न था। वार्ता में लिखा है कि इनके माता-पिता ने जब इनसे विवाह के लिए द्रव्य इकट्ठा करने को कहा तो इन्होंने उत्तर दिया—"मेरे तो ब्याह करनो नाहीं है और तुमने इतनों द्रव्य मेलो करि के कहा पुरुषारथ कियो, सगरो द्रव्य योंही गयो। तासो द्रव्य आये को फल यही है जो वैष्णव ब्राह्मण को खवावनो। तासो मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहूँ नाहीं करूँगो, और तुम खायबे लायक मोसो नित्य अन्न लेहू और बैठे-बैठे श्री ठाकुर जी को नाम लियो करो, जो अब निर्धन भये हो तासो अब तो धन को मोह छोड़ो।"[1] उस समय इनके पिता ने इनकी प्रकृति बताते हुये कहा,—"तू तो वैरागी भयो, तेरी सङ्गति वैरागिनि की है, तासो तेरी ऐसी बुद्धि भई। और हम तो गृहस्थी हैं, तासो हमारे धन जोरे बिना कैसे चले, जो कुटुम्ब में जाति में खरचैं तब हमारी बड़ाई होय।"[2] पिता के आग्रह करने पर भी परमानन्ददास ने अपना विवाह और धन-सञ्चय नहीं किया। इससे सिद्ध होता है कि वे बहुत दृढ़-सङ्कल्पी थे।

वार्ता से विदित है कि परमानन्ददास एक कला-प्रेमी व्यक्ति थे। उनको गान और कविता से प्रेम था और इन विद्याओं में वे निपुण भी थे। परन्तु उन्होंने इन शक्तियों का प्रयोग लौकिक विषयों में नहीं किया, वरन् भगवत-यश-कीर्तन में उन्हें लगाया। इससे ज्ञात होता है कि बाल्यकाल से ही उनके मन की वृत्ति भक्ति की ओर झुकी थी। उनका स्वभाव बड़ा नम्र और विनयशील था और वे अपने को भगवान के दासों का भी दास समझते थे। उनके सखा-भाव के पदों में कहीं भी गोविन्दस्वामी की सी उच्छृङ्खलता नहीं है। वार्ता में लिखा है कि एक बार[3] सूरदास, कुम्भनदास तथा रामदास आदि बहुत से वैष्णव उनकी कुटी पर मिलने गये। उस समय भगवद्भक्तों के शुभागमन से उनकी आत्मा

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६०।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६०।

३—"सो सब भगवदीयन को अपने घर आये देखि के परमानन्ददास अपने मनमें बहोत प्रसन्न भये जो आज मेरो बड़ो भाग्य है, सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करि के पधारे, ये भगवदीय कैसे हैं जो साक्षात् श्री गोवर्द्धननाथ जी को स्वरूप ही है। तासों आज मोपर श्री गोवर्द्धननाथ जी ने बड़ी कृपा करी है।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८१।

एकदम फल उठी, उनको प्रतीत हुआ कि भगवान् कृपा करके साक्षात् भक्त-रूप में दर्शन दे रहे हैं।

वार्ताकार और भक्तमाल के रचयिता, दोनों ने परमानन्ददास के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा की है। परमानन्ददास के काव्य और कीर्तन का ऐसा प्रभाव था कि सुननेवाले भावमग्न हो जाते थे। यह बात भक्त-माल में कही गई है।[1] वार्ता में अनेक स्थलों पर परमानन्ददास के कीर्तनों की ख्याति का उल्लेख है। वार्ता और भक्तमाल, दोनों में ही कवि के काव्य-विषय का भी निर्देश हुआ है। भक्तमाल से विदित है कि परमानन्ददास ने कृष्ण की बाल, पौगण्ड और किशोर-लीलाओं का बड़ा प्रभावशाली तथा भक्ति-भाव से ओतप्रोत वर्णन किया। वार्ता में भी परमानन्ददास के एक पद में उनके सम्पूर्ण काव्य का विषय दे दिया गया है। उन्होंने प्रथम अवतार-लीला का वर्णन किया, फिर कुञ्ज की लीला (रासादि) का, फिर चरणारविन्द की वन्दना, स्वरूप-वर्णन और प्रभु का माहात्म्य वर्णन किया।[2] और भी अनेक स्थानों पर वार्ताकार ने बताया है कि परमानन्ददास ने बहुत से पद कृष्ण की बाललीला पर बनाकर गाये।

योग्यता सम्पादन

उक्त वार्ता में आये हुये कई स्थलों के उल्लेखों के आधार से हम कह सकते हैं कि परमानन्ददास ने बालभाव[3], कान्ता-भाव और दास[4]-भाव से भक्ति की और इन्हीं भावों के अनुसार उन्होंने अधिक सङ्ख्या में पद बनाकर गाये। वैसे उनके ग्रन्थों के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि उन्होंने सख्य और सखी भावों से भी कृष्ण की भक्ति की थी।

सूरदास और परमानन्ददास के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा श्री विट्ठलनाथ जी, वार्ताकार श्री गोकुलनाथ जी और हरिराय जी, तीनों ने की है। वार्ता से ज्ञात होता है

१—भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, भक्तमाल, पृ० ६६६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ ८४।

३—"या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किये, तासों परमानन्ददास के पद में बाल-लीला-भाव, और रहस्यहू झलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो, ताही लीला के पद परमानन्ददास गाये।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८६।

४—"या भाँति परमानन्ददास ने बहोत कीर्तन किये। सो श्री गोकुल के दर्शन करि के परमानन्ददास को श्री गोकुल पै बहोत आसक्ति भई। तब आचार्य जी के आगे ऐसे प्रार्थना के पद गाये जो, मोकों श्री गोकुल में आपके चरणारविन्द के पास राखो।..........सो ऐसे कीर्तन परमानन्ददास ने प्रार्थना के गाये"।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८३।

कि गोस्वामी जी अष्टसखा भक्तों में इन्हीं दो को सर्वश्रेष्ठ मानते थे; क्योंकि इन्होंने कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का गान सब से अधिक मार्मिक शब्दों में किया था। गोसाईं जी ने सूर और परमानन्द, दो ही को 'सागर' कहा है। परमानन्ददास की मृत्यु के बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके काव्य की जो प्रशंसा की, उसके विषय में वार्ता में लिखा है,—"सो ता समय श्री गुसाईं जी आपु उन वैष्णवन के आगे यह वचन श्री मुख सों कहे, जो ये पुष्टिमार्ग में दोइ सागर भये—एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिन को हृदय अगाध रस, भगवद् लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं सों या प्रकार श्री गुसाईं जी आपु श्रीमुख सों परमानन्ददास की सराहना किये।"[1]

एक स्थान पर वार्ताकार कहता है,—"तासों वैष्णव तो अनेक श्री आचार्य जी के कृपापात्र है, परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ सागर भये, इन दोऊन के कीर्तन की सङ्ख्या नाहीं, सो दोऊ सागर कहवाये।[2]"

अन्तकाल तथा मृत्यु स्थान

परमानन्ददास ने बहुत काल तक श्री गोवर्द्धननाथ जी के कीर्तन की सेवा की। इस सेवा को छोड़ कर वे कभी कहीं तीर्थ-यात्रा अथवा अपने गाँव कन्नौज गये, इस बात का वार्ता में कोई उल्लेख नहीं है। वार्ता के कथन से यही विदित होता है कि परमानन्ददास जी अन्त समय तक गोवर्द्धनाथ की सेवा में ही रहे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथ जी परमानन्ददास जी को साथ लेकर गोकुल आये और वहाँ जन्माष्टमी मनाई गई। उस समय परमानन्ददास ने श्री नवनीतप्रिय जी के समक्ष बधाई के कई पद गाये।[3] उनमें से एक पद निम्नलिखित है—

राग कान्हरो।

रानी तिहारो घर सुबस बसो।
सुनो हो जसोदा तिहारे ढोटा को न्हातहू जिनि बार पसो।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ १००।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ ७५।

नोटः—वास्तव में भक्तमाल और वार्ता के कथनों की पुष्टि परमानन्ददास के पदों से होती है। अब तक हिन्दी-संसार को परमानन्द-सागर और उसके अमूल्य भाव-रत्नों का पता नहीं था। सौभाग्य से हमें कांकरौली, विद्या-विभाग में परमानन्द-सागर की तीन प्रतियाँ देखने को मिल गई हैं, उनमें पद-सङ्ख्या लगभग दो हजार है। सम्भव है, इनके पदों का संग्रह अन्यत्र भी मिले।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३४।

कोउ करत वेद मंगल धुनि कोऊव गावो कोऊ हँसो।
निरखि निरखि मुख कमल नैन को आनन्द प्रेम हियो हुलसो। २
देत असीस सकल गोपीजन कोऊव अति आनंद लसो।
परमानन्द नंद घर आनन्द पुत्र जनम भयो जगत जसो। ३

दूसरे दिन नवमी को दधिकाँदो का उत्सव मनाया गया। उस समय परमानन्ददास आनन्द में नाचने लगे और प्रेम में इतने विभोर हो गये कि उनको अपने ताल-स्वर का भी भान न रहा। उसी समय उन्हें मूर्छा आगई। थोड़ी देर की समाधि के बाद गुसाईं जी के उपचार से वे सावधान हुये।[1] फिर उन्होंने उपर्युक्त एक पद आशीर्वाद का गाया—

'रानी तिहारो घर सुबस बसो।'

इसके बाद इसी दिन गोसाईंजी के साथ वे श्री गोवर्द्धन आये और वहाँ श्रीगोवर्द्धननाथ जी के समक्ष फिर भावमग्न हो गये। उस समय श्री गोसाईं जी ने कहा—"जो जैसे कुम्भनदास को किशोरलीला में निरोध भयो सो तैसो बाललीला मे परमानन्ददास को निरोध भयो।[2]" इसके बाद परमानन्ददास की मूर्छा फिर जगी और वे गोवर्द्धन से उतर कर सुरभी कुण्ड के ऊपर अपने ठिकाने कुटी में आये। वहाँ उन्होंने बोलना छोड़ दिया। जब गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को यह बात ज्ञात हुई कि परमानन्ददास जी विकल हैं और बोलते नहीं हैं तो वे उनके पास आये। गुसाईं जी ने उनके मस्तक पर हाथ फेरा और कहा,—"परमानन्ददास हम तिहारे मन की जानत हैं, जो अब तिहारो दर्शन दुर्लभ भयो[3]"। उस समय परमानन्ददास ने आँख खोलीं और गाया[4]—

प्रीति तो नन्द नन्दन सो कीजे।
संपति विपति परे प्रति पाले कृपा करे तो जीजे। १
परम उदार चतुर चिंतामनि सेवा सुमिरन माने।
चरन कमल की छाया राखे अंतरगति की जाने। २
वेद पुरान भागवत भाषै कियो भक्त को भायो।
परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पायो। ३

उसी समय एक वैष्णव ने परमानन्ददास से पूछा,—"परमानन्ददास जी! मुझे कुछ साधन बताओ, जिससे भगवान मुझ पर कृपा करें।" उस समय परमानन्ददास ने कहा,—

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६६।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६७।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६८।
४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६८ तथा लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता।

"या बात को मन लगायके सुनोगे तो फल सिद्धि होयगी।" उसी समय उन्होंने श्री आचार्यजी श्री गोस्वामी जी और उनके सात बालकों के चरणों की वन्दना का निम्नलिखित पद गाया—

प्रातकाल उठि करि करिये श्री लछमन सुत गान।
प्रकट भए श्री वल्लभ प्रभु देत भक्ति दान।
श्री विट्ठलेस पूरन कृष्न रूप के निधान।
श्री गिरिधर श्री गिरधर उदय भयो आन।
श्री गोविंद आनन्द कन्द कहा बरनौं गुन आन।
श्री बालकृष्न बालकेलि रूही सुहान।
श्री गोकुलनाथ प्रकट कियो मारग बखान।
श्री रघुनाथ लाल देखि मन्मथ ही लजान।
श्री यदुनाथ (महाप्रभु) महाप्रेम पूरन भगवान।
श्री घनस्याम पूरन काम पोथी में ध्यान।
पांडुरंग श्री विट्ठलेस करत वेद गान।
परमानन्द निरखि लीला थके सुर विमान।[1]

अन्त समय में गोस्वामी जी ने पूछा,—परमानन्ददास तुम्हारा मन कहाँ है? उन्होंने उत्तर में फिर गाया—

राधे बैठी तिलक सँभारति।[2]

इस प्रकार युगल-लीला में मन लगाकर[3] परमानन्ददास ने अपनी देह छोड़ी। उस समय, जैसा कि पीछे कहा गया है, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने परमानन्ददास को, सूर का समकक्ष बताते हुये 'सागर' की पदवी से सुशोभित किया और उनकी भक्ति और काव्य की प्रशंसा की।

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६६ तथा ८४ वार्ता, लेखक के पास सुरक्षित।

२— राधे बैठी तिलक सँभारति।
मृगनैनी कुसुमायुध कर धरि नंद सुवन को रूप विचारति।
दर्पन हाथ सिंगार बनावति, बासर जुग सम टारति।
अंतर प्रीति स्याम सुन्दर सों हरि संग केलि सँभारति।
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत गोवर्द्धन प्यारी।
परमानंद स्वामी के सँग मुदित भई ब्रजनारी।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६६ तथा लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता।

३—"सो या प्रकार जुगल-स्वरूप की लीला में मन लगाय के परमानन्ददास देह

वार्ता से विदित है कि परमानन्ददास की मृत्यु सुरभी कुण्ड पर, जहाँ उनका स्थायी-निवास स्थान था, हुई। यह स्थान अब भी इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि यहाँ परमानन्द-दास जी रहते थे। वार्ता से यह भी विदित होता है कि परमानन्ददास की मृत्यु सूरदास और कुम्भनदास के बाद[1] हुई।

कवि के आत्मचारित्रिक उल्लेख, चौरासी वैष्णवन की वार्ता अथवा अन्य किसी लिखित ग्रन्थ से परमानन्ददास जी की जन्मकाल अथवा अन्तकाल की तिथियाँ नहीं मिलती।

परमानन्ददास जी की जन्म, शरणागति तथा गोलोकवास की तिथियाँ—जन्मतिथि

वल्लभसम्प्रदाय में एक विश्वास प्रचलित है कि परमानन्ददास जी श्री वल्लभाचार्य जी से १५ वर्ष छोटे थे और सूरदास जी आचार्य जी के समवयस्क थे। श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म संवत् १५३५ वि० में हुआ। इस संवत् में १५ वर्ष जोड़ने से परमानन्ददास का जन्मसवत् १५५० वि० आता है। वल्लभसम्प्रदाय में अष्टसखाओं के जन्म-दिवस प्रकट रूप से नहीं मनाये जाते, क्योंकि आचार्यों के सिवाय दास अथवा भक्तों के दिवस मनाने की प्रथा वल्लभसम्प्रदाय में नहीं है। फिर भी कुछ महानुभावों के जन्म-दिवस यदि किसी आचार्य के जन्म-दिवस पर आ पड़ते हैं तो गुप्त रूप से मना लिये जाते हैं। इस बात को वे लोग ही जानते हैं जो परम्परा-प्राप्त सेवा-विधि के जाननेवाले हैं और वे इस बात को गुप्त रखते हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय में परमानन्दाद जी का जन्म दिवस श्री गोकुलनाथ जी के प्राकट्य के दिन अर्थात् अगहन सुदी सप्तमी सोमवार के दिन मनाया जाता है।

इस प्रकार प्राचीन किंवदन्ती और वल्लभसम्प्रदाय में प्रत्येक वर्ष कार्य-रूप में आने-वाली परम्परा के आधार से परमान ददास जी की जन्म तिथि संवत् १५५० वि० अगहन सुदी ७ सोमवार सिद्धि होती है।

पीछे हम श्री यदुनाथ जी-कृत 'वल्लभ-दिग्विजय' के आधार पर कह आये हैं कि परमानन्ददास जी सवत् १५७६ वि० जेष्ठ शुक्ल द्वादशी को अर्थात् लगभग २६ वर्ष की

छोड़ि के श्री गोवर्द्धननाथ जी की लीला में जाय प्राप्त भये।"

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११।

१—"जैसे कुम्भनदास कों किशोरलीला में निरोध भयो सो तैसे बाललीला में परमानन्ददास को निरोध भयो है।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ८७। "जो ये पुष्टि मार्ग में दोई सागर भये, एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास।"

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १००।

शरणागति-समय

अवस्था में श्री वल्लभाचार्य की शरण में आये।[1] परमानन्ददास जी सूर के बाद श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में गये थे।[2]

पीछे कहा गया है कि परमानन्ददास जी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातों बालकों की बधाई और बन्दना गाई है। गोस्वामी जी के सातवें पुत्र 'घनश्याम जी' का जन्म संवत् १६२८ वि० में हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि परमान्ददास जी कम-से-कम संवत् १६२८ वि० तक तो जीवित थे ही। सात बालकों की बधाईवाले पद में कवि ने श्री घनश्याम जी के विषय में इस प्रकार लिखा है,—"श्री घनस्याम, पूरन काम, पोथी में ध्यान।"[1] श्री घनश्याम जी को परमानन्ददास ने विद्याध्ययन करते देखा होगा तभी तो उन्होंने लिखा है,—'पोथी में ध्यान।' उस समय अनुमान से घनश्याम जी की आयु लगभग आठ या दश वर्ष की अवश्य रही होगी; क्योंकि दत्तचित्त होकर पढ़नेवाले बालक की आयु नौ या दश वर्ष की अवश्य होनी चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि परमानन्ददास ने इस पद की रचना संवत् १६३८ वि० के लगभग की। वार्ता में लिखा है कि सात बालकों की बधाई का पद परमानन्ददास ने अपने अन्त समय में गाया था।[3] सम्भव है कि इस पद की रचना कुछ पहले की हो और वैष्णवों को उपदेश देते समय यह पद अन्त समय में गा दिया हो। परमानन्ददास का गोलोकवास कुम्भनदास जी की मृत्यु के बाद हुआ था। लेखक ने प्रमाण देकर कुम्भनदास जी के निधन का सम्वत् १६३९ वि० माना है। लेखक का विचार है कि परमानन्ददास की मृत्यु भी सूरदास और कुम्भनदास की मृत्यु के बाद लगभग सम्वत् १६४० वि० में हुई होगी।

परलोकवास तिथि

श्री हरिरायजी-कृत भावप्रकाश वाली चौरासीवार्ता में अष्टछाप कवियों के साम्प्रदायिक विश्वासानुसार लीलात्मक स्वरूप दिये हुये हैं। उक्त वार्ता में परमानन्द जी को दिन की गोचारण-लीला में 'तोक' सखा और रात्रि की कुञ्जलीला में 'चन्द्रभागा' सखी लिखा है।[4]

१—वल्लभ-दिग्विजय श्री यदुनाथ-कृत, पृ० ५२ तथा ५३।

२—"सो श्री आचार्य जी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्री भागवत रूपी समुद्र परमानन्ददास के हृदय में स्थापन कियो। सो तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदय में अनुक्रमणिका द्वारा श्री भागवत रूपी समुद्र स्थापन कियो हतो।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ७४।

३—इसी ग्रन्थ में पीछे दिया हुआ कवि के अन्तकाल का वर्णन, पृ० २२८।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११।

कुम्भनदास के जीवन-चरित्र की रूपरेखा

पीछे कहे आधारों से कुम्भनदास जी के जीवन की रूपरेखा इस प्रकार है।

हरिराय-कृत भावप्रकाशवाली तथा संवत् १६९७ वि० की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि कुम्भनदास जी व्रज में गोवर्द्धन पर्वत से कुछ दूर 'जमुनावतो' गाँव में रहा करते थे।[१] गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के कथन से इस बात की पुष्टि होती है तथा उससे यह भी ज्ञात होता है कि कुम्भनदास का जमुनावतो गाँव में ही जन्म हुआ था।[२] वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि परासौली चन्द्रसरोवर के पास इनके बाप-दादों के खेत थे। कुम्भनदास वहाँ रहकर खेती कराया करते थे और इनका कुटुम्ब जमुनावतो में ही रहता था। परासौली, चन्द्रसरोवर से ही ये श्रीनाथ जी के मन्दिर में समय समय की सेवा पर कीर्तन करने जाते थे। इनका जन्म गोरवा क्षत्रिय कुल में हुआ था।[३]

जन्मस्थान, जाति-कुल

वार्ताओं से अथवा अन्य किसी सूत्र से कुम्भनदास जी के माता-पिता का नाम ज्ञात नहीं होता।[४] गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से ज्ञात होता है कि इनके एक चचा का नाम धर्मदास था जो बड़ा भगवद्-भक्त था। वार्ता में लिखा है कि कुम्भनदास की स्त्री 'जैत' गाँव के पास बहुला वन की रहनेवाली थी।[५] कुम्भनदास जी का कुटुम्ब बहुत बड़ा था। इनके सात पुत्र थे और सातों पुत्रों की स्त्रियाँ थीं। इनकी एक विधवा भतीजी भी थी जिसे ये बहुत प्यार करते थे।[६] कुम्भनदास के यहाँ धन का सदैव अभाव रहता था।[६] खेती से जो आय होती उसी पर ये अपना निर्वाह करते थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने विनोद में इनसे पूछा,—"कुम्भनदास जी, तुम्हारे कितने पुत्र हैं?" इन्होंने उत्तर दिया,—

माता-पिता, कुटुम्ब

१—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, बें० प्रे०, पृ० ६ तथा ७।

२—"सो जमुनावतो में कुम्भनदास रहते, सो परासौली चन्द्रसरोवर के ऊपर कुम्भनदास के बाप दादान के खेत हते, तहाँ कुम्भनदास खेती करते, सो कुम्भनदास खेत अर्थ बहोत रहते हते।" चौरासी वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी-कृत भावप्रकाश, तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ १०२।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०१।

४—"जमुनावतो ग्राम में एक धर्मदास व्रजवासी हतो सो बड़ो भगवद्भक्त हतो। सो कुम्भनदास को काका लगत हतो और चतुरानागा को शिष्य हतो वाके दोय से चार सै गाय हती।" श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, बें० प्रे०, पृष्ठ ६।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०२।

६—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२६।

"डेढ़, महाराज यों तो सात बेटा हैं तामें पाँच तो लौकिकासक्त हैं, जो वे बेटा काहे के हैं। और पूरो एक बेटा तो चत्रभुजदास है और आधो बेटा कृष्णदास है, सो गोवर्द्धननाथ जी की गायन की सेवा करत है।"[1] तब गुसाईं जी ने प्रसन्न होकर कहा,—"कुम्भनदास जी तुम सच कहते हो, जो भगवदीय है सोई बेटा है और अधिक बेटा हुये तो किस काम के।" कुछ समय बाद इनके पुत्र कृष्णदास को श्रीनाथ जी की गाय चराते हुये सिंह ने मार डाला। पाँच बड़े पुत्र इन्होंने अलग कर दिये। केवल चतुर्भुजदास इनके मन का पुत्र था जिसके साथ ये रहा करते थे।[2]

कुम्भनदास जी के चाचा धर्मदास जी बड़े भगवत्भक्त थे। बाल्यकाल में इनके ही सङ्ग में ये रहा करते थे। उन्हीं से कुम्भनदास ने भगवद्भक्ति की शिक्षा बाल्यकाल ही से पाई थी। धर्मदास जी कृष्णभक्त चतुरोनगन (नागा चतुरदास जी) के शिष्य थे[3] जो सदा ब्रज में विचरण किया करते थे। चतुरनागा जी के भक्ति का वर्णन नाभादास जी ने भी किया है।[4]

शिक्षा

सम्भव है कि वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले कुम्भनदास जी भी उन्हीं से शिक्षा ग्रहण करते रहे हों। वल्लभसम्प्रदाय में आने के बाद तो कुम्भनदास का वैष्णवों के साथ सत्सङ्ग हुआ ही करता था। कुम्भनदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि ये अधिक विद्वान न थे। चौरासीवार्ता में लिखा है कि वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले ये कीर्तन अच्छा गाते थे।[5] इसीलिए श्री वल्लभाचार्य जी ने इन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन की सेवा दी थी।

सम्प्रदाय में आने के बाद कुम्भनदास जी ने वल्लभाचार्य जी के उपदेशों को बड़ी एकाग्रता के साथ ग्रहण किया। उन्होंने आचार्य जी के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर केवल अपना पाण्डित्य ही नहीं बढ़ाया, वरन् उस सिद्धान्तों को कार्य-रूप में लाकर अपने को भगवान् का उच्चकोटि का भक्त और सेवक भी बनाया था। आचार्य जी द्वारा

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १४२।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१०, चतुर्भुजदास की वार्ता।

नोट—इनके वंशज अब भी काँकरौली में विद्यमान हैं जो संवत् १७२६ वि० में ब्रज से श्री द्वारिकानाथ जी के साथ, काँकरौली चले गये थे। श्री नरेन्द्र वर्मा जी, काँकरौली राज्य के एक कर्मचारी इन्हीं के वंशज हैं जो बड़े विद्यानुरागी और हिन्दी के कवि हैं।

३—"धर्मदास, ब्रजवासी बड़ो भक्त हतो सो कुम्भनदास को काका हतो और चतुरानागा को शिष्य हतो।" श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० ६।

४—भक्तमाल, छप्पय नं० १४८।

५—"सो कुम्भनदास कीर्तन बहोत सुन्दर गावते। कण्ठहू इनको बहोत सुन्दर हतो।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०८।

कुम्भनदास जी के शिक्षा-ग्रहण करने का वृत्तान्त वार्ता में इस प्रकार दिया है—एक बार कुम्भनदास ने आचार्य जी से पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त पूछा। आचार्य जी ने तब चौरासी अपराध, राजसी, तामसी, सात्विकी भक्तों के लक्षण और प्रातःकाल से शयन पर्यन्त की सेवा का प्रकार तथा बाललीला और किशोरलीला के भाव का रहस्य कुम्भनदास जी को समझाया।[1]

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

श्री वल्लभाचार्य जी के अष्टछापी चार शिष्यों में कुम्भनदास ही आचार्य जी के सबसे प्रथम शिष्य हुये। श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि संवत् १५३५ वि० वैसाख वदी ११ बृहस्पतिवार को श्री गोवर्द्धन के मुखारविन्द का प्राकट्य गोवर्द्धन पर हुआ।[2] उस समय कुम्भनदास जी दश वर्ष के बालक थे और श्रीनाथ जी के निकट खेला करते थे।[3] सम्वत् १५४९ वि० फाल्गुन सुदी ११ को झारखण्ड की यात्रा में आचार्य जी को प्रेरणा हुई कि गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ है। वे उसी समय यात्रा छोड़कर व्रज में आये और मथुरा होते हुये श्री गोवर्द्धन की तरहटी में बसे हुये 'आन्योर' गाँव में आकर उतरे। उन्होंने गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के स्वरूप का दर्शन किया और वहाँ के वैष्णवों की सहायता से गोवर्द्धन पर एक छोटा-सा मन्दिर बनवाया। उसमें श्रीनाथ जी को पाट बैठा। उसी समय एक रामदास चौहान भगवद्भक्त को उन्होंने अपना शिष्य बनाया था, उसे उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा दी।[4]

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि उसी समय कुम्भनदास जी ने समाचार सुना कि आन्योर के पास एक महापुरुष आये हैं और उनके बहुत से सेवक हुये हैं। उनके मनमें भी उनके सेवक बनने की आई और वे अपनी स्त्री-सहित वल्लभाचार्य के पास

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १६७।

नोट :—श्रीनाथ द्वार के निज पुस्तकालय में व्रजभाषा का एक ग्रन्थ 'सेवा प्रकार' है जिसकी प्रतिलिपि लेखक के पास है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि यह ग्रन्थ श्री आचार्य जी ने कुम्भनदास जी को सुनाया। श्री वल्लभाचार्य जी का हिन्दी भाषा में कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। संभव है, इस प्रकार के उपदेश आचार्य जी ने कुम्भनदास जी को दिये हों और उन्हें कुम्भनदास जी के बाद हरिराय जी ने व्रजभाषा में लिपिबद्ध करा दिया हो। इस ग्रन्थ में उन्हीं विषयों का वर्णन है जो ऊपर कहे चौरासी वार्ता के आधार से कहे गये हैं।

२—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ४, वें० प्रे०।

३—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ७, वें० प्रे०।

४—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ९ से १२ तक।

पहुँचे ।[1] उस समय कुम्भनदास जी के कोई सन्तान नहीं थीं । उनकी स्त्री ने मनोरथ किया,—"मेरे कोई सन्तति नहीं है, सो वे महापुरुष देय तो होय ।" आचार्य जी के पास पहुँचकर कुम्भनदास जी ने आचार्य जी से निवेदन किया—"महाराज, बहोत दिन ते भटकत हतो सो अब आप मो ऊपर कृपा करो ।" तब आचार्य जी ने कुम्भनदास और उनकी स्त्री को शरण में लिया । उस समय उनकी स्त्री ने आचार्य जी से बेटा होने का आशीर्वाद माँगा । कुम्भनदास ने उसी समय अपनी स्त्री से कहा,—"यह कहा तेने आचार्य जी के पास माँग्यो, जो ठाकुर जी माँगती तो ठाकुर जी देते ।" तब स्त्री ने उत्तर दिया—"जो मोको चहियत हुतो सो मैंने माँग्यो और जो तुमको चाहिये सो तुम माँग लेहु ।"[2] उसी समय, जैसा कि पीछे कहा गया है, आचार्य जी ने श्रीनाथ जी को छोटे मन्दिर में बिठाकर उनकी सेवा रामदास चौहान को दी थी । उस समय कुम्भनदास जो कीर्तन बहुत अच्छा गाते थे और उनका कण्ठ भी मधुर था ।[3] इसलिए आचार्य जी ने कुम्भनदास को कीर्तन की सेवा दी । आचार्य जी कुम्भनदास के युगल-लीला-सम्बन्धी कीर्तनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और उन कीर्तनों के 'मधुर' भाव के आधार से उन्होंने कुम्भनदास जी से कहा,—"कुम्भनदास तुम्हें निकुञ्ज लीला सम्बन्धी रस को अनुभव भयो ।"[4] कुम्भनदास ने स्वीकार करते हुये कहा,—"महाराज मों कों तो सर्वोपरि यही रस को अनुभव कृपा करि के दीजिये ।"[4] इसके बाद कुम्भनदास जी ने बहुत से कीर्तन बना कर गाये ।

वार्ता में कुम्भनदास जी के साम्प्रदायिक जीवन की अनेक घटनायें ऐसी भी दी हैं जिनसे उनकी भगवद्‌भक्ति, भाव की महानता और त्याग का परिचय मिलता है ।

जिस समय गोवर्द्धननाथ जी (श्रीनाथ जी) छोटे ही मन्दिर में विराजते थे, उस समय किसी म्लेच्छ ने चढ़ाई की और सब गाँवों को लूटता हुआ श्रीनाथजी के मन्दिर की ओर आया । उस समय म्लेच्छ के भय से सद्दू पाँडे, माणिकचन्द पाण्डेय, रामदास चौहान और कुम्भनदास जी, ठाकुर जी को एक भैंसे पर बिठाकर टोड़ के बन में भगाकर ले गये । यह घटना संवत् १५६५ वि० से पहले की है; क्योंकि संवत् १५६५ वि० में श्रीनाथजी ने बड़े मन्दिर में प्रवेश किया था । उससे पहले वे छोटे मन्दिर में ही विराजते थे । वहाँ बन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ०, १०६ ।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ०, १०७ ।

३—"सो कुम्भनदास कीर्तन बहुत सुन्दर गावते, कण्ठहू इनको बहुत सुन्दर हतो तासों कुम्भनदास सों श्री आचार्य जी आपु कहे जो तुम समय समय के कीर्तन नित्य श्री गोवर्द्धननाथ जी को सुनाइयो ।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०८ ।

४—तथा ५—अष्टछाप काँकरौली पृ० १०६ ।

में सब वैष्णवों के पैरों में काँटे गड़ गये और उनकी धोतियाँ फट गईं। सब लोग कई दिन के भूखे थे। उस समय कुम्भनदास जी ने श्रीनाथ जी के समक्ष एक विनोदपूर्ण पद गाया—

राग सारङ्ग

भावत है तोहि टोड़ को घनो।[1]
काँटे लगे गोखरू टूटे फट्यो जात सब तनों।
सिंहो कहा लोखटी को डर यह कहा बानक बन्यो।
कुम्भनदास प्रभु तुम गोवर्द्धन धर वह कोन राँड ढेडनी को जन्यो।

इसके बाद जब म्लेच्छ का उपद्रव मिट गया तब कुम्भनदास आदि वैष्णव श्रीनाथजी को गोवर्द्धन पर वापिस ले आये।[2]

कुम्भनदास जी ने बहुत से पद बनाये और उनके पद देश में विख्यात हुये।[3] एक बार उनका एक पद किसी कलावान ने अकबर बादशाह के समक्ष फतहपुर सीकरी में गाया। पद को सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उस कलावान से पद के रचयिता का परिचय पूछा। कलावान के परिचय देने पर अकबर बादशाह की इच्छा कुम्भनदास जी से मिलने की हुई। उसने कवि को बुलाने के लिए जमुनांवतो सवारी भेजी। जब हलकारे कुम्भनदास जी के पास पहुँचे और बादशाह का हुकुम उन्हें सुनाया तो उन्होंने उत्तर दिया,— "भाई, हमारा बादशाह से क्या काम है?" परन्तु जब उन्होंने सोचा कि यह आपदा टलनेवाली नहीं है, वे उन हलकारों के साथ पैदल चल दिये, सवारी पर नहीं बैठे। कुम्भनदास जी जब फतहपुर सीकरी पहुँचे और दरबार के भीतर बुलाये गये, उस समय वे "तनिया पहरे, फटी मैलो पाग, पिछोरा, टूटे जोड़ा सहित देशाधिपति के आगे जाय ठाढे भये।[४]" बादशाह ने कहा,—"बाबा साहब, बैठिये।" स्थान शाही ढङ्ग से सजा हुआ था। इस सजावट का वर्णन करते हुये वार्ताकार कहता है,—"तहाँ जड़ाऊ रावटी ही, तामें मोतिन की झालरि लागी रही हैं और सुगन्ध की लपट आवत है, परन्तु कुम्भनदास जी के मन में महादुख, जो जीवतो मानो नरक में बैठ्यो हूँ, यासों तो मेरे व्रज के हींसन के रूख आछे हैं जहाँ साक्षात श्री गोवर्द्धन खेलत है।[५]" देशाधिपति ने कुम्भनदास से पद गाने के लिए

१—'टोड़ का घना' व्रज में जतीपुरा से सात फर्लांग पर है। इस स्थान पर आजकल श्याम तमाल और कदम्ब के बहुत वृक्ष हैं।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६ : ११७।

३—"सो कुम्भनदास जी के पद जगत में प्रसिद्ध भये।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ११७।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ११६ तथा १२०।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२०।

भेंट संवत् १५७६ वि० के थोड़े समय बाद हुई थी। कुम्भनदास जी ने उस समय एक पद यह गाया—

राग नट

रूप देखि नैना पल लागें नाहीं।
गोवर्द्धनधर के अंग-अंग प्रति निरखि नैन मन रहत तहीं।
कहा कहों कछु कहत न आवै, चित्त चोरयो माँगि यै दहीं।
कुम्भनदास प्रभु के मिलन की सुन्दर बात सखियन सों कही।

राजा मानसिंह कुम्भनदास के कीर्तनों से ऐसे प्रभावित हुये कि दूसरे दिन वे चन्द्र सरोवर पर कुम्भनदास से मिलने गये। उस समय वे भगवान् के सानुभव में मग्न थे। थोड़ी देर में उनकी चेतना खुली तो उन्होंने अपनी भतीजी से बैठने के लिए आसन और तिलक करने के लिए आरसी (दर्पण) माँगे। उनकी भतीजी ने उत्तर दिया—"बाबा, आसन पड़िया खाय के आरसी पी गई।" तब कुम्भनदास ने कहा—"तो और आसन करिके ले आउ।" इस वार्तालाप को सुनकर मानसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने ही में वह लड़की, एक घास का पूरा और कटोरी में पानी भर के ले आई और उस पूरा पर बैठकर तथा कटोरी के पानी में मुख देखकर कुम्भनदास जी ने तिलक किया। उस समय राजा मानसिंह ने जाना कि कुम्भनदास जी के घर द्रव्य का बहुत सङ्कोच है।' राजा मानसिंह ने अपनी सोने की आरसी मँगाई और कुम्भनदास जी के सामने पेश की। उस पर कुम्भनदास जी ने कहा—"भैया, हमारे तो छानि के घर हैं जो यह आरसी हमारे घर में होय तो याके पीछे कोई हमारो जीव लेय, तासों हमारे नाहीं चहियत है।" तब राजा मानसिंह ने हजार मोहरों की एक थैली कुम्भनदास जी के आगे रक्खी। उस पर भी कुम्भनदास ने कहा—"यह हमारे काम की नाहीं है, हमारे तो खेती होत है तामें धान उपजत है सो हम खात हैं और कछू हमको चहियत नाहीं।"[१] राजा मानसिंह ने फिर जमुनावतो गाँव कुम्भनदास के नाम करने को कहा। फिर भी कुम्भनदास ने अपने त्याग की टेक न छोड़ी और

कहा। कुम्भनदास जी लाचार होकर पद गाने को उद्यत हुये; परंतु सोचा कि कोई ऐसा पद गाऊँ जो देशाधिपति को बुरा लगे। "जाको मन मोहन अङ्गीकार करै। एको केस खसे नहीं सिर ते जो जग बैर परै।" उस समय उन्होने यह नया पद बनाकर गाया।[१]—

"भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरि नाम।
जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठो धाम।[२]

इस पद को सुनकर देशाधिपति बहुत कुढ़ा और उसने सोचा—"इनको कुछ मुझसे लालच हो तो ये मेरा यश गावें, इनको तो अपने परमेश्वर से सचा स्नेह है।" बादशाह ने कुम्भनदास जी से कुछ माँगने के लिए कहा। कुम्भनदास ने उत्तर दिया—"आज पाछे मोकों कबहूँ बुलाइयो मति"। तब देशाधिपति ने कुम्भनदास को विदा किया।[३] भक्त कवि को ये दो दिन श्रीनाथ जी के वियोग में दो युग के समान दुखदायी बीते। इस घटना से कुम्भनदास की दृढ भक्ति, ईश्वर में पूर्ण विश्वास, लौकिक आश्रय का त्याग, हृदय की निर्भीकता तथा निस्पृहता का परिचय मिलता है।

एक बार राजा मानसिंह दिग्विजय करके आगरे लौट रहा था। रास्ते में वह मथुरा में केशवराय जी के दर्शन करता हुआ गोवर्द्धन आया।[४] वहाँ उसने गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन किये। मन्दिर में कुम्भनदास जी भोग-दर्शनों के कीर्तन कर रहे थे। जैसा कोटि कन्दर्प लावण्ययुक्त श्रीनाथ जी का रूप था वैसे ही सुन्दर कुम्भनदास जी के कीर्तन थे।[५] वार्ता में लिखा है कि उन दिनों श्रीनाथ जी की सेवा बड़े वैभव के साथ होती थी। गर्मी के दिन थे, उस समय श्रीनाथ जी का बड़ा मन्दिर तैयार हो चुका था।[६] गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के अनुसार नवीन मन्दिर की पूर्ति तथा उसमें श्रीनाथ जी का पाटोत्सव संवत् १५७६ वि० में हुआ था।[७] इसलिए कुम्भनदास जी की राजा मानसिंह से

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२१।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२१।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२१।
४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२३ तथा १२४।
५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२४।
६—"तिन दिनन में श्रीनाथ जी की सेवा वैभव सों होत हुती, बड़ो मन्दिर सिद्ध भयो हुतो।" अष्टछाप, डा० वर्मा पृ० ७१।
७—"और जो बड़ो मन्दिर सिद्ध भयो हतो तामें श्रीनाथ जी कूँ श्रीआचार्य जी महाप्रभून ने संवत् १५७६ वैशाख बदी ३ अक्षय तृतीया के दिन पाट बैठायो।" गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० १६।

भेंट संवत् १५७६ वि० के थोड़े समय बाद हुई थी। कुम्भनदास जी ने उस समय एक पद यह गाया—

राग नट

रूप देखि नैंना पल लागै नाहीं।
गोवर्द्धनधर के अंग-अंग प्रति निरखि नैन मन रहत तहीं।
कहा कहों कछु कहत न आवै, चित्त चोरयो माँगि वै दही।
कुम्भनदास प्रभु के मिलन की सुन्दर बात सखियन सों कही।

राजा मानसिंह कुम्भनदास के कीर्तनों से ऐसे प्रभावित हुये कि दूसरे दिन वे चन्द्र सरोवर पर कुम्भनदास से मिलने गये। उस समय वे भगवान् के सानुभव में मग्न थे। थोड़ी देर में उनकी चेतना खुली तो उन्होंने अपनी भतीजी से बैठने के लिए आसन और तिलक करने के लिए आरसी (दर्पण) माँगे। उनकी भतीजी ने उत्तर दिया—"बाबा, आसन पड़िया खाय के आरसी पी गई।" तब कुम्भनदास ने कहा—"तो और आसन करिके ले आउ।" इस वार्तालाप को सुनकर मानसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने ही में वह लड़की, एक घास का पूरा और कटोरी में पानी भर के ले आई और उस पूरा पर बैठकर तथा कटोरी के पानी में मुख देखकर कुम्भनदास जी ने तिलक किया। उस समय राजा मानसिंह ने जाना कि कुम्भनदास जी के घर द्रव्य का बहुत सङ्कोच है।[1] राजा मानसिंह ने अपनी सोने की आरसी मँगाई और कुम्भनदास जी के सामने पेश की। उस पर कुम्भनदास जी ने कहा—"भैया, हमारे तो छानि के घर हैं जो यह आरसी हमारे घर में होय तो याके पीछे कोई हमारो जीव लेय, तासों हमारे नाहीं चहियत है।" तब राजा मानसिंह ने हजार मोहरों की एक थैली कुम्भनदास जी के आगे रक्खी। उस पर भी कुम्भनदास ने कहा—"यह हमारे काम की नाहीं है, हमारे तो खेती होत है तामें धान उपजत हैं सो हम खात हैं और कछू हमको चहियत नाहीं।"[2] राजा मानसिंह ने फिर जमुनावतो गाँव कुम्भनदास के नाम करने को कहा। फिर भी कुम्भनदास ने अपने त्याग की टेक न छोड़ी और कहा—"जो मैं ब्राह्मण तो नाहीं जो तेरो उदक लेऊँ, और जो, तेरे देनों होय तो काहू ब्राह्मण को दीजियो, मोको तिहारो कछु नाहीं चहियत है।" कुम्भनदास ने राजा को एक करील का और एक बेर का वृक्ष दिखाकर कहा—"उष्णकाल में तो मोदी करील है सो फूल और टेंटी देत है, और सीतकाल को मोदी झाड़ है सो बेर बहोत देत है सो ऐसे काम चल्यो जात है।"[3] राजा इस महान त्याग पर चकित हो गया। उसके मुख से सहसा

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १२८।
२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १२६।
३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १२६, १३०।

राग सारङ्ग

किते दिन ह्वै जु गए बिनु देखे ।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखे ।
वह सोभा वह कान्ति बदन की कोटिक चन्द बिसेषे ।
वह चितवनि वह हास मनोहर वह नागर नट वेषे ।
स्यामसुन्दर सङ्ग मिलि खेलन की आवत जीय उपेषे ।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन जीवन जनम अलेषे ।[1]

जब गुसाईं जी ने कुम्भनदास का यह विरह-वेदना-पूर्ण पद सुना तो उन्होंने कुम्भनदास के पास जाकर कहा,—"कुम्भनदास जी, जब तुम्हारी यह दशा है तो तुम्हारा परदेश हो चुका, जाओ गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन करो।" कुम्भनदास जी गुसाईं जी की आज्ञा पाकर रोम-रोम से प्रसन्न हो गये। वे तुरन्त उत्थापन के दर्शनों पर मन्दिर में आये और उन्होंने श्रीनाथ जी के समक्ष यह पद गाया—

राग सारङ्ग

जो पै चोप मिलन की होय ।
तो क्यों रहे ताहि बिनु देखे लाख करो जिन कोय ।
जो यह विरह परस्पर व्यापै तो कुछ जीय बनैं ।
लोक लाज कुल की मर्यादा एको चित न गनैं ।
कुम्भनदास प्रभु जाय तन लागी और न कछू सुहाय ।
गिरधरलाल तोहि बिनु देखे छिन छिन कलप बिहाय ।[2]

उस समय श्रीनाथ जी के समक्ष कुम्भनदास जी ने प्रार्थना की,—"महाराज! मोको यही चहियत हतो और यह अभिलाषा हती, जो तुमसों विछोय न होय।"[3] इस प्रसङ्ग से श्रीनाथ जी में कुम्भनदास की अगाध आसक्ति का परिचय मिलता है।

एक बार गुसाईं विट्ठलनाथ जी का जन्म-दिवस आया। रामदास चौहान, कुम्भनदास आदि वैष्णवों ने उस दिवस को बड़े समारोह के साथ मनाया। गुसाईं जी उस दिन गोकुल में थे। सब वैष्णवों ने चन्दा डालकर श्रीनाथ जी का विशेष तैयारी के साथ भोग बनाया। कुम्भनदास जी के यहाँ धन का तो सदैव अभाव रहता था ही, परन्तु गुसाईं जी के प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। उन्होंने अपने दो पड्डे और दो पड़िया बेचकर पाँच रुपये

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२६ तथा लेखक के पास की ८४ वैष्णवन की वार्ता।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १४१ तथा लेखक के पास की ८४ वैष्णवन की वार्ता।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १४१।

प्रशंसा निकली—"धन्य है, जिनके वृक्ष मोदी हैं, जो मैंने आज ताईं बड़े-बड़े त्यागी वैरागी देखे, परन्तु ये गृहस्थ, जो ऐसे त्यागी हैं, सो ऐसे धरती पर नाहीं हैं।"[१] राजा मानसिंह ने आग्रहपूर्वक कुम्भनदास से कुछ आज्ञा करने को कहा। इस पर कुम्भनदास जी ने कहा—"आज पाछे तुम हमारे पास कबहूँ मति आइयो।" फिर राजा मानसिंह ने दण्डवत की और उनकी सराहना करते हुये कहा—"तुम धन्य हो, माया के भक्त तो मैं सगरी पृथ्वी में फिरयो, सो बहोत देखे परन्तु श्रीठाकुर जी के साँचे भक्त तो एक ही तुम देखे।"[२] इस घटना से कुम्भनदास के महान् त्याग का परिचय मिलता है।

एक बार, श्री हितहरिवंश जी, स्वामी हरिदास जी आदि भक्त कुम्भनदास के उत्कृष्ट काव्य और कीर्तन की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने आये और उनसे कहा,—"कुम्भनदास जी आपने युगल स्वरूप के कीर्तन तो बहुत किये हैं, परन्तु स्वामिनी जी के कीर्तन हमने आपके नहीं सुने।" तब कुम्भनदास जी ने स्वामिनी जी का एक पद बनाकर गाया।[३] श्री हितहरिवंश जी तथा श्री स्वामी हरिदास जी कुम्भनदास जी के कीर्तन सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और उनके काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इस प्रसंग से कुम्भनदास के काव्य की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है।

एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने व्रज से द्वारिका, गुजरात जाने का विचार किया।[४] उन्होंने अपने साथ कुम्भनदास जी को भी ले लिया। यात्रा से एक दिन पहले वे अप्सरा कुण्ड पर ठहरे। कुम्भनदास जी की श्रीनाथ जी में इतनी अगाध आसक्ति थी कि उनको बिछुड़ना असह्य हो गया। कुम्भनदास विचार करते-करते गाने लगे—

कहिये कहा कहिबे की होय।
प्राननाथ बिछुरन की वेदन जानत नाहिन कोय।[५]

उसी समय श्रीनाथ जी के उत्थापन का समय हुआ। कुम्भनदास जी के हृदय में श्रीनाथ जी का विरह उमड़ आया और आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे गुसाईं जी के डेरा के निकट एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर मन्द स्वर में गाने लगे—

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२०।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२०।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२४। "कुँवरि राधिके तुव सकल सौभाग्य सीमा,-या वदन पर कोटिसत चन्द्र वारि डारौं।"

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२६।
'गुसाईं जी ने यह यात्रा सम्वत् १६२१ में की।' काँकरौली का इतिहास। ले० प्रो० कण्ठमणि शास्त्री जी, पृ० ६१।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२८।

राग सारङ्ग

किते दिन ह्वै जु गए बिनु देखे ।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखे ।
वह सोभा वह कान्ति बदन की कोटिक चन्द बिसेषे ।
वह चितवनि वह हास मनोहर वह नागर नट'वेषे ।
स्यामसुन्दर सङ्ग मिलि खेलन की आवत जीय उपेषे ।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन जीवन जनम अलेषे ।[1]

जब गुसाईं जी ने कुम्भनदास का यह विरह-वेदना-पूर्ण पद सुना तो उन्होंने कुम्भनदास के पास जाकर कहा,—"कुम्भनदास जी, जब तुम्हारी यह दशा है तो तुम्हारा परदेश हो चुका, जाओ गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन करो।" कुम्भनदास जी गुसाईं जी की आज्ञा पाकर रोम-रोम से प्रसन्न हो गये। वे तुरन्त उत्थापन के दर्शनों पर मन्दिर में आये और उन्होंने श्रीनाथ जी के समक्ष यह पद गाया—

राग सारङ्ग

जो पै चोप मिलन की होय ।
तौ क्यों रहे ताहि बिनु देखे लाख करौ जिन कोय ।
जो यह बिरह परस्पर व्यापै तौ कुछ जीय बनैं ।
लोक लाज कुल की मर्यादा एकौ चित न गनैं ।
कुम्भनदास प्रभु जाय तन लागी और न कछू सुहाय ।
गिरधरलाल तोहि बिनु देखे छिन छिन कलप बिहाय ।[2]

उस समय श्रीनाथ जी के समक्ष कुम्भनदास जी ने प्रार्थना की,—"महाराज ! मोको यही चहियत हतो और यह अभिलाषा हती, जो तुमसों बिछोय न होय।"[3] इस प्रसङ्ग से श्रीनाथ जी में कुम्भनदास की अगाध आसक्ति का परिचय मिलता है।

एक बार गुसाईं विट्ठलनाथ जी का जन्म-दिवस आया। रामदास चौहान, कुम्भनदास आदि वैष्णवों ने उस दिवस को बड़े समारोह के साथ मनाया। गुसाईं जी उन दिन गोकुल में थे। सब वैष्णवों ने चन्दा डालकर श्रीनाथ जी का विशेष तैयारी के साथ भोग बनाया। कुम्भनदास जी के यहाँ धन का तो सदैव अभाव रहता था ही, परन्तु गुसाईं जी के प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। उन्होंने अपने दो पड्डे और दो पड़िया बेचकर पाँच रुपये

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १३१ तथा लेखक के पास की ८४ वैष्णवन की वार्ता।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १४। तथा लेखक के पास की ८४ वैष्णवन की वार्ता।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १४१।

चन्दे में दिये। उस दिन कुम्भनदास जी ने बड़े हर्ष और प्रेम के साथ गोस्वामी जी की अनेक बधाइयाँ बनाकर गाईं। जब गोस्वामी जी को कुम्भनदास के चन्दे में रुपये देने की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने कुम्भनदास से पूछा—"कुम्भनदास जी, आपने चन्दा कहाँ से दिया? आपके घर तो रुपये थे नहीं।" इस पर कुम्भनदास जी ने अपनी भक्ति प्रकट करते हुये गुसाईं जी से कहा,—"महाराज! मेरो घर कहाँ है! मेरो घर तो आपके चारणारविन्द में है जो यह तो आपको है। अपनो शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचि के आपके अर्थ लागे तब वैष्णव सिद्ध होय, जो महाराज हम ससारी गृहस्थ है, सो हमसों वैष्णव धर्म कहा बने, यह तो आपकी कृपा है, दीनि जानि के करत हो।" गुसाईं जी का हृदय कुम्भनदास की इस दीनता पर भर आया और वे उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।[1]

कुम्भनदास का स्वभाव, चरित्र तथा उनकी सम्पादित योग्यता:—

वार्ता से ज्ञात होता है कि कुम्भनदास जी बाल्यकाल ही से त्यागी और सत्यप्रिय व्यक्ति थे।[2] इनके लौकिक आश्रय के त्याग और निर्लोभता का परिचय अकबर बादशाह तथा राजा मानसिंह के भेंट के प्रसङ्गों से ज्ञात होता है। ये बड़े सन्तोषी जीव थे, जो कुछ अपने परिश्रम से खेती में उपज होती थी, बस उसी पर अपना और अपने कुटुम्ब का निर्वाह करते थे। इनका जीवन सादा था, विचार उच्च थे। ये सदैव पैदल ही चलते थे, सवारी पर नहीं बैठते थे, यह बात भी वार्ता से विदित है।[3] राजा मानसिंह को इन्होंने अपने मोदी, करील और बेर के वृक्ष बताये थे जिससे ज्ञात होता है कि इनका हृदय कितना निस्पृह, कितना निर्लिप्त और कितना सन्तोषी था! इस पर राजा मानसिंह ने, इनकी यह उचित ही प्रशंसा की थी—"तुम धन्य हो, माया के भक्त तो, मैं सगरी पृथ्वी में फिरयो, सो बहुत देखे परन्तु श्री ठाकुर जी के साँचे भक्त तो एक ही तुम देखे।"[4]

एक बार कुम्भनदास जी ने अपने घर से श्रीनाथ जी को छाक भेजी, उस छाक के वर्णन से इनके सादा, विनम्र जीवन तथा सादा भोजन का परिचय मिलता है—'ज्वार की महेरी, दही-दूध, बेझरि की रोटी, और टेटीं कौ साक सँधानों।[5] यद्यपि कुम्भनदास जी के

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १६३-१६७ तक।

२—"कुम्भनदास को बालपने ते गृहासक्ति नाहीं और झूठ बोलते नाहीं, और पापादिक कर्म नाँहीं करते, सूधे ब्रजवासी,को रीति सों रहते।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०५ तथा लेखक के पास सुरक्षित, ८४ वैष्णवन की वार्ता।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११४ तथा पृ० १२०।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ०१२०

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १७२।

घर धन का सदैव सङ्कोच था, परन्तु कभी इन्होंने द्रव्य प्राप्ति के विचार से भगवद् आश्रय को छोड़ अन्य किसी सांसारिक व्यक्ति का आश्रय ग्रहण नहीं किया। इनकी भक्ति की प्रशंसा तो गुसाईं जी ने अनेक स्थानों पर अपने मुख से की थी। इनके गोलोकवास के बाद गोस्वामी जी ने रामदास चौहान से कहा,—"जो ऐसे भगवदीय अन्तर्धान भये अब भूमि में भक्तन को तिरोधान भयो।।[1]" कुम्भनदास जी के पदों से उनकी अनन्य और अगाधभक्ति का परिचय मिलता है। ध्रुवदास जी ने भी कुम्भनदास की भक्ति की प्रशंसा की है।[2]

वार्ता से कुम्भनदास जी की काव्य रचना के विषय में भी अनेक बातें ज्ञात होती है। वार्ता से विदित होता है कि शरणागति के समय कुम्भनदास को कृष्ण की कुञ्ज-लीला के रस का अनुभव हुआ था। उन्होंने उसी रस में अपने मन को रमाया और सम्पूर्ण[3] कीर्तन युगल स्वरूप सम्बन्धी रस के ही किये।[4] कुम्भनदास के पद उनके जीवन-काल में ही देश में दूर दूर प्रसिद्ध हो गये थे। ८४ वार्ता में इनके काव्य की जो प्रशंसा मिलती है उसका समर्थन इनके उपलब्ध पदों के पढ़ने से होता है।

अन्त समय और गोलोकवास

वार्ताकार कहता है कि पीछे कुम्भनदास जी की देह बहुत अशक्त होगई। एक बार ये आन्योर के पास सङ्कर्षण कुण्ड के ऊपर जा बैठे। इनके अशक्त होने के कारण इनके पुत्र ने कहा—"गोद में लेकर आपको जमुनावतो गाँव में ले चलें।" तब कुम्भनदास जी ने कहा कि अब तो दो चार घड़ी में देह छूटेगी इसलिए अब मैं यहीं रहूँगा।[5] राजभोग के दर्शनों के समय कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास से गोस्वामी जी को ज्ञात हुआ कि कुम्भनदास जी सङ्कर्षण कुण्ड पर अशक्त बैठे हैं। गोस्वामी जी कुम्भनदास जी के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे पूछा—"कुम्भनदास जी तुम्हारा मन किस लीला में लगा है।" कुम्भनदास जी अशक्त थे उनसे उठा नहीं गया। उन्होंने यह पद गाया—

१—अष्टछाप, काँकरौली पृ० १७२।
२—भक्तनामावली, ध्रुवदास, छन्द नं० ११।
३—'सो कुम्भनदास सगरे कीर्तन जुगल स्वरूप सम्बन्धी किये। सो बधाई पलना, बाल लीला गाई नाहीं सो ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये।'
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।
४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।
५—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ ११७।
६—अष्टछाप काँकरौली, पृ० १७३।

चन्दे में दिये। उस दिन कुम्भनदास जी ने बड़े हर्ष और प्रेम के साथ गोस्वामी जी की अनेक बधाइयाँ बनाकर गाईं। जब गोस्वामी जी कोकुम्भनदास के चन्दे में रुपये देने की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने कुम्भनदास से पूछा—"कुम्भनदास जी, आपने चन्दा कहाँ से दिया? आपके घर तो रुपये थे नहीं।" इस पर कुम्भनदास जी ने अपनी भक्ति प्रकट करते हुये गुसाईं जी से कहा,—"महाराज! मेरो घर कहाँ है! मेरो घर तो आपके चारणारविन्द में है जो यह तो आपको है। अपनो शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचि के आपके अर्थ लागे तब वैष्णव सिद्ध होय, जो महाराज हम संसारी गृहस्थ है, सो हमसों वैष्णव धर्म कहा बने, यह तो आपकी कृपा है, दीनि जानि के करत हो।" गुसाईं जी का हृदय कुम्भनदास की इस दीनता पर भर आया और वे उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।[1]

वार्ता से ज्ञात होता है कि कुम्भनदास जी बाल्यकाल ही से त्यागी और सत्यप्रिय व्यक्ति थे।[2] इनके लौकिक आश्रय के त्याग और निर्लोभता का परिचय अकबर बादशाह तथा राजा मानसिंह के भेंट के प्रसङ्गों से ज्ञात होता है। ये बड़े सन्तोषी जीव थे, जो कुछ अपने परिश्रम से खेती में उपज होती थी, बस उसी पर अपना और अपने कुटुम्ब का निर्वाह करते थे। इनका जीवन सादा था, विचार उच्च थे। ये सदैव पैदल ही चलते थे, सवारी पर नहीं बैठते थे, यह बात भी वार्ता से विदित है।[3] राजा मानसिंह को इन्होंने अपने मोदी, करील और बेर के वृक्ष बताये थे जिससे ज्ञात होता है कि इनका हृदय कितना निस्पृह, कितना निर्लिप्त और कितना सन्तोषी था! इस पर राजा मानसिंह ने, इनकी यह उचित ही प्रशंसा की थी—"तुम धन्य हो, माया के भक्त तो, मैं सगरी पृथ्वी में फिरयो, सो बहुत देखे परन्तु श्री ठाकुर जी के साचे भक्त तो एक ही तुम देखे।"[4]

कुम्भनदास का स्वभाव, चरित्र तथा उनकी सम्पादित योग्यता:—

एक बार कुँम्भनदास जी ने अपने घर से श्रीनाथ जी को छाक भेजी, उस छाक के वर्णन से इनके सादा, विनम्र जीवन तथा सादा भोजन का परिचय मिलता है—'ज्वार की महेरी, दही-दूध, बेझरि की रोटी, और टेटीं कों साक सँधानों।[5] यद्यपि कुम्भनदास जी ने

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १६३-१६७ तक।

२—"कुम्भनदास को बालपने ते गृहासक्ति नाहीं और झूठ बोलते नाहीं, और पापादिक कर्म नाँहीं करते, सूधे ब्रजवासी की रीति सों रहते।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०४ तथा लेखक के पास सुरक्षित, ८४ वैष्णवन की वार्ता।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ११६ तथा पृ० १२०।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२०

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७२।

घर धन का सदैव सङ्कोच था, परन्तु कभी इन्होंने द्रव्य-प्राप्ति के विचार से भगवद्-आश्रय को छोड़ अन्य किसी सांसारिक व्यक्ति का आश्रय ग्रहण नहीं किया। इनकी भक्ति की प्रशंसा तो गुसाईं जी ने अनेक स्थानों पर अपने मुख से की थी। इनके गोलोकवास के बाद गोस्वामी जी ने रामदास चौहान से कहा,—"जो ऐसे भगवदीय अन्तर्धान भये, अब भूमि में भक्तन को तिरोधान भयो।।[1]" कुम्भनदास जी के पदों से उनकी अनन्य और अगाधभक्ति का परिचय मिलता है। ध्रुवदास जी ने भी कुम्भनदास की भक्ति की प्रशंसा की है।[2]

वार्ता से कुम्भनदास जी की काव्य-रचना के विषय में भी अनेक बातें ज्ञात होती हैं। वार्ता से विदित होता है कि शरणागति के समय कुम्भनदास को कृष्ण की कुञ्ज-लीला के रस का अनुभव हुआ था। उन्होंने उसी रस में अपने मन को रमाया और सम्पूर्ण कीर्तन युगल-स्वरूप-सम्बन्धी रस के ही किये।[3] कुम्भनदास के पद उनके जीवन-काल में ही देश में दूर दूर प्रसिद्ध हो गये थे। ८४ वार्ता में इनके काव्य को जो प्रशंसा मिलती है उसका समर्थन इनके उपलब्ध पदों के पढ़ने से होता है।

अन्त समय और गोलोकवास

वार्ताकार कहता है कि पीछे कुम्भनदास जी की देह बहुत अशक्त होगई। एक बार ये आन्योर के पास सङ्कर्षण कुण्ड के ऊपर जा बैठे। इनके अशक्त होने के कारण इनके पुत्र ने कहा—"गोद में लेकर आपको जमुनावती गाँव में ले चलें।" तब कुम्भनदास जी ने कहा कि अब तो दो चार घड़ी में देह छूटेगी, इसलिए अब मैं यहीं रहूँगा।[4] राजभोग के दर्शनों के समय कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास से गोस्वामी जी को ज्ञात हुआ कि कुम्भनदास जी सङ्कर्षण कुण्ड पर अशक्त बैठे हैं। गोस्वामी जी कुम्भनदास जी के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे पूछा,—"कुम्भनदास जी तुम्हारा मन किस लीला में लगा है।" कुम्भनदास जी अशक्त थे, उनसे उठा नहीं गया। उन्होंने यह पद गाया—

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७५।

२—भक्तनामावली, ध्रुवदास, छन्द नं० ११।

३—"सो कुम्भनदास सगरे कीर्तन जुगल-स्वरूप-सम्बन्धी किये। सो बधाई पलना, बाल-लीला गाई नाहीं, सो ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ ११७।

६—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७२।

राग सारङ्ग

लाल तेरी चितवन चितहि चुरावै।
नन्द ग्राम वृषभानपुरा बिच मारग चलन न पावै।
हों भरिहों डरिहों नहि काहू ललिता दृगन चलावे।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धनधर धर्यो सो क्यों न बतावे।[1]

इसको सुनकर गोस्वामी जी ने फिर पूछा—"कुम्भनदास तुम्हारा अन्त.करण कहाँ है!" कुम्भनदास ने फिर गाया—

राग केदारा

रसिकनी रस में रहत गडी।
कनक बेलि वृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढी।
विहरत श्रीगिरधरन लाल सँग, कौने पाठ चढी।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्द्धन धर रति रस केलि बढ़ी।[2]

यह गाकर कुम्भनदास ने देह छोड़ दी। वार्ताकार कहता है कि "कुम्भनदास जी देह छोड़ि निकुञ्ज लीला में जाय के प्राप्त भये।"[3] कुम्भनदास जी ने अन्त समय में भी युगल-स्वरूप का ही वर्णन किया और उसी के ध्यान में प्राण समर्पण किये। इसके बाद चतुर्भुजदास आदि उनके सब बेटों ने उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

जन्म, शरण गति, और गोलोकवास की तिथियाँ

पीछे कहा गया है कि जिस समय गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ था, उस समय कुम्भनदास जी की आयु दश वर्ष की थी। श्रीगोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य संवत् १५३५ वि० बैसाख बदी ११ बृहस्पतिवार को हुआ।[4] इस हिसाब से कुम्भनदास जी का जन्म संवत् लगभग १५२५ वि० सिद्ध होता है। गोवर्द्धननाथ जी की *वार्ता से ज्ञात होता है कि सम्वत् १५४९ वि० में श्री वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी* को छोटे मन्दिर में पाट बैठाया।[5] चौरासी वार्ता तथा गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७४ तथा ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७४ तथा ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७४ तथा ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।
४—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ४।
५—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ९ तथा ११।

की वार्ता से ज्ञात होता है कि उसी समय कुम्भनदास जी स्त्री सहित आचार्य जी की शरण आये।[1] इस प्रकार कुम्भनदास जी का शरणागति काल सम्वत् १५४९ वि० है।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने प्रथम साम्प्रदायिक छप्पन भोग का उत्सव सवत् १६१५ वि० में किया था। इस बात का प्रमाण काँकरौली और नाथद्वार के मन्दिरों में प्रचलित परम्परा से मिलता है। उस समय तक आठों अष्टछाप भक्त जीवित थे, ऐसी भी किंवदन्ती उक्त सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। आठों कवियों के, छप्पन भोग के पद भी, सम्प्रदाय में गाये जाते हैं। कुम्भनदास जी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातों बालकों की बधाई गाई है। इससे सिद्ध होता है कि कुम्भनदास जी श्री घनश्याम जी के जन्म-समय स० १६२८ वि० तक जीवित थे। पीछे कहा गया है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने व्रज-गोकुल निवास (स० १६२८ वि०) के बाद गुजरात की दो यात्राएँ वहाँ से कीं, एक सम्वत् १६३१ वि० में और दूसरी सवत् १६३८ वि० में। वार्ता में, जो कुम्भनदास जी के गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के साथ गुजरात जाने और उनके श्रीनाथ जी के प्रति विरह का वर्णन है,[2] वह सम्वत् १६३१ वि० की यात्रा[3] के समय की घटना प्रतीत होती है। इससे सिद्ध है कि कुम्भनदास जी सम्वत् १६३१ वि० तक जीवित थे।

८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि अकबर ने कुम्भनदास को फतहपुर सीकरी बुलवाया था और वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा था कि दरबार खूब सजा हुआ है और बहुत से डेरे पड़े हैं। इतिहास से विदित है कि फतहपुर सीकरी नगर और राजभवन का निर्माण लगभग सन् १५७० ई०[4] (सम्वत् १६२७ वि०) में आरम्भ हुआ और सन् १५८० ई० तक बनता रहा। फतहपुर सीकरी नगर केवल सन् १५८५ ई० तक ही अकबर की राजधानी[5] रहा। इस सन् के बाद अकबर का दरबार इस स्थान पर कभी नहीं हुआ। सन् १५७५ ई० में धार्मिक प्रार्थना तथा कृत्यों के लिये वहाँ 'इबादतखाना' बना था। इससे हम कह सकते हैं कि अकबर ने कुम्भनदास जी को सन् १५७० ई० से सन् १५८५ ई० तक के किसी समय में बुलाया होगा। अकबर की जीवनी से, जैसा कि सूरदास के जीवन भाग में कहा जा चुका है, विदित होता है कि उसकी मुसलमान धर्म की कट्टर मनो

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२८।

३—काँकरौली का इतिहास, ले० कण्ठमणि शास्त्री, पृ० ६१।

४—अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० १०२ तथा ४३७।

५—अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ४३७।

वृत्ति छूटकर हिन्दू और अन्य धर्मों के महात्माओं से मिलने और उनके धार्मिक विचारों को सुनने की उदार प्रवृत्ति सन् १५७४[1] ई० (सम्वत् १६३१ वि०) से सन् १५८२ ई० (सम्वत् १६३९ वि०) तक रही। इसी बीच में उसने सन् १५७९[2] ई० में लगभग सब धर्मों के प्रतिनिधियों की धार्मिक बहसें फतहपुर सीकरी में ही सुनीं। सम्भव है, इन बहसों के सुनने के काल में ही उसने कुम्भनदास की भक्ति की प्रशंसा सुनकर उनको राजधानी में बुलाया हो। वार्ताकार का, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कहना है कि उस समय वहाँ बहुत से डेरे पड़े हुये थे और दरबार सजा था। इतिहास से यह भी विदित होता है कि अकबर ने सन् १५८१ ई० में काबुल से लौटकर अपनी राजधानी फतहपुर सीकरी में जीत की खुशी में उत्सव[3] मनाया था और उस दरबार में सम्पूर्ण भारतवर्ष के अधीन-सूबेदार (गवर्नर) आये थे। सम्भव है, जिन डेरों और सजावटों का वर्णन वार्ता में है वे इसी उत्सव में बाहर से आनेवाले लोगों के ठहरने के लिए हों। इससे हम कुम्भनदास और अकबर की भेंट सन् १५८१ ई० अथवा स० १६३८ में रख सकते हैं। उक्त कथन से हम कम से कम इतना तो अनुमान लगा सकते हैं कि कुम्भनदास जी सन् १५८१ ई० नहीं तो १५७९ ई० अथवा सम्वत् १६३६ वि० तक तो जीवित थे ही।

८४ वैष्णवन की वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास जी की मृत्यु के समय कुम्भनदास जी जीवित थे।[4] उक्त वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि परमानन्ददास के गोलोकवास से पहले ही कुम्भनदास का निधन हो चुका था।[5] लेखक ने पीछे सूरदास का गोलोकवास लगभग स० १६३८ वि० या सम्वत् १६३९ वि० माना है और परमानन्ददास जी का गोलोकवास काल सम्वत् १६४० वि० माना है। इसलिये कुम्भनदास जी का गोलोकवास काल सवत् १६४० वि० से कुछ पहले और उपर्युक्त कथन के अनुसार सम्वत् १६३८ वि० के बाद होना चाहिए। लेखक का अनुमान है कि कुम्भनदास का निधन लगभग सम्वत् १६३९ वि० में हुआ। उस समय उनकी आयु लगभग ११४ वर्ष की थी। वल्लभसम्प्रदाय में यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि अष्टसखाओं में कुम्भनदास जी ने बहुत बड़ी, लगभग ११३ वर्ष की आयु पाई थी।

कृष्णदास अधिकारी के जीवन-चरित्र की रूपरेखा।

कृष्णदास अधिकारी का जन्म गुजरात में राजनगर (अहमदाबाद) राज्य के एक

१—अकबर दी ग्रेट मुगल, स्मिथ, पृ० ३४८।
२—अकबर दी ग्रेट मुगल, स्मिथ, पृ० ४२३ तथा ४२४।
३—केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ४ पृ० १२८।
४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४१।
५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७।

चिलोतरा नामक गाँव म हुआ[1]। अन्य किसी ग्रन्थ में कृष्णदास का गुजराती होना नहीं लिखा और न उनके जन्म-स्थान का ही उल्लेख हुआ है। हरिराय जी की भावप्रकाश वाली ८४ वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास अधिकारी का जन्म 'कुनबी' पटेल कुल में हुआ था[2]। 'कुनबी' शूद्र जाति है, क्योंकि वार्ता मे कई स्थानों पर कृष्णदास को शूद्र कहा गया है[3]। श्री वल्लभाचार्य जी तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय मे सभी जाति के लोगों को शरण दी थी। उस समय वल्लभशरण मे आने वाले अनेक नीच जाति के लोगों ने भी अपनी भक्ति और योग्यता से वह स्थान पाया था जो उच्चकुल के ब्राह्मणों को भी उस प्रकार के साधन बिना कठिन था। द्विजाति के बड़े प्रतिष्ठित लोग भी इन भक्तो के समक्ष नतमस्तक रहते थे।

जन्म-स्थान, जाति कुल

माता-पिता, कुटुम्ब, गृहस्थी

कृष्णदास के पिता यद्यपि शूद्र जाति के थे, परन्तु अपने गाँव मे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वे उसके मुखिया थे। गाँव के हाकिम होने पर भी वे एक धन-लोलुप व्यक्ति थे और असत्य आचरण से भी धनोपार्जन करते थे[4]। जब कृष्णदास की आयु बारह-तेरह वर्ष की थी, उसी समय उनके गाँव में एक बनजारा आया। उसने चिलोतरा गाँव मे १४ हजार रुपये का व्यापार किया। जब उन रुपयों को लेकर वह रात्रि को सोया तो कृष्णदास के पिता के भेद से चोरों ने उसका सब द्रव्य चुरा लिया जिसमें से ११ हजार रुपये कृष्णदास के बाप ने लिये[5]। कृष्णदास एक सत्यभाषी बालक था, उसने भेद खोल

१—"सो ये कृष्णदास गुजरात में एक चिलोतरा गाँव है तहाँ एक कुनबी के घर जन्मे" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ११७ तथा लेखक के पास की हरिराय-कृत, भावप्रकाश वाली ८४ वार्ता।

नोट-नाथद्वार में श्री कृष्ण भण्डार में आचार्य जी के समय से ही हिसाब गुजराती भाषा में लिखे जाने की अब तक परम्परा चली आती है। उक्त भण्डार के अधिकारी जी का कहना है कि गुजराती में हिसाब लिखने की प्रथा कृष्णदास अधिकारी ने चलाई थी, क्योंकि वे गुजरात के रहनेवाले थे। इस परम्परागत किंवदन्ती और और रीति से वार्ता के कथन की पुष्टि होती है।

२—"जा समय कृष्णदास या कुनबी पटेल घर जन्मे।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७,

३—अष्टछाप काँकरौली, पृ० ११२,

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७ तथा १७८।

दिया और राजनगर के राजा के सामने पिता के विरुद्ध गवाही दे दी[१]। इस पर इनके पिता मुखिया के पद से हटा दिये गये। वार्ता में लिखा है कि पिता के असत्य आचरण से इनको घर से छोटी अवस्था में ही निकल जाना पड़ा[२]। घर से निकल कर कुछ दिन कृष्णदास तीर्थों में पर्यटन करते रहे और फिर श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आये[३]। इन्होंने अपना विवाह नहीं किया। इसलिए इनके स्त्री न थी और न कोई सन्तान।

शिक्षा

कृष्णदास की शिक्षा इनके बाल्य काल में चिलोतरा गाँव में ही हुई होगी और यह शिक्षा गुजराती भाषा के माध्यम से हुई होगी; क्योंकि ये श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारी होने के बाद वहाँ का हिसाब गुजराती भाषा में ही करते थे। साधु-सङ्गति की ओर इनका विशेष ध्यान था। इसलिए लौकिक शिक्षा के अतिरिक्त उपदेशात्मक शिक्षा उन्हें बाल्यकाल से साधु-महात्माओं के सङ्ग से ही मिली। पिता से यह शिक्षा नहीं मिली, क्योंकि वह तो स्वय एक असत्याचरण वाला व्यक्ति था। वार्ता में लिखा है कि जब ये पाँच वर्ष के थे तभी जहाँ कथा-वार्ता होती, वहाँ जाते थे, यद्यपि इनके माता पिता इन्हें बहुत रोकते थे[४]। वल्लभसम्प्रदाय में आने के बाद तो इन्होंने बहुत योग्यता का सम्पादन कर लिया था। व्रजभाषा के ये इतने बड़े पण्डित हो गये कि भक्त नाभादास ने इनकी व्रजभाषा की कविता को निर्दोष और पण्डितों द्वारा आदृत लिखा है[५]। हिसाब-किताब में ये बहुत कुशल थे। इसलिए श्री वल्लभाचार्य जी ने इन्हें मन्दिर का अधिकारी बनाया था। इनकी व्यावहारिक शिक्षा भी बढ़ी-चढ़ी थी। वार्ता में लिखा है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी इनकी व्यावहारिक बुद्धि की प्रशंसा किया करते थे।[६]

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

धन और पद छिन जाने के बाद पिता ने इनसे कहा था,—"तू या जन्म को फकीर है तासों तैने हम कों हू फकीर कियो है। अब तेरे मन में कहा है। तू घर ते कहूँ दूर चल्यो जा, न तोकों देखेंगे, न दुख होयगो[७]"। यह सुनकर कृष्णदास पिता को नमस्कार कर वहाँ से चल दिये। उस समय उनकी आयु तेरह वर्ष की थी।[८] उन्होंने सोचा कि व्रज में होते हुये सब तीर्थों में जाना चाहिए। कुछ दिन पर्यटन के बाद कृष्णदास

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८२।
४—अष्टछाप, काँकरौली पृ० १७७।
५—भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, पृ० ५८१, छन्द नं० ८१।
६—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १९६ तथा पृ० २४६।
७—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।
८—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७।

मथुरा आये और वहाँ से फिर गोवर्द्धन गये। उन्होंने सुना था कि गोवर्द्धन पर 'देवदमन' का नया मन्दिर बना है और दो चार दिन में वे उस मन्दिर में प्रवेश करेंगे।[1] कृष्णदास देवदमन-दर्शन की लालसा से ही गोवर्द्धन आये थे। कृष्णदास ने गोवर्द्धन नाथ के दर्शन किये। दर्शन मात्र से उनका मन भगवान् के स्वरूप में जा लगा। उसी समय वे श्री वल्लभाचार्य जी से मिले। रुद्रकुण्ड पर स्नान करने के बाद उन्होंने आचार्य से 'नाम' लिया। उसी समय वल्लभाचार्य जी ने गोवर्द्धननाथ जी के नये मन्दिर में सेवा का मण्डान किया था और बङ्गाली ब्राह्मणों को सेवा में रक्खा था। कृष्णदास की व्यावहारिक तथा कुशाग्र बुद्धि से आचार्यजी बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने कृष्णदास को भेंटिया[2] का कार्य सौंपा। कृष्णदास भेंट 'उघाने' के लिए परदेश जाते थे और जो भेंट आती उसे श्रीनाथ जी के बङ्गाली सेवकों को लाकर दे देते थे। भेंटिया का कार्य उन्होंने बड़े हित के साथ किया। कुछ समय बाद वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी (गोवर्द्धन नाथ) के मन्दिर का अधिकार इन्हें सौंप दिया।[3] उस कार्य को भी इन्होंने बड़ी योग्यता के साथ किया। कदाचित् उस समय कृष्णदास गान-विद्या और काव्य-रचना में प्रवीण नहीं थे। इसीलिए आचार्य जी ने उनको कीर्तन का कार्य नहीं सौंपा। भेंटिया-कार्य करने के समय में उन्होंने साम्प्रदायिक सिद्धान्त और सेवा का ज्ञान प्राप्त कर लिया और सूरदास जैसे परम-भक्तों के संसर्ग से गान और काव्य की कलाएँ भी सीख लीं।

मन्दिर के अधिकार का कार्य करने के साथ-साथ कृष्णदास भगवान् की भक्ति भी करते थे। उसी भक्ति के आवेश में उन्होंने समय-समय पर कृष्ण की लीलाओं का वर्णन पदों में किया। आचार्य जी ने भगवान् की तीन प्रकार की सेवाएँ, मनजा, धनजा और तनजा, बताई हैं[4]। उनमें से कृष्णदास ने श्रीनाथ जी की तनजा सेवा अधिक की। कृष्णदास के साम्प्रदायिक जीवन में कुछ ऐसी भी घटनाएँ हुई थीं, जो एक ओर तो उनके व्यावहारिक कौशल, बुद्धिमता, सिद्धान्त की दृढ़ता और परोपकारिता का प्रकाशन करती हैं, दूसरी ओर उनके चरित्र और विनम्र भक्ति-भाव की पुनीतता की ओर संकेत करती हैं। इन घटनाओं में एक, श्रीनाथ जी की सेवा से बङ्गाली सेवकों को कृष्णदास द्वारा निकाला जाना है। बङ्गालियों के निकालने में कृष्णदास ने बड़ी चालाकी और कठोर हृदयता से काम लिया था। इस घटना से उनकी अधिकार की उचित क्षमता, कूटनीतिज्ञता और व्यवहार-

---

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १८१।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १८२ तथा सन्तदास-कृत चौरासी-भक्त-नाममाला (अप्रकाशित)।
नोटः—'भेंटिया' का अर्थ है वैष्णवों से भेंट उघानेवाला।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १८६।

४—सिद्धान्त-मुक्तावली, श्लोक २, षोडश ग्रन्थ।

कौशल अवश्य प्रकट होते हैं; परन्तु साथ ही इस षटचक्र के कारण कृष्णदास एक उच्च कोटि के भक्त के पद से कुछ नीचे भी उतर जाते है।

इस घटना के बाद विट्ठलनाथ जी ने कृष्णदास को सर्वाधिकार सौंप दिया और सर्वाधिकार का दुशाला उढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"कृष्णदास तुमने बड़ी सेवा करी है, तासों अब सगरो अधिकार श्री गोवर्द्धननाथ जी को तुम ही करो, हम हू चूकें तो कहियो, जो कोई बात को सङ्कोच मत राखियो जो सगरे सेवक टहलुअन के ऊपर तिहारो हुकम, और की कहा है।"[1] आगे एक स्थान पर वार्ताकार कहता है—"और सगरे सेवकन के ऊपर कृष्णदास अधिकारी को मुखिया किये, सो जो काम होय सो पूछनो। सो श्री गुसाईं जी तो सेवा-शृङ्गार करि जायँ और काहू सों कछू कहे नाहीं। कोई बात कोई सेवक श्री गुसाईं जी सों पूछें तब श्री गुसाईं जी आप कहें जो कृष्णदास अधिकारी के पास जावो जो हम जानें नाहीं।"[2] एक बार आगरे के बाजार में[3] कृष्णदास एक मुग्धा वेश्या पर मोहित हो गये।[4] इन्होंने सोचा कि इसे श्री गोवर्द्धननाथ जी के पास ले चलें। रात्रि को उन्होंने उस वेश्या को अपने ठहरने के स्थान पर १०० रु० देकर बुलाया और उसका रात को गाना सुना। दूसरे दिन उस वेश्या को वे अपने साथ गोवर्द्धन ले गये। वहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष नाचते-नाचते वह परलोक को चली गई। वार्ताकार का कहना है कि उसको श्री गोवर्द्धन नाथ जी ने आप अङ्गीकार कर लिया। इस घटना पर श्री हरिराय जी ने भावप्रकाश में शङ्का उठाई है—"कृष्णदास जी आचार्य महाप्रभु जी का कृपापात्र सेवक जो सदैव ठाकुर जी पर मोहित रहनेवाला प्राणी जिनको अप्सरा-देवाङ्गना भी तुच्छ मालूम होती हैं, एक वेश्या पर क्यों मोहित हो गया। कृष्णदास तो परम ज्ञानवान थे।"[5] आगे हरिराय जी इस सन्देह का समाधान करते हुए कहते हैं—"कृष्णदास ने जो किया उसकी देखा-देखी जो करेगा सो बहिर्मुख होगा। वास्तव में वह वेश्या एक शापित दैवी जीव थी। प्रभु की प्रेरणा से कृष्णदास उस पर मोहित हुये और उन्होंने उसे श्री गोवर्द्धनधर की सेवा में समर्पित किया।"[6] इस घटना में कृष्णदास का कार्य साम्प्रदायिक दृष्टि से एक परोपकारपूर्ण कार्य कहा गया है; परन्तु लोक दृष्टि से, वेश्या को अपने पास बुलाने के कार्य में, इन्द्रियलोलुपता का भाव प्रतीत होता है।

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १३७।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०१ : २०२।
३—प्रियादास जी ने इस घटना को दिल्ली के बाजार में होना लिखा है।
भक्तमाल, सुधास्वादतिलक, रूपकला, पृ० ५८२।
४—'सो भीड़ सरकाय के या छोरी को रूप देखे तो वहाँ गान सुनके मोहित होय गये।' अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०१।
५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०१।
६—अष्टछाप, काँकरौली पृ० २०१ : १०।

कृष्णदास की एक छत्राणी गङ्गाबाई से बहुत मित्रता थी। वार्ताकार का कहना है—"कृष्णदास के सङ्ग तें गङ्गा छत्राणी को मन अलौकिक भयो।"[1] एक बार भोग की सामग्री पर गङ्गाबाई की दृष्टि पड़ गई; उससे श्री नाथ जी के लिए गुसाईं जी को भोग की सामग्री दुबारा बनवानी पड़ी। इससे अनुमान होता है कि गङ्गाबाई को गुसाईं जी अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। इस पर कृष्णदास ने श्री गुसाईं जी पर एक व्यङ्ग वाक्य कहा। किसी वैष्णव ने गुसाईं जी से कहा—महाराज आज प्रसाद बहुत बढ़िया बना है। कृष्णदास ने कहा—"जो आपुही करन हारे आपु ही आरोगन हारे, सो क्यों न स्वाद होय।"[2] इस पर गोस्वामी जी ने गङ्गाबाई और कृष्णदास के सम्बन्ध पर व्यङ्ग कसते हुए कहा—"जो तिहारो ही कियो भोग भोगत हैं।"[3] हरिराय जी ने वार्ता के इस स्थल पर टिप्पणी दी है—"सो यह कहि के दोऊ बात जताये, जो गङ्गाबाई छत्राणी सों प्रीति करि वाको बैठारि राखे, सो वाकी राजभोग की सामग्री पै दृष्टि परी सो यह तिहारो कार्य है और तुमने लीला में श्री स्वामिनी जी सों श्राप दिवायो सो तिहारो कार्य है सो तिहारे ही किये भोग भोगत हैं।"[3] गोस्वामी जी की यह बात कृष्णदास के मन में चुभ गई।

कृष्णदास के गङ्गाबाई से प्रेम करने में किसी अलौकिक-पूर्व कथा का सहारा डाल कर उस प्रेम को पवित्र रूप दिया जा सकता है। परन्तु जब पाठक गुसाईं जी के व्यङ्ग वाक्य पर हरिराय जी की टीका पढ़ता है—"सो प्रीति करि वाको बैठारि राखे," तो उसे कृष्णदास के चरित्र पर सन्देह होने लगता है।

इस घटना के फलस्वरूप एक और घटना भी हुई। कृष्णदास गुसाईं जी के वाक्य से चिढ़ गये। उन्होंने गुसाईं जी से बदला लिया। उन्होंने अपने अधिकार से मन्दिर में गुसाईं जी की सेवा बन्द कर दी और गुसाईं जी के बड़े भाई के पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी को सेवा-शृङ्गार का अधिकारी बना दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी परासौली में रहकर श्रीनाथ जी के वियोग में दिन बिताने लगे।[4] इस प्रकार छः महीने व्यतीत हो गये। इसी समय बीरबल गोकुल आये। उन्होंने गुसाईं जी के बड़े पुत्र श्री गिरिधर जी से गुसाईं जी के विषय में पूछा। गिरिधर जी ने गुसाईं जी की सेवा बन्द होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त बीरबल को कह सुनाया। इस पर बीरबल ने कुपित होकर आगरे में कृष्णदास को बन्दीखाने में डलवा दिया।[5] जब गोस्वामी विट्ठलनाथ को ज्ञात हुआ कि उनके कारण बीरबल ने

१—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २१८।
२—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २२०।
३—अष्टछाप, कांकरौली पृ० २२०।
४—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २२६।
५—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २२८।
६—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २३२।

कृष्णदास को बन्दीखाने में डाल दिया है तो उन्होंने प्रण किया कि जब तक कृष्ण-दास छूटकर नहीं आ जायगा तब तक अन्न जल न करूँगा। बीरबल गुसाईं जी का बहुत आदर करता था। उसे जब यह बात ज्ञात हुई तब उसने कृष्णदास को गुसाईं जी की कृपालुता और उसकी (कृष्णदास की) क्षुद्रता का बोध कराकर छोड़ दिया। इस घटना से कृष्णदास के अधिकार-प्रभुत्व का मिथ्या अहङ्कार प्रकट होता है। इसके बाद फिर कृष्णदास जी गुसाईं जी में अनन्य भक्ति-भाव रखने लगे। उन्होंने तब गुसाईं जी की स्तुति और प्रशंसा में अनेक पद गाये।

एक और महत्वपूर्ण घटना कृष्णदास के जीवन के अन्तकाल की है। किसी वैष्णव ने श्रीनाथ जी का कुआँ बनवाने के लिए कृष्णदास को ३०० रु० दिये थे। उन रुपयों में से सौ रुपये कृष्णदास ने छिपा लिये और दो सौ रुपयों से कुआँ बनवाया। एक दिन वे अधूरे कुएँ को देखने गये। वहाँ उनका पैर फिसल गया और उसी कुएँ में गिर गये।[1] लोगों ने उनको निकालने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका शरीर भी लोगों को नहीं मिला। वार्ताकार का कहना है कि वे फिर प्रेत बन गये। प्रेतरूप में ही उन्होंने एक दिन गोपीनाथ ग्वाल से कहा कि अमुक जगह सौ रुपये गड़े हैं। उन्हें लेकर गुसाईं जी अधूरे कुएँ को बनवा दें तो मेरी प्रेत योनि छूटे। गोस्वामी जी ने ऐसा ही किया और फिर कृष्णदास का उन्होंने श्राद्ध किया। इस प्रसङ्ग में भी कृष्णदास के चरित्र की निर्बलता प्रगट होती है।

स्वभाव और चरित्र

वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास बाल्यकाल से ही एक विरक्त जीव थे। इनकी बाल्यकालीन सत्यप्रियता का परिचय राजा के सामने अपने पिता का अपराध प्रकट करने में मिलता है। उस समय उन्हें धन-वैभव की लालसा न थी। पिता की हाकिमी छूटने पर इन्होंने कहा—"पिता तैंने ऐसो बुरो कर्म कियो हतो जो येहू लोक जातो और परलोकहू बिगरतो, जो जीव तो बच्यो। ....जो हाकिमी होती तो और पाप कमावते।"[2] अधिकार-लिप्सा और अहङ्कार का जो त्याग इनके आरम्भिक जीवन में मिलता है वह इनके 'अधिकारी' जीवन में नहीं मिलता। कृष्णदास सिद्धान्त के पक्के आदमी थे। एक बार भेंटिया की हैसियत से ये विदेश गये। द्वारिका से लौटते समय ये मीराबाई (हिन्दी काव्य की प्रसिद्ध कवयित्री और भक्तिनी) के गाँव में उसके घर गये।[3] वहाँ अन्य कई वैष्णव बैठे थे। कृष्णदास जब चलने लगे तब मीराबाई ने उनसे ठहरने को कहा और वह ११ मोहर भेंट में इनको देने लगी। कृष्णदास ने मोहरों को फेरते हुये कहा कि हम न तो अन्यमार्गीय के यहाँ ठहरते हैं और न अन्यमार्गीय से भेंट लेते हैं। इसी प्रकार एक

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २३७ से २३६ तक।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८४।

बार ये वृन्दाबन गये। वहाँ उनको ज्वर आ गया और बड़ी जोर की प्यास लगी। वृन्दाबन के वैष्णवों ने इनको जल दिया; परन्तु इन्होंने अन्यमार्गीय वैष्णवों का जल नहीं ग्रहण किया। एक वैष्णव ने कहा—यहाँ पुष्टिमार्गीय एक भङ्गी तो है। कृष्णदास ने उस भङ्गी से जल मँगाया; परन्तु अन्यमार्गीय ब्राह्मणों का जल स्वीकार नहीं किया।[1] इन दोनों प्रसङ्गों से कृष्णदास के दृढ. सिद्धान्त-सेवी होने का भाव प्रकट होता है। साथ ही, यह भी प्रकट होता है कि स्वमार्ग में ये छुआछूत का विचार नहीं रखते थे।

पीछे कहा जा चुका है कि ये बड़े व्यवहारकुशल और युक्ति-प्रवीण व्यक्ति थे। यद्यपि बाल्यकाल के जीवन से इनके भावी जीवन की पूर्ण विषय-विरक्ति प्रकट होती है, परन्तु श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारवाले जीवन में इनके मन की शृङ्गारिक वृत्ति का वैषयिक सम्मान, वैश्या के तथा गङ्गाबाई के प्रसङ्गों से, स्पष्ट झलकने लगता है। कृष्णदास की रचनाओं से भी इनके मन की रसिकता प्रकट होती है। लेखक ने इनके जितने पदों (लगभग ८००) का अध्ययन किया है वे प्रायः सब शृङ्गार के ही हैं, जिनमें राधा-कृष्ण की निकुञ्ज-केलि का वर्णन है। अधिकार करते-करते कुछ समय के लिए इनका अहङ्कार भी प्रबल हो गया था, जिसके कारण गोसाईं विट्ठलनाथ जी श्रीनाथ जी के दर्शनों से छै महीने तक वञ्चित रहे। गोस्वामी जी स्वयं कृष्णदास के इस अहङ्कार विकार से भिज्ञ थे। कृष्णदास की मृत्यु के बाद जब किसी को अधिकार देने का प्रश्न रामदास ने उठाया तब गोसाईं जी ने कहा—"हम कौन से जीव को कहें, जो कौन से जीव को बिगार करें, सुधारनो तो बहुत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है। तासों श्री गोवर्द्धनधर को अधिकार हम कौन को देंय।"[2] श्रीनाथ जी के कुआँ बनवानेवाले प्रसङ्ग से इनके अन्तिम जीवन काल में मन की तामसी वृत्ति का भी भान होता है। इनके कुएँ में गिरने का दुःख-समाचार सुनकर गोसाईं जी के समक्ष एक वैष्णव ने कहा था—"तामसानां अधोगतिः।"[3] तामस प्रकृतिवालों की अधोगति ही होती है।

चरित्र के उपर्युक्त अल्प छिद्र होते हुए भी कृष्णदास अधिकारी एक महान् कवि और श्रीनाथ जी के अनन्य सेवक थे। कृष्ण की कुञ्ज-लीला के इनके पद भाव और भाषा, दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट हैं। कृष्णदास के अधिकार की जिस योग्यता का पीछे उल्लेख हुआ है उसकी तथा उनके काव्य की सराहना गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी स्वयं अपने श्रीमुख से किया करते थे। कृष्णदास की मृत्यु के बाद आचार्य जी ने वैष्णवों से कहा—"कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे किये सो कोई दूसरे सों न होय और श्री आचार्य जी के सेवक होय के

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २२६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४०।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २३१।

सेवा हू ऐसी करी जो दूसरे सों न बनेगी और श्रीनाथ जी को अधिकार हू ऐसो किया जो दूसरे सों न होयगो।"[1]

वार्ता में कई स्थानों पर इनकी रचना के विषय में लिखा है कि इन्होंने बहुत कीर्तन गाये और ये नित्य नये पद बनाकर श्री गोवर्द्धननाथ जी को सुनाते थे।[2] कृष्णदास के अधिकार-सेवा और काव्य की प्रशंसा भक्त नाभादास जी ने भी मुक्तकण्ठ से इन शब्दों में की है—"श्री वल्लभ-गुरु-दत्त भजन-सागर गुन-आगर, कवित नोख निर्दोष नाथ-सेवा में नागर।"[3] पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त-पक्ष के ये इतने ज्ञाता थे कि बहुत से वैष्णव इनसे मार्ग की रीति पूछने आते थे। एक बार कुम्भनदास जी कुछ वैष्णवों को साथ लेकर इनके पास गये और कहा,—"कृष्णदास, जो सगरे वैष्णवन को मन पुष्टिमारग की रीति सुनिवे को है, सो कहा कहिये,कहा सुमिरन करिये। सो ऐसे पुष्टिमारग को अनुभव होय सो कृपा करिके सुनाबो।"[4] कृष्णदास ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—"कुम्भनदास जी, तुम बड़े हो, तिहारे आगे मैं कहा कहूँ तुम सों कछू छानी नाहीं है।" फिर कुम्भनदास के आग्रह से कृष्णदास ने निम्नलिखित दो कीर्तन गाये और उनसे सब वैष्णवों का सन्देह दूर कर दिया।—'कृष्ण श्री कृष्णशरणं मम उचरे' तथा कृष्ण मन माँहि गति जानिये।'[5]

कृष्णदास एक सुन्दर व्यक्ति थे। वार्ता में एक स्थान पर लिखा है कि कृष्णदास की आकृति बड़ी तेजस्विनी थी।[6]

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४६।

२—"सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्री गोवर्द्धनधर को सुनावते।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०२।

तथा:—"सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदास जी ने गाये।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०१।

३—भक्तमाल, छन्द ८१।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१६।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ २१६।

नोट:—कृष्णदास का अधिकार-कार्य इतना सुव्यवस्थित और मन्दिर के हित के लिए इतना सुचारु वल्लभसम्प्रदाय में समझा जाता रहा है कि आज तक श्रीनाथ जी के स्थान पर "कृष्णदास अधिकारी" के नाम की ही मोहर लगती है और कृष्णदास के नाम के नीचे काम करनेवाले अधिकारी के हस्ताक्षर रहते हैं। कृष्णदास की प्रतिष्ठा के स्मारक-रूप में श्रीनाथ जी के भण्डार का नाम भी कृष्णदास के नाम के पीछे कृष्णभण्डार लिखा जाता है।

६—इतने ही में कृष्णदास हाकिम के पास आये, सो कृष्णदास को तेज देखत ही वह हाकिम उठिके कृष्णदास सों पूछि पास बैठाय के कही जो तुम बड़े हो और श्री गोवर्द्धननाथ जी के अधिकारी हो तासों तुम इन महाजीन को गुन्हा माफ करो। अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १९४।

पीछे कहा गया है कि कृष्णदास की मृत्यु पूछरी के पास कुएँ में गिरकर हुई।[1] कृष्णदास की जीवनी के आधारभूत ग्रन्थों में उनकी जन्म, वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और गोलोकवास की तिथियाँ नहीं मिलतीं ; परन्तु श्री यदुनाथकृत वल्लभदिग्विजय, ८४ वार्ता के कुछ प्रसङ्गों, किंवदन्तियाँ तथा कवि के पदों के आधार से उक्त तिथियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

जन्मतिथि तथा शरणागति का समय

हरिराय जी के भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता का यह लेख—कि 'कृष्णदास १३ वर्ष की आयु में घर से निकल गये थे'—पीछे दिया गया है। कुछ दिन के पर्यटन के बाद वे सीधे ब्रज में आये और वहाँ आकर गोवर्द्धन पर श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य हो गये। उस समय श्रीनाथ जी का नया मन्दिर बना था और उसमें श्रीनाथ जी का प्रवेश होनेवाला था।[2] मन्दिर सं० १५५६, में बनना आरम्भ हुआ।[3] कुछ समय बाद पूर्णमल खत्री ने द्रव्य के अभाव के कारण इस मन्दिर को अपूर्ण ही छोड़ दिया; परन्तु श्री वल्लभाचार्य जी ने सं० १५६६ वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया) के दिन श्रीनाथ जी को नये मन्दिर में प्रविष्ट करा दिया। इसलिए कृष्णदास इसी सम्वत् १५६६ में अक्षय तृतीया के दो-चार दिन पहले आचार्य जी की शरण में गये। वल्लभ-दिग्विजय से भी इस बात की पुष्टि होती है।[4] वल्लभ दिग्विजय से यह भी विदित है कि सूरदास को शरण लेने के बाद ही, एक-दो दिन के अन्तर से, आचार्य जी ने कृष्णदास को शरण लिया। उस समय, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कृष्णदास लगभग १३ वर्ष के थे। सम्भव है, पर्यटन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ २३८।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।

३—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० १६।

४—वल्लभ दिग्विजय, श्रीयदुनाथ के पृष्ठ ५० के कथन के आधार से लेखक ने सूरदास की जीवनी में यह सिद्ध किया है कि श्रीनाथ जी का नये मन्दिर में प्रवेश पहले सं० १५६६ में ही हो गया था। वल्लभ-दिग्विजय में पृ० ४६ और ५० पर लिखा है कि आचार्य जी ने अपनी स्त्री के द्विरागमन के बाद तथा श्रीगोपीनाथ जी के जन्म (स० १५६७) से पहले कृष्णदास को शरण में लिया और नये मन्दिर में श्रीनाथ को प्रविष्ट किया। गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि श्रीनाथ जी का नये मन्दिर में पाटोत्सव सं० १५७६ में हुआ। काँकरौली के इतिहास, पृ० ४६, पर श्रीकण्ठमणि शास्त्री जी ने लिखा है कि श्रीनाथ जी का पाटोत्सव सं० १५७६ में ही हुआ, परन्तु आचार्य जी ने श्रीनाथ जी का प्रवेश सं० १५६६ में ही कर दिया था तथा कीर्तन आदि सेवा का मण्डान बाँध दिया था।

में उन्हें चार-छः महीने लगे हों। सं० १५६६ में से १३½ वर्ष निकालने से सं० १५५२ वि० के लगभग का समय कृष्णदास के जन्म का आता है।

अन्त समय

कृष्णदास जी ने गुसाईं विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों की बधाई मनाई है। इससे सिद्ध होता है कि कृष्णदास जी 'सातवें पुत्र श्रीघनश्याम जी के जन्म समय, संवत् १६२८, तक जीवित थे। इन बधाई के पदों में से निम्नलिखित पद के लिखे जाते समय घनश्याम जी की आयु तीन वर्ष की अवश्य रही होगी। इस हिसाब से उनका संवत् १६३१ तक जीवित रहना सिद्ध होता है।

धमार राग गौरी

श्रीवल्लभ कुल मंडन प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ,
जे जन चरन न सेवत तिनके जनम अकाथ।१
भक्ति भागवत सेवा निस दिन करत आनन्द,
मोहन लीला सागर नागर, आनन्द कन्द।२
सदा समीप विराजे श्रीगिरधर गोविन्द,
मानिनी मोद बढ़ावें निज जन के रवि चन्द।३
श्रीबालकृष्ण मन रंजन रंजन अम्बुज नयन,
मानिनी मान छुड़ावें बंक कटाक्षन सेन।४
श्रीवल्लभ जग वल्लभ करुणा-निधि रघुनाथ,
और कहाँ लगि बरनों जग बन्दन यदुनाथ।५
श्रीघनश्याम बाल बल अविचल केलि कलोल,
कुञ्चित केश कमल मुख जानों मधुपन के टोल।६
जो यह चरित बखाने श्रवन सुने मन लाय,
तिनके भक्ति जु बाढ़े आनन्द घोस विहाय।७
श्रवन सुनत सुख उपजत गावत परम हुलास,
चरण कमल रज पावन बलिहारी कृष्णदास।८[1]

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा श्रीनाथ द्वार में प्रचलित परम्परा के आधार से ज्ञात होता है कि कृष्णदास अधिकारी की मृत्यु के बाद गुसाईं जी ने चाँपा भाई[2] गुजराती

१—बसन्त धमार, कीर्तन-संग्रह, भाग ३, लल्लू भाई छगनलाल देसाई, पृ० १८१।
२—'गुसाईं जी के सेवक चाँपा भाई की वार्ता', २५२ वैष्णवन की वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० ४७३।

को श्रीनाथ जी का अधिकार सौंपा। चाँपा भाई अधिकारी बनने से पहले गोस्वामी विट्ठलनाथ की प्रदेश-यात्राओं में भण्डारी रहा करते थे। श्रीगुसाईं जी ने गुजरात की कई यात्राएँ की। इन यात्राओं में[1] एक यात्रा ब्रज से सम्वत् १६३१ में और दूसरी ब्रज से ही सं० १६३८ में की। चाँपा भाई गोस्वामी जी की सं १६३१ वि० की गुजरात यात्रा में उनके साथ उपस्थित थे। यह बात गोस्वामी जी के यात्राओं की वर्णन से ज्ञात होती है। उनकी दूसरी यात्रा में जो उन्होंने सं० १६३८ मे की, चाँपा भाई के साथ जाने का उल्लेख नहीं मिलता। अनुमान से वे उस समय श्रीनाथ जी के अधिकार के पद पर थे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि कृष्णदास का गोलोकवास सं० १६३१ और सं० १६३८ के बीच में हुआ। दो सौ बावन वार्ता में चाँपा भाई के वृत्तान्त में लिखा है कि जब चाँपा भाई अधिकारी थे, उस समय गुसाईं जी ने गुजरात की यात्रा की। शीतकाल था। राजा बीरबल ने गोस्वामी जी को शीतकाल में विदेश जाने से रोका।[2] गुसाईं जी की यह यात्रा लेखक के विचार से सं० १६३८ विक्रमी की गुजरात यात्रा थी। इस समय चाँपा भाई को अधिकार ग्रहण किये हुए साल-दो साल तो हो ही गये होंगे। इसलिए, अनुमानतः, कृष्णदास का निधन सं० १६३२ से १६३८ के बीच में हुआ।

श्रीहरिराय-कृत भावप्रकाशवाली वार्ता में इनके लीलात्मक स्वरूप[3] के बारे में लिखा है कि ये दिन की गोचारण लीला में ऋषभ सखा और रात्रि की कुञ्जलीला में ललिता सखी हैं।

नन्ददास जी के जीवनचरित्र की संक्षिप्त रूपरेखा

पीछे कहे आधारों के अनुसार नन्ददास के जीवन-चरित्र की संक्षिप्त रूप-रेखा इस प्रकार है—

नन्ददास का निवास स्थान 'भक्तमाल' में रामपुर ग्राम दिया हुआ है।[4] कवि ने स्वयं अपनी रचनाओं में इसका कहीं उल्लेख नहीं किया। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' उसे पूर्व देश का निवासी बताती है। पाटन की हस्तलिखित अष्टछाप वार्ता में नन्ददास को रामपुर निवासी लिखा है। भक्तमाल की टीकाएँ तथा 'भक्त-नामावली' कवि के निवास तथा जन्म-स्थानों

जन्म स्थान

१—काँकरौली का इतिहास पृ० ६१। काँकरौली-इतिहास के लेखक प्रो० कण्ठमणि शास्त्री जी का कहना है कि ये तिथियाँ एक गुर्जर डायरी के आधार से निश्चित की गई हैं।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० ४७३।

३—अष्टछाप वार्ता, काँकरौली से प्रकाशित, पृ० १७६।

४—भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ६०२।

के विषय मे मौन हैं। वार्ता तथा भक्तमाल के आधार से इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि नन्ददास गोकुल मथुरा से पूर्व की ओर स्थित रामपुर ग्राम के रहनेवाले थे। रामपुर स्थान की ठीक ठीक स्थिति का पता लेखक नहीं लगा सका है। सोरों जिला एटा वाली सामग्री रामपुर की स्थिति सोरों के पास सिद्ध करती है, परन्तु जब तक इस सामग्री की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है, तब तक सोरों जिला एटा का रामपुर कवि की जन्मभूमि नहीं कही जा सकती।

जाति-कुल—

'भक्तमाल' में नन्ददास को सुकुल (शुक्ल आस्पद अथवा उच्च कुल) कुल का व्यक्ति बताया है। भावसहित दो सौ बावन वार्ता में उन्हें सनौढिया लिखा है।[1] 'मूल गुसाई चरित्र' में नन्ददास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है, परन्तु 'वार्ता' इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बताती है। 'मूल गुसाईंचरित' का कथन ग्राह्य नहीं है, क्योंकि यह ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं है। वार्ता तथा भक्तमाल के आधार से कहा जा सकता है कि नन्ददास का जन्म शुक्ल आस्पद वाले सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। वार्ता में नन्ददास के माता पिता, वंश आदि के विषय में कुछ नहीं बताया गया और न भक्तमाल में ही इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख है। २५२ वार्ता में रामचरितमानस के रचयिता तुलसीदास को नन्ददास का भाई कहा गया है। तुलसीदास उनके सगे भाई थे अथवा चचेरे यह बात वार्ता में स्पष्ट नहीं की गई। नन्ददास और तुलसीदास के भाई होने का कथन लेखक की देखी हुई सभी '२५२ वैष्णवन की वार्ता' तथा अष्टछाप वार्ताओं, म दिया हुआ है।

वार्ता से विदित है कि नन्ददास के दीक्षागुरु श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य और पुत्र, श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी थे। नन्ददास की रचनाओं के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अध्ययन गंभीर था, तथा विद्वत्ता के लिए उनका बडा मान था। साथ ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि वे संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे और उनको हिन्दी भाषा से बहुत प्रेम था। उनका संस्कृत का अध्ययन तथा भाषा प्रेम तो इससे स्पष्ट है कि उन्होंने दशमस्कन्ध की कथा संस्कृत से भाषा में इसलिए की कि संस्कृत भाषा से अभिज्ञ व्यक्ति भी उसका आनन्द पा सके। संस्कृत भाषा नन्ददास के समय में साधारण वर्ग के लिए दुरुह हो गई थी नन्ददास का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया, सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उन्होंने सम्पूर्ण दशम स्कन्ध भाषा में किया भी, पर ब्राह्मणों के सङ्कुचित

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २२६।

नोट—काँकरौली-विद्याविभाग में स्थित संवत् १६१७ वि० की '८४ वैष्णवन की वार्ता' के साथ लगी गुसाईं जी के चार मुख्य सेवकन की वार्ता में भी नन्ददास और तुलसीदास को एक दूसरे का भाई और सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है।

विचार तथा स्वार्थपरता से उसका अधिक भाग नष्ट कर दिया गया। वार्ता के इस प्रसङ्ग से नन्ददास के संस्कृत-ज्ञान और उनकी मनोवृत्ति का परिचय अच्छी तरह मिल जाता है।

'भक्तमाल', भक्तमाल की टीकाएँ, 'भक्तनामावली' आदि ग्रन्थ नन्ददास के वैराग्य लेने और उनके वल्लभ-सम्प्रदाय में जाने की घटना का कोई उल्लेख नहीं करते। इस प्रसङ्ग को २५२ वार्ता तथा 'अष्टसखान' की वार्ताएँ देती हैं। परन्तु वार्ता का दिया हुआ यह वृत्तान्त काशी से ही आरम्भ होता है। घर छोड़कर नन्ददास काशी कैसे और कब पहुँचे, यह सूचना किसी सूत्र से नहीं मिलती। महात्मा तुलसीदास के प्रभाव से वे

वैराग्य और वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश

रामानन्द सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये। कुछ समय बाद एक 'सङ्घ' काशी से रणछोर जी के दर्शनों को चला। नन्ददास भी अपने बड़े भाई तुलसीदास की आग्रहपूर्वक अनुमति पाकर उस 'सङ्घ' के साथ चल दिये। वे सीधे मथुरा पहुँचे, वहाँ से वे, अपने साथियों को छोड़कर अकेले ही रणछोरजी को चल पड़े। चलते-चलते वे द्वारिका का रास्ता भूल गये और कुरुक्षेत्र के आगे एक सीहनन्द नामक ग्राम में पहुँच गये। वहाँ एक क्षत्री साहूकार रहता था। नन्ददासजी उसके घर भिक्षा माँगने गये। उस साहूकार की स्त्री बड़ी रूपवती थी। नन्ददासजी उस स्त्री पर मोहित हो गये। वे नित्य उस क्षत्राणी के मुख को देखने उसके घर जाते। वह क्षत्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिष्य था। लोकापवाद के भय से वह सकुटुम्ब गोकुल-यात्रा को चल दिया। नन्ददास भी उस क्षत्री के पीछे-पीछे चल दिये। रास्ते में यमुना तट पर आये। पर नाविकने नन्ददास को पार नहीं उतारा। यह स्थिति नन्ददास के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना है, क्योंकि लौकिक विषय में आसक्त रसिक नन्ददास के जीवन का यह अन्तिम परिच्छेद है। यहीं कवि नन्ददास का सर्वप्रथम परिचय मिलता है।

लौकिक प्रेम में मुग्ध नन्ददास ने यमुना के किनारे बैठकर यमुना स्तुति के पद गाये। ये पद वल्लभसम्प्रदाय में जाने से पहले ही उनके, उच्च कोटि के कवि होने का परिचय देते हैं। यमुना-महिमा-वर्णन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि नन्ददास एक धर्मभीरु व्यक्ति थ और तत्कालीन कृष्णभक्ति की लहर, जिसने समस्त भारत को आप्लावित कर दिया था, उनके हृदय में पहले ही से घर कर गई थी। रणछोर जी (द्वारिका जी) के दर्शनों के उत्सुक नन्ददास के जीवन की धार्मिक गति को उस रूपवती क्षत्राणी ने कुछ समय के लिए रुद्ध कर दिया था। यमुना के किनारे गाये हुये यमुना-स्तुति के पदों से यह स्पष्ट है कि नन्ददास के मोह के बन्धन उसी समय टूट गये थे, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो ये पद उस क्षत्राणी का सङ्ग छूट जाने की विरह-वेदना का वर्णन करते। इन पदों में रूपासक्ति, कामुकता, कातरता, विह्वलता, विछोह-दुःख आदि भाव व्यक्त नहीं हैं। उनमें तो निराशापूर्ण हृदय की आत्मिक शान्ति के आश्रय की खोज है वास्तव में ये पद नन्ददास के चरित्र की कसौटी हैं। इनसे स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास अपार मोहाग्नि में जलकर खरे सोने

की तरह चमक उठे थे। वियोगजन्य दुख से वे अधीर नहीं हुये। कवि नन्ददास के जीवन के अनुभवों में यह एक ऐसी घटना थी जिसने उनकी कवित्व शक्ति को परिपक्व किया, उनके वर्णन को सूक्ष्म और उनकी अन्तर्दृष्टि को तीक्ष्ण बनाया। कवि ने इस रूपवती क्षत्राणी के दर्शन और चिन्तन में सौन्दर्य देखा था, प्रेम की भावना को आँका था, वासना को तोला था, विरहातुरता समझी थी, सम्मिलन की सुखद कल्पना की थी और अन्त में उसने संसार में लिप्त मनुष्य के हृदय की विकलता को समझा था। तभी तो रासपञ्चाध्यायी आदि ग्रन्थों में उनके वर्णन इतने सजीव और सच्चे बन पड़े हैं।

इस सन्ताप का अब अन्त आ चुका था, क्योंकि यमुना के किनारे यमुना-स्तुति करते हुये निरुपाय नन्ददास को गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सेवक द्वारा बुलवा लिया। उनके दर्शनों तथा उपदेशों से नन्ददास का मन सांसारिक जाल से छूटकर भगवान् कृष्ण के चरणों में जा लगा। उन्हें गुरुवन्दना और बालकृष्ण के पद गाने ही में जीवन का सार मिलने लगा। कहते हैं कि घर का मोह एक बार फिर उन्हें गृहस्थी में खींच ले गया और फिर कुछ साल गृहस्थी में रहकर ये गोकुल आये। इस समय मोह-बन्धन छूट जाने पर विरागी नन्ददास ने फिर संसार की ओर दृष्टि नहीं उठाई। उनकी जीवनी के आधार-रूप ग्रन्थों में उनके गृहस्थी में वापस जाने का कहीं उल्लेख नहीं है, परन्तु काँकरौली के कुछ वैष्णव विद्वानों का ऐसा ही अनुमान है। नन्ददास ने भी अपने एक पद में श्री विट्ठलनाथ जी की वन्दना करते हुये कहा है—'रहौं सदा चरनन के आगे'। इससे भी स्पष्ट है कि वे सदा गोस्वामी जी के पास ही रहते थे। विरागी नन्ददास अपने मानस-पटल पर सदा ही कृष्ण की लावण्यमयी मूर्ति को रास में थिरकते हुये देखते थे:—

मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोर मुकट की।
सदा बसौ मन मेरे, फरकनि पियरे पटकी।

रासपञ्चाध्यायी।

स्वभाव और चरित्र

नन्ददास रसिक व्यक्ति थे। उनके 'परम रसिक' मित्र के सङ्ग से भी इस बात की पुष्टि होती है। रसिक होने के साथ नन्ददास दृढ़ सङ्कल्पी भी थे, क्योंकि वे तुलसीदास के मना करने पर भी रणछोर जी के दर्शनों को चल दिये थे। साथ ही उनके क्षत्राणी के ऊपर मोहित होने की घटना से भी उनके हठी होने का परिचय मिलता है, क्योंकि वे बार-बार मना करने पर भी उसे देखने जाते ही रहे। उनका यह हठ केवल बालक का हठ नहीं था, वे धुन के पक्के व्यक्ति थे और अपनी इच्छित वस्तु को पाने का शक्ति भर प्रयत्न करते थे। असफल होने पर निराश भी नहीं होते थे। नन्ददास के स्वभाव में चपलता और उतावलापन भी था, क्योंकि जब वह 'सङ्ग', जिसके साथ वे रणछोर जी के दर्शनों को काशी से गये थे, कुछ समय के लिए मथुरा में रुक गया तो इन्हें सब्र न हुआ, अकेले ही चल पड़े। नन्ददास सौन्दर्य प्रेमी

भी थे। रणछोर जी की यात्रा में वे पहले तो मथुरा की रचना पर रीझे और फिर त्रत्राणी के रूप सौन्दर्य पर। रूपमञ्जरी की कथा भी उनके सौन्दर्य-प्रेमी होने का प्रमाण देती है। यह सब होते हुये भी नन्ददास अवश्य एक धर्मभीरु व्यक्ति थे। उनके मोह की अवस्था में भी किसी ऐसी बात का उल्लेख नहीं मिलता, जिससे मालूम पड़े कि वे सदाचार से डिग गये थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उनकी यह धर्मभीरुता त्रत्राणी के सङ्ग छूटने के बाद गाये हुये यमुना-स्तुतिवाले उनके पदों से भी स्पष्ट है।

इन सब बातों पर विचार करने के बाद कहा जा सकता है कि नन्ददास एक सहृदय, सौन्दर्य-प्रेमी तथा रसिक व्यक्ति थे। इनके चरित्र में दृढ़ता थी; परन्तु कुछ चपलता का भी समावेश था और वे धर्मभीरु थे।

वल्लभसम्प्रदाय में स्थायी रूप से आने के बाद, उनका जीवन कृष्णभक्ति तथा गोकुल और गोवर्द्धन पर स्थित मन्दिरों की कृष्ण-मूर्तियों के दर्शन और सेवा में ही बीता। उनकी जीवनचर्या केवल भगवद्चर्चा तथा पद और छन्द-रचना कर भगवान् के समक्ष उन्हें गाने में ही थी। इस बीच में नन्ददास ने अनेक ग्रन्थों की रचना की।

वैराग्य के बाद का जीवन तथा मृत्यु

उनके वल्लभ-भक्ति के जीवन में निम्नलिखित घटनाओं का भी उल्लेख २५२ तथा अष्टसखान की वार्ताओं में मिलता है:—

१—तुलसीदास का उनको रामभक्त बनाने का प्रयत्न करना, तथा उनसे मिलने व्रज में आना[१]।

२—नन्ददास का अकबर की वैष्णव लौंडी से मिलने उसके डेरे मानसी गङ्गा पर जाना[२]।

३—बीरबल का उनसे मिलने आना[३]।

४—अकबर का उन्हें बुलाना[४]।

तुलसीदास का नन्ददास को रामभक्ति की ओर आकर्षित करने का असफल प्रयत्न सम्भव है, वल्लभसम्प्रदाय के गौरव को बढ़ाने के लिए साम्प्रदायिक कल्पना हो, परन्तु इतना

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३४२-३४३

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३४८।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३२१।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३२१।

अवश्य माना जा सकता है कि तुलसीदास एक बार अपने भाई नन्ददास से व्रज में मिले थे। अकबर के मानसी गङ्गा पर डेरा डालने पर नन्ददास उसकी एक वैष्णव लौंडी 'रूप-मञ्जरी' से मिलने गये। 'वार्ता' के इस प्रसङ्ग में नन्ददास के एक अत्यन्त प्रेमी मित्र 'रूप मञ्जरी' के होने की सूचना मिलती है। उसी समय राजा बीरबल भी नन्ददास से मिले। बीरबल का इनसे मिलने जाना सम्भव हो सकता है, क्योंकि वह एक धर्मनिष्ठ हिन्दू था। वह सन्तों, भक्तों तथा कवियों के सत्सङ्ग का इच्छुक रहता था और उनका आदर करता था। अकबर का इन्हें बुलाना भी सम्भव हो सकता है, क्योंकि तानसेन के गाये हुये पद ("देखो देखो री नागर नट निर्तत कालिंदी तट") से अकबर ने इन्हें एक भक्तकवि के रूप में ही जाना था। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि अकबर कवियों और दूसरे धर्मानुयायियों का भी निष्पक्ष रूप से आदर करता था। इसलिए अकबर द्वारा नन्ददास के बुलाये जाने की घटना को असङ्गत कहना अथवा उसमें कोई शङ्का करना निराधार प्रतीत होता है। वार्ता में लिखा है कि नन्ददास की मृत्यु अकबर के सामने हुई थी। जिस प्रकार से यह प्रसङ्ग वार्ता में दिया गया है, वह साम्प्रदायिक महत्व की दृष्टि से देखा जा सकता है। परन्तु अन्य सब वृत्तान्त छोड़ कर हम इतना ऐतिहासिक तात्पर्य निकाल सकते हैं कि नन्ददास की मृत्यु अकबर तथा बीरबल के जीवनकाल में ही मानसी गङ्गा पर हुई थी। इस बात की किंवदन्ती भी मानसी गङ्गा पर सुनने में आती है कि यहीं नन्ददास का गोलोकवास हुआ था, और वे यहीं अपनी यशकाया से निवास करते हैं।

जन्म तथा वल्लभ-सम्प्रदाय में शरणागति की तिथियाँ

अष्टछाप वार्ता में लिखा है शरणागति के बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने नन्ददास को कुछ समय सूरदास के सत्सङ्ग में रक्खा। काँकरौली के वैष्णवों से लेखक ने यह भी किंवदन्ती सुनी थी कि साहित्य-लहरी की रचना सूरदास ने उसी समय नन्ददास को मन की एकाग्रता प्राप्त कराने तथा उनकी विद्वत्ता के अभिमान को चूर्ण करने के लिए की थी। पीछे कहा जा चुका है कि साहित्य-लहरी की इन पंक्तियों में—"नंद नन्दनदास हित साहित्य लहरी कीन्ह,"—'नन्दनन्दनदास' से तात्पर्य नन्ददास का है। साहित्य-लहरी की रचना संवत् १६१७ वि० में हुई थी। इसलिए नन्ददास की शरणागति का समय संवत् १६१६ वि० के लगभग अनुमान किया जा सकता है। इनके साथ यह भी किंवदन्ती-रूप में कहा जाता है कि नन्ददास की लौकिक वृत्ति उन्हें फिर से गृहस्थी में खींच ले गई और फिर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोकुल में स्थायी रूप से निवास करने के बाद लगभग संवत् १६२४ के वे फिर गोस्वामी जी की शरण में आये और फिर वे गोवर्द्धन छोड़ कर कहीं नहीं गये। २५२ वार्ता में जो पद—'जयति रुक्मिणी नाथ पद्मावती प्राणपति विप्रकुल छत्र आनंदकारी'--नन्ददास द्वारा गाया हुआ बताया गया है, वह संवत् १६२४ वि० के बाद का है; क्योंकि इस पद में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की द्वितीय पत्नी पद्मावती का उल्लेख है जिसका विवाह लगभग संवत् १६२२ में हुआ था।

अष्टछाप वार्ता में लिखा है कि शरणागति के समय नन्ददास की मानसिक वृत्ति लौकिक विषयों की ओर अधिक थी तथा वे तुलसीदास के साथ काशी में रहा करते थे। उस समय तक उनका विवाह हुआ था अथवा नहीं, वार्ता-साहित्य से इस बात की कोई सूचना नहीं मिलती। परन्तु लेखक का अनुमान है कि जैसे तुलसीदास विवाह के कुछ साल बाद स्त्री के प्रबोधन से वैराग्य लेकर तथा रामानन्दी सम्प्रदाय को अङ्गीकार कर काशी में रहते थे, उसी प्रकार नन्ददास का भी विवाह हो गया था और वे भी अर्द्धवैराग्य से काशी में तुलसीदास के साथ रहते थे। अनुमान से उस समय उनकी आयु २५ या २६ वर्ष की रही होगी। इस प्रकार सवत् १६१६ (शरणागति समय) में से २६ वर्षनिकालने पर इनका जन्म संवत् लनभग १५९० वि० आता है।

नन्ददास की मृत्यु अकबर बादशाह के समक्ष हुई थी, यह बात '२५२ वैष्णवन की वार्ता' से विदित है। इतिहास बताता है कि अकबर बादशाह की मृत्यु सं० १६६२ में हुई थी। इसलिए नन्ददास की मृत्यु स० १६६२ से पहले होनी चाहिए। वार्ता में यह भी लिखा है कि अकबर बीरबल को साथ लेकर ब्रज गया था और ब्रज में अपने आने की सूचना बीरबल के द्वारा ही नन्ददास के पास भिजवाई थी। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास की मृत्यु बीरबल के जीवन-काल ही में हुई थी। बीरबल की मृत्यु[1] सं० १६४३ में काश्मीर की लड़ाई में हुई थी। इसलिए नन्ददास की मृत्यु का समय संवत् १६४३ से पहले होना चाहिए।

गोलोकवास की तिथि

उन हस्तलिखित '२५२ वार्ताओं' में जिनका पीछे हवाला दिया जा चुका है, और "गुसाईं जी के मुख्य सेवक तिनकी वार्ता" नामक ग्रन्थ में नन्ददास जी की वार्ता के छठे प्रसङ्ग में, इनकी मृत्यु कैसे हुई, इसका वर्णन है। यही प्रसङ्ग वेंकटेश्वर प्रेस से छपी 'वार्ता' में रूपमञ्जरी की वार्ता में है। उपर्युक्त हस्तलिखित वार्ता में लिखा है कि नन्ददास और रूपमञ्जरी की मृत्यु का समाचार वैष्णवों ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को सुनाया, जिन्होंने नन्ददास की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इससे विदित होता है कि नन्ददास की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सामने हुई थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास सं० १६४२ में हुआ। इसलिए नन्ददास की मृत्यु स० १६४२ से पहले ही हुई होगी। पीछे सूरदास की जीवन-तिथियों के विवेचन के अन्तर्गत कहा जा चुका है कि अकबर की धार्मिक जिज्ञासा

१—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया' भाग ४ पृ० १२९, बीरबल की मृत्यु, सन् १५८६ ई० में हुई।

"Of the Twelve officers personally known to Akbar, who fell tht most important was Birbal ... . and on the 24th Feb. 1586 A. D. Zain Khan rnd Abul Fateh led the remnant into Akbar's Camp."

तथा उदारवृत्ति दीन-इलाही मत के चलाने के ठीक पूर्व समय में बहुत प्रबल थी, उसी समय वह हिन्दू देवस्थानों में अधिक जाता था, संत और भक्तों से मिलता था तथा उनके प्रवचनों को उत्सुकता के साथ सुनता था। यह समय इतिहासकारों ने सन १५८२ ई० के पूर्व दो तीन साल पहले का बताया है। लेखक का अनुमान है कि अकबर इसी समय के लगभग मानसी गङ्गा तथा गोवर्द्धन पर गया था। उस समय बीरबल जीवित था और उसके साथ था। इसी समय उसने नन्ददास के पद से प्रभावित हो उनसे भेंट की थी। इसलिए नन्ददास के निधन का संवत् अनुमान से लगभग १६३९ वि० कहा जा सकता है।

चतुर्भुजदास जी के जीवन की रूपरेखा

जन्मस्थान, जातिकुल

चतुर्भुजदास जी का जन्म-स्थान ब्रज में जमुनावतो गाँव था,[1] जिसका वर्णन कुम्भनदास जी की वार्ता में दिया जा चुका है। चतुर्भुजदास जी अष्टछाप के कवि कुम्भनदास जी के पुत्र थे। और उनकी जाति गोरवा क्षत्री थी।[2]

माता, पिता, कुटुम्ब, गृहस्थी

चतुर्भुजदास[3] अपने पिता के सातवें तथा सबसे छोटे बेटे थे। बाल्यकाल से ही भगवद्भक्त होने के कारण माता-पिता का इनके ऊपर विशेष प्रेम था; क्योंकि इनके पिता जी स्वयं एक त्यागी भक्त थे। चतुर्भुज दास जी के पाँच बड़े भाइयों की बुद्धि लौकिक व्यवहार में बहुत संलग्न थी। इसलिए वे पाँचों अपने भक्त भाई चतुर्भुजदास और पिता कुम्भनदास से अलग रहते थे।[4] इनके एक भाई कृष्णदास को श्रीनाथ जी की गाय चराते समय सिंह ने मार डाला। ये और एक इनकी चचेरी बहन, जो गुसाईं श्री विट्ठल नाथ जी की शिष्या थी, अपने पिता कुम्भनदास जी के साथ रहते थे। वार्ता में लिखा है कि इनकी प्रथम स्त्री का, विवाह के कुछ समय बाद ही, देहान्त हो गया था।[5] इसके बाद इन्होंने एक विधवा स्त्री से विवाह किया।[6] वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि इनके राघवदास नाम का एक पुत्र भी था जो भगवद्भक्त और कवि था।[7] यद्यपि चतुर्भुजदास अपने

१—अष्टछाप, काँकरौली पृ०, २१० ।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१० ।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१०, अष्टसखान की वार्ता तथा २५२ वार्ता से इस कथन की पुष्टि होती है।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१० ।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३०९ ।

६—अष्टछाप' काँकरौली, पृ० ३१० ।

७—अष्टछाप' काँकरौली, पृ० ३२४ ।

पिता की तरह गृहस्थ थे, परन्तु उनका गृहस्थी में मोह न था। वे सदैव श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा में ही रहते थे।

शिक्षा

चतुर्भुजदासजी की शिक्षा उनके पिता कुम्भनदास तथा श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी की देखरेख में ही हुई। गान विद्या इन्होंने अपने पिता से सीखी थी। काव्य-रचना भी इनके पिता की ही देन थी। कुम्भनदासजी इनके बाल्यकाल में ही इनको कृष्ण की लीलाओं का रहस्य समझाया करते थे— "ता दिन ते कुम्भनदासजी रहस्य-लीला वार्ता चतुर्भुजदास सों करते।"[1] वार्ता से यह विदित हो है कि ये श्रीनाथजी के समक्ष कीर्तन किया करते थे और इन्होंने बहुत से पद कृष्ण की बाल-लीला,[2] विनय[3], और विरह[4] के भावों के बनाये।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

वार्ता में लिखा है कि चतुर्भुजदास के जन्म के बाद जब शुद्धि स्नान हुआ तब उनके पिता कुम्भनदासजी बालक चतुर्भुज को श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजी के पास ले गये और विनती की—"महाराज कृपा करके चतुर्भुजदास को नाम सुनाइये... यह सुनि के चतुर्भुजदास ताही समै किलक के हँसे।" इसके बाद उसी दिन राज भोग के समय गुसाईंजी ने नवजात शिशु को शरण में लिया।[5] उन्होंने कुम्भनदासजी से कहा—"या पुत्र सों तुमको बहुत ही सुख होयगो। सो तुम्हारे मन में जैसो मनोरथ हतो ताही भाँति सों तुम्हारे मनोरथ सिद्ध भये हैं।"

जब चतुर्भुजदास कुछ बड़े हुये तो वे श्रीनाथजी की गायों को चराने के लिये जाने लगे। उनकी शिक्षा उनके पिता और श्रीगुसाईंजी के निकट हुई। वार्ता में बालक चतुर्भुजदास की आरम्भिक काव्य-रचना से सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रसङ्ग इस प्रकार दिया हुआ है—

१—अष्टछाप, काँकरोली, पृ० ३०० ।

२— „ „ „ ३१८ और ३११ ।

३—"ऐसे प्रार्थना के चत्रभुजदास ने बहुत कीर्तन करिके सूतक के दिन वितीत किये।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३०१ ।

४—"चत्रभुजदास के मन में बहुत विरह भयो, तब श्रीगिरिराज के ऊपर बैठि के विरह के कीर्तन करन लागे।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३१२ ।
"या भाँति सों अत्यन्त विरह के कीर्तन चत्रभुजदास ने किये।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३१३ ।

५—"ता समय मन्दिर में श्रीगोवर्द्धननाथजी और कुम्भनदासजी रहे। ता समय श्रीगुसाईंजी चत्रभुजदास को नाम सुनाय पाछे तुलसी लेके कुम्भनदास तें कहे, जो चतुर्भुजदास को लावो, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्मुख चत्रभुजदास को ब्रह्म सम्बन्ध करवायो। पाछे तुलसी श्रीगोवर्द्धननाथजी के चरण कमल पर समर्पे।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २९९

एक समय कुम्भनदास और चतुर्भुजदास दोनों जमुनावतो गाँव में अपने घर बैठे थे। आधी रात्रि का समय था। श्रीगोवर्द्धननाथजी के मन्दिर में दीपक जल रहा था। उसका प्रकाश झरोखों से निकलकर बाहर दिखाई देता था। उसे देखकर कुम्भनदासजी ने चतुर्भुजदास को सुनाकर एक चरण कविता में कहा—'यह देखो बरत झरोखन दीपक हरि पौढे ऊँची चित्र सारी' और इस चरण को कहकर वे चुप हो गये। उसी समय चतुर्भुजदास ने सहसा दूसरा चरण इस प्रकार कहा—'सुन्दर वदन निहारन कारन, राखे हैं बहुत जतन करि प्यारी।' यह सुनकर कुम्भनदास बहुत प्रसन्न हुये।[१] इसके बाद चतुर्भुजदास ने समय-समय पर अनेक लीलाओं के पद बनाकर गाये।

स्वाभाव और चरित्र

चतुर्भुजदास के जन्म से पहले कुम्भनदासजी अपने छै पुत्रों की लौकिक वृत्ति देखकर कामना किया करते थे कि मेरे कोई भगवद्भक्त सन्तान हो। चतुर्भुजदास के जन्म से उनकी यह कामना पूर्ण हो गई। चतुर्भुजदासजी भी अपने पिता की तरह आरम्भ से ही त्यागी थे। उन्होंने अपना पहला विवाह लोगों के बहुत आग्रह के बाद किया था। इनकी लोक से अनासक्ति और भगवान् के साथ आसक्ति का भाव वार्ता के इन शब्दों से प्रकट होता है—"तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो चत्रभुजदास तू ब्याह करि, तब चत्रभुजदास ने कही, जो महाराज मैं यह सुख छाँड़ि के आपदा मे क्यों पड़ूँ, तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ने फिर आज्ञा करी जो वेगि ब्याह करि।"[२]

चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजी के मन्दिर को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते थे।[३] इससे विदित होता है कि ये एकान्तप्रिय व्यक्ति थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथजी गुजरात-यात्रा को गये[४], उस समय गुसाईंजी के बड़े पुत्र गिरिधरजी श्रीनाथजी के स्वरूप को मथुरा ले गये। जितने दिन श्रीगोवर्द्धननाथ (श्रीनाथजी) मथुरा रहे उतने दिन गोवर्द्धन पर चतुर्भुजदास ने अपने दिवस बहुत विरह में काटे। उस समय इन्होंने बहुत से विरह के पद लिखे थे।

'अष्टसखान की वार्ता' में लिखा है कि जब श्री विट्ठलनाथ जी ने श्री गिरिराज की

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३००।

२— ,, ,, ,, ३०८।

३—'ता दिन ते चत्रभुजदास श्रीगिरिराजजी की तलेटी छाँड़ि के कहूँ न जाते।"
चतुर्भुजदास की वार्ता, अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३२०।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३१८, ३१३।

कन्दरा में प्रवेश कर नित्यलीला में प्रवेश किया, उस समय चतुर्भुजदास अपने गाँव से इस समाचार को सुन कर गिरिराज पर आये और कन्दरा के आगे गिर कर महाविलाप करने लगे और कहने लगे—"महाराज पधारत समय मोकों आपके दरशन हू न भये और मैं आप बिना या पृथ्वी ऊपर कौन कों देखूँगो ताते अब या पृथ्वी ऊपर मोको मति राखो। मोहू को आप के चरणारविन्द के पास निकट ही राखो, मोहू कू बुलाय लीजे[1]।" उसके बाद उन्होंने उस विरह में निम्नलिखित दो पद गाये जिनका उल्लेख कवि द्वारा दिये हुये आत्मचारित्रिक वृत्तान्त में किया जा चुका है:—

गोलोकवास।

"फिर ब्रज बसहु श्री विट्ठलेश"

तथा

"विट्ठल सों प्रभु भये न ह्वै हैं।"

इसी प्रकार के विरह के कीर्तन करते करते चतुर्भुजदास ने भी अपनी देह छोड़ दी[2]। चतुर्भुजदास के बेटे राघवदास तथा अन्य वैष्णवों ने उनका अग्नि संस्कार किया[3]।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी सं० १५६७ वि० में गिरिधर जी के जन्म (प्राकट्य) के बाद नन्द महोत्सव करके ब्रज में आये[4]। अष्टछाप वार्ता में लिखा है कि कुम्भनदास जी ने चतुर्भुजदास जी के जन्म के बाद 'पिढ़रु' संस्कार किया और फिर शुद्ध होकर पुत्र चतुर्भुजदास को स्नान कराया और दूसरे दिन उन्हें श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण में दिया[5]। श्री द्वारिकानाथ जी के मन्दिर काँकरौली में लेखक को ज्ञात हुआ कि वल्लभ-सम्प्रदाय के गृहस्थ लोगों में बालक के जन्म से ४१ वें दिन शुद्धि स्नान हुआ करता है। इस हिसाब से कहा जा सकता है कि चतुर्भुजदास अपने जन्म से ४१ वें दिन गोस्वामी जी की शरण में गये। इस तरह इनका जन्म तथा शरणागति संवत् एक ही है जो सम्प्रदाय-कल्पद्रुम के अनुसार सं० १५६७ वि० है[6]।

जन्मतिथि।

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२२।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२४।
३—अष्टछाप, काँकरौली पृ० १२५।
४—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ४५।
५—अष्टछाप काँकरौली पृ० ११४।
६—विद्वानों को सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में दिये हुए संवत् बहुधा ग्राह्य नहीं हैं। यहाँ अन्य विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में लेखक ने इस ग्रन्थ में दिया हुआ उक्त संवत् ले लिया है।

कवि के आत्मचारित्रिक उल्लेख से एक तो यह सिद्ध होता ही है कि वे सं० १६२८ वि० (श्री विट्ठलनाथ जी के सातवें पुत्र घनश्याम जी का जन्म सवत्) तक विद्यमान थे, क्योंकि उन्होंने घनश्याम जी की बधाई गाई है। दूसरे, उनके

गोलोकवास का समय। पीछे दिये पदों के स्वयं लेख से यह भी सिद्ध है कि उनका देहान्त श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के बाद हुआ था। अष्टछाप वार्ता से विदित है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ के गोलोकवास के तत्काल इन्होंने भी देह छोड़ दी थी[1]। गोस्वामी जी के गोलोकवास की तिथि सं० १६४२ वि० फाल्गुण कृष्ण ७ वल्लभ-सम्प्रदाय में भी मानी जाती है। 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' में सं० १६४४ वि० दिया है, परन्तु वल्लभ सम्प्रदायी अनेक प्राचीन प्रमाणों के आधार से स० १६४२ वि० ही गुसाईं जी के गोलोकवास की निश्चित तिथि है। इस हिसाब से चतुर्भुजदास जी का गोलोकवास लगभग ४५ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर स० १६४२ वि० के फाल्गुण मास में ७ या ८ को हुआ। ब्रज में रुद्र कुण्ड के ऊपर एक इमली के वृक्ष के नीचे इनका मृत्यु स्थान बताया जाता है।

वार्ता के अनुसार इनका लीलात्मक स्वरूप विशाल सखा और विमला सखी है[2]।

गोविन्द स्वामी के जीवन-चरित्र की रूपरेखा

गोविन्द स्वामी का जन्म आँतरी ग्राम में हुआ था[3]। आँतरी ग्राम भरतपुर राज्य के अन्तर्गत बताया जाता है। वार्ता मे लिखा है कि गोविन्दस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले महाबन में[4] रहते थे परन्तु, साथ में यह भी

जन्म-स्थान

लिखा है कि ये पहले आँतरी ग्राम में रहते थे। इससे विदित होता है कि इनका जन्म-स्थान आँतरी ग्राम ही था।

आँतरी गाँव से आकर ये कुछ दिन महाबन रहे, फिर वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद ये गोकुल और महावनों के टीलों पर बैठकर कीर्तन किया करते थे।[5] बाद को जब

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १२४।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २११।

३—"सो वे प्रथम आँतरी ग्राम में रहते"। अष्टछाप काँकरौली, पृ० २६४।
एक 'आँतरी' गाँव ग्वालियर स्टेट की भिण्ड तहसील में भी है।

४—'अथ गुसाईंजी के सेवक गोविन्दस्वामी, सनौढिया ब्राह्मण, अष्टछाप में जिनके पद गाइयत हैं। महाबन में रहते तिनकी वार्ता"

अष्टसखान की वार्ता तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६५

५—अष्टछाप, डा० वर्मा, पृ० १२१ तथा लेखक के पास की अष्टछाप वार्ता।

स्थायी निवास-स्थान

ये गोवर्द्धन चले गये, तब अन्त समय तक वहीं रहे। वहाँ गिरिराज की कदम-खण्डी इनका स्थायी निवास-स्थान है। यह स्थान अब भी गोविन्द स्वामी की कदम खण्डी के नाम से गोवर्द्धन पर प्रसिद्ध है।

जाति-कुल, माता-पिता, कुटुम्ब तथा गृहस्थी

वार्ता से विदित है कि इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण-कुल में हुआ था।[1] वार्ता से तथा अन्य किसी भी सूत्र से इनके माता पिता का नाम ज्ञात नहीं होता। वार्ता से यह तो ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले यद्यपि इनके मन की वृत्ति भगवान् की भक्ति की ओर लग गई थी, परन्तु ये थे एक गृहस्थ। इनके सन्तान भी थी। इनकी बड़ी बहन कानबाई थी जो इनके साथ गुसाईंजी की सेविका हो गई थी और उन्हीं के साथ रहती थी। अष्टछाप में इनकी एक बेटी का भी उल्लेख है।[2] एक बार इनकी बेटी आँतरी से इनके पास आई। वह कुछ दिन इनके पास रही, परन्तु गोविन्दस्वामी उससे बोले नहीं। उनकी बहन ने पूछा—"गोविन्ददास! तू कबहूँ बेटी सों बोलत ही नाहीं, योहूँ न पूछे जो तू कब आई है, सो कहा है।" इस पर गोविन्दस्वामी ने कानबाई से कहा, "कन्हींयाँ! मन तो एक है, सो श्री ठाकुरजी में लगाऊँ के बेटी में लगाऊँ। इससे ज्ञात होता है कि एक बार गृहस्थी छोड़ने के बाद इन्होंने अपने कुटुम्ब की ओर से पूर्ण वैराग्य ले लिया था।

शिक्षा

गोविन्दस्वामी की आरम्भिक शिक्षा और उनके शिक्षा-गुरु का उल्लेख किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। वार्ता से ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले ये कवीश्वर थे और पद बनाकर गाया करते थे।[3] साधु सङ्गति से इनके मन की वृत्ति भक्ति की ओर झुक गई थी। आँतरी गाँव में रहते हुये ही उनके उस स्थान पर बहुत से सेवक हो गये थे।[4] वार्ता से यह स्पष्ट नहीं है कि सेवक गान-विद्या और काव्य विद्या सीखने के लिए हुये थे अथवा गोविन्द

१—"अथ श्री गुसाईंजी के सेवक गोविन्दस्वामी सनोढिया ब्राह्मण अष्टछाप में जिनके पद गाइयत हैं, महावन में रहते तिनकी वार्ता।"

अष्टछाप काँकरौली, पृ० २६४।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २८८।

३—"सो गोविन्दस्वामी कवीश्वर हते सो आप पद करते।"

अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६४।

४—"सो पहले गोविन्दस्वामी आँतरी में सेवक करते, सो उहाँ गोविन्द स्वामी कहावते। आँतरी में इनके सेवक बहुत हते।"

अष्टसखान की वार्ता।

वहाँ रह कर भगवद्भक्ति और श्री गुसाईं जी के व्याख्यानों से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त करने लगे। गोविन्द स्वामी जी की यमुना में परम भक्ति थी; परन्तु वे कभी यमुना में स्नान नहीं करते थे।[1] इनका विचार था कि अपनी पापी देह को पवित्र यमुना से कैसे स्पर्श कराऊँ। वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले आँतरी ग्राम में जो लोग इनके शिष्य हो गये थे वे भी गोविन्दस्वामी के प्रभाव से गोकुल में आकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये। इस विषय में वार्ता में एक बड़ी रोचक कथा दी है।[2] एक समय गोविन्दस्वामी के कुछ शिष्य आँतरी गाँव से उनकी खोज में गोकुल आये। जब वे पूछते-पूछते गोविन्दस्वामी के घर पहुँचे तो उन्हें उनकी बहन कानबाई से ज्ञात हुआ कि वे स्नान करने गये हैं। शिष्यगण यशोदा घाट पर आये। वहाँ उन्होंने स्वामी जी को पहचाना नहीं और उन्हीं से पूछा—गोविन्दस्वामी कहाँ हैं ? गोविन्दस्वामी ने उन्हें पहिचान लिया था; परन्तु अपने को गुप्त रखते हुये उत्तर दिया कि गोविन्दस्वामी तो मर गये और उन्हें मरे बहुत दिन हो गये। यह उत्तर पाकर वे सब आश्चर्य में पड़े और गोविन्दस्वामी के घर फिर गये। इतने में ही गोविन्द स्वामी भी घर पहुँच गये। जब उन शिष्यों ने उन्हें पहचाना तब उनसे पूछा कि आपने यह क्यों कहा कि गोविन्दस्वामी तो मर गये। गोविन्द स्वामी ने उत्तर दिया कि गोविन्द स्वामी तो अब हम नहीं हैं, अब तो हम गोविन्ददास हैं, 'स्वामीपना' बहुत दिन का छुट गया। उसके बाद उन सब शिष्यों ने भी श्री गोस्वाम विट्ठलनाथ जी की शरण ले ली।

गोकुल में कुछ समय रहने के बाद गोविन्दस्वामी श्रीनाथ जी की सेवा में गोवर्द्धन चले गये और फिर मरणपर्यन्त वहीं रहे। वहाँ रह कर भी उन्होंने अनेक पदों की रचना की। श्रीनाथ जी के मन्दिर में इनको भी कीर्तन की सेवा दी गई थी। अपने बनाये पदों को वे अपने इष्ट श्रीनाथ जी के समक्ष गाया करते थे। गोविन्दस्वामी की सखा-भाव की भक्ति तथा श्रीनाथ जी के साथ उनके सानुभाव के कई प्रसङ्ग[3] वार्ता में दिये हुये हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख प्रियादास जी ने भी भक्तमाल की टीका में किया है।[4]

नाभादास जी ने लिखा है कि गोविन्दस्वामी उदार प्रकृति के व्यक्ति थे।[5] इनके मन की दृढ वैराग्यवृत्ति का परिचय इनकी बेटी के गोकुल आगमन पर उसके प्रति उदासीन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६८।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २७४, वार्ता प्रसङ्ग ६।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २७५, वार्ता प्रसङ्ग ७।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २८१, वार्ता प्रसङ्ग १०।

४—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, रूपकला, पृ० ६१८, ६११।

५—भक्तमाल, नाभादास, छन्द नं० १०३।

स्वामी किसी सम्प्रदाय के आचार्य बनकर लोगों को दीक्षा देते थे। अनुमान है कि लोग उनके पास गान और कविता करने की शिक्षा लेने ही आते थे। उनकी साधुवृत्ति तो थी ही, इसी से उन्हें लोग स्वामी कहने लगे थे। गान की और कविता करने की विद्या इन्होंने किस गुरु से सीखी, इसका किसी भी सूत्र से पता नहीं चलता। वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद तो इन्होंने अपने सम्प्रदायी सूरदास जैसे महात्माओं से तथा श्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी से ज्ञान प्राप्त किया था।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

पीछे वार्ता के आधार से कहा गया है कि वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले गोविन्दस्वामी का मन भगवान् की भक्ति की ओर झुक गया था। उनके मन की वृत्ति का यह आध्यात्मिक मोड़ कैसे हुआ, यह वार्ता से विदित नहीं है। अनुमान से कहा जा सकता है कि जीवन की किसी विषम परिस्थिति से ठेस पाकर तथा साधु-महात्माओं के उपदेश से उनकी यह वृत्ति बनी होगी। कुछ समय गृहस्थाश्रम का भोग करने के बाद इनके मन में ब्रज धाम में निवास करने का विचार आया। घर छोड़कर ये ब्रज आये और महावन में रहने लगे। वहाँ रहकर ये अपना समय पद बनाने और भगवद्कीर्तन करने में बिताने लगे। जब कुछ वैष्णव गोविन्दस्वामी के पद सीखकर गोकुल में श्री गोसाईं विट्ठलनाथजी के समक्ष गाते तो वे बहुत प्रसन्न होते[1]। उन वैष्णवों ने यह बात गोविन्दस्वामी से आकर कही। धीरे-धीरे गोविन्दस्वामी का मन गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की ओर आकृष्ट हो गया और उनसे मिलने की उत्कण्ठा जाग्रत हो गई। एक दिन एक वैष्णव के साथ वे गोकुल आये। उस समय गोस्वामी जी जमुना पर सन्ध्या-वन्दन कर रहे थे। गोविन्दस्वामी जी को गुसाईं जी का यह आचरण देख कर बड़ा विस्मय हुआ, "कहाँ यह वेदोक्त सन्ध्या-वन्दन का कर्मकाण्ड और कहाँ भगवान् की भक्ति!"[2] जब गोस्वामी जी से उनका साक्षात्कार हुआ और मन्दिर में उन्होंने दर्शन किये तब अपनी शङ्का उनके समक्ष प्रकट की। इस पर गोस्वामी जी ने उत्तर दिया—"जो भक्ति मार्ग है सो तो फूल रूपी है और कर्ममार्ग काँटारूपी है। सो फूल तो रक्षा बिना फूले न रहैं, ताते वेदोक्त कर्म मारग है सो भक्तिरूपी फूलन कों काँटेन की बाड़ है। ताते कर्म मार्ग की बाड़ बिना भक्ति रूपी फूल की जतन न होय।"[3] कर्म और भक्ति के योग का उपदेश सुन कर गोविन्दस्वामी का मन बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद गोविन्द-स्वामी ने शरणागति की प्रार्थना की और गोस्वामी जी ने उन्हें शरण में ले लिया। गोविन्द स्वामी अब 'स्वामी' से 'दास' बन गये।

कुछ समय महावन में निवास करने के बाद गोविन्ददास गोकुल में ही आ गये और

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६४।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६६।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६७।

वहाँ रह कर भगवद्भक्ति और श्री गुसाईं जी के व्याख्यानों से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त करने लगे। गोविन्द स्वामी जी की यमुना में परम भक्ति थी, परन्तु वे कभी यमुना में स्नान नहीं करते थे।[१] इनका विचार था कि अपनी पापी देह को पवित्र यमुना से कैसे स्पर्श कराऊँ। वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले आँतरी ग्राम में जो लोग इनके शिष्य हो गये थे वे भी गोविन्दस्वामी के प्रभाव से गोकुल में आकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये। इस विषय में वार्ता में एक बड़ी रोचक कथा दी है।[२] एक समय गोविन्दस्वामी के कुछ शिष्य आँतरी गाँव से उनकी खोज म गोकुल आये। जब वे पूछते-पूछते गोविन्दस्वामी के घर पहुँचे तो उन्हें उनकी बहन कानबाई से ज्ञात हुआ कि वे स्नान करने गये है। शिष्यगण यशोदा घाट पर आये। वहाँ उन्होंने स्वामी जी को पहचाना नहीं और उन्हीं से पूछा—गोविन्दस्वामी कहाँ हैं? गोविन्दस्वामी ने उन्हें पहिचान लिया था, परन्तु अपने को गुप्त रखते हुये उत्तर दिया कि गोविन्दस्वामी तो मर गये और उन्हें मरे बहुत दिन हो गये। यह उत्तर पाकर वे सब आश्चर्य में पड़े और गोविन्दस्वामी के घर फिर गये। इतने में ही गोविन्द स्वामी भी घर पहुँच गये। जब उन शिष्यों ने उन्हें पहचाना तब उनसे पूछा कि आपने यह क्यों कहा कि गोविन्दस्वामी तो मर गये। गोविन्द स्वामी ने उत्तर दिया कि गोविन्द स्वामी तो अब हम नहीं हैं, अब तो हम गोविन्ददास हैं, 'स्वामीपना' बहुत दिन का छुट गया। उसके बाद उन सब शिष्यों ने भी श्री गोस्वाम विट्ठलनाथ जी की शरण ले ली।

गोकुल में कुछ समय रहने के बाद गोविन्दस्वामी श्रीनाथ जी की सेवा में गोवर्द्धन चले गये और फिर मरणपर्यन्त वहीं रहे। वहाँ रह कर भी उन्होंने अनेक पदों की रचना की। श्रीनाथ जी के मन्दिर में इनको भी कीर्तन की सेवा दी गई थी। अपने बनाये पदों को वे अपने इष्ट श्रीनाथ जी के समक्ष गाया करते थे। गोविन्दस्वामी की सखा भाव की भक्ति तथा श्रीनाथ जी के साथ उनके सानुभाव के कई प्रसङ्ग[३] वार्ता मे दिये हुये हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख प्रियादास जी ने भी भक्तमाल की टीका में किया है।[४]

नाभादास जी ने लिखा है कि गोविन्दस्वामी उदार प्रकृति के व्यक्ति थे।[५] इनके मन की दृढ़ वैराग्यवृत्ति का परिचय इनकी बेटी के गोकुल आगमन पर उसके प्रति उदासीन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६८।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २७४, वार्ता प्रसङ्ग ६।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २७५, वार्ता प्रसङ्ग ७।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २८१, वार्ता प्रसङ्ग १०।

४—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, रूपकला, पृ० ६५८, ६५९।

५—भक्तमाल, नाभादास छन्द नं० १०३।

स्वभाव, चरित्र तथा अर्जित योग्यता

भाव के प्रसङ्ग से चलता है, जब इन्होंने अपनी बहन से कहा था कि जो नन्दीयों ! मन तो एक है, सो श्री ठाकुर जी में लगाऊँ के बेटी में लगाऊँ।[1] वार्ता से पता चलता है कि भक्ति पक्ष में गोविन्दस्वामी में दैन्य भाव न था। वे श्रीनाथ जी की सखा-भाव से भक्ति करते थे।[2] इनकी प्रकृति कुछ विनोदशीला भी थी। जब आँतरी गाँव के शिष्य इनसे मिलने आये तब इन्होंने उनसे 'गोविन्दस्वामी तो मरि गये,' कह कर भ्रम में डाल दिया था। वार्ता का यह प्रसङ्ग पीछे दिया जा चुका है। इनकी अनन्य सखा भाव की भक्ति प्रकट करते हुये वार्ताकार ने इनकी विनोदशीला अल्हड़ प्रकृति का कई प्रसङ्ग में उल्लेख किया है। एक बार इन्होंने श्रीनाथ जी के कङ्कड़ी मारी। गोस्वामी जी के हटकने पर इन्होंने उनसे कहा— 'महाराज ! आपनो सो पूत, परायो ढठींगर, मोकों इनने तीन काँकरी मारी हैं।"[3] और एक समय वसन्त के दिनों में गोविन्दस्वामी मन्दिर के मणिकोठा में खड़े ध्यान-मग्न कीर्तन करते थे। उन्होंने एक नई धमार बनाकर गाई। जब तीन तुक गा चुके तब चुप हो गये। गोस्वामी जी ने पूछा,—"गोविन्ददास धमार क्यों नहीं गाते ? उन्होंने उत्तर दिया,—'महाराज ! धमार तो भाजि गाई अरु मन अरु-झाय गयो, सो वह तो भाजि गये ताते ख्याल उतनो ही रह्यो।"[4] यद्यपि इस प्रसङ्ग से गोविन्ददास की मानसिक भक्ति की अनुभूति का परिचय मिलता है, परन्तु जिस ढङ्ग से "महाराज ! धमारि तो भाजि गई" कहकर उन्होंने गुसाईं जी को उत्तर दिया उससे उनकी विनोदशीला प्रकृति का भी परिचय मिलता है। इसी प्रकार के और भी प्रसङ्ग वार्ता में आते हैं। गोविन्दस्वामी पाग बहुत अच्छी बाँधते थे। अपनी कई टुकड़ों में फटी हुई पाग को ये ऐसी युक्ति से बाँधते थे कि उसके फटे होने का किसी को अनुमान भी नहीं था। एक बार एक ब्रजवासी ने उनकी पाग के पेच सुन्दर देखकर उसको उनके सिर से उतार लिया और लेकर चलने लगा। गोविन्दस्वामी ने अपनी हँसोड़ प्रकृति का परिचय देते हुए कहा—' सारे, सोलह टूक हैं, समारि लीजो, हों सकारे तेरे घर आय कैं ले जाऊँगो।" यह सुनकर वह ब्रजवासी बहुत लज्जित हुआ और उसने पाग वापिस दे दी।[5]

गोविन्दस्वामी भक्त और उच्च कोटि के कवि होने के साथ साथ एक सिद्ध गवैये

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८८।

२—अष्टछाप, काँकरौली,पृ० २७३।

नोट:—कवि ने गोचारण तथा कुञ्जलीला के ही पद अधिक संख्या में लिखे हैं। विरह, प्रार्थना के पद इन्होंने नहीं लिखे।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २७५।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २७६:२७७।

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८६।

भी थे। गान विद्या में ये इतने निपुण थे कि वल्लभसम्प्रदाय में आने के पहले ही इनके अनेक शिष्य हो गये थे, जिन्होंने इन्हें 'स्वामी' की पदवी से विभूषित किया था। वल्लभसम्प्रदाय मे आने के बाद तो इनके गान को ख्याति दूर दूर फैलगई थी। अकबर के दरबार के नवरत्नों मे से एक रत्न 'तानसेन' जो पहले स्वामी हरिदास जी का शिष्य था, इनसे गाना सीखने आता था।[1] वार्ता में इनके सहस्रावधि पद लिखने का उल्लेख है और इनकी गान विद्या की कई स्थलो पर वार्ताकार ने प्रशसा की है।[2] २५२ वार्ता में नरगढ के राजा आसकरन की कथा में भी गोविन्दस्वामी के सहस्रावधि पद लिखने और उनके तानसेन को पद' सिखाने का उल्लेख है।[3] परन्तु गोविन्दस्वामी के २५२ पद बहुत प्रसिद्ध हैं जिनकी प्रतियाँ वैष्णव घरानों में उपलब्ध हैं। २५२ पदों का एक संग्रह लेखक के पास भी है। इन २५२ पदों के अतिरिक्त इनके और भी पद लेखक के देखने में आये हैं।

गोविन्दस्वामी विद्वान, गायनाचार्य, कवीश्वर और परमभक्त थे। उनका स्वभाव निशङ्क और निर्भीक था। मोह उनको छू तक न गया था। वे एक गुणशाली व्यक्ति थे।

अन्त समय और गोलोकवास

गोविन्दस्वामी के अन्त समय और गोलोकवास का प्रसङ्ग न तो २५२ वार्ता मे दिया हुआ है और न 'अष्टसखान की वार्ता' मे। 'श्री गिरिधरलाल जी के १२० वचनामृत' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जब श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने लीला में प्रवेश किया तभी गोविन्दस्वामी ने देह सहित गोवर्द्धन की कन्दरा मे प्रवेश किया और नित्य लीला में पहुँचे।

जन्म तथा शरणागति की तिथियाँ

'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' में लिखा है कि सं० १५९२ में गोविन्द स्वामी गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शरण मे आये। वार्ता में लिखा है कि शरणागति के समय ये एक कवीश्वर और प्रसिद्ध गवैये थे। गान विद्या सीखने के लिए इनके अनेक शिष्य भी हो गये थे जिसके कारण ये 'स्वामी' कहलाने लगे थे। उस समय इनका विवाह भी हो गया था। और

१—२५२ वार्ता में तानसेन की वार्ता में उल्लेख है कि एक बार तानसेन ने गोविन्दस्वामी के कीर्तन सुनकर अपने गान को बहुत निम्न कोटि का समझा और उन्होंने गोविन्दस्वामी से गाने सिखाने की विनय की। गोविन्दस्वामी ने फिर इन्हें गान विद्या सिखाई।
२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० २३७।

२—'सो गोविन्ददास भैरव राग अलाप्यो, सो गोविन्ददास को गाो बहोत आछो हतो और आप गावत ही बहोत आछे हते, सो भैरव राग ऐसो जाम्यो जो कछु कहिये में नाहीं आवे।"
अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० २८९।

३—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, आसकरण राजा, पृ० १६२।

ही में रहा करते थे[१]। वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद वे गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन करते थे; परन्तु इनका कुटुम्ब मथुरा ही में रहता था। वार्ता से तथा नागरीदास की पद-प्रसङ्ग-माला[२] रचना से ज्ञात होता है कि छीतस्वामी मथुरिया चौबे थे[३]।

जन्म-स्थान, जाति-कुल

वार्ता साहित्य अथवा अन्य सूत्रों से इनके माता पिता का कोई वृत्तान्त ज्ञात नहीं होता। इनका विवाह हुआ था अथवा नहीं, इनके कोई सन्तान भी थी अथवा नहीं, इन बातों का स्पष्ट समाधान वार्ता ने नहीं किया है। परन्तु वार्ता के कुछ प्रसङ्गों से यह अनुमान किया जा सकता है कि छीतस्वामी गृहस्थ थे। वार्ता में लिखा है कि ये अकबर के दरबार के रत्न बीरबल के पुरोहित थे।[४] वल्लभ-सम्प्रदाय में शरण जाने के बाद एक बार ये बीरबल के पास अपनी 'बरसोंड' लेने गये, जहाँ से ये बीरबल के एक वाक्य पर रुष्ट होकर बिना 'बरसोंडी' लिये चले आये[५]। जब गोस्वामीजी ने यह समाचार सुना तो उन्होंने लाहौर के वैष्णवों को छीतस्वामी के बारे में लिखा कि यह ब्राह्मण गरीब है, इसकी सेवा अच्छी प्रकार से करना[६]। छीतस्वामी पत्र लेकर लाहौर तो नहीं गये; परन्तु पत्र उन वैष्णवों के पास भेज दिया गया और प्रत्येक वर्ष सौ रुपये की हुण्डी लाहौर के वैष्णवों से छीतस्वामी के पास आने लगी। इस वृत्तान्त से अनुमान हो सकता है कि छीतस्वामी विरक्त व्यक्ति न थे। उनके कुटुम्ब भी रहा होगा जिसके पोषण के लिए वे बीरबल के यहाँ से बरसोंडी लाते थे और जिसके लिए गोस्वामीजी ने सौ रुपये सालाना उनको लाहौर से दिलवाये। वार्ता से ज्ञात होता है कि शरणागति के बाद छीतस्वामी ने गोस्वामीजी से आज्ञा माँगी—"महाराज, आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊँ।"[७] इससे भी ज्ञात होता है कि छीतस्वामी गृहस्थ थे।

मात-पिता-कुटुम्ब

१—"सो वे छीतस्वामी मथुरिया चौबे हते तिनसों सब कोऊ छीतू कहते सो सब मथुरा में पाँच चौबे हते।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४७। तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे० पृ० ।१।

२—नागर-समुच्चय, पद-प्रसङ्गमाला, सिङ्गार सागर, पृ० २०७।

३—"श्रीगुसाईंजी के सेवक छीतस्वामी मथुरिया ब्राह्मण चौबे हते सो वे मथुरा में रहते।" 'अष्टसखान की वार्ता' तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४७।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५१।

५— ,, ,, पृ० २५८।

६— ,, ,, पृ० २६२।

७—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५५।

वार्ता से विदित है कि छीतस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले कवि थे और गान विद्या जानते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी की प्रथम भेंट पर ही उन्होंने पद बनाकर गाया था।[1] वार्ता, नागर-समुच्चय तथा पद-प्रसंग माला से यह

शिक्षा

भी पता चलता है कि इनकी चारित्रिक शिक्षा अच्छी नहीं थी। वार्ता में इनको सम्प्रदाय मे आने से पहले एक मसखरा, लम्पट और गुण्डा लिखा है।[2] और यह भी लिखा है कि ये 'छीतू' नाम से प्रसिद्ध थे। नागरीदास ने इनको झगड़ालू प्रकृति का व्यक्ति लिखा है।[3]

जब वल्लभ-सम्प्रदाय की शरणागति के बाद उन पर गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शिक्षा का प्रभाव पड़ा तो इनका चरित्र भी सुधर गया और वे एक उच्च कोटि के कवि और भक्त बन गये।[4] इनके इन गुणों की प्रशंसा, जैसा कि पीछे कहा गया है, इनके समकालीन भक्त नाभादास[5] जी तथा ध्रुवदास[6] जी ने भी की है।

नोट:—मथुरा में छीतस्वामी के रहने के प्राचीन घर का दर्शन लेखक ने किया है। श्यामघाट मथुरा में एक सज्जन श्री गोपालजी चौबे रहते हैं। वे मथुरा में छीतस्वामी के वंशजों में प्रसिद्ध हैं। उनसे बातें करने पर लेखक को ज्ञात हुआ कि जिस घर में छीतस्वामी रहते थे, उसमें 'श्यामजी' कृष्ण की मूर्ति भी है, जिसकी स्थापना को वे छीतस्वामी के समय से ही बताते हैं। लेखक को श्री गोपालजी चतुर्वेदी से छीतस्वामी का अधिक वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका। मथुरा में एक प्रसिद्ध उच्चकोटि के कवि नवनीत लालजी चतुर्वेदी हो गये हैं जिनके पुत्र श्रीगोविन्दजी चतुर्वेदी आजकल मथुरा में अच्छे कवि समझे जाते हैं। स्वर्गीय नवनीतलालजी ने मथुरा के चौबे कवियों के समय अपनी डायरी में लिखे हैं। यह डायरी गोविन्द चतुर्वेदीजी के पास है। उसमें छीतस्वामी का भी उल्लेख है।

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५०।

२—'सो वे छीतस्वामी मथुरिया चौबे हते, तिनसों सब कोऊ छीतू' कहते, सो सब मथुरा में पाँच चौबे सिरनाम हते, पाँचन हू में छीतू बड़े सिरनाम हते सो वे छीन को देखतें, उनसों मस्करी करते··· ··· ···सो वे पाँच आपुस में मित्र हते, परि वे गुंडा हते।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४७

३—"छीतस्वामी सो 'स्वामी' तो पाछे कहाये, पहिले छीतू मथुरिया' कहावत हैं। चित में बढ़ोत रिंद कुटीचर रहैं, शैव हुते।" नागर समुच्चय, पृ० २०७।

४—"सो वे गुसाईं जी की कृपा ते बड़े कवीश्वर भये, सो बहुत कीर्तन किये।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५६।

५—भक्तमाल, छन्द नं० १५६, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ८२१।

६—भक्त नामावली, ध्रुवदास, छन्द नं० १०३, पृ० १०।

इनका पैतृक व्यवसाय पुरोहिती था। वार्ता में लिखा है कि ये बीरबल के पुरोहित थे।[1] वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले गोविन्दस्वामी की तरह ये भी 'स्वामी' कहलाते थे।[2] सम्भव है, गान विद्या और कविता सीखने के लिए इनके पास आनेवाले शिष्यों ने इनको 'स्वामी' की पदवी दे दी हो। इनके किसी सम्प्रदाय की दीक्षा देनेवाले स्वामी होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन।

नागरीदास जी के कथनानुसार छीतस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले शैव थे और बहुत लौकिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इनके चार चौबे मित्र मथुरा में और थे। एक बार इन पाँचों ने सोचा कि गोकुल के गुसाईं श्री विट्ठलनाथ जी की परीक्षा लेनी चाहिए। एक खोटा रुपया और थोथा नारियल राख से भरा हुआ साथ लेकर ये पाँचो गोकुल में श्री विट्ठलनाथ के निकट 'मसकरी' करने आये। वहाँ छीतस्वामी के चार मित्र तो बाहर बैठे रहे और छीतस्वामी भीतर गोस्वामी जी के पास गये। उस समय गोस्वामी जी के स्वरूप को देखकर इन पर ऐसी मोहिनी पड़ी कि इनके स्वभाव की चञ्चलता और 'मसकरी' सब गायब हो गई और पश्चात्ताप का भाव इनके मन में सञ्चारित हो गया। ये हाथ बाँध कर कहने लगे,—"महाराज, मेरो अपराध क्षमा करो, और मोको शरण लीजे। हम नाहीं जानत जो कौन अपराध तें स्वामी भये हैं, हमारे अब भाग्य खुले हैं जो आपके दरशन पाये। अब ऐसी कृपा करो जो स्वामित्व छूटे। जो आपके दास कहाइबे की इच्छा है, और मन की कुटिलता तो बहोत हुती, परि आपके दरसन करत ही सब कुटिलता दूरि भाजि गई, तातें अब हों आपके हाथ बिकानों हौं, प्रभु हो, दीनानाथ हो, दयासिन्धु हो, या जीव की ओर प्रभुन को कहा देखनों। ताते महाराज अब मोकों आपनो ही करि जानिये, आपुनो सेवक करिये[3]"। इस प्रकार छीतस्वामी के विनय करने पर गोस्वामी जी ने उन्हें नाम सुनाया और शरण में ले लिया। उसी समय छीतस्वामी ने यह पद गाया —

राग विहाग।

भई अब गिरधर सों पहिचान[4]।
कपट रूप धरि छलिबे आयो, पुरुषोत्तम नहिं जा ।

1—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५६।
2—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४६।
3—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४६ तथा २५०।
4—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५०।

छोटो बडो कछू नहिं जा यो, आय रहयो अज्ञान।
छीत स्वामी देखत अपनायो, श्री विट्ठल कृपानिधान।

इसके बाद छीतस्वामी बैठे बैठे मन मे विचारने लगे,—'मैं संसार समुद्र में बह्यो जात हतो, मोरी बाँह पकरि के काढ़े और मेरे मन मे खोटे नारियल को और खोटे रुपिया को पश्चात्ताप हतो सोऊ ताप मेरो दूरि कर्यो, जो मो पर श्री गुसाई जी ने बड़ी कृपा करी" । यह सोचते सोचते वे हर्ष में यह पद गा उठे —"*हौं चरणातपत्र की छैयाँ*[1]।'

इसके बाद छीतस्वामी ने गोकुल में श्री नवनीतप्रिय जी के और गोवर्द्धन पर श्री गोवर्द्धननाथ जी (श्री नाथ जी) के दर्शन किये। उन दर्शनों से उनके मन की परिवर्तित वृत्ति और भी निखर गई और फिर आत्मसमर्पण कर गुसाई जी से आज्ञा माँग कर अपने घर मथुरा वापिस चले गये। मथुरा म उनके मित्र उनसे मिले, छीतस्वामी के चरित्र के उस महान् परिवर्तन को देख कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। वार्ता में लिखा है कि इसके बाद श्री गुसाई जी की कृपा से छीतस्वामी भगवदीय कवीश्वर और कीर्तनकार हुये। उन्होंने अपने जीवन म फिर अनेक पद बनाकर गाये और श्रीनाथ जी की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया।

वार्ता तथा नागरीदास जी के कथन के आधार पर पीछे कहा जा चुका है कि छीतस्वामी वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले लौकिक विषयों में लिप्त लम्पट, कुटिल स्वभाववाले तथा मसखरे मौजी जीव थे। श्री गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के प्रभाव से इनके मन की कुटिल और कुत्सित वृत्ति बदल गई और ये परम भक्त और उदार व्यक्ति बन गये।

स्वभाव और चरित्र।

छीतस्वामी अपनी आन के पक्के दृढ सङ्कल्पी पुरुष थे। इन्होंने बीरबल के समक्ष गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को साक्षात् कृष्ण रूप मान कर उनकी प्रशंसा मे एक पद गाया जो उनको पसन्द नहीं आया। इस पर अपने विश्वास का अपमान समझ कर छीतस्वामी बिना 'बरसौंडी' लिए ही चले आये। इससे यह भी विदित होता है कि इनमें कोई धन द्रव्य की लिप्सा न थी। जब गोस्वामी जी पत्र देकर इन्हें लाहौर के वैष्णवों के पास भेजने लगे तो इन्होंने विनम्र होकर गोस्वामी जी के समक्ष निवेदन किया—"जो महाराज मैं वैष्णव भयो सो कछु वैष्णव के पास ते भीख माँगन कों नाहीं भयो। जो महाराज ! मेरे तो राज के चरण

१—पीछे कवि के आत्मचारित्रिक उल्लेख तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५२।
नोट पीछे कहा गया है कि मथुरा में छीतस्वामी के वंशजों के पुराने घर में एक 'श्यामजी' की मूर्ति स्थापित है। घरवालों का कहना है कि यह मूर्ति छीतस्वामी जी के समय से ही चली आती है। सम्भव है, श्याम जी के स्वरूप की स्थापना छीतस्वामी ने वल्लभ सम्प्रदाय में आने के बाद की हो। वल्लभ सम्प्रदाय में जाने से पहले ये, नागरीदास जी के कथनानुसार, शैव थे।

कमल छाँड़ि के कछू काम नाहीं और कहूँ न जाऊँगो। और अब कहा ऐसे कर्म करूँगो, जो वैष्णव होय के कहा भीख मागूँगो'।" इससे भी छीतस्वामी के मन का सन्तोष-भाव प्रकट होता है। गुरु की भक्ति और ब्रज-प्रेम का परिचय तो इनके अनेक पदों से मिलता है। मथुरा के चतुर्वेदियों मे यह बात प्रचलित है कि वल्लभ सम्प्रदाय की सेवा विधि का जो मण्डान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने विस्तार से प्रचलित किया था उसकी उद्भावना में बहुत-कुछ हाथ छीतस्वामी का था।

गोलोकवास

२५२ वैष्णवन की वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ताओं में इनके अन्त समय का वृत्तान्त नहीं दिया हुआ है। इनके गोलोकवास का प्रसङ्ग केवल श्री गिरिधरलाल जी के "१२० वचनामृत" में दिया हुआ है। उक्त ग्रन्थ के लेख का आशय इस प्रकार है कि जब गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी का गोलोकवास हो गया और जब छीतस्वामी ने यह दु:खद समाचार सुना तो उन्हें मूर्च्छा आ गई। उस मूर्च्छा में श्रीनाथ जी के साक्षात् दर्शन उन्हें, यह सान्त्वना देते हुये कि अब तक तो मैं दो रूपों द्वारा (श्री आचार्य जी और श्री गुसाईं जी) अनुभव कराता था, अब मैं सात रूपों से अनुभव कराऊँगा। यह अनुभव करके छीतस्वामी की चेतना जागी और फिर उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों की बधाई गाकर देह त्याग दी।[२] इस प्रसङ्ग से यह ज्ञात होता है कि छीतस्वामी का गोलोकवास भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के समय ही हुआ।

शरणागति, जन्म तथा गोलोकवास की तिथियाँ

'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' के कथनानुसार छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी दोनों सम्वत् १५९२ वि० में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण आये।[३] इस विषय पर कोई अन्य प्रामाणिक सूत्र न होने पर यहाँ 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' के सम्वत् को ही स्वीकार किया गया है। जैसा कि पीछे कहा गया है वार्ता तथा नागरीदास जी के कथन से ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले छीतस्वामी पाँच प्रसिद्ध 'गुण्डे' चौबों में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे और ये स्त्रियों की ओर बहुत देखा करते और उनसे मसखरी भी किया करते थे। इससे अनुमान होता है कि इस समय छीतस्वामी की पूर्ण यौवन अवस्था रही होगी जिसको हम बीस या पचीस वर्ष की मान सकते

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६२।

२—श्री गिरिधरलाल जी महाराज के १२० वचनामृत।

३—नैन भवित सर सोम के कृत युगादि दिन पाय,
छीतस्वामी अरु गोविन्द को गिरिधर भवित बताय।
सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० १९।

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप के ग्रन्थ

सूरदास जी की रचनाएँ

सूरदास के अध्ययन की, पीछे दी हुई आधारभूत-सामग्री के विवरण तथा सूर के नाम से छपे हुये ग्रन्थों के अवलोकन से, सूरदास-कृत कहे जानेवाले कुल निम्नलिखित ग्रन्थ सामने आते हैं—

१—सूरसागर	प्रकाशित	२—भागवत-भाषा	अप्रकाशित
३—दशमस्कन्ध भाषा	अप्रकाशित	४—सूरदास के पद	,,
५—नागलीला	अप्रकाशित	६—गोवर्द्धन-लीला	,,
७—सूर-पचीसी	प्रकाशित	८—प्राणप्यारी	,,
९—व्याहलो	अप्रकाशित	१०—भँवरगीत	प्रकाशित
११—सूर-रामायण	प्रकाशित	१२—दान-लीला	अप्रकाशित
१३—मान-लीला	अप्रकाशित	१४—सूर-साठी	प्रकाशित
१५—राधारस-केलि-कौतूहल	प्रकाशित	१६—सूरसागर-सार	अप्रकाशित
१७—सूर-सारावलि	,,	१८—साहित्य-लहरी	प्रकाशित
१९—सूर-शतक	अप्रकाशित	२०—नल-दमयन्ती	अप्रकाशित
२१—हरिवंश-टीका	,,	२२—रामजन्म	,,
२३—एकादशी-माहात्म्य	,,	२४—सेवाफल	,,

सूरदास के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार

सूरसागर

८४ वार्ताकार से लेकर अब तक के लेखकों के एकमत तथा इस ग्रंथ की अनेक उपलब्ध प्रतियों से ज्ञात होता है कि सूरसागर सूरदास की प्रामाणिक रचना है। वार्ता के कथन से, जैसा कि पीछे कहा चुका है, यह भी सिद्ध है कि इस रचना का नाम सूर के समय में ही रख दिया गया था। सूरसागर की पद-संख्या तथा उसमें वर्णित विषय पर साहित्यिकों में मतभेद है।

हैं। वार्ता के कथनानुसार शरणागति के समय ये कवि थे और स्वामी कहलाते थे। जिस समय गोस्वामी जी को छलने के लिए ये गये और पास जाके उनको दण्डवत प्रणाम किया, उस समय गोस्वामी जी ने इनसे कहा—"तुम तो चौबे हो, हमारे पूजनीय हो; तुमको तो सब आपही ते सिद्ध हैं, तुम हमको दण्डवत काहे को करत हो और ऐसे कहा कहत हो।[1]" गोस्वामी जी के ये शब्द भी इस बात की सूचना देते हैं और छीतस्वामी के कवि होने और स्वामी कहलाने से यह बात पुष्ट होती है कि उनकी इस समय बालक अवस्था नहीं थी। वे २५ वर्ष के अवश्य रहे होंगे। सं० १५६२ वि० (शरणागति का समय) में से २५ घटाने पर इनका जन्म संवत् लगभग सं० १५६७ वि० आता है।

पीछे कहा गया है कि छीतस्वामी का निधन गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के शोक-संवाद को सुनने के कुछ समय की मूर्च्छा के बादही हो गया। गोस्वामी *जी का निधन समय सं० १६४२ वि० फाल्गुण कृष्ण ७ को हुआ था। इसलिए छीतस्वामी* के गोलोकवास की तिथि सं० १६४२ वि० फाल्गुण कृष्ण ८ है। यश-काया से इनकी स्थिति का स्थान गिरिराज (गोवर्द्धन) के ऊपर, 'पूछरी' स्थान पर श्याम तमाल वृक्ष के नीचे बताया जाता है। इनके लीलात्मक स्वरूप के विषय मे वार्ता में लिखा है कि ये सखा रूप मे सुबल हैं और सखी रूप में पद्मा हैं।[2]

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०१।

२—अष्टछाप, काँकरौली पृ० २४२।

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप के ग्रन्थ

सूरदास जी की रचनाएँ

सूरदास के अध्ययन की, पीछे दी हुई आधारभूत-सामग्री के विवरण तथा सूर के नाम से छपे हुये ग्रन्थों के अवलोकन से, सूरदास-कृत कहे जानेवाले कुल निम्नलिखित ग्रन्थ सामने आते हैं—

१—सूरसागर	प्रकाशित	२—भागवत-भाषा	अप्रकाशित
३—दशमस्कन्ध भाषा	अप्रकाशित	४—सूरदास के पद	,,
५—नागलीला	अप्रकाशित	६—गोवर्द्धन-लीला	,,
७—सूर-पचीसी	प्रकाशित	८—प्राणप्यारी	,,
९—व्याहलो	अप्रकाशित	१०—भँवरगीत	प्रकाशित
११—सूर-रामायण	प्रकाशित	१२—दान-लीला	अप्रकाशित
१३—मान-लीला	अप्रकाशित	१४—सूर-साठी	प्रकाशित
१५—राधारस-केलि-कौतूहल	प्रकाशित	१६—सूरसागर-सार	अप्रकाशित
१७—सूर-सारावलि	,,	१८—साहित्य-लहरी	प्रकाशित
१९—सूर-शतक	अप्रकाशित	२०—नल-दमयन्ती	अप्रकाशित
२१—हरिवंश-टीका	,,	२२—रामजन्म	,,
२३—एकादशी-माहात्म्य	,,	२४—सेवाफल	,,

सूरदास के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार

८४ वार्ताकार से लेकर अब तक के लेखकों के एकमत तथा इस ग्रन्थ की अनेक उपलब्ध प्रतियों से ज्ञात होता है कि सूरसागर सूरदास की प्रामाणिक रचना है। वार्ता के कथन से, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, यह भी सिद्ध है कि इस रचना का नाम सूर के समय में ही रख दिया गया था। सूरसागर की पद-संख्या तथा उसमें वर्णित विषय पर साहित्यिकों में मतभेद है।

सूरसागर

८४ वार्ता के कथन से और सूरसागर में आये हुये कवि के अनेक आत्मचारित्रिक उल्लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि कवि ने सूरसागर भागवत के विषय के अनुसार लिखा। जो पद कीर्तन तथा रागों के विभाजन-क्रम के अनुसार लिखे हुये सूरसागर नाम से कहे जाते हैं, वे वास्तव मे सूरसागर के पद ही उस क्रम में वैष्णवों ने रख लिये हैं। इसलिए लीला और कथा-क्रम को रखनेवाले सूरसागर ही सूर के वास्तविक सूरसागर के रूप हैं। हस्तलिखित रूप में इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ खोज में नागरी प्रचारिणी सभा को मिली हैं उनका ब्योरा पीछे खोज रिपोर्टों के आधार से एक तालिका में दिया जा चुका है।

छापे मे आई हुई सूरसागर की मुख्यत दो प्रतियाँ प्रचलित हैं। एक वेंकटेश्वर प्रेस की और दूसरी रागकल्पद्रुम के आधार पर छपी नवलकिशोर प्रेस की। नवलकिशोर प्रेस की प्रति के दो भाग हैं। एक नित्य कीर्तन व पद, जिसमे भिन्न भिन्न रागों के अनुसार पद हैं, दूसरे लीला के पद, जिसमें कृष्ण की कथा के अनुसार पद हैं। इसमें सूरदास के अतिरिक्त अन्य अष्टछाप कवियों के भी पद मिले हुये हैं। उधर वेंकटेश्वर प्रेस वाले सूरसागर म भी प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये सब पद अष्टछाप वाले सूरदास के ही हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि वेंकटेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर का सम्पादन एक वल्लभसम्प्रदायी विद्यानुरागी व्यक्ति द्वारा हुआ है। इसलिए उसमें कुछ थोड़े से इधर उधर के पदों को छोड़कर पूरा अंश सूर-कृत ही होना चाहिए। डा० जनार्दन मिश्र जी के इस कथन से, कि सूरश्याम और सूरजदास छापवाले पद सूरदास के नहीं हैं, लेखक सहमत नहीं है। आठों कवियों की रचनाओं की प्राचीन पोथियों मे एक-एक कवि की कई-कई छाप मिलती हैं। वल्लभ सम्प्रदायी मन्दिरों में सुरक्षित सूर के पदों में भी लेखक ने सूरदास की ये छापें देखी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने, सूर सागर का एक प्रामाणिक संस्करण निकालने का भार लिया था, परन्तु किसी कारणवश वह स्तुत्य कार्य बीच ही में रुक गया।

भागवत भाषा

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों से इस ग्रन्थ के सूर कृत होने की सूचना मिलती है। उसी के आधार पर अन्य विद्वानों ने सूरसागर के अतिरिक्त, इसे सूर का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा है। ग्रन्थ अप्रकाशित है। किन्तु नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्टों के वक्तव्य से तथा उसमें दिये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ग्रन्थ सूरसागर का ही रूप है। सूरसागर भी तो एक प्रकार से भागवत का ही भाषा में छायानुवाद है। सभा की रिपोर्ट से पता चलता है कि यह ग्रन्थ पदों मे है अथवा पद्यबद्ध है। खोज-रिपोर्ट[1] में दिया हुआ ग्रन्थ का आरम्भिक उद्धरण वही है जो सूरसागर का है—

१—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट सन् १९१२-१४ ई० नं० १८९ (ए)।

चरण कमल बन्दों हरिराई।

इसलिए यह ग्रन्थ सूरसागर से अलग, सूर का कोई ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। खोज-रिपोर्ट[1] में लिखा है कि यह ग्रन्थ भागवत दशम स्कन्ध का, सूरदास द्वारा पदों में किया गया, अनुवाद है जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भी सूरसागर का दशमस्कन्ध

दशमस्कन्ध-टीका

ही है। सूरसागर के, केवल दशमस्कन्ध की, अलग लिखी कई हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक की देखी हुई हैं। इसलिए यह भी सूरसागर से अलग कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

खोजरिपोर्ट[2] से ज्ञात होता है कि यह पोथी सूर के पदों का संग्रह है। इस प्रकार के पद-संग्रह, जिनमें संग्रहकर्ता की रुचि के अनुसार पद र गृहीत हैं, बहुत से मिलते हैं। स्व०

सूरदास के पद

पं० मयाशङ्कर याज्ञिक के संग्रहालय तथा मथुरा-गोकुल के प्रतिलिपिकारों के पास ऐसे अनेक संग्रह लेखक ने देखे हैं। ये सब पद वास्तव में सूरसागर से ही उद्धृत हैं। ये संग्रह सूर के स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं हैं। उसी प्रकार इस संग्रह को भी सूर का स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में इस ग्रन्थ से कोई उद्धरण नहीं दिया गया है, परन्तु रिपोर्ट के वक्तव्य से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ में कृष्ण द्वारा 'काली-

नागलीला

नाग-नाथन' प्रसङ्ग से सम्बन्ध रखनेवाले सूरदास-कृत पद हैं। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कवि की कोई स्वतन्त्र रचना नहीं कही जा सकती। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का उल्लेख है तथा अन्य विद्वानों ने भी इसे सूर का एक ग्रन्थ लिखा है। काँकरौली विद्या-विभाग पुस्तकालय में

गोवर्द्धन लीला

लेखक ने सूर-कृत दो गोवर्द्धन लीलाएँ देखी हैं। एक नं० ६३:७ की प्रति है जो दोहा-रोला मिश्रित छन्द में लिखी गई है और दूसरी चौपाई छन्द में। सूर-सागर के (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ २१३ पर दोहा-रोला छन्दवाली एक गोवर्द्धन-लीला वर्णित है और पृष्ठ २२२ पर चौपाई छन्दवाली दूसरी गोवर्द्धनलीला है। खोज-रिपोर्ट में सूर-कृत गोवर्द्धन-लीला के जो उद्धरण दिये गये हैं वे सूर-सागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृ० २२२ पर दी हुई गोवर्द्धन-लीला से मिलते हैं। इस प्रकार यह भी सूर का स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, वरन् सूर-सागर का ही एक अंश है।

१—ना० प्र० सभा०, खो० रि०, सन् १९०६-८ ई० नं० २४४ (डी)।

२— ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, (सी)।

सूर-पच्चीसी

खोज रिपोर्ट[1] में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। उक्त रिपोर्ट में इसका विषय ज्ञान और उपदेश के दोहे बताया गया है। अत इसमें दिये हुये उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि यह सूर का एक लम्बा पद है जो सूर-सागर (वेंकटेश्वर प्रेस), पृष्ठ ३१ पर 'परज'राग के अन्तर्गत दिया हुआ है। इसलिए इसे सूर के स्वतन्त्र ग्रन्थों की सूची में नहीं रक्खा जा सकता। इस ग्रन्थ की छपी प्रतियाँ मथुरा में सावन के मेले में बहुत बिकती हैं।[2]

प्राणप्यारी

खोज रिपोर्ट[3] में इस पुस्तक का उल्लेख है। रिपोर्ट में इसका विषय 'श्याम सगाई' दिया हुआ है और उसमें पूरी रचना उद्धृत है। राग विलावल' के अन्तर्गत यह एक लम्बा पद है। सूर-सागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ १६५ पर श्याम-सगाई का प्रसङ्ग वर्णित है, परन्तु उसमें यह पद लेखक को नहीं मिला, सम्भव है, सूर-सागर की अन्य प्रतियों में यह हो। इस पद की भाषा और शैली बहुत शिथिल है जिससे इसे सूर-कृत मानने में सन्देह भी होता है। वस्तुत सूर कृत यह कोई ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। खोज रिपोर्ट के उद्धरणों की भाषा शिथिल होते हुये भी रचना में 'सूर के प्रभु' छाप आई है। इस प्रकार की छाप सूरदास के अन्य पदों में भी मिलती है। सूर का यह संदिग्ध रचना कही जा सकती है।

व्याहलो

खोज-रिपोर्ट[4] में इस ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है। रिपोर्ट में कोई उद्धरण नहीं दिये गये, परन्तु उसके वक्तव्य से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ राधाकृष्ण-विवाह पर लिखे सूर के पदों का संग्रह है। सूर-सागर (वेंकटेश्वर प्रेस), पृष्ठ ३४८ पर राधाकृष्ण विवाह के पद हैं। इन्हीं पदों में चौपाई और गीतिका छन्द के क्रम में आनेवाला एक लम्बा पद भी है। उसमें भी राधाकृष्ण के विवाह का सुन्दर वर्णन है। ज्ञात होता है किसी ने इन्हीं पदों को अलग से लिखकर 'व्याहलो' शीर्षक दे दिया है। वैसे व्याहलो (विवाह प्रसङ्ग) के वर्णन अन्य कई कवियों के भी मिलते हैं। खोज रिपोर्ट में ही कई कवियों के 'व्याहला' का उल्लेख है[5]। श्रीमयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में भी व्याहलो नाम की नारायणदास-कृत एक पुस्तक है।

१—ना० प्र० सभा, खो० रि० सन् १९२ न० १८६ (या)।

२—सूर पचीसी, सूर-साठी और सूर शतक, तीनों एक पुस्तक रूप में छपी हुई मथुरा में मिलती हैं। प्रकाशक—मनसुख शिवलाल कपरीवाले श्यामघाट मथुरा।

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९१७-१९ ई०, न० १८६ (वक)

४—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०६ ८ ई०, न० २४४ (ए)।

५—इस ग्रन्थ के साथ लगी, खोज-रिपोर्ट में दिये हुये सूर के ग्रन्थों की तालिका में 'व्याहलो'।

इसमें चौपाई छन्दों में राधाकृष्ण के खेल-खेल में होनेवाले विवाह का वर्णन है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वास्तव में यह ग्रन्थ भी सूर-सागर का ही प्रसङ्ग है। उससे इतर यह कोई ग्रन्थ नहीं है

भँवरगीत, सूर-रामायण, दान-लीला, सूर-साठी, मान-लीला आदि जो ग्रन्थ सूर के नाम से प्रचलित हैं और छपे हैं, वे वास्तव में सूरसागर के ही अंश हैं। भँवरगीत तो सूर ने छन्द और पद दोनों शैलियों में लिखा है, परन्तु दोनों का सन्निवेश सूरसागर में है। सूर-रामायण, सूरसागर के नवम् स्कन्ध का भाग है। सूर-कृत दानलीला और मानलीला की कई प्रतियाँ लेखक ने नाथद्वार काँकरौली में स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप में लिखी देखी हैं, परन्तु सूरसागर (वें० प्रे०) पृ० २५२ तथा पृ० ४०६ से, उनका मिलान करने पर ज्ञात होता है कि वे क्रमशः ज्यों की त्यों सूरसागर के उक्त पृष्ठों पर दी हुई हैं। सूर की 'मान-लीला' नामक पुस्तक का, वही लम्बा पद लेखक ने नाथद्वार पुस्तकालय में 'सूरदास-कृत राधा-रस-केलि-कौतूहल'[1] नाम की पुस्तक-रूप में देखा है जिसमें राग सारङ्ग के अन्तर्गत 'मान-मनावो-राधाप्यारी' टेक का लम्बा पद है। इसी को सूरदास का 'मान-सागर' भी कहा जाता है। नाथद्वार की इस प्रति के अन्त में लिखा है—"इति सम्पूर्ण मानसागर।" विक्रम संवत् १९९६ कार्तिक मास की 'व्रजभारती' में पण्डित जवाहर लाल चतुर्वेदी ने 'मानसागर' को निकाला है। वह रचना सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ ४०६:४१२ पर दी हुई है। इस प्रकार उक्त वर्णन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूरसागर के बहुत से प्रसङ्गों को लोगों ने सूरसागर से निकाल कर अलग ग्रन्थ मान लिया है। सूरसागर के दो भाग हैं। एक तो पदों में गाये हुये प्रसङ्गों का सूरसागर; दूसरे, पद के रूप में छन्दों में गाया हुआ सूरसागर। लोग कभी पद-संग्रह से, कभी छन्द में लिखे सूरसागर से, प्रसङ्ग अलग कर सूर के अनेक ग्रन्थ बनाते रहे हैं। नन्ददास के भी बहुत से ग्रन्थ वास्तव में इसी प्रकार के प्रसङ्ग और लम्बे पद मात्र हैं।

सूरसागर-सार।

ग्रन्थ के नाम से अनुमान होता है कि यह सूरसारावली का ही परिवर्तित नाम है। परन्तु खोज-रिपोर्ट इस ग्रन्थ के विषय में एक दूसरी ही प्रकार की सूचना देती है। खोज-रिपोर्ट १९०९-११ ई०, नं० ३१३ (बी). में ग्रन्थ के विषय के बारे में लिखा है कि यह रचना पदों में है और इसका विषय ज्ञान, भक्ति और वैराग्य है। इस ग्रन्थ के आदि और अन्त के उद्धरणों के साथ खोज रिपोर्ट ने इसकी पुष्पिका भी इस प्रकार दी है—"इति श्री सूरसागर-सार संक्षेप प्रथम स्कन्धादि नवम् तरङ्ग समाप्त।" उक्त रिपोर्ट में दिये हुये ग्रन्थ के आदि और अन्त के पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं। ये पद सूरसागर में भी मिलते हैं:—

१—नाथद्वार निजपुस्तकालय, पोथी नं० २८ : ७।

आदि—

विनती केहि विधि प्रभुहि सुनाऊँ ।
महाराज रघुवीर धीर को समय न कबहूँ पाऊँ[१] ।

अन्त—

देखो कपिराज भरत वे आए ।
मम पाँवरी सीस पर जाके कर अगुली रघुनाथ बताए ।
छीन शरीर बीर के बिछुरे राजभोग चित ते बिसराए[२] ।

ज्ञात होता है कि किसी सज्जन ने अपनी रुचि के अनुसार सूरसागर के पदों को ही उसके भिन्न भिन्न प्रसङ्गों से छाँटकर अलग लिख लिया है और उसे सूरसागर सार नाम दे दिया है, जैसे प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सगृहीत तथा सम्पादित 'भँवर गीत सार' नामक ग्रन्थ है जिसमें सूरसागर के ही गोपी विरह तथा गोपी-उद्धव-सवाद के पद एकत्र हैं । अत उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि सूर का यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है ।

सूरसारावली

यह ग्रन्थ सूरसागर की कुछ प्रतियों के साथ उपलब्ध होता है । वेंकटेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर के साथ भी यह छपा है । इसके नाम तथा पदों के विषय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ सूरसागर की एक प्रकार की भूमिका है । इसको हम सूरसागर की केवल विषय सूची ही नहीं कह सकते, जैसा कि कुछ विद्वानों ने कहा है । यह भागवत तथा सूरसागर की कथा का सक्षेप में सारांश है । वन्दना के बाद इसमें सरसी और सार छन्दों में ११०६ द्विपद छन्द दिये हुये हैं । इसम वर्णित विषय उपलब्ध सूरसागर के पदों के अनुपात से नहीं मिलता । इसमें भागवत की कथा का बहुत ही सक्षेप म अविच्छिन्न प्रवाह के साथ कथन है । सूरसागर म अनेक स्थानों पर यह प्रवाह टूट भी जाता है । इसमें सम्पूर्ण बारहों स्कन्धों का सार एक साथ दिया गया है और स्कन्धों में विभाजित नहीं किया गया है । इसके लिखे जाने के समय, तथा सूर द्वारा बनाये गए पदों की सङ्ख्या, को सूचित करनेवाले भी कुछ छन्द इसमें आये हैं । लेखक के विचार से सूरसारावली सूर-कृत एक प्रामाणिक रचना है । सूरसागर की केवल सूची मात्र न होकर उसका सारांश होने के कारण यह रचना एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही है ।

निम्नलिखित कारणों स यह ग्रन्थ अष्टछापी सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है ।

१—सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस पृष्ठ ६२ ।
२—सूरसागर वेंकटेश्वर प्रेस, पृष्ठ १५ ।

इस ग्रन्थ में आरम्भिक वन्दना का पद कुछ पाठभेद से वही है जो सूर-सागर के आरम्भ में वन्दना के रूप में है। इस ग्रन्थ में व्यक्त विचार वल्लभ-सम्प्रदायी विचारों से साम्य रखते हैं जिनका व्यक्तीकरण स्थान-स्थान पर सूर-सागर में भी हुआ है, जैसे, अविगत, आदि, अनन्त, अविनाशी, पूर्ण रस पुरुषोत्तम कृष्ण सदैव वृन्दावन धाम में युगल रूप से आनन्दमग्न रहता है; उसने खेल-खेल में ही अपनी लीला का विस्तार करना चाहा और उसने उसी क्षण सृष्टि रचना की आदि। वल्लभाचार्यजी ने सृष्टि-विकास में २८ तत्व माने हैं। सत्, रज, तम, इन गुणों को उन्होंने प्रकृति के गुण न मानकर स्वतन्त्र तत्व माना है। सारावली में भी २८ तत्वों का उल्लेख है।[1] सूरदास ने युगल-खेल की कल्पना अनेक प्रकार से व्यक्त की है—नृत्यवाद्य के साथ रास-क्रीड़ा में, यमुना की जलक्रीड़ा में, श्रावण के हिंडोल-झूलन में और होली के उन्मत्त रङ्गरस में। सूर-सारावली में यह रस युगल की होली के रूप में प्रकट हुआ है। होली खेलते-खेलते पूर्णरस पुरुषोत्तम कृष्ण अपनी लीला का विस्तार करते हैं। सूरदास के वसन्त और धमार के पद, सूर-सागर के अतिरिक्त, वल्लभसम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन तथा वसन्त-धमार संग्रहों में बहुत बड़ी सङ्ख्या में मिलते हैं। उनमें से अनेक पदों में भी युगल की होली और फगुआ[2] का वर्णन है।

सूर-सारावली में वर्णित विषय बहुत संक्षेप में व्यक्त हैं। इसलिए सूर-सागर के अनेक प्रसङ्गों का समावेश इसमें नहीं हुआ है। जैसा कि पीछे संकेत किया गया है, कुछ प्रसङ्ग केवल भागवत से साम्य रखते हैं, सूर-सागर से नहीं। इस ग्रन्थ में भी कृष्ण की ऐश्वर्य और रस, दोनों प्रकार की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन है, परन्तु कृष्ण के ऐश्वर्य रूप पर बल अधिक है और सूर-सागर के प्राप्त पदों में कृष्ण के आनन्द रूप (व्रज रूप) पर है। सूरदास की इन दोनों रचनाओं मे प्रसङ्गों की कुछ विभिन्नता और भाव की घटा-बढ़ी देखकर एक को सूर की रचना न मानना कुछ तर्कयुक्त बात नहीं जँचती। महात्मा तुलसीदास के रामचरितमानस और कवितावली अथवा गीतावली के विषय एक होते हुए भी उनके विस्तार और प्रसङ्गों में अनेक स्थलों पर विभिन्नता है। इस प्रकार की विभिन्नता सारावली को सूर-सागर से इतर एक स्वतन्त्र रचना का रूप अवश्य देती है।

सूर-सागर और सारावली में साम्प्रदायिक भाव-साम्य के अतिरिक्त, कवि के आत्म-विषयक कथनों में भी साम्य है। सारावली में कवि आत्मिक शान्ति लाभ का भाव प्रकट

१—सूर-सारावली, पृ० १, वें० प्रे० संवत् १९६४ वि०।

२—सूर-सागर, पृ० ४०४, वें० प्रे०—आला री नन्दनदन वृषभानु कुँवरियो......

'घुटुरुन चलत कनक आँगन में'[1] —सूरसारावली
'घुटुरुन चलत स्याम मनि आँगन'[2] —सूरसागर

खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार।
खजन युग मनो लरत लराई कीर बझावत रार॥
नासा के बेसर में मोती बरन् विराजत चार।
मनो जीव सनि सुक एक ह्वै बाढ़े रवि के द्वार[3]॥

—सारावली

प्रिय मुख देखो स्याम निहारि।
× × ×
चचल नैन चहूँ दिसि चितवत युग खजन अनुहारि।
मनहु परस्पर करत लराई, कीर बचाई रारि।
बेसरि के मुकता में झाँई बरन बिराजत चारि।
मानों सुर गुरु सुक भौम सनि चमकत चन्द्र मँझारि[4]।

—सूरसागर

सूर-समुद्र की बुद भई यह कवि बर्नन कहँ करि है[5]।

—सारावली

सूर सिंधु की बुद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी[6]।

—सूरसागर

सारावली में उद्धव को ब्रज भेजते हुये कृष्ण कहते हैं।

वन में मित्र हमारो यक है, हम ही सो है रूप।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब गोधन को भूप।
ताको पूजि बहुरि सिर नइयो अरु कीजो परनाम[7]।

—सारावली

१—सूरसारावली, छन्द नं० ११६, पृ० ६, वें० प्रे० बम्बई।
२—सूरसागर, प्र० स्कं० पृ० ११३, वें० प्रे०।
३—सूरसारावली, पृ० ७ छन्द १७५-१७६, वें० प्रे० बम्बई।
४—सूरसागर, दशम स्कंध, पृ० ३०८, वें० प्रे०।
५—सूरसारावली, पृ० ११, वें० प्रे०।
६—सूरसागर, दशम स्कंध, पृ० ११२, वें० प्रे०।
७—सूरसारावली, ११-वें० प्रे०

करते हुये कहता है,—"आज मुझे गुरु के प्रसाद से इष्ट दर्शन हो रहे हैं।'[1] और मैं कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के अनेक साधनों में भ्रमता फिरा, परन्तु मुझे शांति नहीं मिली। अब श्रीवल्लभाचार्य गुरू की कृपा से मैं आनन्द मग्न हूँ और उसी आनन्द में हरि की लीला का गान करता हूँ।" इसी प्रकार के गुरुप्रसाद-फल तथा आत्मिक शान्ति-लाभ के भाव सूर-सागर में भी प्रकट हुये हैं। नीचे के पद में कवि अपने गुरु की कृपा के प्रताप को बताता है—

हरि के जन की अति ठकुराई।
महाराज, ऋषिराज राज हूँ देखत रहत रजाई।
× × × ×
हरिपद पकज पियो प्रेम रस ताही के रँग रातो।
मन्त्री ज्ञान न औसर पावै कहत बात सकुचातो।
× × ×
माया काल कछू नहि व्यापै यह रस रीति जु जानी।
सूरदास यह सकल समग्री गुरु प्रताप पहिचानी।

—सूरसागर

आत्मिक शान्ति का भाव प्रकट करते हुये कवि राजा परीक्षित के शब्दों में कहता है—

नमो नमो करुणानिधान।
चितवत कृपा कटाक्ष तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान।
मोह निसा को लेस रह्यो नहि भयो विवेक विहान।
आतम रूप सकल घट दरस्यो उदय कियो रवि ज्ञान।
मैं-मेरा अब रही न मेरे छुट्यो देह अभिमान।
भावे परौ आजु ही यह तन भावै रहो अमान।
मेरे जिय अब यहै लालसा लीला श्री भगवान।
श्रवण करौं निसि वासर हित सों सूर तुम्हारी आन।

सूरसारावली में कथा का रूप संक्षिप्त और वर्णनात्मक होने के कारण वह भावाभिव्यक्ति नहीं हुई जैसी सूरसागर में है। सूरसागर में भी जो लीलाएँ चौपाई छन्द में गाई गई हैं उनमें भी भावपूर्ण शब्दावली का अभाव है; फिर भी सूरसारावली में भाषा का वही ब्रज-रूप और वही लालित्य है जो सूरसागर में है। भाव और शब्दावली का साम्य दोनों ग्रन्थों के निम्नलिखित उद्धरणों से ज्ञात होगा—

१—सूर-सारावली, पृ० ३४, वें० प्रे०।

'घुटुरुन चलत कनक आँगन में'[1] —सूरसारावली
'घुटुरुन चलत स्याम मनि आँगन'[2] —सूरसागर

खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार।
खंजन युग मनों लरत लराई कीर बझावत रार॥
नासा के बेसर में मोती बरन् विराजत चार।
मनों जीव सनि सुक्र एक ह्वै बाढ़े रवि के द्वार[3]॥

—सारावली

प्रिय मुख देखो स्याम निहारि।
× × ×
चचल नैन चहूँ दिसि चितवत युग खंजन अनुहारि।
मनहु परस्पर करत लराई, कीर बचाई रारि।
बेसरि के मुकता में झाँई बरन बिराजत चारि।
मानों सुर गुरु सुक्र भौम सनि चमकत चन्द्र मँझारि[4]।

—सूरसागर

सूर समुद्र की बुंद भई यह कवि बर्नन कहँ करि है[5]।

—सारावली

सूर सिंधु की बुंद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी[6]।

—सूरसागर

सारावली में उद्धव को ब्रज भेजते हुये कृष्ण कहते हैं।

बन में मित्र हमारो यक है, हम ही सो है रूप।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब गोधन को भूप।
ताको पूजि बहुरि सिर नइयो अरु कीजो परनाम[7]।

—सारावली

१—सूरसारावली, छन्द नं० ११६, पृ० ६, वें० प्रे० बम्बई।
२—सूरसागर, प्र० स्कं० पृ० ११३, वें० प्रे०।
३—सूरसारावली, पृ० ७ छन्द १०५-१०६, वें० प्रे० बम्बई।
४—सूरसागर, दशम स्कंध, पृ० ३०८, वें० प्रे०।
५—सूरसारावली, पृ० १६, वें० प्रे०।
६—सूरसागर, दशम स्कंध, पृ० ११२, वें० प्रे०।
७—सूरसारावली, १६-वें० प्रे०

यही भाव सूरसागर में है:—

पहिले करि परनाम नंदसों समाचार सब दीजो।
× × ×
मन्त्री इक बन बसत हमारो ताहि मिलें सचुपाइयो।
सावधान ह्वै मेरे हूते ताही माथ नवाइयो।
सुन्दर परम किसोर बयक्रम चंचल नैन बिसाल,
कर मुरली सिर मोर पंख पीताम्बर उर बनमाल।[1]

—सूर-सागर भँवरगीत

इन दोनों स्थलों पर मथुराधीश, राजकिरीटधारी तथा ऐश्वर्यशाली कृष्ण ने निरन्तर व्रज में रहनेवाले अपने आनन्दस्वरूप, मोर मुकुट पीताम्बरधारी व्रजरूप की ओर संकेत किया है। सूर की यह विश्वास-भावना दोनों में व्यक्त हुई है।

सूर-सागर में जो दृष्टकूट पद आये हैं उनके अनुरूप-भावों का दृष्टकूट-शैली में, सूर-सारावली में भी व्यक्तीकरण है। जिस प्रकार सूरदास ने सारावली के गान का माहात्म्य वर्णित किया है उसी प्रकार सूरसागर में भी कई कृष्ण-लीलाओं के तथा भागवत के गान का माहात्म्य कवि ने कहा है; जैसे—

धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दक्षिण काल,
मनवांछित फल सब ही पावें मिटे जनम जंजाल।
सीखे सुने पढ़े मन राखै लिखै परम चित लाय,
ताके संग रहत हों निसि दिन आनन्द जनम बिहाय।
सरस सम्वतसर लीला गावें युगल चरन चित लावें,
गर्भवास बन्दीखाने मे सूर बहुरि नहि आवें।[2]

— सारावली

श्रीभागवत सुनै जो कोई, ताको हरिपद प्रापति होई।
× × × ×
सुनै भागवत जो चित लाई, सूर सु हरि भजि भव तरि जाई॥[3]

- सूर-सागर

१—भँवरगीत-सार, पं० रामचन्द्र शुक्ल।

२—सूरसारावली, वें० प्रे०, पृ० ३८।

३—सूर-सागर प्र०, स्कन्ध, पृ० १६, वें० प्रे० बाबई।

सूरसागर में यमलार्जुन उद्धारण लीला के गान का माहात्म्य कवि इस प्रकार कहता है:—

सूरदास यह लीला गावै, कहत सुनत सबके मन भावै।
जो हरि चरित ध्यान उर राखै आनंद सदा दुरित दुख नासै॥[1]
—सूरसागर

इसी प्रकार सूरसागर में कवि ने रासपञ्चाध्यायी की महत्ता का वर्णन किया है—

'रास रस लीला गाइ सुनाऊँ।
यह यस कहैं सुनैं मुख श्रवनन तिन चरनन सिर नाऊँ॥[2]

तथा—

धनि सुक मुनि भागवत बखान्यो।
गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यो।
धन्य स्याम वृन्दावन को सुख सत मया ते जान्यो।
जो 'रसरास रंग हरि कीन्हें बेद नहीं ठहरान्यो।
सुर-नर मुनि मोहित सब कीन्हें, सिवहिं समाधि भुलान्यो।
सूरदास तहँ नैन बसाए और न कहूँ पत्यानो।[3]
—सूरसागर

इस पद की भावावली की, सारावली के नीचे लिखे छन्द के साथ तुलना कीजिये—

वृन्दावन निज धाम परम रुचि वर्नन कियो बनाय,
व्यास पुरान सघन कुंजन में जब सनकादिक आय।
धीर समीर बहत त्यहि कानन बोलत मधुकर मोर,
प्रीतम प्रिया बदन अवलोकन उठि-उठि मिलत चकोर।
× × × ×
नलिन पराग मेघ माधुरि सों मुकुलित अम्ब कदम्ब।
मुनिमन मधुप सदा रस लोभित सेवत अज सिव अम्ब।
गुरुप्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरप प्रवीन,
सिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन।[4]

१—सूर-सागर, पृष्ठ १४७, वें० प्रे०।
२— ,, पृष्ठ ३६३, वें० प्रे०।
३— ,, पृष्ठ ३६०, वें० प्रे०।
४—सूरसारावली, पृष्ठ ३४, वें० प्रे०।

सूरदास के नाम की जो छापें जैसे, सूर, सूरजदास, सूरज, सूरदास आदि सूरसागर में हैं वे सूरसारावली में भी हैं। सूरदास के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे, इस बात का उल्लेख भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट शब्दों में है। कुछ सज्जन यह तर्क देते हैं कि सूरसारावली में राधाकृष्ण, युगल-शृंगार और कवि के युगल-ध्यान का वर्णन है, वल्लभाचार्य जी ने तो उन्हें बालभाव की भक्ति दिखाई थी, इसलिए यह कृति किसी अन्य कवि सूर की है। लेखक के विचार से उनका यह तर्क भ्रान्त है। वल्लभाचार्य जी ने बाल, सख्य, दास्य और कान्ता, चारों भावों की भक्ति करने का उपदेश दिया है और उनसे सूर ने भी यही सीखा था। साधन की आरम्भिक अवस्था के लिए आचार्य जी ने सूर को तथा अपने अन्य भक्तों को बालभाव की भक्ति का उपदेश दिया था। राधाकृष्ण की युगल भक्ति और ध्यान का प्रसाद भी उन्हें वल्लभाचार्य जी से ही मिला था। सम्प्रदाय में इस भाव का उत्कर्ष श्री विट्ठलनाथ जी के समय में अवश्य बढ़ गया था। सूरसागर में चारों प्रकार की भक्ति और युगल ध्यान के अनेक पद विद्यमान हैं जिनका स्पष्टीकरण 'अष्टछाप भक्ति' भाग में आगे किया जायगा। युगल का ध्यान करते हुये सूरसागर में कवि कहता है—

बसौ मेरे नैनन में यह जोरी।

सुन्दर स्याम कमल दल लोचन संग वृषभानु किसोरी।

× × ×

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को का बरनों मति थोरी[1]।

फागु खेलि अनुराग बढ़ायो, सबके मन आनन्द।
चले यमुन अस्नान करन को सखा सखी नँदनन्द।
दुष्टन दुख संतन सुख कारन ब्रज लाला अवतार।
जय-जय ध्वनि सुमनन सुर बर्षत निरखत स्याम विहार।
युगल किसोर चरन रज माँगों, गाऊँ सरस धमार।
श्रीराधा गिरिवरधर ऊपर सूरदास बलिहार।[2]

चार-छै शब्दों को पकड़ कर जो सम्भवतः अब तक के छपे सूरसागरों में नहीं मिलते, इस ग्रन्थ को सूर-कृत न कहना उचित नहीं है; प्रक्षिप्त शब्द और वाक्य सूर के सभी ग्रन्थों में हो सकते हैं। अतएव यह रचना लेखक के विचार से सूर-कृत ही है।

१—सूरसागर, पृ० ४२०, वें० प्रे०।

२—सूरसागर, पृ० ४४६, वें० प्रे०।

यह ग्रन्थ सूरदास जी के दृष्टकूट पदों का संग्रह है। यह कई स्थानों से प्रकाशित भी हो चुका है। इसके अनेक पद वेंकटेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर में भिन्न भिन्न प्रसङ्गों के अन्तर्गत आ गये हैं। सम्भव है, सूरसागर की किसी प्रति में सभी दृष्टकूट पद सम्मिलित हों। प्रश्न यह होता है कि साहित्यलहरी-रूप में इन पदों का संग्रह कवि ने स्वयं कराया था अथवा उसके जीवनकाल के बाद में किसी ने किया। साहित्यलहरी में दिये हुये निम्नलिखित पद से तो यही ज्ञात होता है कि इस प्रकार के पद-संग्रह का नाम सूरदास के जीवन-काल में ही दे दिया गया था—'मुनिपुनि रसन के रस लेख।[1]"

साहित्य लहरी

इस रचना का वर्णित विषय, कई रूपों में व्यक्त, राधाकृष्ण का अनुराग है, जैसे पूर्वराग अवस्था में गोपियों की मिलन उत्कण्ठा तथा कृष्ण के रूप की मोहनी, राधाकृष्ण का शृङ्गार वर्णन, युगल का संयोग, राधा का मान तथा सखियों द्वारा मानमनावन, मानवती राधा की वियोग-दशा, वासकसज्जा राधा, गोपी और राधा का प्रवास वियोग, उद्धव प्रति वियोग दशा-कथन आदि। इन विषयों का कवि ने, पाण्डित्य और चमत्कार कौशल के साथ अर्थ गोपन करते हुये वर्णन किया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस प्रकार की शैली और ऐसे विषयों पर, सूर के पद सूरसागर में भी विद्यमान हैं। सूर के समकालीन कवि, महात्मा तुलसीदास ने भी अर्थ-चमत्कार और उक्ति वैचित्र्य की काव्य शैली में बरवै-रामायण लिखी थी। सूर के पूर्ववर्ती महात्मा कबीर की उलटबासियाँ प्रसिद्ध ही हैं। युक्ति से छिपाये हुये, और क्लिष्ट कल्पना तथा मनोयोग द्वारा खुलनेवाले अर्थों से युक्त ये पद, मानसिक एकाग्रता लाने के अभ्यास रूप, मानों गोरखधन्धे हैं। इन पदों में सूर के नाम की छाप भी है।

इस ग्रन्थ का परिचय देनेवाली दो महत्वपूर्ण टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सरदार कवि की टीका में, जो नवलकिशोर प्रेस से सं० १९०४ वि० में प्रकाशित हुई थी, दो भाग हैं। प्रथम भाग में ११८ पद हैं (गलती से ११७ और ११८ पद मिल गये हैं), और द्वितीय भाग में ६३ पद हैं। इस प्रकार इस प्रति में कुल १८१ दृष्टकूट पद हैं। इस ग्रन्थ का नाम प्रकाशक ने 'श्री सूरदास का दृष्टकूट सटीक' टीका के अन्त में दिया है। टीका के अन्त में लिखा है—'इति श्री सुकवि सरदार कृता साहित्यलहरी समाप्ता।" इससे विदित होता है कि दृष्टकूट पदों का संग्रह ही साहित्यलहरी ग्रन्थ है। ग्रन्थ की दूसरी टीका खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर की छपी भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत तथा श्री बाबू रामदीनसिंह द्वारा प्रकाशित मिलती है। प्रकाशक ने इसका नाम, 'साहित्यलहरी सटीक अर्थात् श्री सूरदास-कृत साहित्यलहरी का तिलक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संगृहीत,' दिया

१—साहित्यलहरी, रामदीन सिंह, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १०१ १०२।

है। इस प्रति के बीच में पदों की टिप्पणी के रूप में, प्रकाशक ने अपना वक्तव्य भी दिया है। इन टिप्पणियों के कथन से ज्ञात होता है कि सरदार कवि की टीका का, जो अब काशी और लखनऊ से प्रकाशित मिलती है, इसमें प्रयोग किया गया है। साहित्यलहरी में दिये हुये बाबू रामदीन सिंह जी के वक्तव्य से ग्रन्थ के बारे में कई सूचनाएँ मिलती हैं[1]।

१—सरदार कवि की टीका के पहले (संवत् १६०४ वि०) सूर के दृष्टकूट पदों पर कोई टीका थी जिसका उपयोग सरदार कवि ने किया।

२—सरदार कवि से पहले की टीका को भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने भी संगृहीत किया और साथ में उन्होंने सरदार कवि की टीका और पुरानी टीका के अन्तर को भी उसमें दिखाया।

३—प्रकाशक, श्री रामदीन सिंह जी को भारतेन्दु जी ने यह टीका प्रकाशन के लिए दी, परन्तु यह भारतेन्दु जी के निधन के बाद प्रकाशित हुई।

४—अपनी इस संगृहीत टीका के विषय में भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने अपने 'चरितावली' ग्रन्थ में सूरदास के जीवन चरित्र के अन्तर्गत अनुमान किया है कि यह टीका सूरदास-कृत[2] है।

५—श्री रामदीन मिश्र जी ने इस टीका के सूर-कृत होने के मत को असिद्ध किया है कि इस पुरानी टीका में 'जसवन्त सिंह भाषाभूषण' के उद्धरण और हवाले हैं, और जसवन्तसिंह जी सूर के बाद हुये। इसलिए यह टीका भाषा भूषण की रचना के बाद में हुई[3]। अत यह सूर कृत नहीं हो सकती। इस टीका का उपयोग सरदार कवि ने किया था।

१—साहित्यलहरी, रामदीन सिंह-प्रथम संस्करण, पृ० ३८, पृ० १०३ तथा पृ० १०४।

२—सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस, के आदि में बा० राधाकृष्णदास ने 'सूर' के जीवन चरित्र में, पृष्ठ ३ पर भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित इस आशय का नोट दिया है—'एक और पुस्तक, सूरदास के दृष्टकूट पर टीका (टीका भी सम्भव होता है, उन्हीं की है, क्योंकि टीका में जहाँ अलङ्कारों के लक्षण दिये हैं वे दोहे और चौपाई भी सूर नाम से अङ्कित हैं) मिली है। इस पुस्तक में ११६ दृष्टकूट पद अलङ्कार और नायिका के क्रम से हैं और उनका स्पष्ट अर्थ और उनके अलङ्कार नायिका इत्यादि सब लिखे हैं।'

३—महाराज यशवन्त सिंह का समय संवत् १६८२ : १७३८ वि० है। मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४१४।

६—सरदार कवि और हरिश्चन्द्र की टिप्पणियों वाली टीकाओं से पहले की पुरानी त्यलहरी की टीका का नाम 'सूरसागर की टीका' था।

७—सरदार कवि ने इस पुरानी टीका के अर्थों को अपनाया, कुछ अपनी ओर से अर्थ लगाये, तथा मूल पाठों को जहाँ तहाँ अपनी सुविधानुसार बदल कर अपनी एक टीका तैयार की। पुरानी टीका के दृष्टकूट पदों के साथ उन्होंने लगभग ५३ पद और ना कर उसका आकार बढ़ा दिया[1]। बा० रामदीन सिंह जी ने सरदार कवि द्वारा बढ़ाये ों को भी हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत साहित्यलहरी में अलग दे दिया है।

सरदार कवि ने अपनी टीका के अन्त में लिखा है कि सूरसागर का मन्थन कर मैंने निकाले हैं और उन्हीं पर यह टीका लिखी है। इससे पता चलता है कि उनके ड़े हुये पद सब सूरसागर के ही हैं[2]।

सरदार कवि की टीका वाली प्रति तथा भारतेन्दु द्वारा संगृहीत पुरानी प्रति, दोनों ों का मिलान करने पर तथा बा० रामदीन सिंह जी की टिप्पणियों के पढ़ने से ज्ञात होता कि सरदार कवि ने पुरानी टीका के पदों के क्रम को बदल दिया है और कुछ पद सागर से छाँटकर उसमें और मिला दिये हैं[3]। भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने पुरानी प्रति पदों का क्रम ज्यों का त्यों रक्खा है। उन्होंने सरदार कवि द्वारा मिलाये हुये पद लग से दे दिये हैं।

इस सम्पूर्ण विवरण से विदित होता है कि बा० रामदीनसिंह द्वारा प्रकाशित ष्कूट पद न० ११८ तक इस पुरानी प्रति का रूप है, जिसका सरदार कवि तथा भारतेंदु ा० हरिश्चन्द्र दोनों ने प्रयोग किया है। इस पुरानी प्रति के देखने से एक बात और

१—नवलकिशोर प्रेस से छपी सरदार कवि वाली टीका के दूसरे भाग में ६३ पद हैं जिनको सरदार कवि ने पुरानी सङ्ख्या में सूरसागर से निकाल कर मिलाया था।

२—मतन मतन ते सूर कवि, सागर, कियो उदार।
बहुत यतन ते मथन करि, रतन गहे सरदार।
तिन पर सुचि टीका रची, सजन जानिबे हेतु।
मनु सागर के तरन को, सुन्दर सोभा, सेतु।
सवत वेदवु सून्य ग्रह औ आतमा विचार।
कातिक सुदि एकादसी, समुझि सुद्धवर वार।

इति श्री सुकवि सरदार कृता साहित्य लहरी समाप्ता।
सूरदास का दृष्टकूट सटीक, नवलकिशोर प्रेस, पृष्ठ १४२।

३—साहित्यलहरी, रामदीनसिंह, पृ० ११ तथा ३२।

लेखक के विचारानुसार उत्पन्न होती है। इसके पद नं० १०८ में तथा सरदार कवि की टीका पद नं० १०६ में सूरदास ने ग्रन्थ का नाम साहित्य-लहरी दिया है और ग्रन्थ-समाप्ति का संवत् तथा उसके लिखे जाने का कारण दिया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस पुरानी प्रति में भी इस पद के बाद वे पद प्रथम टीका-कार ने मिला दिये हैं ; क्योंकि इस पद नं० १०६ पर सूरदास की ओर से ग्रन्थ की समाप्ति ही प्रतीत होती है। बहुत से ग्रन्थों में समाप्ति का संवत् और रचना-हेतु आदि ग्रन्थ की समाप्ति में ही लोग देते हैं। सूर के जन्म और जाति आदि के विषय में प्रस्तुत किया जानेवाला पद इन दोनों प्रतियों में पद नं० १०६ से बाहर आता है जिसको प्रक्षिप्त कहा जा सकता है। इस प्रकार से इसमें और भी प्रक्षिप्त पद हो सकते हैं।

पीछे दिये हुये विवरण का सारांश यह है कि साहित्य-लहरी सूरदास के दृष्टकूट पदों का एक ग्रन्थ है जिसका सङ्कलन सूर के ही जीवनकाल में हो गया था। इसकी रचना के बाद में भी सूर ने सूरसागर में दृष्टकूट पद लिखे और उनको छाँटकर लोगों ने बाद को मूल साहित्य-लहरी में मिला दिया। यह ग्रन्थ यद्यपि सूरसागर का अंश कहा जा सकता है फिर भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जो अपनी निजी विशेषता रखता है।

काँकरौली विद्या-विभाग में सूरदासजी के दृष्टकूट पदों की टीका की दो प्रतियाँ लेखक ने देखी हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

प्रति नं० ८८ / १ :—अथ श्रीसूरदासजी-कृत दृढ़ गूढ़ के पद तिनकी टीका अर्थ लिख्यते।
प्रति नं० ३४ / ६ :—'सूर-शतक',—इसमें सूरदास के १०० दृष्टकूट पदों के अर्थ दिये हुये हैं। पुस्तक की प्रतिलिपि नाथद्वार की लिखी संवत् १९२४ वि० की है।

सूरदास के दृष्टकूट-पद-संग्रह की एक प्रति 'नाथद्वार निज पुस्तकालय' में भी लेखक ने देखी है।

प्रति नं० १६ / १९ :—सूरदास के दृष्टकूट पद।

सूर-शतक

इस ग्रन्थ की सूचना सन् १९०० ई० की खोज-रिपोर्ट नं० ६ में दी हुई है। खोज-रिपोर्ट के उद्धरण और वक्तव्य से ज्ञात होता है कि यह सूरदास के दृष्टकूटों का टीका-सहित संग्रह है। इस प्रकार का एक ग्रन्थ काँकरौली विद्या-विभाग में भी है[1]। यह सूरदास का साहित्य-लहरी से अलग कोई ग्रन्थ नहीं है।

1—काँकरौली विद्याविभाग की पोथियों में सूर शतक का नं० ३४/६ है।

इस ग्रन्थ के सूर-कृत होने का उल्लेख सूर की जीवनी में स्व० राधाकृष्णदासजी तथा मिश्रबन्धुओं ने किया है और उनके बाद अन्य लेखक भी उसे सन्दिग्ध रूप से सूर-कृत कहते आये हैं। लेखक के देखने में यह ग्रन्थ नहीं आया।

नल-दमयन्ती

पीछे कहा गया है कि अष्टछाप-काव्य कृष्ण अथवा कृष्णभक्ति सम्बन्धी कथानकों पर ही लिखा गया है। वस्तुतः इन कवियों ने नरचरित्र की ओर ध्यान ही नहीं दिया, बल्कि उसकी निन्दा ही की है। इसलिए नल और दमयन्ती की लौकिक कथा को कहनेवाला यह ग्रन्थ अष्टछाप के भक्त सूर-कृत नहीं हो सकता।

डा० मोतीचन्द,[1] एम्० ए०, पी० एच-डी०, ने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में कवि सूरदास कृत 'नलदमन' काव्य पर एक महत्वशाली लेख लिखा था। उसमें उन्होंने बताया है कि उन्हें बम्बई के 'प्रिंस आफ वेल्स म्यूज़ियम' में सूरदास-कृत 'नलदमन' सूफी ढङ्ग का लिखा प्रेम-काव्य-ग्रन्थ फारसी लिपि में मिला है। उसकी परीक्षा करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उसके रचयिता कवि सूरदास, सूरसागर के कर्ता भक्तवर सूरदास से भिन्न हैं। नलदमन के लेखक सूरदास ने अपना वंश-परिचय उक्त ग्रन्थ में दे दिया है। उसने अपने को गोवर्द्धनदास का पुत्र कहा है। वे कम्बू गोत्र के थे और उनके पुरखे गुरदासपुर जिला कलानौर के रहनेवाले थे। इस सूरदास के बाप गोवर्द्धनदास लखनऊ में आकर बस गये थे। यह रचना संवत् १७१४ वि० अथवा सन् १६५७ ई० की लिखी हुई है। डा० मोतीचन्दजी की खोज से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी सूर का नहीं है। डा० मोतीचन्द के बताये ग्रन्थ के अतिरिक्त यदि और कोई इस विषय का कथानक सूर के नाम पर हो, तो भी लेखक इस प्रकार के ग्रन्थ को सूर-कृत रचनाओं में गिनने को तैयार नहीं है, क्योंकि यह 'नर-काव्य' है।

'कैटेलोगस कैटेलोगम' में सूरदास-कृत हरिवंश नामक संस्कृत टीका का उल्लेख हुआ है[2]। संस्कृत ग्रन्थ तथा लेखकों के इस रजिस्टर के सम्पादक मि० थियोडर आफ्रेक्ट (Theodor Aufrecht) ने हवाला दिया है कि दक्षिण कालिज, पूना पुस्तकालय के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों के कैटेलाग पृष्ठ ६०३[3]

हरिवंश टीका

१—नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, वर्ष ४२, संवत् १९९४, भाग १९, अङ्क २।

२—Catalogus Catalogorum, an alphabetical Register of Sanskrit works and authors by Theodor Aufrecht, 1891 Ebition, pages 731 and 761.

३—A Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the library of the Deccan College, Part I, prepared under the Superintendence of F. Kiel Born and Part II under the Superintedence of R. G. Bhandarkar 1884, Poona, Page 603,

पर इस ग्रन्थ का सूरदास कृत होने का उल्लेख है। इस पूना वाले कैटेलाग का सम्पादन एफ कील बोर्न (F. Kiel Born) तथा आर० जी० भण्डारकर ने सन् १८८४ ई० में किया था। उक्त कैटेलाग में ग्रन्थ से कोई उद्धरण नहीं दिया हुआ है।

लेखक का अनुमान है कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के सूरदास-कृत नहीं है। इसके लेखक कोई अन्य सूरदास, सम्भवत दक्षिण भारत के रहे होंगे। लेखक के इस अनुमान का कारण एक तो यह है, कि अष्टछाप के किसी भी कवि की संस्कृत भाषा में लिखी कोई रचना नहीं मिलती। सूर-कृत संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लिखने की न तो कोई किंवदन्ती सुनने में आती है और न उनकी जीवनी और काव्य का परिचय देनेवाले किसी प्राचीन लेख में ही उल्लेख है। यदि सूरदास हरिवंश पुराण की टीका करते भी तो वे भाषा में ही करते, जैसी उस समय की प्रथा थी और जैसे भागवत की टीका के रूप में उनका सूरसागर है। दूसरा कारण यह है कि वल्लभसम्प्रदायी विद्यानेन्द्रों में तथा वैष्णव मन्दिरों में यह ग्रन्थ अभी तक अष्टछापी सूर के नाम से लिखा नहीं मिला, जहाँ सूर आदि सभी अष्टछाप कवियों का काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

खोज रिपोर्ट[1] में इस ग्रन्थ को सूरजदास-कृत लिखा गया है। इसी के आधार पर हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने खोज रिपोर्ट की बिना अच्छी तरह जाँच किये, इसे अष्टछापी सूरदास का ग्रन्थ कह दिया है। खोज रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरण[2] इस बात को स्पष्ट कर देते हैं, कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के महात्मा सूरदास का नहीं है। यद्यपि सूरदास के पदों में भी 'सूरज' या 'सूरज दास' की छाप आती है और वे वस्तुत सूरदास के ही हैं, परन्तु इन उद्धरणों की शैली, भाषा आदि सूर की शैली से नितान्त भिन्न हैं। इन उद्धरणों की भाषा अवधी है। ग्रन्थ दोहा-चौपाई में रामचरितमानस तथा पद्मावत की शैली पर लिखा गया है। इसके कुछ उद्धरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट के आधार पर पीछे दी हुई तालिका में दे दिये गये हैं। ग्रन्थ के वन्दना भाग में गणपति और राम की स्तुति है। सूर कृष्ण के अनन्य भक्त थे। सूरसागर के आदि में उन्होंने हरि और कृष्ण की ही वन्दना की है। इस ग्रन्थ की स्तुतियों से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ रामोपासक सूरदास का लिखा हुआ है, अष्टछापी सूर कृत नहीं है।

रामजन्म

इस ग्रन्थ के भी सूरजदास-कृत होने का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की सन्

१—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९१७ १९ ई०, न० १८७ (ए)।
२—अष्टछाप के अध्ययन की आधारभूत सामग्री के साथ लगी हुई खोज रिपोर्ट के उल्लेखों की तालिका।

१९१७-१९ ई० की खोज-रिपोर्ट नं० १८७ (बी) में हुआ है। ग्रन्थ का विषय खोज-रिपोर्ट के अनुसार प्रथम वन्दना, फिर राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी तथा उसके पुत्र रोहिताश्व की प्रशंसा का कथन तथा एकादशी-माहात्म्य सम्बन्धी अन्य कथाएँ हैं। सूरजदास-कृत रामजन्म की तरह यह ग्रन्थ भी दोहा-चौपाई-छन्द में लिखा गया है। इसकी भाषा अवधी है। खोज-रिपोर्ट के आधार से इस ग्रन्थ के भी उक्त रिपोर्ट में दिये हुए उद्धरण सूर के ग्रन्थों की तालिका में पीछे दिये जा चुके हैं। इन उद्धरणों में भी सूरजदास कवि की ही छाप है। उद्धरणों की भाषा अवधी है। शैली दोहा-चौपाई की है। वन्दना में गणेश, शारदा, तैंतीस देवता, महादेव, माता-पिता तथा अक्षर ज्ञान करानेवाले गुरु की स्तुति उन्होंने की है। ज्ञात होता है कि रामजन्म और इस एकादशी-माहात्म्य के दो भिन्न-भिन्न कवि न होकर, एक ही है। इस प्रकार उक्त कारणों के आधार पर यह ग्रन्थ भी अष्टछाप के अनन्य कृष्णोपासक महात्मा सूरदास-कृत नहीं प्रतीत होता।

एकादशी-माहात्म्य

नाथद्वार निज पुस्तकालय तथा काँकरौली विद्या-विभाग में लेखक को सूरदास के नाम से सेवाफल नामक एक ग्रन्थ मिला है। नाथद्वार पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की पोथी का नं० ४६/५ है तथा काँकरौली की पोथी का नं० ४२/१० है। नाथद्वार की पोथी के आदि में रचना का नाम 'सूरदास-कृत सेवाफल' दिया हुआ है तथा काँकरौली की पोथी में 'सेवाफल सूरदास' है। लेखक ने दोनों स्थानों की पोथियों के पाठ मिलाये हैं। मिलान करने पर ज्ञात होता है कि कुछ पाठ-भेद से दोनों रचनाएँ एक ही हैं। इस रचना के देखने से पता चलता है कि यह एक लम्बा पद है जो चौपई तथा चौपाई छन्दों में लिखा गया है। सूर के इस छन्द में लिखे बहुत से लम्बे पद सूरसागर में मिलते हैं। दोनों स्थानों की रचना के आधार से इसके कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं:—

सेवाफल

आदि—

राग रामकली

भजो गोपाल भूलि जिन जाहु, मानुष जन्म को ये ही लाहु। १
गुरु सेवा करि भक्ति कमाई, कृपा भई तब मन में आई। २
याहि देह सों सुमिरें देवा, देह धरी करिये हरि सेवा। ३
सुनो सन्त सेवा की रीति, करो कृपा राखो मन प्रीति। ४

अन्त—

सेवा को फल कह्यो न जाई, सुख सुमिरो श्री बल्लभ राई। ४८
सेवा को फल सेवा पावे, सूरदास प्रभु हृदय समावे। ४९

इति श्री सेवा प्रकरणं सम्पूर्णम्।

इस रचना की भाषा ब्रजभाषा है, परन्तु शैली और शब्द-गठन शिथिल हैं। सूर के चौपई या चौपाई छन्दों में लिखे पदों की शैली बहुधा शिथिल ही हुआ करती है। भगवान् की सेवा का माहात्म्य तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से सेवा करने से प्राप्य फल का कथन, इस रचना का विषय है। अन्त में कवि के नाम की छाप भी है। अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी का स्मरण भी कवि ने किया है। इससे ज्ञात होता है कि यह रचना सूरदास-कृत ही है। प्रतिलिपिकारों की असावधानी से इसमें पाठान्तर मिलते हैं। लेखक को सूरसागर में यह पद नहीं मिला। इस रचना को सूर-कृत मानते हुये भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह सूरदास का कोई स्वतन्त्र ग्रंथ है। विविध प्रसङ्गों के अन्य पदों की तरह यह भी एक लम्बा पद मात्र ही है जो राग रामकली के अन्तर्गत मिलता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण के आधार से सूरदास के नाम पर पीछे दिये हुये ग्रन्थों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:—

अष्टछापी सूर के प्रामाणिक तथा मुख्य ग्रन्थ—

१—सूरसागर।
२—सूर सारावली।
३—साहित्य लहरी।

अष्टछापी सूर-कृत सूरसागर तथा साहित्य-लहरी के प्रसङ्ग तथा लम्बे पद रूप में आनेवाली प्रामाणिक रचनाएँ:—

१—भागवत भाषा।
२—दशमस्कन्ध-भाषा।
३—सूरदास के पद।
४—नागलीला।
५—गोवर्द्धन लीला।
६—सूर-पचीसी।
७—ब्याहलो।
८—भँवर-गीत।
९—सूर-रामायण।
१०—दानलीला।
११—सूर-साठी।
१२—मानलीला।
१३—राधारस-केलि-कौतूहल अथवा मान-सागर।
१४—सेवा फल।
१५—सूर-शतक।[1]
१६—सूरसागर-सार।

अष्टछापी सूर की सन्दिग्ध रचना—

१—प्राणप्यारी।

सूर की अप्रामाणिक रचनाएँ—

१—नलदमयन्ती।
२—हरिवंश-टीका।
३—राम-जन्म
४—एकादशी-माहात्म्य।

१—सूर-शतक, साहित्यलहरी का भी अंश है।

परमानन्ददासजी की रचनाएँ।

अष्टछाप के अध्ययन की आधारभूत सामग्री के विवरण से ज्ञात होता है कि वेंक्टेश्वर प्रेस से छपी '८४ वैष्णवन की वार्ता' द्वारा परमानन्ददास के 'सहस्रावधि' पदों की तथा परमानन्द-सागर की सूचना मिलने पर भी हिन्दी संसार को अभी तक इनके पदों का कोई सङ्ग्रह अथवा इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिला है। जैसा कि पीछे कहा जा जा चुका है, हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहासकारों ने यही लिखा है,—इनके फुटकल पद, कृष्ण-भक्तों के मुँह से प्राय: सुनने में आते हैं।"[1] इस कवि द्वारा रचित माने हुये ग्रन्थों की किसी विद्वान् ने बाहरी जाँच भी नहीं की, यहाँ तक कि वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-सङ्ग्रहों में छपे पदों को भी हिन्दी के विद्वानों ने एकत्र करके नहीं देखा। लेखक की खोज में उसे परमानन्ददास के एक बड़ी सङ्ख्या में पद तथा परमानन्द-सागर मिले हैं, जिनका विवरण आगे दिया जायगा।

अब तक अष्टछापी परमानन्ददास द्वारा रचित मानी हुई निम्नलिखित रचनाएँ हैं जिनकी जाँच और जिनके विवरण नीचे की पङ्क्तियों में दिये जाते हैं —

१—दान लीला।

२—ध्रुव-चरित्र।

३—परमानन्ददासजी का पद।

४—वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन-सङ्ग्रहों में पद।

५—हस्तलिखित परमानन्द-सागर तथा परमानन्ददासजी के पद-कीर्तन-सङ्ग्रह।

दान-लीला

इस ग्रन्थ के परमानन्ददास-कृत होने की सूचना नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] से मिलती है। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने खोज-रिपोर्ट[2] के कथन के आधार से इसे परमानन्ददास-कृत लिखा है। खोज-रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के विषय में न कोई विशेष वक्तव्य है और न उससे उद्धरण ही दिये गये हैं। लेखक के देखने में भी यह ग्रन्थ नहीं आया है। परमानन्ददास जी के पद-सङ्ग्रहों में दान-लीला के भी पद आते हैं। सम्भव है, किसी ने इन्हीं पदों के सङ्ग्रह को दान-लीला का शीर्षक देकर अलग से लिख लिया हो। परमानन्ददास की उपलब्ध रचनाओं के देखने से पता चलता है कि उन्होंने बहुत थोड़े प्रसङ्ग, जैसे भँवरगीत, दो

१—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ सं०, पृ० २१९।

२—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०

छन्द शैली में लिखे हैं। परमानन्ददास का भँवरगीत भी सूरदास के लम्बे पदों की तरह एक लम्बा पद मात्र ही है, जिसके अन्तरे म चौपाई छन्द आते हैं। लेखक को दान-लीला विषयक कवि का कोई बहुत लम्बा पद भी उपलब्ध नहीं हुआ। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह अष्टछापी परमानन्ददास-कृत ही है अथवा नहीं।

इस ग्रन्थ के भी परमानन्ददास-कृत होने की सूचना खोज रिपोर्ट[1] से ही मिलती है। रिपोर्ट में इसकी सुरक्षा का स्थान दतिया राज पुस्तकालय लिखा है। खोज रिपोर्ट में दो अन्य ध्रुव चरित्रों[2] के उल्लेख भी हैं—एक जन गोपाल-कृत; दूसरा जनजगदेव-कृत। ये भी दतिया में ही रक्षित बताये गये हैं। खोज-रिपोर्ट में उक्त तीनों ध्रुव-चरित्रों से उद्धरण नहीं दिये गये और न यह बताया गया है कि ये परमानन्ददास कौन से हैं। दतिया राज पुस्तकालय से लेखक ने इस विषय म सूचना मँगाई थी। वहाँ से उसे उक्त तीनों ध्रुव चरित्रों का तो कोई वृत्तान्त मिला नहीं, परन्तु एक और मदनगोपाल-कृत ध्रुव-चरित्र की सूचना मिली है। यह चरित्र चौपाई छन्द में लिखा हुआ है और पद्म-पुराण का एक अङ्ग है। इसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

ध्रुव-चरित्र

आरम्भ—अथ श्रीध्रुव-चरित्र लिख्यते। मदनगोपाल कृत।

सुक सों कहैं परीछतु राजा, दरसन देहु सरे मो काजा।
नारी-नारी मृत्यु कहि प्राणी, सो गति अगति जात न जानी।

× × × ×

अन्त—रिषि नारद ध्याने भये भूपति हिय चिता ही।
भये ध्रुव जो चकवै रिषि चरन सुपुगही।
इति श्रीपद्मपुराणे ध्रुव चरित्रे सजुगत समस्त।

इस प्रकार परमानन्ददास का ध्रुव-चरित्र नामक ग्रन्थ भी लेखक के देखने में नहीं आया। परमानन्ददास जी की उपलब्ध रचना में ध्रुव-चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले पद भी लेखक के देखने में नहीं आये। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय में भी कुछ परिचय नहीं दिया जा सकता। इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि पीछे कही दान लीला के समान, सम्भव है, यह भी कोई लम्बा पदमात्र ही हो। बहुधा अष्टछाप कवियों ने भागवत के प्रसङ्गों पर इस प्रकार के लम्बे पद, छन्द-शैली में, लिखे हैं। परमानन्ददास नाम के कवि अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के भी हुये हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने बहुधा अष्टछाप

१—ना॰ प्र॰ स॰, खोज रिपोर्ट, सन् १९०६ ई॰।

२—पीछे दी हुई खोज रिपोर्ट के विवरण की तालिका में परमानन्ददास के ग्रन्थ।

कवियों के नामधारी अन्य सम्प्रदाय के कवियों के ग्रन्थों को अष्टछाप के ग्रन्थों म मिला दिया है। परमानन्ददास नाम के एक कवि हित हरिवंश सम्प्रदाय के भी उसी समय हुये हैं। दतिया राजपुस्तकालय में जहाँ परमानन्ददास के ध्रुवचरित्र के होने की सूचना है, हित-सम्प्रदायी हित परमानन्ददास के अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। हित-सम्प्रदाय का बुन्देलखण्ड में भी बहुत प्रचार था, सम्भव है, परमानन्ददास के नाम से खोज रिपोर्ट-द्वारा दतिया राजपुस्तकालय मे बताये हुये उक्त दोनों ग्रन्थ (दानलीला तथा ध्रुव-चरित्र) हितपरमानन्द-दास के ही हों और इस समय वे ग्रन्थ वहाँ उपलब्ध न हों। यदि ध्रुव चरित्र नाम का कोई ग्रन्थ वल्लभ-सम्प्रदायी अष्टछाप के परमानन्ददास का होता तो, अधिक सम्भावना यही थी कि वह वल्लभ सम्प्रदायी संग्रहालयों (जैसे नाथद्वार काँकरौली, कामवन) में, अवश्य होता, परन्तु उक्त स्थानों पर लेखक को खोज करने पर भी यह ग्रन्थ नहीं मिला।

परमानन्ददास जी का पद

परमानन्ददास-कृत इकतालीस पदों के इस संग्रह की सूचना नागरी प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[1] में दी हुई है। रिपोर्ट में पदों के कुछ उद्धरण भी दिये गये हैं। आदि और अन्त के ये उद्धरण काँकरौली विद्या विभाग से प्राप्त परमानन्ददास के पद-संग्रह के दो पदों के, कुछ पाठ भेद से, अंश हैं। परन्तु रिपोर्ट के उद्धरणों के बीच में राग 'टोड़ी' के नीचे जो उद्धरण दिया गया है, उसकी भाषा बहुत फारसी मिश्रित है[2] और उसकी शैली भी परमानन्ददास की शैली से भिन्न है। परमानन्ददास के पदों में लेखक को वे पङ्क्तियाँ नहीं मिलीं। इससे ज्ञात होता है कि इस पद-संग्रह में कुछ तो अष्टछापी परमानन्ददास के पद हैं और कुछ गीत इसके संग्रहकर्ता ने अपनी ओर से मिला दिये हैं, जिनमें अन्य कवियों के भी पद सम्मिलित हैं। इस संग्रह की रचना का स्थान खोज रिपोर्ट में जोधपुर लिखा है। इसके पदों के पाठ में अन्तर, और भाषा की दृष्टि से कुछ शब्दों के रूपों में परिवर्तन, अन्यत्र प्राप्त इन्हीं पदों की तुलना में, बहुत हैं। लेखक का अनुमान है कि परमानन्ददास के पदों का यह कोई महत्वपूर्ण संग्रह नहीं है, विशेष रूप से उस अवस्था में, जब अन्यत्र कवि के पद हजारों की सङ्ख्या म प्राप्त हैं। परमानन्ददास के पदों के प्रामाणिक संग्रह के सम्पादन की दृष्टि से ये पद, किसी हद तक, महत्व के हो सकते हैं।

वल्लभसम्प्रदायी छपे हुये कीर्तन संग्रहों में परमानन्ददास के पद अलग से एकत्र नहीं मिलते। ये पद अष्टछाप तथा अन्य कवियों के पदों के साथ मिले हुये मिलते हैं। नाथद्वार

१—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०।

२—राग टोड़ी—गोविंद तुम्हरे दीदारबाज मुई हुँ ए परदा।
नेक नजरि कीन करौ, मरदन के मरदा।
ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट सन् १९०२ ई०, नं० ६२।

वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन संग्रहों में छपे, परमानन्ददास के पद

काँकरौली, मथुरा, गोकुल आदि के वल्लभसम्प्रदायी मन्दिरों में बहुधा इन्हीं पद-संग्रहों से पद गाये जाते हैं। हस्तलिखित रूप में पाये जानेवाले परमानन्ददास के एकत्र छन्द तथा छपे पदों का लेखक ने मिलान किया है। इनमें बहुत से पद कुछ पाठ-भेद से दोनों प्रकार के संग्रहों में मिल जाते हैं। इसी प्रकार यदि सभी छपे संग्रहों में प्राप्य पदों का मिलान किया जाय तो इन संग्रहों से, एक बड़ी सङ्ख्या में परमानन्ददास के प्रामाणिक पद निकाले जा सकते हैं। छपे कीर्तन-संग्रहों में अन्य परमानन्द-दास के भी पद हैं, परन्तु उन पदों की छाप से पता चल जाता है कि अमुक पद अमुक परमानन्ददास का है; जैसे हित परमानन्ददास के पदों में सर्वत्र 'हित' शब्द परमानन्ददास नाम के साथ लगा रहता है। जहाँ कवि की छाप में भ्रम पड़ता है, वहाँ हस्तलिखित रूप में एकत्र मिलनेवाले अष्टछापी परमानन्ददास के पदों के मिलान से कवि-कृत पदों का पता चल जाता है। जिन कीर्तन संग्रहों में परमानन्ददास के छपे पद मिलते हैं, वे ये हैं:—

१—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन[1]।

२—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन संग्रह, भाग २, बसन्त धमार[1]।

३—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह, भाग ३, नित्य कीर्तन[1]।

४—राग सागरोद्भव रागकल्पद्रुम[2]।

५—राग-रत्नाकर।

राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम, भाग २ में परमानन्ददास के लगभग ७२ पद हैं तथा राग-रत्नाकर में २० पद हैं। वल्लभ-सम्प्रदायी छपे उक्त कीर्तन-संग्रहों की लगभग पद-सङ्ख्या, उनके विषयानुसार इस प्रकार है—

परमानन्ददासजी के पद

कीर्तन-संग्रह भाग १

अंश १

विषय-सूची	पद-सङ्ख्या	विषय-सूची	पद-सङ्ख्या
१—जन्माष्टमी बधाई के पद	३८	२—छटी के पद	२
३—पालने के पद	६	४—अन्नप्राशन	३

१—ये कीर्तन-संग्रह, अहमदाबाद से लल्लू भाई छँगनलाल देसाई ने छापे हैं। इनका एक संस्करण सूरदास ठाकुरदास प्रकाशक का भी मिलता है।

२—संग्रहकर्ता, कृष्णानन्द व्यास, कलकत्ता।

५—कान छेदन	२	६—नामकरण	४
७—मृत्तिका भक्षण	१	८—करवट के पद	१
९—ऊखल के पद	१	१०—बाल-लीला	२०
११—श्रीराधाजी की बधाई के	८	१२—श्रीराधाजी ढाढी	२
१३—दान के पद	३५	१४—श्रीवामनजी	४
१५—देवी पूजन	१	१६—मुरली	१
१७—दशहरा	२	१८—रास	१०
			१४४

अंश २

१९—धनतेरस	१	२०—दीवारी	१
२१—दीपमालिका	२	२२—गाय-खिलावन	७
२३—हटरी	२	२४—गोवर्द्धन पूजा	७
२५—इन्द्रमान-भंग	१४	२६—गोचारन	१०
२७—देव-प्रबोधनी	४	२८—ब्याह	१२
२९—भोगी-सङ्क्राति	२	३०—राजभोग	१
३१—दुतिया-पाठ	३	३२—फूल मण्डली	८
३३—संवत्सर-ओच्छव	१	३४—भोजन	२
३५—रामनवमी	७	३६—पालने के पद	१
३७—श्रीआचार्यजी के पालने	१	३८—अक्षय तृतीया	१
३९—जगायबे को पद	१	४०—कलेऊ	२
४१—भोजन	१	४२—मान	१
४३—चन्दन	३	४४—श्रीनृसिंहजी	७
४५—नाव	१	४६—स्नान-यात्रा	३
४७—रथ-यात्रा	३	४८—मल्हार	१२
४९—कुसुम्बी घटा	१	५०—श्याम घटा	१
५१—कुँदरी	१	५२—छाक	२
५३—बीरी अरोगिबे के पद	१	५४—हिंडोरा	५
५५—श्रीगोसाईंजी के हिंडोरा	१	५६—पवित्रा के पद	५
५७—राखी के पद	३		
			१४१
			कुल २८५

कीर्तन सङ्ग्रह, भाग २

५८—बसन्त के पद	१२	५९—धमार	७
६०—डोल	४		
			२३

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

६१—श्रीआचार्यजी महाप्रभु	१	६२—यमुनाजी के	५
६३—गङ्गाजी के	२	६४—जगायबे के	११
६५—फलेऊ के	४	६६—मङ्गलार्ति के	४
६७—खण्डिता के	३	६८—व्रतचर्या के	२
६९—हिलग	१६	७०—दधि-मन्थन	२
७१—शृङ्गार	७	७२—कुल्हे के, टिपारे के	३
७३—ग्वाल के	३	७४—बलदेवजी के	२
७५—बाल-लीला, फल-फलारी	३	७६—गोदोहन	४
७७—माखन-चोरी	१	७८—उराहना	११
७९—भोजन	१६	८०—भोग समय	२
८१—चोरी के	३	८२—छाक के	१२
८३—उष्णकाल भोग के	३	८४—राज भोग के	७
८५—कुञ्ज के	६	८६—पनघट के	६
८७—आरती के	१	८८—उत्थान	२
८९—आवनी	९	९०—घैया के	८
९१—ब्यारु के	५	९२—दूध	१
९३—शयन	९	९४—मान के	१
९५—मान छूटवे के	१	९६—पौढवे के	३
९७—कहानी के	२	९८—वैष्णवन के नित्य नियम	४०
९९—विनती	२	१००—माहात्म्य	६
१०१—आसरे	६		
			२०१
			कुल ५०९

जैसा कि ऊपर कहा गया है, लेखक ने वैष्णव मन्दिरों में परमानन्ददास-सागर तथा कवि के पदों की खोज की थी। काँकरौली-विद्याविभाग से उसे सूचना मिली कि वहाँ अष्टछाप का एक बृहत् सङ्ग्रह है। सन् १९४१ ई० के जून महीने में लेखक काँकरौली तथा नाथद्वार गया और वहाँ उसने

काँकरौली विद्याविभाग की प्रतियाँ— काँकरौली विद्याविभाग म स्थित परमानन्ददास के पदों के सात सग्रहों म चार का नाम परमानन्द सागर दिया हुआ है और तीन का 'परमानन्ददास के कीर्तन'। उक्त विभाग में पुस्तकों पर बस्ते के और उनके भीतर पुस्तक के नम्बर पडे हैं। उन्हीं, पोथी के नम्बरों के साथ इन प्रतियों का यहाँ विवरण दिया गया है—

प्रति न० २/५—परमानन्दसागर—इस सग्रह के आरम्भ में लिखा है,—'अथ परमानन्द दास-कृत परमानन्द सागर लिख्यते।' इसके आदि में कवि ने मङ्गलाचरण का नीचे लिखा पद दिया है।

चरन कमल बन्दों जगदीस ज गोधन न सँग धाए।

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

६१—श्रीआचार्यजी महाप्रभु	१	६२—यमुनाजी के	५
६३—गङ्गाजी के	३	६४—जगायबे के	११
६५—कलेऊ के	४	६६—मङ्गलार्ति के	४
६७—खण्डिता के	३	६८—व्रतचर्या के	२
६९—हिलग	१६	७०—दधि-मन्थन	२
७१—श्रृङ्गार	७	७२—कुल्हे के, टिपारे के	३
७३—ग्वाल के	३	७४—बलदेवजी के	२
७५—बाल-लीला, फल-फलारी	३	७६—गोदोहन	४
७७—माखन-चोरी	१	७८—उराहना	११
७९—भोजन	१६	८०—भोग समय	२
८१—बीरी के	३	८२—छाक के	१२
८३—उष्णकाल भोग के	३	८४—राज भोग के	७
८५—कुञ्ज के	६	८६—पनघट के	६
८७—आरती के	१	८८—उत्थान	२
८९—आवनी	९	९०—घैया के	८
९१—ब्यारु के	५	९२—दूध	१
९३—शयन	९	९४—मान के	१
९५—मान छूटवे के	१	९६—पौढवे के	३
९७—कहानी के	२	९८—वैष्णवन के नित्य नियम	४
९९—बिनती	२	१००—माहात्म्य	६
१०१—आसरे	६		
			२०१
			कुल ५०९

जैसा कि ऊपर कहा गया है, लेखक ने वैष्णव मन्दिरों में परमानन्ददास-सागर तथा कवि के पदों की खोज की थी। कॉंकरौली-विद्याविभाग से उसे सूचना मिली कि वहाँ अष्टछाप का एक वृहत् सङ्ग्रह है। सन् १९४१ ई० के जून महीने में लेखक कॉंकरौली तथा नाथद्वार गया और वहाँ उसने अष्टछाप कवियों के पद-सङ्ग्रहों का अवलोकन किया। परमानन्द दास के कीर्तनों के सात संग्रह कॉंकरौली[1] विद्याविभाग तथा चार संग्रह नाथद्वार के 'निज पुस्तकालय' में लेखक को प्राप्त हुये। इन सब प्रतियों के निरीक्षण का फल संक्षेप में, नीचे लिखी पङ्क्तियों में दिया जाता है—

हस्तलिखित पद तथा परमानन्द-सागर

१—कॉंकरौली विद्याविभाग के मुख्य सञ्चालक, श्री पं० कण्ठमणि शास्त्री की कृपा से ये ग्रन्थ लेखक को प्राप्त हुये थे।

काँकरौली विद्याविभाग की प्रतियाँ— काँकरौली विद्याविभाग में स्थित परमानन्ददास के पदों के सात संग्रहों में चार का नाम परमानन्द-सागर दिया हुआ है और तीन का 'परमानन्ददास के कीर्तन'। उक्त विभाग में पुस्तकों पर बस्ते के और उनके भीतर पुस्तक के नम्बर पड़े हैं। उन्हीं, पोथी के नम्बरों के साथ इन प्रतियों का यहाँ विवरण दिया गया है—

प्रति नं० २/५—परमानन्दसागर—इस संग्रह के आरम्भ में लिखा है,—'अथ परमानन्द दास-कृत परमानन्द सागर लिख्यते।' इसके आदि में कवि ने मङ्गलाचरण का नीचे लिखा पद दिया है।

चरन कमल बन्दों जगदीस जे गोधन के सँग धाए।

इसके बाद इसमें पदों के विषयानुसार पद दिये हैं। इस पुस्तक में पद सङ्ख्या लगभग ८०० है तथा इसमें कृष्ण के जन्म-समय से मथुरागमन और गोपी-विरह तथा भँवरगीत तक के पद हैं। अन्त में रामोत्सव, नृसिंह जी तथा वामन जी, के भी पद हैं। पदों के ऊपर रागों के नाम भी दे दिये गये हैं।

प्रति नं० ६/३—यह पोथी अष्टछाप के कुछ कवियों के पदों का संग्रह है। परन्तु इसमें प्रत्येक कवि के पद अलग अलग दिये गये हैं। छपे कीर्तनों में जैसे मिले जुले पद सभी अष्टछाप के हैं, उस प्रकार का मिश्रण इसमें नहीं हैं। सम्पूर्ण संग्रह के अन्त में प्रतिलिपि का काल[1] संवत् १७५१ वि० अथवा १७६१ वि० वैसाख कृष्ण ३ दिया हुआ है। इस पोथी में परमानन्ददास के लगभग ३०० पद हैं। ये पद कृष्ण की ब्रजलीला के ही हैं। मथुरा-द्वारिका की कृष्ण-लीला के पद इसमें नहीं हैं।

प्रति नं० १६/६—'परमानन्ददास के कीर्तन।' इसमें विषय के अनुसार पदों का क्रम है और कुल पद लगभग ५०० हैं। इसमें भी कृष्ण की ब्रजलीला तथा गोपी-विरह और भँवरगीत-प्रसङ्ग तक के ही पद हैं।

प्रति नं० २०/८—इस प्रति में परमानन्ददास और सूरदास के केवल विरह के पद हैं। परमानन्ददास के विरह के पदों की सङ्ख्या लगभग २०० है। प्रति में कोई तिथि नहीं दी गई, परन्तु देखने से सौ, सवा सौ वर्ष पुरानी ज्ञात होती है।

प्रति नं०४५/१—परमानन्द सागर—यह प्रति सब से प्राचीन है। पद-सङ्ख्या इसमें लगभग ४०० है। पदों का लेखन विषय के अनुसार है। इसमें स्पष्ट रूप से कोई संवत् नहीं दिया हुआ है, परन्तु ग्रन्थ के पृष्ठ १०८ के एक गुजराती लेख से प्रतीत होता है कि पुस्तक की प्रतिलिपि संवत् १६६० के लगभग की गई है। यह समय परमानन्ददास जी के निधन के लगभग बीस या इक्कीस वर्ष बाद का ही है। उक्त गुजराती लेख इस प्रकार है:—

१—संवत में ५ का अक्षर घिस गया है, इसलिए वह ६ भी पढ़ा जा सकता है।

'बादरायण[1] पुष्करना मौरवी माँ रहेता, जेणे द्वारका मध्ये श्री आचार्य जी ने श्री मुखे मास १२ ताँई श्री भागवत साभल्युँ। तेहने दीकरो लक्ष्मीदास श्री गुसाईंजीना सेवक लक्ष्मीदास नी माता बाई भभा श्री आचार्य जीनी सेवक श्री श्रक्का जीनी द्वारिका मा प्रचार की करता ते लक्ष्मीदास ना बेटा हरिजीव तथा दामजी नग्र[2] मा रहे छे।'

इस लेख में लेखक कहता है कि बादरायण के बेटा लक्ष्मीदास के, जो कि श्री गुसाईं जी का सेवक था, दो बेटे हरिजीवन और दाम जी हैं जो नवानगर में रहते हैं। इस कथन में हरिजीवन और दाम जी की नवानगर में उपस्थिति वर्तमानकालिक क्रिया 'रहे छे' द्वारा सूचित की गई है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के आरम्भ में प्रतिलिपिकार ने, 'श्री गिरिधर लाल जी विजयतु' ऐसा लेख लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के बाद (सम्वत् १६४२ वि०) श्री गिरिधरलाल जी के आचार्यत्व काल में यह पुस्तक लिखी गई। ऊपर के लेख से श्री वल्लभाचार्य जी के सेवकों की तीसरी पीढ़ी तथा उनके वंशजों की तीसरी पीढ़ी दोनों की समान विद्यमानता मिल जाती है। श्री गिरिधर लाल जी का समय सम्वत् १५९७ वि० से सम्वत् १६८० तक है। और इनका आचार्यत्व काल सम्वत् १६४२ वि० से सम्वत् १६८० वि० तक है। लेखक का अनुमान है कि इसी बीच में इन कीर्तनों की प्रतिलिपि की गई है। यह समय लगभग सम्वत् १६६० वि० का रक्खा जा सकता है।

प्रति न० ५७/३—'परमानन्द सागर।' देखने में प्रति सवा सौ वर्ष पुरानी जान पड़ती है। परमानन्ददास के पदों के जितने संग्रह लेखक ने देखे हैं, उनमें इस प्रति में सब से अधिक पद हैं और पाठ भी इसके बहुत शुद्ध हैं। इस प्रति में कुल ११०१ पद हैं। इसमें भी आरम्भ में 'मङ्गलाचरण' शीर्षक के नीचे, 'चरन कमल बन्दौं जगदीस, जे गोधन के सँग धाए' पद दिया हुआ है। इसमें कृष्ण के जन्म, बाल लीला, किशोर लीला तथा कृष्ण के मथुरागमन पर गोपीविरह, प्रसङ्गों के पद हैं। अन्त में जरासन्ध के युद्ध का प्रसङ्ग, रामोत्सव, नृसिंह तथा वामन के पद हैं।

इस प्रति के ऊपर श्री व्रजनाथ जी के पुत्र श्री गोकुलनाथ जी के हस्ताक्षर हैं। हस्ताक्षर का लेख इस प्रकार है—

परमानन्ददास जी के पद की चौपड़ी, "गोस्वामि श्री व्रजनाथात्मज श्री गोकुलनाथस्येद पुस्तकम्"। इन श्री गोकुलनाथ[3] का समय सम्वत् १८५६ वि० है। उपर्युक्त लेख से

१—बादरायण—'चौरासी वैष्णवन' की वार्ता में बादरायण का वृतान्त दिया हुआ है। ये श्री वल्लभाचार्य जी के सेवक थे। ८४ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० २४३।

२—नग्र' से तात्पर्य नवानगर से है जिसे जामनगर भी कहते हैं।

३—श्री व्रजनाथात्मज श्री गोकुलनाथ जी, गो० विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी से भिन्न आचार्य हैं। इनका समय सम्वत् १८५६ वि० है। काँकरौली का इतिहास, पृ० २३०।

सिद्ध होता है कि प्रतिलिपि सवा सौ वर्ष पुरानी है। इस पोथी के पदों की विषयानुसार पद-सङ्ख्या का विवरण इस प्रकार है—

पुस्तक सङ्ख्या ५७/३ काँकरोली पुस्तकालय

ग्रन्थ का नाम : परमानन्द-सागर

नं०	विषय-सूची	पद-सङ्ख्या	नं०	विषय सूची	पद सङ्ख्या
१—	मङ्गलाचरण	३	२—	जन्म-समय	२१
३—	पलना के पद	९	४—	छठी के पद	२
५—	स्वामिनी जी के जन्म समय के	४	६—	बाल-लीला	८८
७—	उराहने के बचन गोपिका जू को	३६	८—	जशोदा जी को बरजिबो, प्रत्युत्तर प्रभु जी को	७
९—	गोपिका जू के बचन प्रभुजी के प्रति	१२	१०—	प्रभु के बचन जशोदाजी को	१
			११—	परस्पर हास्य वाक्य	४
१२—	सखनि सों खेल	४	१३—	असुर-मर्दन	५
१४—	जमुना जी के तीर को मिलन	६	१५—	मिसांतर दर्शन	८
१६—	गोदोहन-प्रसङ्ग	१२	१७—	अथ बन क्रीड़ा	२१
१८—	गौचारण	१८	१९—	दान-प्रसङ्ग	३८
२०—	द्विज पत्नी को प्रसङ्ग	२	२१—	बन से व्रज कों पाउ धारिबो	३०
२२—	गोपिका जू के आसक्त बचन	७६	२३—	आसक्ति को बरनन	१२
२४—	आसक्ति की अवस्था	८	२५—	साक्षात् स्वामिनी जू के आसक्त बचन	८
२६—	साक्षात् भक्तन की प्रार्थना प्रभु प्रति	५	२७—	साक्षात् प्रभु जी के बचन भक्तन प्रति	२
२८—	प्रभु को स्वरूप-बर्नन	१९	३०—	जुगल रस-बर्नन	७
२९—	स्वामिनी जू को स्वरूप बर्नन	७	३१—	व्रताचरण-प्रसङ्ग	
३२—	रास-समय के पद	९	३३—	अन्तर्ध्यान समय	९
३४—	जल-क्रीड़ा के पद	१२	३५—	खण्डिता के बचन	३
३६—	खण्डिता के प्रत्युत्तर	१	३७—	मानापनोदन	६०
३८—	मध्या के बचन	६	३९—	प्रभु जू को मनायबो	२
४०—	प्रभु को मान	१	४१—	किशोर-लीला	
४२—	फूल-मण्डली के पद	१	४३—	दीप-मालिका, श्री गोवर्द्धन धारण, अन्नकूट	२९
४४—	प्रबोधनी के पद	३			
४५—	वसन्त समय	१०	४६—	धमारि के पद	१३

४७—श्री स्वामिनी जी की उत्कर्षता	३	४८—सङ्केत के पद	५
४९—ब्रज वासीन को महातम	१	५०—मन्दिर की शोभा	१
५१—ब्रज को महातम	१	५२—श्री यमुना जी के पद	४
५३—अक्षय तृतीया	२	५४—रथ-यात्रा	२
५५—वर्षा ऋतु	१	५६—हिंडोरा	३
५७—पवित्रा	५	५८—रक्षाबन्धन	३
५९—दसेरा	३	६०—अपनी दीनत्व, प्रभु को महातम तथा बीनती।	४९
६१—अथ समुदाय पद	५३		
६२—मथुरा गमनादि प्रसङ्ग	४०	६३—गोपिन के विरह के पद	२४७
६४—जशोदा तथा नन्द जू के वचन उद्धव प्रति	२	६५—उद्धव के बचन प्रभु सों	२
		६६—जरासंध के युद्ध के प्रसङ्ग	१
६७—द्वारिका लीला-विरह	२१	६८—रामोत्सव के पद	६
६९—नरसिंह जी के पद	४	७०—वामन जी के पद	३
		कुल	११०२

प्रति नं० ६६/३—'परमानन्द-सागर'। इस प्रति के प्रतिलिपिकार का नाम इसमें धौलका ग्राम निवासी कान्हदास दिया हुआ है। पुस्तक के अन्त में प्रतिलिपि का काल गुर्जर सम्वत् १८३० वि०, वैसाख तेरस दिया हुआ है। इसमें भी परमानन्ददास के विषयानुसार पद हैं।

नाथद्वार निज-पुस्तकालय की प्रतियाँ—श्रीनाथद्वार में गोस्वामी जी के निज पुस्तकालय में भी बस्तों तथा पोथियों पर नम्बर पड़े हुये हैं। यहाँ की परमानन्ददास के पद-संग्रहों की पोथियों का विवरण भी इन नम्बरों के हवाले के साथ नीचे दिया जाता है—

प्रति नं० ११/१—'परमानन्ददास जी के कीर्तन'। इस प्रति में भी विषयानुसार पद लिखे गये हैं और लगभग ४०० पद हैं। प्रतिलिपि सम्वत् १८७२ वि० को, गोकुल की लिखी हुई है।

प्रति नं० १४/१—'परमानन्द-सागर।' इस प्रति में कुल ८८३ पद हैं। ग्रन्थ का आरम्भ उसी मङ्गलाचरण वाले पीछे कहे पद 'चरन कमल बन्दौं जगदीस जो गोधन के सङ्ग धाए" से होता है, जो पद काँकरौली की प्रतियों में मङ्गलाचरण रूप में दिया हुआ है। इसमें भी विषय के अनुसार ही पद लिखे गये हैं। कृष्ण के जन्म से गोपी-विरह तक के पद, इसके बाद, ब्रज भक्तों की महिमा, ब्रज का माहात्म्य, यमुना-महिमा, आत्म-प्रबोध, रामजन्म विषयों पर पद हैं। इस प्रति में कोई सम्वत् नहीं दिया हुआ है। देखने से प्रतिलिपि १५० वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। पुस्तक के आदि में पदों की विषय-सूची तथा भिन्न-भिन्न समय के कीर्तनानुसार अनुक्रमणिका भी दी हुई है। विषय के अनुसार दिये गये पदों की सङ्ख्या इसमें लगभग १००० है। इसके पदों का विवरण इस प्रकार है:—

प्रति नं० १४/१ परमानन्द-सागर नाथद्वार, निज पुस्तकालय

विषय	पद-सङ्ख्या	विषय	पद सङ्ख्या
१—मङ्गलाचरण	३	२—जन्म समय के पद	१४
३—स्वामिनी जी को जन्म	२	४—बाल-लीला	७०
५—शयनोछित	७	६—ब्याह की बात	४
७—उराहना यशोदा जू	२१	८—यशोदा जी को प्रत्युत्तर	
९—यशोदा जी के वचन प्रभु सों	७	" भक्तन सों	१७
१०—प्रभु के बचन यशोदा सों	१	११—गोपिका के बचन प्रभु सों	११
१२—परस्पर हास्य	४	१३—सखन सों खेल	४
१४—असुर मर्दन	५	१५—जमुनातीर को मिलिबे के	६
१६—मेघान्तर	७	१७—गोदोहन	१२
१८—बन-क्रीड़ा	१९	१९—गोचारण	९
२०—भोजन		२१—दान	३७
२२—द्विज पत्नी को प्रसङ्ग	२	२३—प्रभुजी को बन तें पाउ धारनो	२१
२४—बेनुगान	८	२५—मानापनोदन	६६
२६—किशोर-लीला	२	२७—प्रभु को स्वयं दूतत्व	
२८—प्रभु को मान, मध्याको वचन		२९—व्रताचरण	
३०—भक्तन के आसक्त बचन		३१—आसक्त को वर्णन	१३
३२—आसक्त की अवस्था	८	३३—साक्षात् भक्तन के आसक्त	
३४—साक्षात् भक्तन की प्रार्थना	४	बचन	२४५
३५—प्रभु के बचन भक्तन प्रति	२	३६—प्रभु को स्वरूप वर्णन	२२१
३७—श्री स्वामिनी जू को स्वरूप-		३८—जुगल रस वर्णन	७
वर्णन	७	३९—रास-समय	६
४०—अन्तर्धान समय	६	४१—जल-क्रीड़ा-समय	३
४२—सुरतान्त समय	७	४३—खण्डिता के बचन	३
४४—खण्डिता को प्रत्युत्तर	१	४५—फूल-मण्डली	१
४६—दीपमाला अन्नकूट	२१	४७—बसन्त-समय	३
४८—मथुरा-लीला	३८	४९—मथुरा-गमन	३
५०—विरह भ्रमरगीत	२४१	५१—श्री द्वारिका लीला	१३
५२—व्रजभक्तन की महिमा	२	५३—भगवत् मन्दिर वर्णन	१
५४—व्रज को माहात्म्य		५५—श्री जमुना जी की प्रार्थना	१
५६—अक्षय तृतीया		५७—प्रभु प्रति प्रार्थना	१
५८—भगवत भक्तन की महिमा	४	५९—स्वात्म-प्रबोध	३
६०—रक्षा-बन्धन	१	६१—आरती-समय	१

६२—पवित्रा समै	१	६३—श्री रघुनाथ जी को जन्म	२
६४—हिंडोरा-समय	२	६५—प्रभुजी को महात्म्य, अपनी दीनता	४४

प्रति नं० १४/२—'परमानन्द सागर।' इस प्रति में लगभग ५०० पद हैं। पीछे कही प्रति नं० ४१/१ के समान, इसमें भी विषयानुसार ही पदों का संग्रह है। इसमें कोई सम्वत् नहीं दिया हुआ है।

प्रति नं० १४/३—'परमानन्ददास जी के कीर्तन।' इसमें लगभग ८०० पद हैं। इसमें भी पीछे कहे विषयों के अनुसार पदों का विभाजन है। इसमे कोई तिथि नहीं दी गई, परन्तु देखने से संग्रह लगभग १५० वर्ष पुराना ज्ञात होता है।

प्रति नं० १४/४—'पमानन्ददास जी के कीर्तन।' इसमे लगभग एक हजार (१०००) पद हैं जिनका विभाजन विषय के अनुसार ही है। प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नहीं है। संग्रह यह भी पुराना है।

ऊपर दिये हुए परमानन्ददास जी के हस्तलिखित पदसंग्रह के अध्ययन से निम्न-लिखित बातें ज्ञात होती हैं:—

१—सब प्रतियों मे एक से पद नहीं हैं। बहुत से पद जो एक संग्रह में हैं, दूसरे में नहीं हैं। इससे अनुमान होता है कि यदि सब पदों का मिलान कर उन्हें एकत्र किया जाय तो परमानन्द-सागर में लगभग (२०००) दो हजार पद निकलेंगे।

२—सब प्रतियों में पदों का क्रम विषय के अनुसार है, रागों के अनुसार नहीं है, जैसा कि कृष्णदास अथवा अन्य अष्टछाप कवियों के अनेक पद-संग्रहों मे मिलता है।

३—परमानन्ददास के पदों में सूरसागर की तरह भागवत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन नहीं है। उसके पदों में दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध कृष्ण के मथुरा-गमन और भँवर-गीत तक का ही मुख्यतः वर्णन है। सूरदास जी ने तो स्वयं कई स्थलों पर अपनी रचना में कहा है कि वे भागवत के अनुसार अपने विषय को लिख रहे हैं।[1] परमानन्ददास के पदों में इस प्रकार का उल्लेख देखने को नहीं मिलता। उन्होंने कुछ स्फुट पद, अक्षय तृतीया, दीपमालिका, रामजन्म नृसिंह, वामन अवतारों की प्रशंसा आदि विषयों पर भी लिखे हैं जो बहुधा वल्लभ-सम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं।

४—परमानन्ददास जी ने सब से अधिक सङ्ख्या के पद कृष्णजी की बाल-लीला, कृष्ण के प्रति गोपियों की आसक्त अवस्था, गोपीविरह तथा भ्रमर गीत पर लिखे हैं। मान, खण्डिता, युगल-लीला, रास आदि के पद थोड़ी सङ्ख्या में हैं।

१—सूरसागर पद, पृ० ४७, चतुर्थ स्कन्ध, वे० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण।

५—परमानन्ददास ने इन पदों में कृष्ण की भावात्मक रसवती लीलाओं का ही वर्णन किया है, कृष्णावतार की व्यूहात्मक लीला और कथाओं का वर्णन नहीं किया। सूर ने इन कथाओं का भी वर्णन किया है।

६—सूरसागर में जैसे श्रीकृष्ण की लीलाओं को सूरदास ने पद और छन्द दोनों शैलियों में लिखा है, उस प्रकार के परमानन्दसागर में, भँवरगीत तथा एक दो अन्य प्रसङ्गों को छोड़ कर और कोई प्रसङ्ग छन्द-शैली में लिखे नहीं मिलते। उक्त संग्रहों में केवल पद की ही रचना है।

नाथद्वार तथा काँकरौली के पुस्तकालयों में सुरक्षित पद-संग्रहों को परमानन्ददास की प्रामाणिक रचनाएँ माना जा सकता है, क्योंकि जिस प्रकार परमानन्द-सागर तथा परमानन्द-कीर्तनों की प्राचीन प्रतियाँ काँकरौली में मिलती हैं, वैसी ही नाथद्वार में भी। वल्लभसम्प्रदायी निज पुस्तकालयों में सुरक्षित अष्टछाप-सम्बन्धी प्राचीन सामग्री अवश्य प्रामाणिक है। उक्त दोनों स्थानों के पद-संग्रहों में परमानन्ददास के नाम की निम्नलिखित छापें मिलती हैं:—

१—परमानन्द-प्रभु
२—परमानन्द स्वामी
३—परमानन्द दास
४—दास परमानन्द
५—परमानन्द

लेखक ने काँकरौली तथा नाथद्वार के पद-संग्रहों से परमानन्ददास के लगभग ४०० पद छाँट कर एकत्र किये हैं। उन पदों को लेखक प्रामाणिक रूप से अष्टछापी परमानन्ददास-कृत मानता है।

ऊपर कहे हुये विवरण का निष्कर्ष यह निकलता है कि परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना केवल एक परमानन्द-सागर है। उसी के पद, पृथक्-पृथक् रूप से कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। दान-लीला तथा ध्रुव-चरित्र उनकी सन्दिग्ध रचनाएँ हैं।

कुम्भनदास जी की रचनाएँ

कुम्भनदास की जीवनी तथा रचना की, पीछे दी हुई आधार-भूत सामग्री से, उनके किसी भी ग्रन्थ की सूचना नहीं मिलती। हिन्दी-साहित्य के अब तक के लेखकों ने बहुधा यही कथन किया है कि इनके फुटकल पदों के अतिरिक्त इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। हिन्दी संसार में अभी तक इनका कोई पद-संग्रह भी प्रकाश में नहीं आया। लेखक को हिन्दी रचनाओं की खोज करने पर हस्तलिखित पद उपलब्ध हुये हैं जिनके संग्रहों का विवरण इसी प्रसङ्ग में दिया जायगा। इन पदों के अतिरिक्त छपे रूप में भी कुछ पद अन्य अष्टछाप कवियों के पदों की तरह, वल्लभसम्प्रदायी 'कीर्तन-संग्रह', 'राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' तथा 'राग-रत्नाकर' में मिलते हैं।

६२—पवित्रा समे	१	६३—श्री रघुनाथ जी को जन्म	२
६४—हिंडोरा-समय	२	६५—प्रभुजी को महात्म्य, अपनी दीनता	४४

प्रति नं० १४/२—'परमानन्द सागर।' इस प्रति में लगभग ५०० पद हैं। पीछे कही प्रति नं० ४१/१ के समान, इसमें भी विषयानुसार ही पदों का संग्रह है। इसमें कोई सम्वत् नहीं दिया हुआ है।

प्रति नं० १४/३—'परमानन्ददास जी के कीर्तन।' इसमें लगभग ८०० पद हैं। इसमें भी पीछे कहे विषयों के अनुसार पदों का विभाजन है। इसमें कोई तिथि नहीं दी गई, परन्तु देखने से संग्रह लगभग १५० वर्ष पुराना ज्ञात होता है।

प्रति नं० १४/४—'पमानन्ददास जी के कीर्तन।' इसमें लगभग एक हजार (१०००) पद हैं जिनका विभाजन विषय के अनुसार ही है। प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नहीं है। संग्रह यह भी पुराना है।

ऊपर दिये हुए परमानन्ददास जी के हस्तलिखित पदसग्रह के अध्ययन से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं:—

१—सब प्रतियों मे एक से पद नहीं हैं। बहुत से पद जो एक संग्रह में हैं, दूसरे में नहीं हैं। इससे अनुमान होता है कि यदि सब पदों का मिलान कर उन्हें एकत्र किया जाय तो परमानन्द-सागर में लगभग (२०००) दो हजार पद निकलेंगे।

२—सब प्रतियों में पदों का क्रम विषय के अनुसार है, रागों के अनुसार नहीं है, जैसा कि कृष्णदास अथवा अन्य अष्टछाप कवियों के अनेक पद-संग्रहों मे मिलता है।

३—परमानन्ददास के पदों में सूरसागर की तरह भागवत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन नहीं है। उनके पदों मे दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध कृष्ण के मथुरा-गमन और भँवर-गीत तक का ही मुख्यतः वर्णन है। सूरदास जी ने तो स्वयं कई स्थलों पर अपनी रचना में कहा है कि वे भागवत के अनुसार अपने विषय को लिख रहे हैं।[1] परमानन्ददास के पदों में इस प्रकार का उल्लेख देखने को नहीं मिलता। उन्होंने कुछ स्फुट पद, अक्षय तृतीया, दीपमालिका, रामजन्म नृसिंह, वामन अवतारों की प्रशंसा आदि विषयों पर भी लिखे हैं जो बहुधा वल्लभ-सम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं।

४—परमानन्ददास जी ने सब से अधिक संख्या के पद कृष्णजी की बाल लीला, कृष्ण के प्रति गोपियों की आसक्त अवस्था, गोपीविरह तथा भ्रमर गीत पर लिखे हैं। मान, खण्डिता, युगल-लीला, रास आदि के पद थोड़ी संख्या में हैं।

१—सूरसागर पद, पृ० ७७, चतुर्थ स्कन्ध, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण।

५—परमानन्ददास ने इन पदों में कृष्ण की भावात्मक रसवती लीलाओं का ही वर्णन किया है, कृष्णावतार की व्यूहात्मक लीला और कथाओं का वर्णन नहीं किया। सूर ने इन कथाओं का भी वर्णन किया है।

६—सूरसागर में जैसे श्रीकृष्ण की लीलाओं को सूरदास ने पद और छन्द दोनों शैलियों में लिखा है, उस प्रकार के परमानन्दसागर में, भँवरगीत तथा एक दो अन्य प्रसङ्गों को छोड़ कर और कोई प्रसङ्ग छन्द-शैली में लिखे नहीं मिलते। उक्त संग्रहों में केवल पद की ही रचना है।

नाथद्वार तथा काँकरौली के पुस्तकालयों में सुरक्षित पद-संग्रहों को परमानन्ददास की प्रामाणिक रचनाएँ माना जा सकता है, क्योंकि जिस प्रकार परमानन्द-सागर तथा परमानन्द-कीर्तनों की प्राचीन प्रतियाँ काँकरौली में मिलती हैं, वैसी ही नाथद्वार में भी। वल्लभसम्प्रदायी निज पुस्तकालयों में सुरक्षित अष्टछाप-सम्बन्धी प्राचीन सामग्री अवश्य प्रामाणिक है। उक्त दोनों स्थानों के पद-संग्रहों में परमानन्ददास के नाम की निम्नलिखित छापें मिलती हैः—

१—परमानन्द-प्रभु
२—परमानन्द स्वामी
३—परमानन्द दास
४—दास परमानन्द
५—परमानन्द

लेखक ने काँकरौली तथा नाथद्वार के पद-संग्रहों से परमानन्ददास के लगभग ४०० पद छाँट कर एकत्र किये हैं। उन पदों को लेखक प्रामाणिक रूप से अष्टछापी परमानन्ददास-कृत मानता है।

ऊपर कहे हुये विवरण का निष्कर्ष यह निकलता है कि परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना केवल एक परमानन्द-सागर है। उसी के पद, पृथक्-पृथक् रूप से कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। दान-लीला तथा ध्रुव-चरित्र उनकी सन्दिग्ध रचनाएँ हैं।

कुम्भनदास जी की रचनाएँ

कुम्भनदास की जीवनी तथा रचना की, पीछे दी हुई आधार-भूत सामग्री से, उनके किसी भी ग्रन्थ की सूचना नहीं मिलती। हिंदी-साहित्य के अब तक के लेखकों ने बहुधा यही कथन किया है कि इनके फुटकल पदों के अतिरिक्त इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। हिन्दी संसार में अभी तक इनका कोई पद-संग्रह भी प्रकाश में नहीं आया। लेखक को कवि की रचनाओं की खोज करने पर हस्तलिखित पद उपलब्ध हुये हैं जिनके संग्रहों का विवरण इसी प्रसङ्ग में दिया जायगा। इन पदों के अतिरिक्त छपे रूप में भी कुछ पद अन्य अष्टछाप कवियों के पदों की तरह, वल्लभसम्प्रदायी 'कीर्तन-संग्रह', 'राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' तथा 'राग-रत्नाकर' में मिलते हैं।

'राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम' में कुम्भनदास के लगभग ४६ पद दिये हुये हैं और 'राग-रत्नाकर' में केवल दो पद मिलते हैं। इनके अतिरिक्त वल्लभसम्प्रदायी, ऊपर कहे वर्षोत्सव-कीर्तन, वसन्त-धमार-कीर्तन तथा नित्य-कीर्तन-संग्रहों में निम्नलिखित सङ्ख्या में विषयानुसार पद हैं:—

कुम्भनदास जी के छपे पद

कीर्तन संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव के कीर्तन अंश १

१—जन्माष्टमी के बधाई के पद	१	३—श्री राधाजी की बधाई के पद	२
२—पालने के पद	२	४—दान के पद	१२
५—रास के पद	१२		२९

वर्षोत्सव कीर्तन-अंश २

६—धनतेरस के पद	१	७—गाय खिलायवे के	१
८—दीप मालिका के	३	९—गोवर्द्धन पूजा के	२
१०—इन्द्रमान भङ्ग के	३	११—गोचारन के	१
१२—गुसाईं जी की बधाई के	१	१३—गुसाईं जी के पालना के	×
१४—सङ्क्रान्ति	१	१५—फूल मण्डली के	१
१६—आचार्य जी की बधाई के	१	१७—पालना के	१
१८—चन्दन के	१	१९—रथ यात्रा के	२
२०—मल्हार के	६	२१—कुसुम्बी घटा के	१
२२—मान के	३	२३—छाक के	४
२४—हिंडोरा के	३	२५—गुसाईं जी के हिंडोरा के	२
२६—पवित्रा के	३	२७—राखी	१
			४२

कीर्तन-संग्रह भाग २

२८—वसन्त के	७	२९—धमार के	५
३०—डोल के	१	३१—होरी के	१
			१४
		कुल	८५

कीर्तन-संग्रह भाग ३

१—खण्डिता के पद	७	२—वसन्त की बहार	२
३—हिलग के	३	४—दधिमथन	१
५—सङ्गमिल भोज के पद	१	६—राजभोग सम्मुख के पद	१
७—भोग समय के पद	१	८—साँझ समय मैया के	२
९—बीरी के	१	१०—सैन के	७
११—मान के	४		३०

१६—प्रभु की आरती	...	...	...	१
२०—वसन्त समय	...	...	...	६
२१—रास	.			६
२२—उराहने के बचन भक्तन के श्री यशोदा जू सों	.		...	१
२३—दीपमालिका तथा अन्नकूट समय		...		४
२४—प्रभु को बन ते आगमन	.	...		४
२५—साक्षात भक्त की प्रार्थना प्रभु सों		...	...	१
२६—वर्षा-ऋतु बरनन	...	.	..	४
२७—श्रीस्वामिनी जू को प्रभु प्रति गमन		...	...	१
२८—प्रभुजी की मुरली, श्री स्वामिनी जू हरन समय ...			...	२
			कुल पद	१८६[1]

पोथी न० १६/७—इस पोथी में भी कुम्भनदास जी के १८६ पद हैं। ७२ पद नन्ददास के हैं और शेष अन्य अष्टछाप के पद मिले-जुले हैं। प्रति में कोई तिथि नहीं दी हुई है। उपर्युक्त विषयों के अन्तर्गत ही पद इस प्रति में हैं।

प्रति न० १५/२—इस पोथी में दो रचनाएँ हैं। एक, कुम्भनदास जी की दान-लीला और दूसरी, सूरदास की दान-लीला। कुम्भनदास की दान-लीला, दोहा-रोला तथा एक टेक के मिश्रित छन्द में लिखी हुई है। इसी दान-लीला की एक प्रति लेखक ने नाथद्वार में भी देखी है जिसका विवरण आगे दिया जायगा।

नाथद्वार में कुम्भनदास के पदों का केवल एक संग्रह ही लेखक के देखने में आया है। प्रति न० २०/६ में कृष्णदास के कीर्तनों के बाद कुम्भनदास, नन्ददास तथा हरिराय जी के पद हैं। यह कुम्भनदास के २६७ पदों का एक वृहत् संग्रह है। इसमें काँकरौली की प्रति न० ६/३ के अनुसार ही पीछे दिये हुये विषयों के अनुसार पदों का विभाजन है। कुछ पद विनय भाव के भी हैं जो काँकरौली वाली प्रति में नहीं है। वहाँ १८६ पदों में से लगभग सभी पद इस संग्रह में आ गये हैं।

नाथद्वार निज पुस्तकालय में कुम्भनदास का पद-संग्रह।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, नाथद्वार निज पुस्तकालय में पदों के अतिरिक्त एक पोथी में कुम्भनदास की दानलीला भी मिलती है। अष्टछाप के अन्य कवियों के लम्बे पदों की तरह यह दान-लीला भी कुम्भनदास का एक लम्बा पद है। यह दान-लीला अलग से

१—प्रति में पद-संख्या १८७ दी हुई है और गणना में १८६ आते हैं।

छपी हुई भी मिलती है।[1] इसमें ३१ छन्द हैं। कीर्तन संग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन में दान के पदों में यह पद भी राग विलावल के अन्तर्गत दिया हुआ है।[2]

उपर्युक्त विवरण के आधार से कहा जा सकता है कि कुम्भनदास के काव्य और उनके विचारों का परिचय प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रामाणिक पद-संग्रह उपलब्ध हैं—

१—काँकरौली विद्याविभाग मे १८६ पदों का संग्रह।

२—नाथद्वार निज पुस्तकालय में ३६७ पदों का संग्रह।

३—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १, २ तथा ३ में छपे पद।

ये पद वल्लभसम्प्रदायी विद्या केन्द्रों में प्राचीन रूप में सुरक्षित हैं। इसलिए लेखक की दृष्टि मे प्रामाणिक है। उक्त संग्रहों से ही लेखक ने पद-संग्रह कर कुम्भनदास के काव्य तथा विचारों का अध्ययन किया है।

कृष्णदास अधिकारी की रचना

कृष्णदास अधिकारी के अध्ययन की आधारभूत सामग्री के आधार से उनके नाम से कही जानेवाली निम्नलिखित रचनाएँ ज्ञात होती हैं, जो वस्तुतः सभी प्रामाणिक नहीं हैं:—

१—जुगल मान-चरित्र।
२—भक्तमाल पर टीका।
३—भ्रमरगीत।
४—प्रेम-सत्व-निरुप।
५—भागवत-भाषानुवाद।
६—वैष्णव बन्दन।
७—कृष्णदास की बानी।
८—प्रेमरस-रास।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कृष्णदास अधिकारी के पद छपे हुये कीर्तन संग्रहों में भी मिलते हैं तथा इनके कुछ हस्तलिखित पदों के संग्रह भी लेखक को उपलब्ध हुये हैं जिनका विवरण आगे दिया जायगा। कवि द्वारा रचित कहे जानेवाले उक्त ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर नीचे की पङ्क्तियों में विचार किया जाता है।

यह ग्रन्थ, कृष्णदास अधिकारी की रचना-रूप में लेखक के देखने में नहीं आया। परन्तु उसका विचार है, कि जैसे हिन्दी के कुछ इतिहासकारों ने कृष्णदास पयहारी को भूल से

१—कुम्भनदास की यह दान-लीला मथुरा के ला० मोतीलाल मनोहरलाल गोयल द्वारा अग्रवाल इलेक्ट्रिक प्रेस से प्रकाशित रूप में मिलती है। लेखक के पास इसकी प्रति है।

२—कीर्तन संग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन, देसाई, पृ० २१७।

जुगल मान-चरित्र

कृष्णदास अधिकारी मान लिया है, इसी प्रकार कृष्णदास पयहारी के नामपर खोज-रिपोर्ट में दिये हुये 'जुगल मान-चरित्र'[1] ग्रन्थ को भी कृष्णदास अधिकारी की रचना मान लिया गया है। खोज-रिपोर्ट में युगल बिहारी के उपासक एक और कृष्णदास का भी उल्लेख है[2] जिसका ग्रन्थ 'भागवत भाषा' उक्त रिपोर्ट ने दिया है और स्वयं कवि के उल्लेख के आधार से जिसकी स्थिति का संवत् रिपोर्ट ने १८५२ वि० दिया है। यदि कृष्णदास पयहारी के 'जुगल मान-चरित्र' ग्रन्थ से भी भिन्न यह कोई अन्य रचना है जिसको मिश्रबन्धु[3] तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल[4] जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों ने कृष्णदास अधिकारी का रचा हुआ बताया है, तब भी लेखक की यही धारणा है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी कृष्णदास का नहीं हो सकता, युगल-बिहारी के उपासक कृष्णदास की यह रचना मानी जा सकती है। लेखक की इस धारणा का कारण एक तो यह है कि अष्टछाप-साहित्य के मुख्य केन्द्रों में जहाँ उनके साहित्य का एक वृहत् संग्रह सुरक्षित है, कृष्णदास अधिकारी-कृत इस नाम का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। दूसरे, इस रचना के कृष्णदास अधिकारी-कृत होने का उल्लेख खोज-रिपोर्टों में भी नहीं है। *वास्तव में हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने कृष्णदास पयहारी को कृष्णदास अधिकारी तथा* पयहारी के 'जुगल मान चरित' ग्रन्थ को कृष्णदास अधिकारी-कृत मान कर भूल की है।

लेखक के विचार से यह ग्रन्थ भी कृष्णदास अधिकारी का रचा हुआ नहीं है। नाभादास जी, कृष्णदास अधिकारी के समकालीन भक्त थे, और आयु में उनसे छोटे थे।

भक्तमाल पर टीका

नाभादास जी ने स्वयं भक्तमाल में कृष्णदास अधिकारी का वृतान्त दिया है। भक्तमाल की टीकाओं का रूप प्रथम 'प्रियादास' की टीका से ही चलता है जिनका रचना-काल नाभादास जी से बहुत बाद का है। फिर भक्तमाल ग्रन्थ, कृष्णदास अधिकारी के समय में प्रकाश में ही नहीं आया था[5]। इसलिए भक्तमाल पर टीका नामक ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी-कृत नहीं माना जा सकता।

मिश्रबन्धु-विनोद में बूँदी के एक कृष्ण कवि[6] का विवरण दिया हुआ है, तथा उसमें कृष्ण कवि के रचनाकाल संवत् १८७४ वि० तथा उनके एक ग्रन्थ 'भक्तमाल की

१—ना० प्र० स०, खो० रि०, सन् १९०९–११।

२—... ... ... रि० नं० १२८ (ए)

३—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृ० २२३, संवत् १९९४ संस्करण।

४—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६७१।

५—भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १६८० वि० है तथा कृष्णदास अधिकारी का निधन-काल लेखक ने संवत् १६३५–१६३८ वि० के बीच के समय में निर्धारित किया है।

६—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ८६१।

टीका' का भी उल्लेख है। सम्भव है, कृष्ण कवि की यही 'भक्तमाल टीका' कृष्णदास अधिकारी के नाम पर भूल से इतिहासकारों ने दे दी हो।

भ्रमरगीत

'८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता,' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' मे अष्ट कवियों के ग्रन्थों के नाम नहीं दिये गये, परन्तु इन वार्ताओं में इन कवियों की रचनाओं के भाव और विषयों का बहुधा उल्लेख कर दिया गया है, जैसे कुम्भनदास जी के बारे में '८४ वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि इन्होंने बाललीला के पद नहीं बनाये। इसी तरह सूरदास के विषय में लिखा है,—"सूरदास नें सहस्रावधि पद किये, तामे ज्ञान वैराग्य के न्यारे न्यारे भक्ति-भेद अनेक भगवद् अवतार सो तिन सबन की लीला वर्णन करी है।[1] और "परमानन्द स्वामी विरह के पद गावते।" इसी तरह कृष्णदास अधिकारी के विषय में भी वार्ताकार ने लिखा है—"सो या प्रकार रास के बहोत कीर्तन कृष्णदास ने गाये[2] "तथा" कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होंय।[3] इसी प्रकार वार्ताकार ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि जैसे कृष्ण के श्री अङ्ग के वर्णन में हजारों पद सूरदास के हैं वैसे ही कृष्णदास के भी हैं।[4] इस प्रकार के उल्लेख करते हुये वार्ता ने कृष्णदास के विरह के अथवा भ्रमरगीत लीला के पदों का कोई उल्लेख नहीं किया। कवि के विभिन्न स्थानों से उपलब्ध पदों से ज्ञात होता है कि उसने विरह तथा भ्रमरगीत विषयों पर चार-छै साधारण पदों को छोड़कर पद नहीं लिखे। इसलिए लेखक का अनुमान है कि भँवरगीत ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी द्वारा रचित नहीं है। इस ग्रन्थ को कृष्णदास अधिकारी का परिचय देनेवाले किसी लेखक ने नहीं देखा है और न लेखक को यह रचना कहा उपलब्ध हो सकी है। इसको कृष्णदास अधिकारी की सन्दिग्ध रचना भले ही कहा जा सकता है।

प्रेम-सत्व-निरूप

हरिराय जी के भावप्रकाशवाली '८४ वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि कृष्णदास अधिकारी, पुष्टिमार्ग की रीति को समझने में निपुण थे[5], वैष्णव लोग अपनी शङ्का-निवारण के लिए उनके पास जाया करते थे, तथा वे अपने कीर्तनों में उनको मार्ग का सिद्धान्त समझाया करते थे। वार्ता के कथनानुसार कृष्णदास वल्लभ-सम्प्रदायी प्रेमतत्व के मर्मज्ञ थे। अत यह अनुमान हो सकता है कि उन्होंने "प्रेम-सत्व निरूप" नामक कोई ग्रन्थ भी लिखा होगा। खोज करने पर भी यह ग्रन्थ लेखक को उपलब्ध न हो सका। वल्लभसम्प्रदाय के दो बड़े केन्द्रों (नाथद्वार

१—'अष्टछाप,' कांकरौली पृ० २३।
२—'अष्टछाप' कांकरौली, पृ० २०५।
३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २४६।
४—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २०७।
५—अष्टछाप, कांकरौली पृ० २१५।

तथा काँकरौली) में भी यह ग्रन्थ नहीं हैं। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय में कोई कथन निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसको कृष्णदास अधिकारी की प्रामाणिक रचना तो कह नहीं सकते, यह कवि की सन्दिग्ध रचना कही जा सकती है।

वार्ता तथा कृष्णदास अधिकारी के उपलब्ध पदों से ज्ञात होता है कि कवि ने कृष्ण की किशोर और युगल-लीला ही के पद गाये थे। वल्लभसम्प्रदाय में यह भी कथन चलता है कि सूरदास तथा नन्ददास को छोड़कर किसी भी अष्टछाप कवि ने सम्पूर्ण भागवत का भाषा में कथन नहीं किया। नन्ददास का 'दशमस्कन्ध भाषा भागवत' भी केवल रासलीला प्रसङ्ग तक का ही उपलब्ध होता है। इस विचारानुसार 'भागवत का अनुवाद' नामक ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी का नहीं होना चाहिए।

भागवत भाषा-अनुवाद

मिश्रबन्धु-विनोद में एक गिरिजापुर निवासी कृष्णदास कवि का वृत्तान्त दिया हुआ है।[1] मिश्रबन्धुओं ने नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट सन् १६०५ ई० के आधार से इस कवि द्वारा रचित दो ग्रन्थों के नाम दिये हैं, एक भागवत-भाषा पद्य (रचनाकाल संवत् १८५२ वि०) तथा दूसरा भागवत-माहात्म्य (रचनाकाल संवत् १८५५ वि०)। सम्भव है, इन्हीं गिरिजापुर निवासी कृष्णदास का 'भागवत भाषा' नामक ग्रन्थ भूल से कृष्णदास अधिकारी द्वारा रचित, इतिहासकारों ने कह दिया हो। पीछे कहा गया है कि खोज रिपोर्ट सन् १६०६-११ नं० १५८ (ए) में युगल बिहारी कृष्ण के उपासक एक और कृष्णदास का उल्लेख है। रिपोर्ट में इस कवि का रचा हुआ एक ग्रन्थ 'भागवत-भाषा द्वादश स्कन्ध' दिया हुआ है। यह भी सम्भव हो सकता है कि पीछे कहे अन्य कई ग्रन्थों की तरह नाम-साम्य के आधार से, कृष्णदास अधिकारी के भ्रम में, यह ग्रन्थ उनके द्वारा रचित कह दिया गया हो। नागरी-प्रचारिणी-सभा खोज रिपोर्ट में एक हित हरिवंशजी के शिष्य कृष्णदास कवि के 'भागवत-भाषा' का और भी उल्लेख है।[2] इस प्रकार इस नाम के कई कवियों के द्वारा रचित एक ही नाम का ग्रन्थ है। ऐसी दशा में, बिना ग्रन्थ देखे बिना उसके पाठों को मिलाये, और भाषा शैली की परीक्षा किये, यह कहना कि जिस 'भागवत भाषा' का उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने बिना ग्रन्थ के देखे, कृष्णदास अधिकारी-कृत लिखा, है वह अमुक कृष्णदास का है, कठिन है। परन्तु कृष्णदास अधिकारी की उपलब्ध रचनाओं के विषय को देखते हुये यह अवश्य कहा जा सकता है कि अष्टछापी कृष्णदास का 'भागवत भाषा अनुवाद' नाम का कोई ग्रन्थ नहीं है।

भगवान् और भक्तों को एक रूप मानकर अनेक भक्तों ने भक्तों की स्तुति की है। कृष्णदास भक्त थे। इसलिए सम्भव हो सकता है कि उन्होंने कोई वैष्णववंदन जैसा ग्रन्थ लिखा

1—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ८०१।

२—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन १६२०—२१, नं० ८७।

वैष्णव-वन्दन

हो। परन्तु कृष्णदास की जीवनी पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि कवि का वह दैन्य भाव न था जो सूरदास, कुम्भनदास अथवा परमानन्ददास का था। कृष्णदास अधिकारी के विनय के पद अल्प सङ्ख्या में मिलते हैं, और सन्त महिमा अथवा भक्तों के प्रति विनय और स्तुति-भावों के प्रकट करनेवाले पद अभी तक, कम से कम नाथद्वार, काँकरौली, गोकुल, मथुरा आदि स्थानों में उपलब्ध नहीं हुये। अहंभाव के साथ अधिकार करनेवाले, युक्ति से बङ्गालियों को और अधिकार से गोस्वामी विट्ठलनाथजी को, श्रीनाथजी की सेवा से वञ्चित करनेवाले तथा युगल-लीला के मधुरभाव के उपासक कृष्णदास ने दासभाव से वैष्णव-भक्तों की वन्दना तथा उनकी विनयपूर्ण स्तुति, कोई ग्रन्थ लिखकर, की होगी, इसमें सन्देह है। ग्रन्थ को बिना देखे और उसका बिना परीक्षण किये, इसकी प्रामाणिकता के विषय में निर्णय देना कठिन है।

वल्लभसम्प्रदाय में बहुधा भक्तों की 'रचनाओं को बानी' शब्द से नहीं कहा जाता। सन्त कवियों की रचनाएँ 'बानी' अवश्य कही जाती हैं। सम्भव है कि कृष्णदास अधि-

कृष्णदास की बानी

कारी के पद संग्रह का ही नाम किसी ने 'कृष्णदास की बानी' कह दिया हो। नाथद्वार, काँकरौली, सूरत, गोकुल आदि वल्लभसम्प्रदायी विद्या-केन्द्रों में इस नाम का कोई ग्रन्थ लेखक को नहीं मिला। इसलिए प्रमाण-रूप से इस ग्रन्थ को कवि का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता।

पीछे कहा गया है कि प्रियादासजी ने कृष्णदास अधिकारी का विवरण देते समय इस ग्रन्थ का सङ्केत किया है। प्रियादासजी के कथन का अर्थ यह भी हो सकता है—

प्रेम-रस-रास

"कृष्णदास ने प्रेमरस से भरे रास का प्रकाशन अपने पदों में किया।[1]" शिवसिंह सेंगर ने इस नाम का कवि कृत एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया है।[2] लेखक का विचार है कि प्रियादास ने कृष्णदास अधिकारी के रास-सम्बन्धी पदों के समूह को और उनकी छन्द में लिखी रास पञ्चाध्यायी[3] को ही-जो वस्तुतः कवि का एक लम्बा पद है, 'प्रेम-रस-रास' नाम दिया है और उसी का आधार लेकर अन्य लेखकों ने यह स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया है। वल्लभसम्प्रदायी विद्या-केन्द्रों में इस नाम का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। लेखक के विचार से यह कवि का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

१— भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ५८२।

२—शिवसिंहसरोज।

३—कीर्तन-संग्रह, भाग १। वर्षोत्सव कीर्तन, देसाई, पृ० ३१० पर 'मोहन-वृन्दावन क्रीड़त कुञ्ज बन्यो' पद ही कृष्णदास की 'रास पञ्चाध्यायी' कहा जाता है।

छपे कीर्तन संग्रहों में कृष्णदास अधिकारी के पद

छपे हुये कीर्तन संग्रहों में से 'राग-सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' में कृष्णदास अधिकारी के लगभग ७६ पद मिलते हैं और 'रागरत्नाकर' में २८ पद हैं। वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह के तीनों भागों में पाये जानेवाले पदों की विषयानुसार पद-सङ्ख्या इस प्रकार है :—

कृष्णदास जी के पद

कीर्तन संग्रह भाग १

वर्षोत्सव, अंश १

१—जन्माष्टमी की बधाई के	५	२—पालना के	४
३—ढाढी के	२	४—कान-छेदन के	२
५—बाललीला के	२	६—चन्द्रावली जी की बधाई के	१
७—श्रीराधा जी की बधाई के	५	८—श्रीराधा जी की ढाढी के	३
६—दान के	४	१०—नवरात्रि के	×
११—मुरली के	१	१२—करखा के	१
१३—रास के पद	४२		
			७२

वर्षोत्सव, अंश २

१४—रूपचतुर्दशी के	१	१५—इन्द्रमान भङ्ग के	८
१६—देव-प्रबोधनी के	१	१७—ब्याह के	३
१८—गुसाईं जी की बधाई के	५	१६—गोकुलनाथ जी की बधाई के	१
२०—सङ्क्रान्ति	२	२१—राजभोग	१
२२—फूल-मण्डली	५	२३—संवत्सरोत्सव	१
२४—गनगौर के	२	२५—आचार्य जी की बधाई के	८
२६—आचार्य जी के पालना के	१	२७—कलेऊ के	१
२८—चीरी के	१	२६—चन्दन के	५
३०—रथयात्रा के	२	३१—मल्हार के	६
३२—कुसुम्भी घटा के	१	३३—श्याम घटा के	१
३४—मान के पद	२	३५—हिंडोरा के	१०
३६—गुसाईं जी के हिंडोरा के	१	३७—रक्षाबन्धन के हिंडोरा के	५
३८—झूला उतारबे के	१	३६—राखी के	१
			७६
			कुल १५१

कीर्तन संग्रह, भाग २

४०—बसन्त के	३१	४१—धमार के	११
४२—डोल के	३		

४५

कुल १६६

कीर्तन संग्रह, भाग ३

४३—यमुना जी के	१	४४ मङ्गला समय के	१
४५—खण्डिता के	६	४६—शृङ्गार के	४
४७—कूल्हे को	१	४८—छाक को	१
४६—राजभोग सम्मुख के	१	५०—रस खाने के	१
५१—आरती के	१	५२—आवनी	२
५३—ब्यारू के	१	५४—शयन के	१
५५—मान के	६	५६—पौढ़वे के	२
५७—वैष्णव नित्य नियम के	२	५८—बिनती के	३
५६—आसरे के	३		

५२

कुल पद २४८।

छपे हुये पद-संग्रहों के अतिरिक्त काँकरौली विद्याविभाग तथा नाथद्वार में कवि के जिन पद संग्रहों का लेखक ने अध्ययन किया है उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

काँकरौली विद्या-विभाग की प्रतियाँ

प्रति० नं० ५१/४ : "कृष्णदास के कीर्तन।" इस प्रति में कृष्णदास अधिकारी के पद विषयानुसार विभाजित नहीं हैं। ये पद रागों के अनुसार दिये हुये हैं। कुछ पदों के रागों के साथ ताल भी दी गई है। पदों की सङ्ख्या २६२ है। पोथी के अन्त में कुछ पद गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, हित हरिवंश तथा स्वामी हरिदास के भी दिये हुये हैं। लगभग सभी पद राधाकृष्ण-अनुराग के हैं। पोथी के आदि में पदों की अनुक्रमणिका भी है। निम्नलिखित रागों में तथा सङ्ख्या में कवि के पद इस पोथी में हैं :—

राग	पद-सङ्ख्या	राग	पद-सङ्ख्या
विभास	६	धनासिरी	३१
ललित	१६	आसावरी	१६
भैरव	६	सारङ्ग	१७
विलावल	१६	गौड़ी	४१
टोड़ी	३६	श्री	८
गूजरी	१२	कल्याण	१५
रामकली	२	कानरा	१५
देवगन्धार	१	केदारा	४०
		कुल पद—	२६३

प्रति नं० २२/६—'कृष्णदास के पद' इस संग्रह में कृष्णदास अधिकारी के ६७६ पद हैं, जो रागानुसार विभाजित हैं। इस प्रति में भी लगभग वे ही राग हैं जो पीछे कही प्रति नं० ५१/४ में दिये हुये हैं। पदों का विषय राधाकृष्ण की किशोर-लीला, रास, राधा का मान, मान-मनावन, कुञ्ज-केलि आदि हैं। देखने में प्रति दो सौ वर्ष पुरानी ज्ञात होती है इसमें निम्नलिखित संख्या तथा रागों में कवि के पद हैं:—

राग	पद-संख्या	राग	पद-संख्या
विभास	४३	सारङ्ग	६७
भैरव	७	मालव गौड़ी	२४
विलावल	२८	श्री	१५
टोडी	४३	गौरी	२८
धन्यासिरी	३४	कल्यान	६४
गूजरी	१७	कानरो	१५७
रामग्री	१	केदारो	६५
आसावरी	२३	वसन्त	३०
		कुल पद—	६७६

प्रति नं० १५/२—'कृष्णदास जी के पद'। श्रीनाथ द्वार की इस प्रति में भी कृष्णदास के पद, काँकरौली की प्रतियों की तरह, रागों में ही विभाजित हैं। इस प्रति के पदों की

श्रीनाथद्वार के निज पुस्तकालय में कृष्णदास अधिकारी के पद-संग्रहों की प्रतियाँ

संख्या ६७६ है। पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पदों का विषय, कृष्ण की किशोर-लीला के अन्तर्गत राधाकृष्ण-अनुराग, राधा का मान, खण्डिता के वचन, तथा दम्पति का कुञ्जविहार आदि है। प्रतिलिपि अनुमान से २०० वर्ष पुरानी ज्ञातहोती है। पोथी में कहीं तिथि नहीं दी हुई है। इसमें निम्नलिखित संख्या तथा रागों में पद हैं—

राग	पद-संख्या	राग	पद-संख्या
विभास तथा ललित	४३	सारङ्ग	९५
		मालव गौड़ी	१५
भैरव	७	श्री	१६
विलावल	२८	गौरी	२८
टोड़ी	४१	कल्याण	६४
धनासिरी	३	कानरो	१५७
गूजरी	१७	केदारो	६६
रामग्री	१	मल्हार	१४
आसावरी	२१	वसन्त	३०
			कुलपद—६७६

प्रति नं० १५।१—'कृष्णदास के पद'। कागज और लिपि के देखने से यह प्रति भी लगभग १५० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। इसमे भी कृष्णदास अधिकारी के पद रागों में विभाजित हैं। इसके लगभग सम्पूर्ण पद उपर्युक्त प्रति नं० १५/२ में आ गये हैं। इसकी पद-सख्या की गणना लेखक ने नहीं की।

प्रति नं० २०/६—"कृष्णदास जी के कीर्तन"। इस प्रति मे कृष्णदास अधिकारी के ७७८ पद हैं जो रागानुसार विभाजित हैं। इसमें आये हुये राग वही हैं जो नाथद्वार की प्रति न० १५/२ में आये हैं। पदों का विषय भी वही, राधाकृष्ण का अनुराग, मान, कुञ्ज-विहार तथा खण्डिता है। पोथी में कोई संवत् नहीं है परन्तु देखने से लगभग १५० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। इसके पाठ भी सुपठ्य हैं तथा अन्य प्रतियों की तुलना में इसमें सबसे अधिक संख्या में पद हैं। इसलिए यह प्रति महत्व की है।

प्रति नं० १३ २—इस प्रति के पृष्ठ ३६ पर कृष्णदास अधिकारी के नाम से एक 'पञ्चाध्यायी' नामक रचना दी हुई है। इस रचना का नाम है 'कृष्णदास-कृत पञ्चाध्यायी'। इसमें ३१ छन्द हैं। प्रथम दोहा फिर चाल, फिर दोहा और चाल, इस क्रम से इसमें कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। अन्तिम छन्द मे कृष्णदास नाम की छाप भी है। जैसा कि

पीछे कहा गया है, सम्भव है इसी पञ्चाध्यायी को प्रियादास तथा अन्य-लेखकों ने कृष्णदास-कृत 'प्रेम-रस-रास' नाम दे दिया हो। परन्तु यह रचना बहुत छोटी है जो वस्तुतः कवि का एक लम्बा पद ही है। पीछे कहा जा चुका है कि यह रचना ज्यों की त्यों कीर्तन-संग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन में भी मिलती है।[1]

उक्त दोनों स्थानों के हस्तलिखित पद तथा छपे कीर्तन-संग्रहों के पद वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरों में परम्परागत गाये जाने के कारण तथा वहाँ एक अमूल्य निधि-रूप में सुरक्षित होने के कारण कवि की प्रामाणिक रचनाएँ कही जा सकती हैं। इतना अवश्य है कि छपे तथा हस्तलिखित, दोनों कीर्तनों के पदों में भाषा की त्रुटियाँ तथा पाठ भेद बहुत हैं।

उपर्युक्त विवेचन तथा विवरण के निष्कर्ष रूप से कृष्णदास अधिकारी के नाम पर दी जानेवाली रचनाएँ निम्नलिखित विभागों में, लेखक के विचार से, हैं—

कवि की प्रामाणिक रचना—वल्लभसम्प्रदायी केन्द्रों में हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन-रूप में पाये जानेवाले पद-संग्रह।

सन्दिग्ध रचनाएँ – १—भ्रमर-गीत।
२—प्रेम-सत्व-निरूप।
३—वैष्णव-वन्दन।

लम्बे पद अथवा पद-संग्रह के ही नामान्तर वाली रचना जो स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कही जा सकतीं।
१—प्रेम रसरास।
२—कृष्णदास की बानी।

अप्रामाणिक रचनाएँ—१—जुगलमान चरित्र।
२—भक्तमाल टीका।
३—भागवत भाषानुवाद।

लेखक ने वल्लभसम्प्रदायी हस्तलिखित ऊपर कहे कीर्तन संग्रहों से तथा छपे कीर्तनों में से कृष्णदास अधिकारी के लगभग २०० पद छाँटकर एकत्र किये हैं। इस अध्ययन में इसी निजी २०० पद संग्रह का आधार लिया गया है।

नन्ददास की रचनाएँ

अष्टछाप के अध्ययन की, पीछे दी हुई आधारभूत सामग्री के विवरण से नन्ददास द्वारा रचित कहे आनेवाले ग्रन्थों की एक तालिका यहाँ दी जाती है। इस तालिका में आये हुये कुछ ग्रन्थों के नाम ऐसे भी हैं जो केवल दूसरे ग्रन्थों के परिवर्तित नाम हैं और जो

---

1 राग सोरठ, दोहा, 'मोहन वृन्दावन क्रीड़त कुञ्ज धन्यो' आदि।
वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह, देसाई, भाग १, पृ० ३१०।

वास्तव में पृथक ग्रन्थ नहीं है। छन्द में लिखे ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास ने पदों की भी रचना की जो वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने नन्ददास के पदों का उल्लेख तो किया है, परन्तु प्राप्त पदों की सङ्ख्या, तथा उनके किसी संग्रह का निर्देश उन्होंने नहीं किया। श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नन्ददास नामक पुस्तक के परिशिष्ट भाग में कवि के (नन्ददास) कुछ पद दिये हैं।

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि नन्ददास द्वारा रचित कहे जानेवाले २८ ग्रन्थ हैं। नीचे की पंक्तियों म इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता है।

महाकवि नन्ददास की रचनाओं में से रासपञ्चाध्यायी एक प्रौढ़ रचना है। इस ग्रन्थ को गार्सां द तासे, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, सर जार्ज ग्रियर्सन, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल आदि सभी विद्वानों ने नन्ददास की कृति माना है।

रासपञ्चाध्यायी

नोट —पहले पहल रासपञ्चाध्यायी ग्रन्थ सम्वत् १८७२ में मथुरा में छपा। इसके बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसे अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में सन् १८७८-७९ ई० में प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने मूल पाठ के अतिरिक्त कोई भूमिका नहीं दी थी। उसके बाद अब तक इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण निकल चुके हैं, जिनका ब्यौरा लेखक ने अन्यत्र दिया है*। शिवसिंह सेंगर, नागरी प्रचारिणी-सभा की 'खोज-रिपोर्ट' तथा भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र ने इस ग्रन्थ का नाम 'पञ्चाध्यायी' दिया है, और 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' में यह ग्रन्थ इसी नाम से छपा है। अन्य प्रकाशित प्रतियाँ रासपञ्चाध्यायी' के नाम से ही छपी हैं। विविध स्थानों से प्रकाशित तथा 'रासपञ्चाध्यायी' की उन हस्तलिखित प्रतियों में जो लेखक के देखने में आई हैं अनेक पाठान्तर हैं, और छन्द-सङ्ख्या में भी असमानता है। इससे विदित होता है कि 'रासपञ्चाध्यायी' के छन्दों में पीछे से लोगों ने मेल कर दिया।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्टों में नन्ददास[ш] के अतिरिक्त छः अन्य कवियों की रास पञ्चाध्यायियों का उल्लेख है। ये कवि कृष्णदेव∠ दामोदर√ गोपालराय×, व्यास+ ओरछा निवासी, रामकृष्ण चौबे† तथा सुन्दरसिंह‡ हैं।

*—'नन्ददास सम्बन्धी आधुनिक लेखों का निरीक्षण' यह लेख 'हिन्दुस्तानी' जुलाई सितम्बर १९४१ में प्रकाशित हुआ था। परिशिष्ट भाग।

ш—खोज रिपोर्ट, १९०१, नं ६१, १९०६ ८ नं० २०० (ए)

∠—वही, १९०९-११, नं० १५९। इस पञ्चाध्यायी का लिपि-काल सं० १८८७ है।

√—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, १९१२-१४ नं० ४६ (जी)। रचना-काल स० १६११। यह ग्रन्थ सवैया छन्दों में है। कवि हितहरि सम्प्रदाय का था।

×—वही, १९१२-१४, पृ० ८६। ग्रन्थ कवित्त छन्दों में है।

+—वही, १९१२-१४। यह रचना त्रिपदी और चौपाई छन्दों में है।

†—वही, १९०६-८, नं० १०० (एफ्)

‡—वही, १९०४ नं० ७३, निर्माणकाल १८९९। रचना दोहा-चौपाई-छन्दों में है।

अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण की रासलीला के पद गाये हैं। अष्टछाप के भक्तकवि कृष्णदास ने पदों के अतिरिक्त छन्दों में भी एक छोटी सी 'रासलीला' लिखी है, जो वल्लभसम्प्रदाय के 'वर्षोत्सव कीर्तन,'[1] में छपी है। नन्ददास के नाम से कही जानेवाली 'रासपञ्चाध्यायी' की अनेक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ लेखक के देखने में आई हैं। स्वर्गीय पण्डित मयाशङ्कर याज्ञिक, अलीगढ़ निवासी, के संग्रहालय में उसने नन्ददास कृत 'रासपञ्चाध्यायी' की ६ प्रतियाँ देखी हैं, जिनमें सबसे प्राचीन प्रति सम्वत् १७८० की है। काँकरौली तथा नाथद्वार के पुस्तकालयों में भी इस ग्रन्थ की प्रतियाँ हैं। इन सब में पाठ और छन्द सङ्ख्या-भेद से एक से छ्द हैं। और सब में नन्ददास की ही छाप है। वैष्णव मन्दिरों में भी यह रचना नन्ददास कृत ही प्रसिद्ध है। इसलिए प्रामाणिक रूप से यह कृति अष्टछाप के नन्ददास की है।

किसी किसी प्रति में लिपिकार ने नन्ददास को 'स्वामी नन्ददास' कहकर लिखा है, यथा—"इति श्री पञ्चाध्यायी स्वामी नन्ददास-कृत सम्पूर्ण।" वल्लभसम्प्रदाय के अष्ट-सखा कवियों में चार भक्त, सूरस्वामी, परमानन्दस्वामी, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी 'स्वामी' कहलाते हैं और चार भक्त कृष्णदास, कुम्भनदास नन्ददास तथा चतुर्भुजदास 'दास' कहे जाते हैं। नन्ददास स्वामी नहीं कहलाते।

नन्ददास-कृत ग्रन्थों में मञ्जरी नाम की पाँच रचनाएँ हैं—विरह मञ्जरी, रस मञ्जरी, मान-मञ्जरी, अनेकार्थ मञ्जरी तथा रूपमञ्जरी। सं० १६४५ वि० में जगदीश्वर प्रेस, बम्बई से, वैष्णव ठाकुरदास सूरदास ने इन पञ्च मञ्जरियों को छपवाया। इसके बाद इन मञ्जरियों को सं० १६७३ वि० में भाई बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ ने सरस्वती प्रेस, मूलेश्वर बम्बई, से छापा। पञ्चमञ्जरी की सं० १८३५ वि० की एक हस्तलिखित प्रति बनारस के श्रीव्रजरत्नदास के पास भी है, एक और प्रतिलिपि मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास है, जिसे वे भरतपुर राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित सं० १७३४ वि० की प्रति की नक़ल बताते हैं। नन्ददास के ग्रन्थों की सूची देनेवाले विद्वानों में शिवसिंह सेंगर, डाक्टर ग्रियर्सन तथा श्रीरामकुमार वर्मा को छोड़कर सभी ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट[2] में नन्ददास के 'रूपमञ्जरी' ग्रन्थ का उल्लेख है। उक्त रिपोर्ट में ग्रन्थ का कोई विवरण नहीं दिया गया, केवल इतना कहा गया है कि इसमें १६८ श्लोक हैं। अन्य वर्ष की खोजों में इसका कोई हवाला नहीं है।

रूप-मञ्जरी

उपर्युक्त उल्लेखों के अतिरिक्त ग्रन्थ के अध्ययन से इस बात का यथेष्ट प्रमाण मिल जाता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत ही है। ग्रन्थ के आदि और अन्त में नन्ददास के नाम की छाप आई है, यथा—

१—भाग २, पृ० ३१०-१३ प्रकाशक, लल्लूभाई छगनलाल, अहमदाबाद।

२—ना० प्र० सभा०, खोज रिपोर्ट, नं० ३०१ (ए), सन् १९०६-१९०८।

आदि—प्रथमहि प्रणमू प्रेममय, परम जोति जो आहि,
रूपउपावन रूपनिधि नित्य कहत कवि ताहि।[1]
परम प्रेम पद्धति एक आही, नंद यथामति बरनूं ताही।[2]
अन्त—यह विधि कुँवरि रूपमंजरी। सुन्दर गिरधर पिय अनुसरी।
इंदुमती ताकी सहचरी। सो पुनि तिहि संगति निस्तरी।[3]
तिनकी ये लीला रस भरी। नन्ददास निज हित के करी।

नन्ददास के अन्य ग्रन्थों के कुछ भाव और शब्दावली इस ग्रन्थ में भी प्रयुक्त हुये हैं। काव्य की दृष्टि से भाव-साम्य के अतिरिक्त साम्प्रदायिक भाव भी इसमें व्यक्त हुये हैं, जिनमें माधुर्य-भक्ति के अनुयायी, एक पुष्टिमार्गीय भक्त का परिचय मिलता है और यह कविवर नन्ददास ही हैं। इस ग्रन्थ की प्राचीन प्रतियों में भी नन्ददास का ही नाम मिलता है।[4] इन प्रमाणों के आधार से हमें इस ग्रन्थ को किसी अन्य लेखक द्वारा लिखित मानने की गुञ्जाइश नहीं रह जाती। इस ग्रन्थ के जिन भावों और शब्दों का साम्य नन्ददास के अन्य ग्रन्थों में मिलता है। उनमें से कुछ को यहाँ दिया जाता है—

१—जगमग जगमग करै नग, जो जराय संग होइ।
काँच किरच कंचन राचें भलो कहत नहिं कोइ।
—'रूपमञ्जरी'

ज्यों अमोल नग जगमगाय सुन्दर जराय संग।
—'रास पञ्चाध्यायी', प्रथम अध्याय

२—तरनि किरन सब पाहन परसे। फटकि माँहि निज तेजहि दरसे।
—'रूपमञ्जरी'

तरनि किरन ज्यों मनि पखान सबहिन को परसै।
सूर्यकांत मनि बिना नाहिं कहुँ पावक दरसै।
—'रास पञ्चाध्यायी', प्रथम अध्याय

३—ज्यों-ज्यों सैसव जल थरवाने। त्यों-त्यों नैन मीन इतराने।
—'रूपमञ्जरी'

१—तथा २—छन्द १ और २, 'रूपमञ्जरी', ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित, 'पञ्चमञ्जरियाँ।'

३—'रूपमञ्जरी' ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित 'पञ्चमञ्जरियाँ', छन्द १२२ और १२३।

४—जैसे भरतपुर राजकीय पुस्तकालय की प्रति में।

रूप उदधि इतराति रँगीली मीन पाँति जस।
—'रास पञ्चाध्यायी', प्रथम अध्याय

रस-मञ्जरी सर आर्जे ए० ग्रियर्सन को छोड़कर, हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहासकारों ने नन्ददास के इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। रस-मञ्जरी की भाषा और भाव का नन्ददास के अन्य ग्रन्थों की भाषा और भावों के साथ मिलान करने पर यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत ही सिद्ध होता है। ग्रन्थ के आदि के दो छन्दों में[1] और अन्त के तीन छन्दों में 'नन्ददास' की छाप आई है। शब्द और भाव-साम्य के अतिरिक्त यह दोहा, जो रूप मञ्जरी में कवि ने दिया है—

यदपि अगम ते अगम अति, निगम कहत हैं ताहि।
तदपि रँगीले प्रेम तें, निपट निकट प्रभु आहि।

ज्यों का त्यों, लेखक द्वारा देखी हुई, रसमञ्जरी की सभी प्रतियों में मिलता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि रूपमञ्जरी और रसमञ्जरी का रचयिता एक ही कवि है।

नोट—यह रस मञ्जरी ग्रन्थ सूरदास ठाकुरदास तथा भाई बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ द्वारा क्रमशः संवत् १९४९ वि० तथा संवत् १९७३ वि० में प्रकाशित 'पञ्चमंजरियों' में छप चुका है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में कई रस-मञ्जरियों का विवरण दिया गया है। उक्त रिपोर्ट में नन्ददास-कृत रस-मञ्जरी का भी विवरण है। श्री याज्ञिक पुस्तकालय में भी लेखक ने इस ग्रन्थ की एक प्रति देखी है।

रस-मञ्जरी, दम्पताचार्य-कृत, रामजानकी विवाह, लिपिकाल संवत् १९१२ वि०, ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०९-१०, ११।

रस-मञ्जरी नन्ददास-कृत, विषय नायिका-भेद, ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०९, १०, ११।

भाषा रस-मञ्जरी, रामानन्द-कृत, विषय नायिका-भेद, संवत् १८०७ वि०, ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०९, १०, ११।

रस-मञ्जरी, रामसनेही-कृत, विषय नायिका भेद, संवत् १९११ वि, ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०९, १०, ११।

रस-मञ्जरी, रामनिवास तिवारी, वैद्यक ग्रन्थ, संवत् १९२७, १८, १९।

१—आदि—रस-मञ्जरी अनुसार कै, नन्द सुमति अनुसार।
बरनत बनिता भेद जहँ प्रेम सार विस्तार २९
रस-मञ्जरी, बलदेवदास करसनदास।
अन्त—यह सुन्दर वर रस-मंजरी।
नन्ददास रसिकन हित करी। २८९

ग्रन्थ रचना में अपने किसी मित्र की आज्ञा की प्रेरणा[1] का उल्लेख कवि ने इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी किया है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में व्यक्त भाव[2] भी वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुकूल ही हैं। उपर्युक्त दृष्टियों से विचार करने पर इस ग्रन्थ को लेखक निर्विवाद रूप से नन्ददास-कृत मानता है।

तासे से लेकर अब तक के सभी हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने नन्ददास-कृत 'अनेकार्थ मञ्जरी' का उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ कई नामों से प्रसिद्ध है, जैसे अनेकार्थ-माला, अनेकार्थभाषा, अनेकार्थ मञ्जरी। यह नन्ददास के प्रसिद्ध पञ्च-मञ्जरी ग्रन्थों में से एक है। हिन्दी के बड़े-बड़े विद्वान् इतिहासकारों ने अनेकार्थमाला, अनेकार्थभाषा और अनेकार्थमञ्जरी को नन्ददास के तीन पृथक्-पृथक् ग्रन्थ माना है। वास्तव में हैं ये तीनों ग्रन्थ एक ही। इतिहासकारों ने तीनों नामों से मिलनेवाली प्रतियों के पाठ नहीं मिलाये, इसी भूल के कारण एक ग्रन्थ को अनेक ग्रन्थ मानने का भ्रम हिन्दी संसार में फैल गया है। यह भ्रम नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[3] से आरम्भ हुआ है। खोज रिपोर्ट में यदि पाठ मिलाकर सूचना दी जाती तो कदाचित् यह भ्रम न फैलता। उक्त रिपोर्ट में नन्ददास के दो ग्रन्थों—अनेकार्थ मञ्जरी और नाममाला—को भी एक ही ग्रन्थ मानकर कई स्थानों पर एक ही ग्रन्थ की सूचना दी गई है। खोज रिपोर्ट के आधार पर इतिहासकारों ने अनेकार्थ मञ्जरी के साथ साथ नन्ददास-कृत अनेकार्थ नाममाला को भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बताकर उल्लेख किया है, जैसे पण्डित रामचन्द्र

अनेकार्थ मञ्जरी

१—एक मीत हमसों अस गुन्यौं, मैं नायिका भेद नहिं सुन्यौं। ९
अरु जो भेद नायक के सुने, तेऊ मैं नीके नहिं सुने। १०
हाउ-भाव हेलादिक जिते, रति समेत समझावहु तिते। ११
रस-मञ्जरी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३६,

२—नमो नमो आनंद घन, सुन्दर नदकुमार।
रसमय, रस कारन रसिक, जग जाके आधार।
है जु कछुक रस इहि संसार, ताको प्रभु तुमही आधार।
ज्यों अनेक सरिता जल बहै, आनि सबै सागर में रहै,
× × ×
अगिन ते अनगन दीपक बरैं, बहुरि आनि सब तामें ररैं।
रस मञ्जरी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३६।

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०२ ई०, न० ५८।
... ... १९०३ ई०, न० १९३।
... ... १९०६–११, ई०, न० २०८डी।
... ... , १९२० ई०, न० १२६ बी।

शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास[1] में लिखा है—"जहाँ तक ज्ञात हुआ है, इनकी चार पुस्तकें ही अब तक प्रकाशित हुई हैं, 'रास पञ्चाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थ मञ्जरी और अनेकार्थ नाममाला" । इसके अतिरिक्त नन्ददास के ग्रन्थों की सूची में भी इन्होंने पृथक् पृथक् नामों से प्रसिद्ध एक ही ग्रन्थ को पृथक् पृथक् ग्रन्थ मान लिया है ।

अनेक उपलब्ध प्राचीन प्रतियों के आधार से तथा ग्रन्थ की भाषा शैली से यह ग्रन्थ निश्चयपूर्वक नन्ददास-कृत ही सिद्ध होता है । परन्तु यह कहना कठिन है कि नन्ददास ने कितने दोहे इस ग्रन्थ में लिखे हैं । *नागरी-प्रचारिणी-सभा की रिपोर्ट[2] ने भी ग्रन्थ की* श्लोक संख्या भिन्न-भिन्न दी है । लेखक ने जो छपी और हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं उनमें भी छन्द-संख्या विषम है संवत् १६४५ वि० में, ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित 'अनेकार्थ मञ्जरी' तथा संवत् १६७३ वि० में बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ द्वारा प्रकाशित अनेकार्थ मञ्जरी' मे छन्द-संख्या ११६ ही है और दोनों प्रतियों में स्नेह नाम पर ग्रन्थ समाप्त होता है, जिस छन्द में नन्ददास के नाम की छाप भी है । सन् १६१४ ई० में बा० दुर्गाप्रसाद खत्री, काशी द्वारा प्रकाशित, अनेकार्थ माला में छन्द संख्या १५४ है और छन्द १२१ वें (स्नेहनाम) मे नन्ददास के नाम की छाप है । श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, एम० ए० द्वारा सम्पादित 'अनेकार्थ मञ्जरी' में भी छन्द संख्या १५४ ही दी गई है । लेखक ने जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ इस ग्रन्थ की देखी हैं, सबमें ग्रन्थ 'स्नेहनाम' पर ही समाप्त हुआ है, परन्तु उनमें भी छन्द-संख्या एक नहीं है ।

बाबू व्रजरत्नदास, बनारस के पास संवत् १८३५ वि० की पञ्च-मञ्जरी की एक हस्त-लिखित प्रति है जो लेखक की देखी हुई है । इसमें अनेकार्थ और मानमंजरी में लिपिकार ने क्षेपक की सूचना दी है, अन्य तीन मञ्जरियों में क्षेपक की सूचना नहीं है । अनेकार्थ की इसी प्रति में लिखा है—

बीस ऊपरे एक सौ नन्ददास जू कीन
और दोहरा रामहरि, कीने है जु नवीन
श्रीमन, श्री नंददास जू, रस मद आनद कंद
रामहरी की ढीठता[1] छिमियो हो जगवंद
कोस मेदिनी आद अरु, कछू सन्द अधिकाइ
मन रुचि लखि बिच सधि दिय, बांचो जाचित भाइ

इस प्रति में छन्द नं० १२१ में (स्नेहनाम) में नन्ददास की छाप है और वहीं नन्ददास-कृत 'अनेकार्थ' ग्रन्थ समाप्त हो जाता है ।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६१ ।

२—ना० प्र० सभा, खोज रिपोर्ट १६०२ ई०, नं० ९८ । १६०३ ई०, नं० १९३ । १६०६–११ ई०, न० २०८ बी । १६२० ई०, नं० १२६ बी ।

खोज-रिपोर्ट सन् १९०३ ई०, नं० १५३ में नन्ददास कृत 'अनेकार्थ नाम-माला' का रचना-काल सन् १५६७ ई० (सं० १६२४ वि०) दिया है। ग्रन्थ में कवि ने कोई रचना-काल नहीं दिया। उक्त रिपोर्ट में सन् १५६७ ई० कदाचित् किसी हस्तलिखित प्रति के आधार से दिया होगा, परन्तु इस बात को विवरणकार ने स्पष्ट करके नहीं लिखा। ग्रन्थ के अध्ययन से इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि अनेकार्थ मञ्जरी की रचना कवि ने वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद तथा उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त की है, क्योंकि ग्रन्थ के मङ्गलाचरण और आरम्भिक वन्दना में कवि ने शुद्धाद्वैत अविकृत परिणामवाद के भावों को व्यक्त किया है।[1]

विरह मञ्जरी

नन्ददास के 'पञ्च मञ्जरी' ग्रन्थों में 'विरह मञ्जरी' भी एक छोटा सा ग्रन्थ है। काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] और मिश्रबन्धुओं के उल्लेख के आधार पर हिन्दी साहित्य के सभी वर्तमान इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत माना है। शिवसिंह सेंगर और डा० ग्रियर्सन ने अपने इतिहास ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं किया। इसकी कई हस्तलिखित तथा प्रकाशित प्रतियाँ लेखक के देखने में आई हैं। 'पञ्च मञ्जरी' की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति बनारस में बाबू व्रजरत्नदास जी के पास है, जिसमें यह ग्रन्थ भी सम्मिलित है। मयाशङ्कर याज्ञिक पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की तीन प्रतियाँ लेखक ने देखी हैं, जिनमें से एक प्रति सम्वत् १७२५ वि० की है। नन्ददास के 'पञ्च मञ्जरी' ग्रन्थों का प्रकाशन ठाकुरदास सूरदास तथा बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ द्वारा भी हुआ है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

नन्ददास के अन्य ग्रन्थों की कुछ शब्दावलि और भावों का प्रयोग इस ग्रन्थ में भी है। यह शब्द और भावों का साम्य इस बात का प्रमाण है कि यह ग्रन्थ नन्ददास द्वारा ही लिखा गया है। इस बात के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

१—मदन जालगोलक से भौरा,. फिर गए ऊपर ठौरहि ठौरा। ४५

—विरह मञ्जरी।

१—जु प्रभु जोति मय जगतमय, कारन, करन, अभेव
विघन हरन, सब सुभ करन, नमो नमो तिहि देव।
एकै वस्तु अनेक है जगमगात जगधाम
जिमि कञ्चन तैं किंकिनी कंकन कुण्डल नाम।
अनेकार्थ मञ्जरी, 'नन्ददास,' शुक्ल, पृ० ६८

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, नं० १९६, स० १९०१ और नं० २०८, सन् १९०९, १०, ११

ता घूँघरि के मध्य मत्त अलि भरमत ऐसें ,
प्रेम जाल के गोलक कछु छबि उपजत जैसें ।

—रास पञ्चाध्यायी, पाँचवाँ अध्याय ।

२—*कुसुम धूरि धुँधरि सी कुँजें, मधुकर निकर करत जहँ गुजें । ५४*

—विरह मञ्जरी ।

कुसुम धूरि धुँधरी कुंज छबि पुंजन छाई ,
गुंजत मंजु मलिन्द बेनु जनु बजति सुहाई ।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छ० १०७ ।

३—*सीतल मृदुल बालुका सच्यो, जमुना सुकर तरङ्गिन रच्यो । १२४*

—विरह मञ्जरी ।

उज्ज्वल मृदुल बालुका पुलिन सुहाई ,
जमुना जू निज कर तरङ्ग करि आप बनाई । १२२

—राम पञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय ।

४—*कल्प तरोरुह, मंजुल मुरली ,*
मोहन मधुर सुधारस जुरली । १२५

—विरह मञ्जरी ।

तैसिय पिय की मुरली जुरली अधर सुधारस ।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छ० १०१ ।

५—*तबही कान्ह बजाई मुरली ,*
मधुर मधुर पञ्चम सुर जुरली । १६६

—विरह मञ्जरी ।

तब लीनी कर कमल योग माया सी मुरली ।
अघटित घटना घटित बहुरि अधरन सुर जुरली ।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छं० ५५ ।

तथा— *नूपुर कंकन किंकिन करतल मंजुल मुरली ,*
ताल मृदंग उपंग चग एकहि सुर जुरली ।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छन्द ११ ।

६—*गुहि गुहि नवल मालती माला ,*
मोहि पहिरावहु नन्द के लाला । ५५

—विरह मञ्जरी ।

सुभग कुसुम की माल सखी जब गुहिगुहि लावे।

—रुक्मिणी मङ्गल, छन्द ६।

७—*किसलय सपन सुपेसल कीजे, सिर तर सुमन उसीसा दीजे। ५८*

—विरह मञ्जरी।

स्रमित होत आवत तरु तरे, किसलय सपन सुपेसल करे। १०९।[1]

—दशम स्कन्ध अध्याय, १५

'मानमञ्जरी' अथवा 'नाममाला' ग्रन्थ को तासे, खोज-रिपोर्ट तथा हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न नामों से, नन्ददास-कृत माना है। 'अनेकार्थ

मानमञ्जरी अथवा नाममाला

मञ्जरी' की तरह इस ग्रन्थ के अनेक नामों के आधार पर हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने उन अनेक नामों को नन्ददास के पृथक्-पृथक् ग्रन्थ मान लिया है। 'नाममाला', 'नामचिन्तामणिमाला',' नाममञ्जरी', 'मानमञ्जरी' आदि कई नामों से इस ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ मिलती हैं।

इस ग्रन्थ की भाषा शैली और व्यक्त भाव, नन्ददास के अन्य ग्रन्थों की भाषा और भावों से बहुत साम्य रखते हैं। जैसे—

मोतीनाम— *ससि गोती मोती गुलिक, जलज, सीपसुत नाम,*
मुक्ता बन्दन बार तहँ बिहँसत सुन्दर धाम।

—नाममाला।

मुक्ता बन्दन माल जो लसे, जनु आनन्द भरे घर लसें।

—'दशम स्कन्घ', अध्याय ५।

सेज नाम— *कसिपु तल्प सय्या सयन, संवेसन सयनीय*
दूध फेन सम सेज पर, बैठी तिय कमनीय।

—नाममाला।

दूध फेन सम सेज, रमा, मन ऐन सुहाई,
ता ऊपर बैठाइ पाइ धोए यदुराई।

—रुक्मिणी मङ्गल।

१—दशमस्कन्ध, नन्ददास, प्रकाशक गुरलानी।

चन्द्र नाम— *बिछुरि चद्रिका चन्द्र तजि रहि क्यों न्यारी होय*

—नाममाला।

किधौं चन्द्र सों रुसि चन्द्रिका रहि गई पाछे।

—रास पञ्चाध्यायी।

इसी प्रकार से शब्द और भाव-साम्य के अनेक उदाहरण इस ग्रन्थ में तथा नन्ददास के अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। इस ग्रन्थ के आदि-अन्त में 'नन्ददास' नाम की छाप भी आई है, इसलिए निर्विवाद रूप से यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत है। परन्तु इस ग्रन्थ के उपलब्ध दोहों में कितने दोहे प्रामाणिक रूप से कवि कृत हैं, यह विचारणीय है।

अनेकार्थ माला की तरह, इस ग्रन्थ के विषय में भी प्रश्न होता है कि नन्ददास ने इसमें कितने दोहे बनाये हैं। इस की भिन्न-भिन्न प्रतियों में दोहों की भिन्न-भिन्न संख्या मिलती है। बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा प्रकाशित 'नाममाला' में छन्द सख्या २७८ है और श्रीबलभद्र-प्रसाद मिश्र तथा श्रीविश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा द्वारा सम्पादित नाममाला में छन्द सख्या २९९ है। श्रीउमाशङ्कर शुक्ल द्वारा सम्पादित 'नन्ददास' के अन्तर्गत 'मानमञ्जरी'[1] में छन्द संख्या २६४ है। सूरदास ठाकुरदासवाली 'नाममञ्जरी' में छन्द संख्या ३०१ है, परन्तु नन्ददास की छापवाला दोहा २९९वाँ (युगल नाम) है। भाई बलदेवप्रसाद करसन-दासवाली प्रति में भी छन्द संख्या ३०१ है और नन्ददास के नाम की छाप २२९वें दोहे में, युगल नाम पर है। श्रीयाज्ञिक संग्रहालय की हस्तलिखित प्रतियों में भी किसी में छन्द संख्या २८२ है तो किसी में २६८ है।

हस्तलिखित प्रतियों में कुछ लिपिकारों ने यह कह दिया है कि 'प्रति' शोध कर लिखी गई है अथवा उसमे छन्द-संख्या बढ़ा दी गई है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] में सूचित 'नाममाला' के विवरण में जो उद्धरण दिये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह प्रति किसी गङ्गादास ने शोधी थी। बाबू व्रजरत्नदास के पास सवत् १८३५ वि० की पञ्चमञ्जरी

१—मानमञ्जरी, नाममाला, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ९९।

२—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट सन् १९०९, १०, ११, नं० २०८ (बी)।

आदि:— तामें लखि कछु कठिनता, पर विभ्रमता भास,
बर्ग सु चौपाई मिले कीन्हीं गंगादास।

अन्त.— कोस नाम माला रुचिर, नन्ददास कृत जोय।
सोधी गंगादास तेहि, भयो सरल अति सोय।

है। उसमें छन्द-सख्या ३२५ है, परन्तु 'अनेकार्थ मञ्जरी' की तरह 'मानमञ्जरी' में भी रामहरी द्वारा कुछ दोहे बढ़ाने की सूचना है। उसमे रामहरी लिखता है कि नन्ददास ने २६५ दोहे बनाए और बाकी ६० दोहे मैंने बनाकर मिला दिये हैं।[1] सम्भव है, नन्ददास ने २६५ छन्द ही इस ग्रन्थ में रचे हों। नन्ददास ने इस ग्रन्थ में शब्दों के पर्यायवाची शब्द देने के अतिरिक्त राधा के मान और उस मान के मनाने का वर्णन भी किया है। मान-मनावन के वर्णन में जो शब्द आये हैं उन्हीं के पर्यायवाची शब्द नन्ददास ने दिये हैं जिसका विवरण विस्तार से लेखक आगे देगा। इस कथानक में दो स्थल ऐसे आते हैं जहाँ नन्ददास के अतिरिक्त ब्रजभाषा का कोई कवि अपनी रचना के मेल से इस कथानक को विस्तार दे सकता है। ऐसे स्थल मानिनी राधा के शृंगार वर्णन तथा वृन्दावन वर्णन के हैं; वैसे अन्यत्र भी दो-चार छन्द सटाये जा सकते हैं। लेखक का अनुमान है कि पीछे से जोड़े हुये शब्द, इन्हीं दो प्रसङ्गों के हैं। जिन सम्पादकों ने 'मान मञ्जरी' के इस कथानक क्रम को बदलकर अकारादि क्रम अथवा वर्गादि बनाकर ग्रन्थ का सम्पादन किया है, उन्होंने इस ग्रन्थ के काव्य के महत्व को नष्ट कर दिया है।[2] शुक्लजी ने 'नन्ददास' में प्रमाण रूप में २६४ छन्द नन्ददास-कृत माने हैं। परन्तु उनके दिये हुये दोहों का भी क्रम मान-मनावन के गठे हुये कथानक को नहीं देता। सम्पादक की दृष्टि को अलग रखते हुये, काव्य-सौष्ठव और राधा के मान-मनावन के कथानक के सुगठित रूप को ध्यान मे रखकर हम कह सकते हैं कि बलदेवदास करसनदास द्वारा सम्पादित पञ्चमञ्जरी में मानमञ्जरी के दोहों का क्रम उचित है; उसमें, सम्भव है, कुछ दोहे प्रक्षिप्त हों। लेखक ने इस ग्रन्थ के काव्य विवेचन में बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ (सवत् १९७३ वि० में बम्बई से प्रकाशित) प्रति का ही आधार लिया है।

दशमस्कन्ध भागवत

गार्सां द तासी से लेकर अब तक के सभी हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ के नन्ददास कृत होने का उल्लेख किया है, परन्तु किसी ने यह नहीं लिखा कि यह ग्रन्थ उसने देखा भी है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[3] ने भी नन्ददास के दशम स्कन्ध भागवत का

१—दोसत पैंसठ ऊपरे ,दोहा श्रीनन्ददास,
रामहरी बाकी किए, कोप धनजय तास।
सतन की बानी बढ़ी, राम हरी मति मन्द।
अपने समुझन को लिखे बनते बिच दिये सन्द।

२—श्रीवजभद्रप्रसाद मिश्र तथा श्रीविश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा ने जिस 'नाममाला' का सम्पादन किया है उसमें उन्होंने दोहों के क्रम को अकारादि क्रम से रखकर यह त्रुटि की है। 'नन्ददास' में श्रीउमाशङ्कर शुक्ल ने यह त्रुटि सुधार दी है और दोहों के क्रम को नहीं बदला है।

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९०१, १९०६, १९०७, १९०८ ई०।

परिचय दिया है। खोज-रिपोर्ट में जो उद्धरण दिये गये हैं वे, इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग-रूप, २८वें अध्याय के अन्त के ही हैं।[१] लेखक ने इस ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ काँकरोली, नाथद्वार, मथुरा में देखी हैं। श्रीपं० मयाशङ्कर याज्ञिक, संग्रहालय में इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ हैं। ये दशम स्कन्ध २६वें अध्याय तक की हैं। इस ग्रन्थ के १ से २८ अध्याय अमृतसर के वकील बा० कर्मचन्द गुग्लानीजी ने सन् १६३२ ई० में प्रकाशित किये थे। उसकी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है कि पुस्तक का प्रकाशन संवत् १७६४ वि० की एक प्रति के आधार पर और संवत् १७८६ वि०, स० १७८७ वि० तथा सं० १८०६ की प्रतियों से मिलान करके किया गया है। उन्होंने उसी प्रस्तावना में सूचना दी है,—'१—२८ तक अध्याय इस पुष्प में दिये गये हैं, उन्तीसवाँ अध्याय दूसरे पुष्प में और ग्रन्थों के साथ प्रकाशित किया जायगा। तीस से लेकर शेष अध्याय खोज करने पर भी नहीं मिले।" लेखक ने भी इस ग्रन्थ की जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं, वे या तो १—२८ अध्याय तक की हैं या १—२६ अध्याय तक की; २६वें अध्याय से आगे की रचना कहीं भी देखने को नहीं मिली। डा० भवानीशङ्कर याज्ञिक और मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी आदि सज्जनों तथा काँकरौली आदि स्थानों से प्राप्त 'दशम स्कन्ध' की प्रतियों के आधार से 'नन्ददास' में दशम स्कन्ध का सम्पादन श्रीउमाशङ्कर शुक्लजी ने किया है।

यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत ही है, इस बात के प्रमाण, ग्रन्थ की भाषा, शैली और उसमें व्यक्त भावों के आधार से, प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं। यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई तथा चौपई शैली में लिखा गया है। उस शैली में नन्ददास ने विरह मञ्जरी, रसमञ्जरी' रूप मञ्जरी, सुदामा-चरित्र और गोवर्द्धन लीला ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों के साथ 'दशम स्कन्ध' का मिलान करने पर यह प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगता है कि इन सब ग्रन्थों का लेखक एक ही कवि है। इस ग्रन्थ में भी, ग्रन्थ-रचना में मित्र की प्रेरणा ही, कवि ने हेतु बताई है। उसके अतिरिक्त छन्द-शैली में लिखे हुये अन्य ग्रन्थों की शब्दावली और भाव इस ग्रन्थ में भी मिलते हैं। इस कथन की पुष्टि में कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

परम विचित्र मित्र इक रहे, कृष्ण चरित्र सुन्यो जो चहे।

—दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय।

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी,

—रास पञ्चाध्यायी।

ताके इक कमनीय सुकन्या
जेहि अस जनी जननि सोइ धन्या। ५८

—रूपमञ्जरी।

१—खोज-रिपोर्ट ने नन्ददास के सम्पूर्ण 'दशम स्कन्ध भागवत' की उपलब्धि का लेख नहीं दिया, उसमें १ से २८ अध्यायों के मिलने का ही उल्लेख है।

देवक जादव के इक कन्या, जिहि अस जनी जननि सो धन्या।
—दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय।

तहाँ हौं कवन निपट मतिमन्द, चौना पै पकरावहु चन्द
—दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय।

रूप मंजरी छवि कहन इन्दुमती मति कौन
ज्यों निर्मल निसिनाथ कौं हाथ पसारे बौन। १४८
—रूपमञ्जरी।

परन लगीं नान्हीं बुंदवारी, मोटे थंभनहू तैं भारी।
तब व्रजजन जहाँ तहाँ ते धाए, सुंदर नद कुँवर पै आए।

× × ×

झट दै उचकि लियो गिरि ऐसे, सांप बैठना कौ सिसु जैसे
गोपी गोप गाइ बछ जिते, अपने सुख रहे तिहि तर तिते।

× × ×

इन्द्रहु अपने बज्र चलाए पातनि लगि तेऊ नहिं आए।
सात दिवस अद्‌भुत उरु ठान्यो, ब्रज बासिनि तनकै नहीं जान्यो।
सुंदर बदन बिलोकनि आगे, भूप प्यास भय को नहीं लागे।
निकसे जब तब गिरिधर भाष्यो, गोवरधन फिर तहांई राख्यो।
प्रेम भरी गोपी घिरि आईं वारहिं अभरन लेंहिं बलाई।
—दशम स्कन्ध, पचीसवाँ अध्याय।

२५वें अध्याय की उक्त पंक्तियाँ ज्यों की त्यों नन्ददास-कृत 'गोवर्द्धन-लीला' नामक ग्रन्थ में आती हैं। इसके अतिरिक्त दशम स्कन्ध के २९वें अध्याय में रास का वर्णन, भाव और भाषा में उनके रास-पञ्चाध्यायी ग्रन्थ के वर्णन से बहुत मिलता है। उदाहरणार्थः—

तब लीनी कर कंजनि मुरली, षडादिक जु सात सुर जुरली।
सोई जोगमाया गुन भरी, लीलाहित हरि आश्रित करी।
—दशम स्कन्ध, २९वाँ अध्याय।

तब लीनी कर कमल, जोग माया सी मुरली
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरन सुर जुरली।
—रास पञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

पुनि रंचक हिय में धरि ध्यान, कीनौ परिमन रस पान।
कोटि सुरग सुख छिन में लिए, मंगल सकल छिनहि करि दिये।

—दशम स्कन्ध, २६वाँ अध्याय।

पुनि रंचक धरि ध्यान पिया परिरंभ दियो जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छिनहि मंगल कीनों तब।

—रास पञ्चाध्यायी।

नूपुर धुनि जब श्रवननि परी, सब अंग श्रवन भरे उहिघरी
दृष्टि परी जब तब सब अग, दृगनि में हरे भरे रस रग

—दशम स्कन्ध, २६वाँ अध्याय।

जिनके नूपुर नाद सुनत जब परम सुहाए,
तब हरि के मन नयन, सिमिट सब श्रवनन आए।
रुनुक झुनुक पुनि भली भाँति सों प्रकट भई जब,
पिय के अँग अँग सिमिटि मिले हैं रसिक नयन तब

—रास पञ्चाध्यायी।

नन्ददास ने अपने नाम की छाप प्रत्येक अध्याय के अन्त में दी है। उपर्युक्त ग्रन्थ की रचना के विषय में "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" तथा "अष्टसखान की वार्ता" में एक प्रसङ्ग आया है। इसका आशय इस प्रकार है—"एक समय नन्ददास के मन में ऐसी आई कि जैसे तुलसीदास ने 'रामायण' भाषा में रची है, हम भी 'भागवत' भाषा में करें। इसके अनन्तर उन्होंने संपूर्ण भागवत भाषा में लिखी। जब मथुरा के ब्राह्मणों ने नन्ददास की भाषा भागवत सुनी तो वे गुसाईं विट्ठलनाथजी के पास गये और निवेदन किया—महाराज, भागवत कथा से हमारी जीविका चलती है, अब इस भाषा भागवत के प्रचार से हमारी कथा कोई नहीं सुनेगा और हमारी जीविका जाती रहेगी। गुसाईंजी ने ब्राह्मणों के कहने से नन्ददास को आज्ञा दी कि वे ब्राह्मणों के क्लेश में न पड़ें। नन्ददासजी ने गुसाईंजी के कहने से रास लीला तक की भाषा भागवत रख ली और बाकी यमुनाजी में बहा दी।"

पीछे कहा गया है कि लेखक ने नन्ददास के 'दशम स्कन्ध भाषा' की कई प्रतियाँ देखी हैं। एक प्रति नाथद्वार में बस्ता नं० १३/७ में है। यह प्रति २६वें अध्याय तक की ही है। इसमें कोई संवत् नहीं दिया हुआ, परन्तु प्रति लगभग १५० वर्ष पुरानी अवश्य प्रतीत होती है। इसमें लिपिकार ने ग्रन्थ की पुष्पिका में दो दोहे दिये हैं जिनका आशय यह है कि नन्ददास ने, २६वें अध्याय के बाद पण्डितों के आग्रह से इस ग्रन्थ का लिखना छोड़ दिया—

कीनी भाषा नंद जब, तब सब द्विज मिलि आइ।
कहन लगे अब जिनि करो लागत तुम्हरे पाइ।
तबहि कह्यो अब नहि करौं जाहु आपने गेह।
देहु असीस इहै सबै रहै नंद नंदन सों नेह।
इति श्री दशम भाषा नन्ददासजी-कृत सम्पूर्ण।

उक्त प्रसङ्गों से ज्ञात होता है कि नन्ददास-कृत दशम स्कन्ध भाषा, रास-लीला तक की ही विद्यमान है, अन्य अध्याय हैं ही नहीं। रासलीला के अध्यायों में भी केवल २६वाँ अध्याय ही लेखक के देखने में आया है। वार्ता की कथा यदि कल्पित है तो, सम्भव है, इस लीला के आगे के अध्याय भी खोज करने पर मिल जायें। उपर्युक्त विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि नन्ददास ने इस ग्रन्थ की रचना महात्मा तुलसीदास के राम-चरित-मानस की रचना के बाद की थी। रामचरितमानस की रचना संवत् १६३१[1] वि० में आरम्भ हुई थी। इसकी रचना नन्ददास ने १६३१ वि० के अनन्तर ही की होगी। श्रीउमाशङ्कर शुक्लजी ने नन्ददास' में इसे नन्ददास का प्रामाणिक ग्रन्थ माना है।

श्याम-सगाई

शिवसिंह सेंगर और डा० ग्रियर्सन को छोड़कर हिन्दी-साहित्य के लगभग सभी इतिहास लेखकों ने नंददास-कृत 'श्याम-सगाई', रचना का उल्लेख किया है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] में भी इस ग्रन्थ का उल्लेख है। इस रचना की सबसे प्राचीन प्रति काँकरौली विद्याविभाग, पुस्तकालय में सुरक्षित है। वास्तव में यह ग्रन्थ नन्ददास का एक बड़ा पद है जो विलावल राग के अन्तर्गत[3] वल्लभ-सम्प्रदायी 'वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह' में भी छपा है।

पं० मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में श्याम-सगाई रचना की चार हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक के देखने में आई हैं। इन चारों प्रतियों में बहुत पाठान्तर है। इनमें से तीन

१—संवत् सोरह सै इकतीसा, करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
रामचरितमानस, श्यामसुन्दरदास, प्रथम संस्करण, पृ० ४२।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १६१७, १८, १९ ई०, नं० ११६ (सी)।
तथा ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन १९०६, ७, ८ ई०, नं० २०१।

३—वर्षोत्सव, ठाकुरदास सूरदास, पृ० ४००-४०४।
तथा वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह, देसाई, भाग २, पृ० ६०-६३।
रुक्मिणीमङ्गल और श्याम-सगाई का सम्पादन श्रीविश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा ने किया है। 'नन्ददास' ग्रन्थ में, श्रीउमाशङ्कर शुक्ल ने इसे प्रामाणिक ग्रन्थ मान कर इसका सम्पादन किया है।

प्रतियों के अन्त में नन्ददास की छाप है और एक प्रति में 'तारपाणि' का नाम इस प्रकार दिया हुआ है.—

"बजत बधाई नंद के तारपाणि बल जाय।"

'तारपाणी' आधुनिक काल का ही कोई कवि है, जिसका उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने नहीं किया। याज्ञिक जी के संग्रहालय में तारपाणि द्वारा लिखित 'भागीरथी-लीला' नामक ग्रन्थ की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ विद्यमान हैं। यह ग्रन्थ भी दोहा-रोला की मिश्रित छन्द शैली में लिखा गया है। मनोहर पुस्तकालय, मथुरा से 'श्याम-सगाई' नाम की एक छोटी सी पुस्तिका 'नारायण' कवि के नाम से भी छपी है। नन्ददास छापवाली प्रति और इस नारायण छापवाली प्रति के पाठों में कहीं-कहीं अन्तर है, अन्यथा दोनों रचनाएँ एक सी हैं। इन प्रतियों के देखने से सन्देह होता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत है अथवा किसी अन्य कवि-कृत। रोला-दोहा के सम्मिश्रणवाली छन्द शैली में बहुत से कवियों ने रचनाएँ की हैं, इस बात का उल्लेख 'भँवरगीत' के विवेचन में किया जा चुका है। लेखक का विचार है कि यह रचना नन्ददास-कृत ही है और 'तारपाणि' अथवा 'नारायण' छाप बाद को जोड़ी हुई है। 'श्याम-सगाई' की हस्तलिखित प्रतियों की अधिक संख्या में नन्ददास की ही छाप है। इसके आरम्भ में न तो कवि ने वन्दना दी है और न अन्त में ग्रन्थ के माहात्म्य का वर्णन किया है जैसा कि उसने अपने अन्य स्वतन्त्र ग्रन्थों में किया है। इसी से ज्ञात होता है कि यह नन्ददास का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। रचना कवि की ही है, परन्तु यह उसका एक लम्बा पद मात्र है। सम्पूर्ण रचना में २८ छन्द हैं।

सुदामा-चरित

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों में केवल तासे महोदय ने नन्ददास-कृत सुदामा-चरित का उल्लेख किया है। मथुरा के विद्वान पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी के पास उस ग्रन्थ की एक प्रति है जो वे भरतपुर स्टेट लाइब्रेरी में सुरक्षित नन्ददास-कृत 'सुदामा चरित' की नकल बताते हैं। इस ग्रन्थ की कुछ प्रतियाँ श्रीव्रजरत्नदासजी के पास भी हैं, जिनके आधार पर उन्होंने एक शोधित प्रति बनाई है। लेखक ने उस प्रति का अवलोकन किया है। काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्टों[1] में लगभग आठ 'सुदामा चरित' लेखकों के नाम दिये हुए हैं, परन्तु नन्ददास कृत सुदामा चरित का उसमें कोई उल्लेख नहीं है।

---

१. क—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९००, नं० २६ कविगङ्ग कृत 'सुदामा-चरित'। यह गङ्ग कवि अकबरी दरबार के कवि गङ्ग नहीं है। रिपोर्ट में लिखा है कि यह दादूपन्थी कोई गङ्ग कवि हैं। ग्रन्थ कवित्तों में लिखा गया है। भाषा ब्रज है।

नन्ददास के १ से २६ अध्याय तक उपलब्ध 'दशम स्कन्ध' की भाषा, छन्द; शैली आदि से सुदामा-चरित' की भाषा, शैली बहुत मिलती है। लेखक का अनुमान है कि यह रचना नन्ददास-कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा का, जो अब अप्राप्य है, अंश है, इसके अन्तिम छन्दों[1] में कवि ने दशम स्कन्ध भागवत का उल्लेख भी किया है। नन्ददास-कृत 'सुदामा चरित', श्याम सगाई की तरह, कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता। इस रचना के आरम्भ में कवि ने कोई वन्दना नहीं दी। पुस्तक के अन्त में दो स्थानों पर नन्ददास का नाम आया है। प्रथम नाम का उल्लेख नन्ददास की स्वयं दी हुई छाप है और दूसरा उल्लेख लिपिकार द्वारा किया जान पड़ता है। जैसे—

चरित स्याम को इहि है ऐसो, बरन्यो नंद यथा मति जैसो।
दशम स्कध विमल सुखबानी, सुनत परीछित अति रति मानी।
परम चरित्र सुदामा नित सुनि, हृदय कमल में राखो गुनि गनि।
नंददास की कृति सम्पूरन, भक्ति मुक्ति पावे सोई पूरन।

इसकी भाषा-शैली के आधार से लेखक इस रचना को नन्ददास-कृत ही मानता है। नन्ददास के ग्रन्थों की शब्दावली तथा भावसाम्य इस ग्रन्थ में अवलोकनीय हैं; यथा—

"लगे जु नग जगमग रहे ऐना, मानहु सरस भवन के नैना"[2]

—सुदामा चरित।

आ—खोज-रिपोर्ट सन् १९०२, नं० ४२, कवि प्राणनाथ-कृत, सं० १८१३ वि०, छन्द कवित्त, भाषा ब्रजभाषा है। उपर्युक्त रचना से भिन्न है।

इ—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०९, १०, ११ ई०, नं० ३५ (ब), कवि ब्रज-वल्लभ-दास-कृत, छन्द दोहा, रोला का मिश्रित रूप। टेक नहीं है, ब्रज भाषा में है।

ई०—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९१२, १३, १४ ई०, नं० १४८, रापन कविकृत, सुदामा-चरित, सं० १९४७ वि० ब्रजभाषा, उपर्युक्त रचनाओं से भिन्न है।

उ—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८ ई०, नं० १२३ (अ) सुदामा-चरित, बालकदास फकीर-कृत, १२६ छन्द।

ऊ—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८ ई०, नं० २०१ (ब) तथा १९२०, २१, २२ ई०, नं० ११७, सुदामा चरित, नरोत्तमदास-कृत।

स—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८, नं० २५३ (अ) सुदामा चरित, गोपाल-कृत, २३० छन्द।

१—चरित स्याम को इहि है ऐसो, बरन्यो नंद जथामति जैसो।
दशम स्कन्ध विमल सुख बानी, सुनत परीछित अति रतिमानी।
—'नन्ददास', शुक्ल, परिशिष्ट, पृ० ४२४।

२—सुदामा-चरित 'नन्ददास' शुक्ल, परिशिष्ट भाग, पृ० ४२२।

निष्क पदिक अरु बज्र पुनि हीरा बने जु ऐन
सकुचति तिन तन देखि जनु भूप भवन के नैन[1]
—मान मञ्जरी।

गोवर्द्धन-लीला

नन्ददास के 'गोवर्द्धन लीला' नामक ग्रन्थ का उल्लेख तासे महोदय को छोड़कर हिन्दी साहित्य के अन्य किसी भी इतिहास लेखक ने नहीं किया। लेखक को इस ग्रन्थ की प्रति श्रीब्रजरत्नदासजी, बनारस, से प्राप्त हुई थी। लेखक ने इसकी एक हस्तलिखित प्रति संवत् १८१० वि० की नाथद्वार क श्रीनाथजी पुस्तकालय में भी देखी है। नाथद्वारवाली प्रति के आरम्भ में ग्रन्थ का नाम 'गोवर्द्धन पूजा' और अन्त मे 'गोवर्द्धन लीला' दिया हुआ है। यह प्रति कुछ पाठ-भेद से श्रीब्रजरत्नदासवाली प्रति से मिलती है। मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदीजी के पास भी इसकी एक प्रतिलिपि है जिसको वे मथुरा के वैद्य श्रीराधामोहनजी के पास सुरक्षित हस्तलिखित प्रति की नक़ल बताते हैं। उसको भी लेखक ने देखा है। नन्ददास-कृत दशम स्कन्ध भाषा, अध्याय २४ तथा २५, में भी गोवर्द्धन धारण और उसकी पूजा की कथा है। इस ग्रन्थ की, तथा दशम स्कन्ध अध्याय २४ तथा २५ की, कुछ पंक्तियाँ थोड़े से पाठान्तर से एक सी हैं। 'रास पञ्चाध्यायी' की पंक्तियों की पुनरुक्ति जैसे कवि के 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी' ग्रन्थ में भी देखने को मिलती है उसी प्रकार से गोवर्द्धन लीला' में भी दशम स्कन्ध के छन्दों का समावेश है। ग्रन्थ के आरम्भ में गुरु चरणों की[2] वन्दना-रूप में मङ्गलाचरण है। रचना के अन्तिम छन्द में कवि के नाम की छाप भी है। ग्रन्थ की भाषा और उसमें व्यक्त भावों की जाँच करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह रचना अष्टछापवाले नन्ददास की ही है।

सिद्धान्त पञ्चाध्यायी

नन्ददास की रास-पञ्चाध्यायी के साथ इस ग्रन्थ की भाषा-शैली और व्यक्त भावों के मिलाने से यही सिद्ध होता है कि यह रचना अष्टछापवाले नन्ददासजी की ही है। इस ग्रन्थ में कवि ने अपने जो साम्प्रदायिक विचार दिये हैं वे भी वल्लभ सिद्धान्तों से मिलते हैं। रास पञ्चाध्यायी तथा इस ग्रन्थ की शब्दावली तथा भाव के साम्य नीचे लिखे उद्धरणों से प्रकट होते हैं—

सिसु, कुमार पौगंड, धरम पुनि वलित ललित लस
धरमी नित्य किसोर, नवल चितचोर एक रस।[3]
—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

१—मान मञ्जरी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृष्ठ ६६।

२—श्रीगुरुचरण मनाऊँ, गिरि गोवरधन लीला गाऊँ।
कलमल हरनी मंगल करनी मन हरनी श्रीशुकमुनि बरनी।—गोवर्धन लीला।

३—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृष्ठ १८३।

बाल कुमार पौगंड, धर्म आक्रान्त ललित तन।
धर्मी नित्य किसोर, कान्ह मोहत सब को मन।[1]

—रास पञ्चाध्यायी।

तिहि छिन सोइ उड़राज उदित, रस राज सहायक।
कुम कुम मडित प्रिया वदन, जनु नागर नायक।[2]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

ताही छिन उड़राज उदित, रस रास सहायक
कुंकुम मंडित प्रिया बदन, जनु नागर नायक।[3]

—रास पञ्चाध्यायी।

जे अरबर में अति अधीर, रुकि गईं भवन जब।
गुनमय तन तजि चित्तरूप धरि पियहि मिलीं तब।[4]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

जे रुकि गईं घर अति अधीर गुनमय सरीर बस।
पुण्य पाप प्रारब्ध रच्योतन नाहिं पच्यो रस।[5]

—रास पञ्चाध्यायी।

मनिमय नूपुर किंकिन कंकन के झनकारा।[6]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

नूपुर कंकन किंकिनी, करतल मंजुल मुरली।[7]

—रास पञ्चाध्यायी।

राग रागिनी सम जिनकी बोलिवी सुहायी।
सु कौन पै कहि आवै, जो ब्रज देविन गायी।[8]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी तथा रास पञ्चाध्यायी।

१—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृष्ठ १९६।

२—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८५।

३—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १९६।

४—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८६।

५—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १६० (पाठ-भेद से)।

६—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८७

७—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १७६।

८—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १९४ तथा रास पञ्चाध्यायी, 'नन्द-दास', शुक्ल, पृ० १७८।

अद्‌भुत रस रह्यौ रास, कहत कछु कहि नहि आवै
सेस सहस मुख गावै अजहूँ अंत न पावै।[1]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

यह अद्‌भुत रस रास कहत कछु कहि नहिं आवै
सेस सहस मुख गावै, अजहूँ अंत न पावै।[2]

—रास पञ्चाध्यायी।

रुक्मिणी मङ्गल

नन्ददास के रुक्मिणी-मङ्गल ग्रन्थ का उल्लेख तासे, शिवसिंह सेंगर, श्री मिश्रबन्धु, नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट तथा मिश्रबन्धु-विनोद के बाद में लिखनेवाले सभी हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने किया है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[3] में नन्ददास-कृत 'रुक्मिणी-हरण की कथा' नाम से इस ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है। खोज-रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों का, प्राप्त प्रतियों के पाठ से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि 'रुक्मिणी-मङ्गल' और खोज-रिपोर्ट में दिया हुआ 'रुक्मिणी-हरण की कथा' नामक ग्रन्थ दोनों एक हैं। नन्ददास कृत रुक्मिणी-हरण कथा के अतिरिक्त इस कथा पर लिखनेवाले अन्य कई लेखकों का उल्लेख खोज-रिपोर्ट में दिया गया है जैसे हीरालाल[4], मिहिरचन्द[5],नरहरि भाट[6], रामलाल[7],

---

१—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १६९।

२—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८१।

नोट—नन्ददास के ग्रन्थों की सूची देनेवाले किसी भी लेखक ने संवत् १९९३ वि० तक सिद्धान्त पञ्चाध्यायी का उल्लेख नहीं किया था। पहले पहल उदयनारायण तिवारी द्वारा सम्पादित रास पञ्चाध्यायी की भूमिका में इस ग्रन्थ का उल्लेख हुआ। लेखक ने इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि संवत् १९९४ वि० में बनारस में श्रीव्रजरत्न-दासजी के पास देखी थी और उसने उससे कुछ नोट भी लिये थे। उसी प्रति के आधार पर लेखक ने इस ग्रन्थ का विवेचन करते हुये एक लेख प्रयाग में भारतीय हिन्दी-परिषद के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर पढ़ा था। अक्टूबर सन् ४२ में इस ग्रन्थ का सम्पादन श्रीउमाशङ्कर शुक्ल ने 'नन्ददास' ग्रन्थ में किया है।

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९१२, १३, १४ ई०, नं० १२०।

४—खोज-रिपोर्ट सन् १९०९ ई०, नं० ६४।

५—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९१२, १३, १४ ई०, नं० ११४।

६— ,, ,, ,, ,, ,, ,, १९०३ ई०, नं० ११।

७— ,, ,, ,, ,, ,, ,, १९१२, १३, १४ ई०, नं० १४७।

नवलसिंह[1], रामकृष्ण चौबे[2] तथा ठाकुरदास[3], परन्तु रिपोर्ट में इन कवियों की रचना के दिये हुये उद्धरणों से पता चलता है कि ये सब ग्रन्थ नन्ददास के 'रुक्मिणी मङ्गल' ग्रन्थ से भिन्न हैं। इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में तथा एक काशी के विद्वान् बा० ब्रजरत्नदास के पास, लेखक के देखने में आई हैं। दोनों प्रतियों में कई स्थानों पर पाठान्तर है, परंतु दोनों की छन्द-संख्या में कोई अन्तर नहीं है। श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने नन्ददास के प्रामाणिक ग्रन्थों मे इसका गणना कर इसका 'नन्ददास-ग्रन्थावली' में सम्पादन किया है।

इतिहासकारों के उल्लेख के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में भी नन्ददास के अन्य ग्रन्थों की शब्दावलि और भाव-साम्य मिलते हैं, निम्नलिखित साम्य इस बात का प्रमाण देते हैं कि यह ग्रन्थ नन्ददास कृत ही है।

चकित चहूँ दिशि चहति, बिछुरि मनु मृगी माल तें,
भयो बदन कछु मलिन नलिन जनु गलित नाल तें।

—रुक्मिणी-मङ्गल।

लाल रसाल के बंक बचन सुनि चकित भई यों,
बाल मृगन की पाँति सघन बन भूलि परी ज्यों।

—रासपञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

पढ़न लग्यो द्विज गुनी रुक्मिणी बचन सुहाए।
तब हरि के मन नैन सिमिट सब स्रवनन आए। ५६

—रुक्मिणी-मङ्गल।

रुनुक झुनुक पुनि भली भाँति सों प्रकट भई जब,
पिय के अंग अंग सिमिट मिले हैं रसिक नैन तब।

—रासपञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

जो नगधर नंदलाल मोहि नहीं करि हौं दासी,
तो पावक परजरि हों, बरिहों तन तिनका सी। ६८

—रुक्मिणी-मङ्गल।

जो न देउ यह अधरामृत तो सुनि सुन्दर हरि,
करि हैं यह तन भस्म बिरह पावक में गिरि परि।

—रासपञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

१— ,, ,, ,, ,, ,, ,, १९०६, ७, ८, ई०, नं० ७६ (बी)।
२— ,, ,, ,, ,, ,, ,, १९०६, ७, ८, ई०, ई०, नं० १००।
३— ,, ,, ,, ,, ,, ,, १९०६, ७ ८, ई०, नं० ३३७ (ए)।

उज्वल मनिमय अटा घटा सों बातें करही ।

—रुक्मिणी-मङ्गल ।

ऊँची अटा घटा बतराही, तिन पर केकी केलि कराहीं । ३८

—रूप-मञ्जरी ।

कुंज कुंज प्रति पुंज भँवर गुंजत अनुहारे ।
मनु रवि डर तम भजे तजे रोवत हैं बारे । ३४

—रुक्मिणी-मङ्गल ।

कंज कुज प्रति पुंज अलि, गुंजत इम परभात
जनुरवि डर तम त्यजि, भज्यो रोवत ताके तात । ५१

—रूप-मञ्जरी ।

भँवरगीत

नन्ददास के 'भँवरगीत' का प्रथम उल्लेख तासे महाशय द्वारा दी हुई नन्ददास के ग्रंन्थों की सूची में हुआ है । इसके बाद इसका उल्लेख शिवसिंह सेंगर और मिश्रबन्धुओं को छोड़ हिन्दी साहित्य के सभी इतिहासकार तथा नन्ददास के ग्रन्थों पर लिखनेवाले विद्वानों ने किया है । प्रथम बार इस ग्रन्थ का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित सूरसागर के अन्तिम भाग के साथ हुआ । इसके बाद अब तक यह ग्रन्थ कई स्थानों से छप चुका है । नागरी-प्रचारिणी-सभा की सन् १९३९ ई० तक की खोज-रिपोर्टों में निम्नलिखित कवियों के भँवर-गीतों का उल्लेख है ।—नन्ददास,[1] जनमुकुन्द,[2] रसिकराय,[3] तथा वृन्दावनदास ।[4] नन्ददास के नाम से भँवरगीत का जो उल्लेख खोज-रिपोर्ट में किया गया-है उसमें नन्ददास के साथ जनमुकुन्द का भी नाम 'नन्ददास या जनमुकुन्द' लेखक रूप में दिया हुआ है । खोज-रिपोर्ट के सन्दिग्ध उल्लेखों के आधार पर, तथा शिवसिंह सेंगर द्वारा इस ग्रन्थ का उल्लेख न किये जाने पर, कुछ विद्वानों को इस ग्रन्थ के नन्ददास-कृत होने में सन्देह भी हुआ था । परन्तु अब इस ग्रन्थ को लगभग सभी विद्वान नन्ददास-कृत मानते हैं । उपर्युक्त लेखकों के भँवरगीतों के अतिरिक्त ब्रजभाषा में सूरदास, भावन कवि, महाराज रघुराजसिंह

१—खोज-रिपोर्ट १९२०, २१, २२ ई०, नं० ११३ (ऐफ़) ।
२—खोज-रिपोर्ट १९०२, ई०, नं० १०४ (ग) ।
खोज-रिपोर्ट १९०९, १०, ११ ई०, नं० १८४ (ग) ।
खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८ ई०, नं० २७२ ।
३—खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८ ई०, नं० ३१९ ।
४—खोज-रिपोर्ट १९१२, १३, १४ ई० ।

तथा सत्यनारायण कविरत्न के भँवरगीत भी प्रसिद्ध हैं। स्वर्गीय रत्नाकर जी के 'उद्धव-शतक' का विषय भी गोपीउद्धव सम्वाद है, इसलिए यह भी भँवरगीत की कोटि में रखा जा सकता है। मथुरा के स्वर्गीय कवि नवनीत चतुर्वेदी की भी भँवरगीत विषयक 'गोपी-प्रेम-पीयूष-प्रवाह' नामक एक उत्कृष्ट रचना है जो अभी अप्रकाशित है।

पीछे कहा गया है कि नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में यह ग्रन्थ जनमुकुन्द-कृत कहा गया है। लेखक ने भँवरगीत की आठ हस्तलिखित प्रतियाँ याज्ञिक-संग्रहालय में देखी हैं। उनमें, तीन प्रतियों के अन्तिम भाग में जनमुकुन्द की छाप है, शेष में नन्ददास की। यथा :—

जनमुकुन्द पावन भयो, जो यह लीला गाइ,
पाय रस प्रेम कों।

नन्ददास पावन भयो, जो यह लीला गाइ।
प्रेम रस पुञ्जिनी।

इन दोनों पाठों में केवल अन्तिम टेक में अन्तर है, शेष पाठ एक सा है। याज्ञिक संग्रहालय में जनमुकुन्द छापवाली एक प्रति संवत् १८५७ वि० की है, दूसरी संवत् १८६० की है, परन्तु नन्ददास छापवाली प्रति अधिक पुरानी है। इस प्रकार जनमुकुन्द छापवाली एक प्रति की अन्तिम पुष्पिका में लिखा है—"इति भ्रमर गीत कवि मुकुन्द विरचत"। इस विषय में दो मत हो सकते हैं। या तो 'जनमुकुन्द' नन्ददास जी का ही दूसरा नाम है अथवा लेखकों ने 'नन्ददास' नाम के स्थान पर जनमुकुन्द' जोड़ दिया है। वैष्णव वार्ता तथा नन्ददास के जीवन सम्बन्धी प्राचीन लेखों में कहीं भी 'नन्दनन्दनदास' को छोड़कर नन्ददास का कोई उपनाम अथवा अन्य नाम नहीं दिया गया। इसलिए नन्ददास का दूसरा नाम जनमुकुन्द मानने का कोई आधार नहीं है। ब्रज के वैष्णव मन्दिरों में और रास-मण्डलियों में गोपी विरह-लीला का अभिनय दिखाया जाता है, उसमें प्रस्तुत भँवरगीत ही गाया जाता है और यह गीत वहाँ नन्ददास कृत ही प्रसिद्ध है। भँवरगीत की हस्तलिखित प्रतियों में नन्ददास की छाप बहुत पुरानी और अधिक संख्या में मिलती है। इसलिये जनमुकुन्द-छाप पीछे से डाली हुई प्रतीत होती है।

श्रीवल्लभाचार्य जी के एक सेवक[1] मुकुन्ददास भी थे जो एक कवि थे। उन्होंने भी कुछ कवित्त और पद बनाये थे जिनका समावेश 'मुकुन्द सागर' नामक अप्राप्य ग्रन्थ में

१—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृष्ठ ८८। सो मुकुन्ददास आप कवि हुते सो कवित्त करते। सो कवित्त बहुत कीये हैं। श्रीआचार्य जी महाप्रभून के तथा श्रीगुसाईं जी के तथा श्रीठाकुर जी के बहुत कवित्त कीये हैं और मुकुन्द सागर एक ग्रन्थ कीयो।

बताया जाता है। इनकी उपलब्ध रचनाओं में इनकी तीन छाप मिलती हैं, जनमुकुन्द, प्रभु मुकुन्द तथा मुकुन्द माधव। इनका देहान्त श्रीआचार्य जी के जीवन काल में ही हो गया था। सम्भव है, बाद के किसी वल्लभसम्प्रदायी भक्त ने भँवरगीत की कुछ प्रतिलिपियों में नन्ददास के स्थान पर जनमुकुन्द का नाम रख दिया हो। मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी का इस विषय में कहना है कि प्रत्येक अष्टकवि के साथ सुर देनेवाले (सुरैया) आठ सहायक गवैये कीर्तन में बैठते थे, कदाचित् उनके अनुमान से, जनमुकुन्द, नन्ददास के साथ बैठनेवाले किसी गवैये का नाम हो। इस कथन की सत्यता की पुष्टि करनेवाली कोई किंवदन्ती लेखक ने वल्लभसम्प्रदायी मन्दिरों में नहीं सुनी।

नन्ददास की भाषा-शैली और उनके अन्य ग्रन्थों में आये हुए भाव-साम्य के आधार पर हम इसी *निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह ग्रन्थ नन्ददासजी का ही रचा हुआ* है। नन्ददास की रासपञ्चाध्यायी और भँवरगीत में कई स्थानों पर इसके शब्द तथा भावों का साम्य है। इससे भी, इसके नन्ददास-कृत होने की पुष्टि होती है। यह साम्य नीचे लिखे उद्धरणों से ज्ञात होगा।

विषतें जलतें व्याल अनलतें दामिनि झरतें।
क्यों राखी नहि मरन दई नागर नगधर तें।

—रासपञ्चाध्यायी, तीसरा अध्याय।

कोऊ कहै अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे,
गिरि गोवर्द्धन धारि करी रक्षा तुम कैसे।
व्याल अनल अरु ज्याल तें राखि लये सब ठौर,
अब विरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्दकिसोर,
चोर चित लै गए।

—भँवरगीत।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में 'व्याल-अनल' शब्द आया है और भाव का तो साम्य है ही।

जसुदा सुत जनु तुम न भये पिय अति इतराने।

—रासपञ्चाध्यायी।

रूप उदधि इतराति रंगीली मीन प्रीति जस।

—रासपञ्चाध्यायी।

कोऊ कहै अहो स्याम कहा इतराय गये हो।

—भँवरगीत।

इन उद्धरणों में भी 'इतराना' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द नन्ददास

को बहुत प्रिय है। उनके कई ग्रन्थों में इसका प्रयोग भावपूर्णता के साथ हुआ है। इसी तरह 'प्रेम-पुञ्ज' शब्द रासपञ्चाध्यायी और भँवरगीत दोनों में कई स्थानों पर आया है। भँवरगीत की जितनी प्रतियाँ लेखक के देखने में आई हैं। उन सभी में कुल ७५ छन्द हैं। इससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ में क्षेपक नहीं मिले।

नन्ददास के भँवरगीत के आरम्भ में कोई वन्दना नहीं है जैसा कि उनके अन्य कई काव्य ग्रन्थों में है और न कृष्ण द्वारा उद्धव के भेजने की कथा का ही वर्णन है। ग्रन्थ के आरम्भिक भाग को देखने से प्रतीत होता है कि यह रचना किसी बृहत् रचना का एक अङ्ग मात्र है। परन्तु अब तक खोज में,'इस छन्द-शैली में लिखित नन्ददास के भँवरगीत का कोई पूर्व वृत्तान्त नहीं मिला। सूरदास ने मुक्तक पदों के अतिरिक्त इस छन्द-शैली में भी भँवरगीत का प्रसङ्ग गाया है। सूरदास के भँवरगीत उनकी बृहत् रचना सूरसागर के, जिसमें व्रज-कृष्ण-लीला के अनेक प्रसङ्गों का वर्णन है, प्रसङ्ग मात्र हैं। इसलिए सूर द्वारा वर्णित प्रत्येक कृष्ण-लीला में अलग-अलग वन्दना या मङ्गलाचरण नहीं है। नन्ददास ने कृष्ण-लीला के इन प्रसङ्गों को स्वतंत्र रूप देकर लिखा है। परन्तु नन्ददास के भँवरगीत का आरम्भ सूरदास के छन्द-शैली के भँवरगीत की तरह ही हुआ है। सूरदास ने इस प्रसङ्ग के अन्त में वर्णित लीला के माहात्म्य का उल्लेख नहीं किया। नन्ददास ने रास पञ्चाध्यायी की तरह भँवरगीत के अन्त में भी इस लीला के पवित्र प्रभाव का उल्लेख किया है। यथाः—

"नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय, प्रेम रस पुंजनी।"

दानलीला

नन्ददास-कृत दानलीला ग्रन्थ का उल्लेख शिवसिंह सेंगर, श्री मिश्रबन्धु, डा० ग्रियर्सन तथा स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थों में, पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' में, और श्रीवियोगीहरिजी ने 'व्रजमाधुरी सार' में किया है। इतिहासकार तथा कविता संग्रह-कर्ताओं ने नन्ददास-कृत यह ग्रन्थ देखा है अथवा नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। लेखक ने स्वामी नन्ददास के नाम से लीथो टाइप की छपी हुई, दानलीला प० मयाशंकर याज्ञिक के पुस्तकालय में देखी है। यह पुस्तक सन् १८८३ ई० में मुंशी कन्हैयालाल सम्पादक के प्रबन्ध से मथुरा में प्रकाशित हुई थी। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में नन्ददास-कृत दानलीला का कोई उल्लेख नहीं है। खोज-रिपोर्ट में कई अन्य दानलीलाओं का हवाला दिया हुआ है जैसे परमानन्द-कृत,[1] कृष्णदास-कृत,[2] ध्रुवदास-कृत,[3] प्रियादास कृत,[4]

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०, नं० १४२।

२—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०, नं० १४८।

३—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०९-१०, ११ ई०, नं० ७२ (जे)।

४—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९१२, १३, १४ ई०, नं० १९७।

राज्यप्रसाद-कृत,[1] मनचित-कृत[2] और चरणदास-कृत[3] दानलीलाएँ। इन उपर्युक्त कवियों की दानलीलाओं के जो उद्धरण खोज-रिपोर्ट में दिये गये हैं वे मथुरा में नन्ददास के नाम से छपी दानलीला से भिन्न हैं। स्वामी नन्ददास जी के नाम से छपी दानलीला, एक छोटी आठ पत्रे की पुस्तिका है, जिसमें केवल १४ छन्द हैं। इसमें राधाकृष्ण का प्रश्नोत्तर रूप में वार्तालाप है। कृष्ण की उक्ति वाले छन्द की टेक 'वृषभानु लड़ेती दान दे' है और राधा की उक्ति वाले छन्द की टेक 'नँदलाल लला घर जान दे' है। यह दानलीला इस प्रकार आरम्भ होती है:—

आदिः—*अहो प्यारी, वृन्दाविपिन सुहावनो, अरु वंशीवट की छाँह हो*
(श्री) राधा दधि ले नीकसी, श्रीकृष्ण जो रोकी राह हो
वृषभान लड़ेती दान दे ।१
अहो लाला, सबे सयाने साथ के, और तुमहु सयाने लाल हो
प्यारे, लिष्यौ दिषाओ सांवरे, कब दान लियो पशुपाल हो
नँदलाल लला घर जान दे ।२

अन्त:—*प्यारे, मिस ही मिस झगरो भयो, (श्री) वृन्दावन के मांझ हो*
प्यारे, रसिक मन आनन्द भयो, (स्वामी) नन्ददास बल जाइ हो।
इति श्री नन्ददास कृत दानलीला समाप्तम्।

इस दानलीला का यही पाठ सूरदास ठाकुरदास और लल्लूभाई छगनलाल के वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रहों[4] में छपा है जिसमें 'स्वामी नन्ददास बल जाय हो' के स्थान पर 'दास बली बलि जाइ हो' दिया हुआ है। मथुरा के विद्वान् पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी जी के पास वर्षोत्सव कीर्तन की सं० १८७६ वि० की एक हस्तलिखित प्रति है, उसमें भी यह दानलीला 'दास बलि' के नाम से दी हुई है। श्री वसन्तराम हरिकृष्ण शास्त्री द्वारा सम्पादित कीर्तन कुसुमाकर, के जो संवत् १९९० वि० में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ १२७ पर यही दानलीला कुछ पाठ भेद से दी हुई है और उसमें भी 'दासबली' की छाप है। मिश्र-बंधुओं ने मिश्रबन्धु-विनोद' में 'बलिदास'[5] नाम के एक कवि का उल्लेख किया है जिसका समय उन्होंने संवत् १५६७ वि० दिया हुआ है और उसकी रचना 'दानलीला' लिखी है। 'दास बलि' नाम के किसी भी कवि का उल्लेख इतिहासकारों ने नहीं किया है। ज्ञात होता

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९२०, २१, २२ ई०, नं० १४१।
२—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०६, ७, ८ ई०, नं० ७१ (ए)।
३—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०६, ७, ८ ई०, नं० १४७ (जी)।
४—वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह, भाग १, सूरदास ठाकुरदास, पृष्ठ २१०।
वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह, भाग १, देसाई, पृष्ठ २४९।
५—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १८९।

है 'बलिदास' और 'दासबलि' कवि एक ही हैं और उसी की दानलीला का कुछ अंश 'नन्ददास' के नाम से प्रचलित हो गया है।

दानलीला का कुछ थोड़े अन्तर से यही पाठ, वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'राग रत्नाकर' के पृष्ठ ६६ (संवत् १६८३ वि० का संस्करण) पर दिया हुआ है। राग-रत्नाकर में दी हुई दानलीला में रचयिता का नाम 'अलि भगवान्' दिया हुआ है। इसमें नन्ददास का कहीं भी नाम नहीं है। मिश्रबन्धु-विनोद में 'अलि भगवान्' कवि का उल्लेख इस प्रकार मिलता है:—"अलि भगवान् ने स्फुट पद लगभग सम्वत् १५४० वि० में कहे। यह महाशय हित हरिवंश जी के समकालीन थे। यह भी हित सम्प्रदाय के वैष्णवों में माने गये हैं।"[1] यह भी सम्भव हो सकता है कि यह दानलीला 'अलि भगवान्' के पदों में से एक पद हो। परन्तु, जैसा कि पीछे कहा गया है, 'बलिदास' की दानलीला का भी उल्लेख मिश्र-बन्धुओं ने किया है और वर्षोत्सव कीर्तनों मे दी हुई दानलीला में भी 'दास बली' की छाप है, इसलिये यह कृति 'बलिदास' कवि की रचना ही प्रतीत होती है। यह रचना किसी भी कवि की हो इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मथुरा में नन्ददास के नाम से छपी दानलीला नन्ददास-कृत नहीं है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह रचना नन्ददास-कृत प्रतीत नहीं होती। इसकी भाषा बहुत शिथिल है। 'नन्ददास' ग्रन्थ में श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने, काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के विद्यार्थी श्री महाबीर सिंह गहलौत से प्राप्त हुई नन्ददास-कृत कही जानेवाली दानलीला के कुछ उद्धरण दिये हैं। यह दानलीला वही है जिसके विवरण और उद्धरण लेखक ने दिये हैं। इसमें भी नन्ददास की, अन्त में, छाप है। परन्तु इसकी भाषा-शैली के आधार से उन्होंने भी इस ग्रन्थ को अष्टछाप के नन्ददास द्वारा रचित नहीं माना।

इस ग्रन्थ में एक छन्द आता है जिसमें गुजराती डाकोतिया ब्राह्मणों का उल्लेख है।[2] उनके विषय में कवि ने कहा है कि वे ग्रहण का दान लेते हैं। ब्रज में गुजराती ब्राह्मण तो बहुत हैं, परन्तु ग्रहण में दान लेनेवाले डाकौतिया ब्राह्मण कहीं नहीं सुने गये। ब्रज में तो महाब्राह्मण कहलानेवाले भड्डुरी ही ग्रहण का दान लेते हैं। नन्ददास के अन्य ग्रन्थों के देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने ब्रज के लोक-व्यवहार के विरुद्ध कोई बात नहीं कही। यह रचना किसी तुक्कड़ कवि की है। सम्भव है, नन्ददास ने दानलीला लिखी हो जिसकी अभी खोज नहीं हुई।

अष्टछाप कवियों के बहुत से लम्बे पद, जिनकी रचना छन्द-शैली में हुई है, स्वतन्त्र

१—मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ११२।

२—(प्यारे) गुजराती डाकोतिया और लेत ग्रहण में दान हो,
 (लाला) जो तुम उनमें साँवरे, ब्रजभान बबा मेरे देहँ हो।
  नन्दलाल लला घर जान दे।

ग्रन्थ के नाम से मान लिये गये हैं। कुम्भनदास ने तो दानलीला नन्ददास के भँवर गीतवाले (दोहा, रोला और टेक) छन्द में एक पद रूप में रची है जो ब्रजभाषा के सौष्ठव की दृष्टि से एक सुन्दर रचना है, परन्तु नन्ददास का दानलीला के ऊपर लिखा हुआ कोई लम्बा पद भी लेखक के देखने में नहीं आया। इस विषय पर छोटे-छोटे पद उन्होंने कुछ अवश्य लिखे हैं। सम्भव है 'दानलीला' के पदों का कोई संग्रह ही नन्ददास की 'दानलीला' नाम का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया गया हो जो मथुरा से प्रकाशित दानलीला से भिन्न है। ब्रज में सबसे प्रसिद्ध दानलीला रसिकराय की है। दस मात्रा की टेक सहित रोला-दोहा वाले छन्द में लिखी दानलीला सूरदास जी की भी वल्लभ सम्प्रदायियों में प्रसिद्ध है।

जोगलीला

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[1] में नन्ददास कृत जोगलीला नामक ग्रन्थ का उल्लेख है। उसी के आधार पर, डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत लिखा है। इनके अतिरिक्त तासे, मिश्रबन्धु, शिवसिंह सेंगर, ग्रियर्सन आदि किसी भी लेखक ने इस ग्रन्थ का नन्ददास-कृत होने का उल्लेख नहीं किया। लेखक को श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी मथुरा और श्री ब्रजरत्न दास जी काशी के पास नन्ददास की कही जानेवाली जोगलीला की नवीन हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ देखने को मिलीं। लेखक ने इन दोनों प्रतिलिपियों का मिलान भी किया है। मथुरावाली प्रति की आरम्भिक पङ्क्तियाँ इस प्रकार है —

एक समै मन मित्र मोहि यह आज्ञा दीनी
याहीं ते मति उकति जोग लीला में कीनी
सिव सनकादिक सारदा, नारद सेस महेस
देहु बुद्धि वर उदै कर अच्छर उकति बिसेस
यहै बिनती अहै।

और इस प्रति की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

नित्य बसौ नंददास के करि संकेत सधाम,
स्याम स्यामा दोऊ।

श्रीब्रजरत्नदास वाली प्रति में आरम्भिक छन्द की तृतीय पंक्ति में 'देहु बुद्धिवर उदै कर' के स्थान पर 'देहु बुद्धि वर उदै उर' पाठ है और अन्तिम छन्द में नन्ददास के नाम की छाप नहीं है। ग्रन्थ के अन्त में यह अवश्य लिखा है 'इति श्रीनन्ददास-कृत जोगलीला सम्पूर्ण।'

१—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट, सन् १९०६, १९०७, १९०८, इस रिपोर्ट में उद्धरण नहीं दिये गये हैं।

इसी ग्रन्थ की चार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने मयाशङ्कर याज्ञिक के संग्रहालय में देखी है। उन चारों में लेखक का नाम 'उदै' दिया हुआ है जैसा कि श्रीव्रजरत्नदास वाली प्रति से भी ज्ञात होता है। इन सभी प्रतियों के आरम्भिक छन्दों में यही पाठ है—'देहु बुद्धि वर उदै उर' जिसमें 'उदै' कवि का नाम प्रत्यक्ष दिखाई देता है और अन्तिम पंक्तियों में भी 'उदै' नाम की छाप आई है ; यथाः—

> कपट रूप धरि किती भाँति बहु भेप बनावे,
> गोपी ग्वाल गुपाल नित्य खेलेंरु सिलावै।[1]
> रूप सिरोमनि राधिका रसिक सिरोमनि स्याम,
> बसत उदै उर में सदा करि सकेत सधाम
> स्याम स्यामा सहित।

याज्ञिक संग्रहालय[2] में 'उदै' के पाँच ग्रन्थ विद्यमान है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[3] में याज्ञिक-संग्रहालय के 'उदै'-कृत १४ ग्रन्थों का उल्लेख है। उक्त खोज-रिपोर्ट में उदै-कृत 'जोगलीला' का भी उल्लेख है जिसके उद्धरण नन्ददास के नाम से श्रीव्रजरत्नदास तथा प० जवाहरलाल द्वारा कही हुई प्रति से मिलते हैं।

मिश्रबन्धु-विनोद में उदैनाथ बन्दीजन, बनारस-निवासी एक कवि का उल्लेख है, परन्तु उसके किसी ग्रन्थ का नाम विनोदकारों ने नहीं दिया[4]। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ५३८ पर उदय का भी, उपनाम कवीन्द्र कवि, जो महाकवि कालिदास के पुत्र और दूलह के पिता कहे गये हैं, विवरण है। उदय कवीन्द्र के ग्रन्थों की सूची में सन् १६०० ई०. की खोज-रिपोर्ट के आधार से एक ग्रन्थ 'जोगलीला' का भी उल्लेख है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'उदय', उपनाम कवीन्द्र, द्वारा रचित एक ग्रन्थ 'जोगलीला' लिखा है। ज्ञात होता है कि शुक्लजी ने मिश्रबन्धु-विनोद का ही अनुकरण किया है। लेखक ने,

---

१—पाठान्तर 'गोपी गोप गुपालन को नित खेल खिलावै।'

२—अ—चीरहरण-लीला (जिसको चीर चिन्तामणि भी कहा है।)

आ—रामकरुना नाटक ('रामकरुना करें', टेक) रोला-दोहा-टेक सहित मिश्रित छन्द में।

इ—हनूमान-नाटक ('रजायस राम की' टेक) रोला-दोहा-टेक सहित मिश्रित छन्द में।

ई—अहिरावणलीला ('कुँवर ये कौन के' टेक) मिश्रित छन्द में।

उ—जोगलीला।

३—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १६०० ई०, नं ६८ (एन, एन)।

४—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृष्ठ ५१०।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, उदय-कृत सन् १६०० ई० की खोज-रिपोर्टवाली जोगलीला के उद्धरण, नन्ददास के नाम से कही जानेवाली जोगलीला, नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट के १५वें त्रैवार्षिक विवरण में दी हुई जोगलीला के उद्धरण तथा याज्ञिक-संग्रहालय की उदै-कृत प्रतियों के पाठ मिलाये हैं। इन सबके पाठ, कुछ थोड़े पाठ-भेद के साथ ज्यों के त्यों मिलते हैं। यदि उपर्युक्त १४ ग्रन्थों के कर्ता 'उदय' को उदयनाथ कवीन्द्र से भिन्न मानें, लेखक के विचार से ये दोनों कवि भिन्न ही हैं, तो हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में उदयनाथ कवीन्द्र द्वारा रचित जोगलीला सन् १६०० ई० की खोज-रिपोर्टवाली जोगलीला नहीं होनी चाहिए, वह कोई अन्य जोगलीला होगी। लेखक का विचार है कि खोज-रिपोर्ट सन् १६०६, ७, ८ ई० तथा खोज-रिपोर्ट सन् १६०० ई० की जोगलीला न तो नन्ददास की है और न कवीन्द्र उपनामवाले कवि की। यह १८वीं शताब्दी ई० के अन्त तथा १६वीं शताब्दी ई० के आरम्भ में होनेवाले कवि 'उदयराम' की है जिसके ग्रन्थों का संग्रह स्व० मयाशङ्करजी ने किया था। 'उदय' की रचना-शैली नन्ददास की रचना-शैली से बहुत मिलती है। वास्तव में ऐसा जान पड़ता है कि नन्ददास की भाषा और छन्दों के अध्ययन के बाद उसी शैली पर 'उदै' ने अपने ग्रन्थों की रचना की थी। प्रस्तुत जोगलीला की आरम्भिक पंक्तियों में कवि लिखता है कि यह रचना वह अपने मित्र की आज्ञा से कर रहा है। नन्ददास ने भी अपने कई ग्रन्थों में मित्र की आज्ञा की प्रेरणा का उल्लेख किया है। जोगलीला के भाव, नन्ददास के भँवरगीत से बहुत मिलते हैं। भाषा भी नन्ददास की शब्दावली से प्रभावित है। इन कारणों से यह जोगलीला ग्रन्थ नन्ददास-कृत माना जाने लगा है; परन्तु नन्ददास-कृत न होने के भी यथेष्ठ कारण मिल जाते हैं।

१—'उदै' की इस ग्रन्थ में स्पष्ट छाप है, नन्ददास की छाप इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिलती। 'उदै' के ग्रन्थों की पोथी में इसकी प्रतियाँ भी मिलती हैं। २—इसी भाषा और छन्द-शैली पर 'उदय' के अनेक अन्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ३—ग्रन्थ की 'सिव सनकादिक सारदा नारद सेस महेस' पङ्क्तियाँ इस बात का भारी प्रमाण हैं कि ग्रन्थ नन्ददास का नहीं है। इन पङ्क्तियों में कवि ने शिव सनकादिक ऋषि, शारदा, नारद और शेष भगवान् की वन्दना की है। नन्ददास ने अपने ग्रन्थों में भगवान् श्रीकृष्ण अथवा उनके स्वरूप भक्त शुकदेव जी और ईश्वर-रूप गुरू के सिवाय अन्य किसी देवता की वन्दना नहीं की। यहाँ शिव की वन्दना नन्ददास जैसे वल्लभसम्प्रदायी भक्त के अनन्याश्रय सिद्धान्त के विरुद्ध है। इन्हीं पङ्क्तियों में एक पुनरुक्ति दोष भी है, जैसे 'शिव' और 'महेस' शब्दों का प्रयोग। इस प्रकार की त्रुटि नन्ददास जैसे सिद्धहस्त लेखक से नहीं हो सकती। इस प्रकार का दोष उनके किसी भी ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलता।

भाषा की परीक्षा करने पर इस ग्रन्थ में दो, चार फारसी के ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनका प्रयोग नन्ददास ने अन्य ग्रन्थों में नहीं किया; दूसरे, उन शब्दों का प्रयोग, लेखक की

समक्ष में, बहुत प्राचीन नहीं है; जैसे—'फ़ने,' 'खरानी,' 'जमा' आदि। यद्यपि यह रचना भाषा और व्यक्त विचारों की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है परन्तु उक्त कारणों से यह अष्टछाप के नन्ददास का ग्रन्थ नहीं है। सम्भव है, नन्ददास ने कोई अन्य जोगलीला ग्रन्थ लिखा हो जो अभी तक अप्राप्य है।

'नन्ददास'[1] ग्रन्थ में श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने भी इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत न मान कर उदय-कृत माना है। परन्तु उन्होंने इसके रचयिता उदय को कालिदास त्रिवेदी के पुत्र दूलह का पिता कहा है जो लेखक की दृष्टि में उनकी भूल है।

1—'नन्ददास' की भूमिका, शुक्ल, पृष्ठ २२।

मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ४८४, में कालीदास त्रिवेदी का समय संवत् १७४९ वि० उनके 'वारवधू-विनोद' ग्रन्थ के रचनाकाल संवत् १७४९ वि० के आधार से दिया हुआ है। और कालीदास त्रिवेदी के पुत्र उदैनाथ, उपनाम कवीन्द्र का रचना-काल खोज रिपोर्ट सन् १९०१ ई० में दिये हुये कवीन्द्र के 'रसचन्द्रोदय' ग्रन्थ के रचनाकाल संवत् १८०४ वि० के आधार पर सवत् १८०४ वि० है। जोगलीला, दामोदर-लीला आदि १४ ग्रन्थों के रचयिता उदैराम (स्वर्गीय याज्ञिक जी इनके ४० ग्रन्थ बताते थे) का रचना काल सं० १८९२ वि० है। याज्ञिक-संग्रहालय की उदय-कृत पुस्तक दामोदरलीला में ग्रन्थ का रचना-काल यही सवत् १८९२ वि० दिया हुआ है और ग्रन्थ की पुष्पिका में कवि का नाम 'उदैराम' दिया है। यदि दामोदर-लीला, जोगलीला आदि के रचयिता उदय को उदय कवीन्द्र मान लें तो उनका रचना-काल सं० १८९२ वि० तक ले आना पड़ेगा। उनके पिता कालीदास का रचनाकाल ऊपर सवत् १७४९ वि० बताया गया है। इस हिसाब से, पिता पुत्र के रचना-कालों में १०० वर्ष का अन्तर मानना पड़ेगा जो बात कुछ असङ्गत सी जँचती है। दूसरे, दोनों कवियों के नामों में भी अन्तर है। एक उदय नाथ है और दूसरा उदै राम। ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट सन् १९०० ई० में भी जोगलीला के रचयिता उदै को उदै कवीन्द्र से मिला दिया गया था, परन्तु इस भूल का शोध ना० प्र० पत्रिका, माघ, संवत् १९९६ वि०, वर्ष ४४, पृ० ३६७ में प्रकाशित खोज-रिपोर्ट के अन्तर्गत कर दिया गया है तथा इन दोनों कवियों को उक्त विवरण में भिन्न-भिन्न कवि बताया गया है। स्व० पं० याज्ञिक की खोज के अनुसार, जिसका हवाला ऊपर कहे खोज रि० के विवरण में भी (पत्रिका संवत् १९९६ वि०, वर्ष ४४, पृ० ३६७) है, उदै राम कवि मथुरा जिले का निवासी था तथा उदैनाथ कवीन्द्र बनपुरा निवासी कान्यकुब्ज तिवारी ब्राह्मण था। मथुरा जिले में कान्यकुब्ज ब्राह्मण नहीं रहते। मिश्रबन्धुओं ने खोज के साथ, उदयनाथ कवीन्द्र का जन्म सवत् विनोद के पृ० ६७६ दूलह कवि के वर्णन के साथ सवत् १७३७ वि० दिया है।

नन्ददास के इस ग्रन्थ का उल्लेख, शिवसिंह सेंगर, डा० ग्रियर्सन, प० रामचन्द्र शुक्ल, प० रामनरेश त्रिपाठी तथा वियोगी हरि ने अपने इतिहास और कविता सङ्ग्रहों में किया है।

मान-लीला

यह ग्रन्थ अभी तक लेखक के देखने में नहीं आया। उपर्युक्त सज्जनों ने यह ग्रन्थ देखा है अथवा नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु अनुमान यही होता है कि शिवसिंह सेंगर के कथन के आधार पर ही अन्य लेखकों ने इस ग्रन्थ का नाम दे दिया है। वल्लभ सम्प्रदायी मन्दिरों में अष्टछाप कवियों के मान के पद गाये जाते हैं जो साम्प्रदायिक कीर्तन सङ्ग्रहों में दिये हुये हैं। नन्ददास के भी 'मान'-सम्बन्धी पद पुष्टिमार्गीय पद सग्रह, भाग २ में तथा अन्य कीर्तन-सग्रहों में दिये हुये हैं। सम्भव है, नन्ददास-कृत मान के पदों का कोई सग्रह 'मानलीला' के नाम से विद्यमान हो। ऐसा कोई सग्रह अथवा स्वतन्त्र ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आया। नन्ददास के मान के पदों में से कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। उन की भाषा, वर्णनशैली और भाव-चित्रण वैसे ही काव्यरस पूर्ण हैं जैसे कि नन्ददास के उत्कृष्ट स्वतन्त्र ग्रन्थों में है।

राग अड़ानो, ताल चोताला

तेरी भौंह की मरोर तें ललित त्रिभंगी भये,
अञ्जन दे चितए तबै भये स्याम बाम री।
तेरी मुसकानि हिए दामिनि सी कौंधि जात,
दीन ह्वै ह्वै जात राधे आधो लीने नाम री।
ज्यों ही ज्यों नचावै बाल त्योंही त्योंही नाचे लाल,
अब तो मया करि चलि निकुञ्ज सुख धाम री।
नन्ददास प्रभु तब बोले तो बुलाइ लेहुँ,
उनको तो कलप बीते तेरें घरी जाम री।

राग अड़ानो

तुम पहिले तो देखो लाल आइ मानिनी की सोभा,
पाछे तो मनाइ लीजो प्यारे हो गोविन्द।
कर पे धरि कपोल रही री नैन मूँदि,
कमल बिछाइ मानों सोयो सुख सों चन्द।
रिस भरी भौंह तो पै भँवर से अरबरात बैठे,
इन्दुतर आयो मकरन्द भर्‌यो अरविन्द।
नन्ददास प्रभु ऐसी काहे को रुसैये चलि,
जाको मुख निरखें ते मिटत सकल दुख द्वन्द।

इस प्रकार दूती द्वारा मानिनी राधा के मनाने पर तथा उसके रिस भरे रूप पर अनेक पद नन्ददास ने लिखे हैं[1]। भाव-प्रदर्शन की दृष्टि से वे सुन्दर हैं; परन्तु किसी पूर्ण कथानक के क्रम में वे नहीं हैं।

नन्ददास की मान-मञ्जरी के विवेचन में बताया गया है कि वह ग्रन्थ केवल कोष-ग्रन्थ ही नहीं है, वरन् उसमें दूती द्वारा मानिनी राधा के मनाने और उसको मनाकर कृष्ण के पास ले जाने की कथा भी वर्णित है। सम्भव है, नन्ददास का मानमञ्जरी ग्रन्थ ही मानलीला के नाम से किसी ने मान लिया हो और मरीजकार ने उसको नन्ददास के ग्रन्थों की सूची में सम्मिलित कर लिया हो। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में नन्ददास के इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं है। सन् १९०६, ७, ८ ई० की खोज-रिपोर्ट में एक नन्द व्यास-कृत तथा दूसरी ध्यानदास-कृत मानलीलाओं का तो उल्लेख अवश्य है, परन्तु उनके उक्त रिपोर्ट में उद्धरण नहीं दिये गये।

तासे से लेकर अब तक के किसी भी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक ने नन्ददास के ग्रन्थों की सूची में 'फूलमञ्जरी' ग्रन्थ को सम्मिलित नहीं किया। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] में इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत बताया गया है। जिस प्रति के आधार से उक्त रिपोर्ट में विवरण दिया गया है, उसमें इसका लिपिकाल अथवा रचनाकाल नहीं है। ग्रन्थ के विषय के बारे में लिखा है कि इसमें ३१ दोहों में नवदुलहिनी नायिका के रूपादि का वर्णन है और प्रत्येक दोहे में एक फूल का नाम आया है। जो उद्धरण उक्त रिपोर्ट में दिये हैं वे इस प्रकार हैं—

फूलमञ्जरी

आदि—*सीस मुकुट कुण्डल झलक, सङ्ग सोहै ब्रज बाल,*
पहरे माल गुलाब की आवत है नन्दलाल।
चंपक बरन सरीर सब, नैन चपल हैं मीन,
नव दुलहिन को रूप लखि लाल भए आधीन।

अन्त.—*पीताम्बर कटि काछनी सोहत स्याम सरीर,*
कुसुम केतकी मुकुट धरि, आवत है बलवीर।

इति श्री फूलमञ्जरी नन्ददास किरत सम्पूर्ण समाप्तं।

१—पुष्टिमार्गीय पद-संग्रह, भाग ३, वैष्णव सूरदास ठाकुरदास, पृष्ठ २०६, २०७ और २१०।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९२९ : ३१ ई०, नं० २४४ (एच)।

उक्त रिपोर्ट के आदि-अन्त के उद्धरणों में नन्ददास के नाम की छाप कहीं नहीं आई। नन्ददास की पञ्चमञ्जरी[1] वल्लभसम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पञ्चमञ्जरियों की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी नन्ददास की छाप सहित मिलती हैं। संवत् १९४१ वि० में ये पाँचो मञ्जरियाँ सूरदास ठाकुरदास द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी हैं। इन मञ्जरियों के अतिरिक्त खोज-रिपोर्ट को छोड़कर लेखक ने अन्य किसी वल्लभसम्प्रदायी भाषा-साहित्य के विद्वान् से मुख से नहीं सुना कि नन्ददास की कोई फूलमञ्जरी नामक छठी मञ्जरी भी है। ग्रन्थ की, विषय-वर्णन-शैली से अवश्य इस बात का अनुमान होता है कि जैसे नन्ददास ने अनेकार्थ मञ्जरी और मानमञ्जरी में कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-चरित्र का समावेश कर कोष-ग्रन्थ लिखे हैं, उसी प्रकार फूलमञ्जरी में कृष्ण को नायक और राधा को नवदुलहिनी नायिका मानकर उनके शृङ्गार-वर्णन के संसर्ग से फूलों के नाम भी गिनाये हैं। पर यह अनुमान ही इस बात का पुष्ट प्रमाण नहीं है कि यह ग्रन्थ नन्ददास का लिखा हुआ है।

नन्ददास की शैली की नकल करनेवाले कई कवि हुये हैं। उनमें से एक उदै कवि का उल्लेख पीछे हो चुका है, जिसके ग्रन्थों का संग्रह याज्ञिक-संग्रहालय में विद्यमान है। याज्ञिक-संग्रहालय में लेखक ने फूल-मञ्जरी की दो प्रतियाँ दो भिन्न भिन्न कवियों की देखी हैं। उनमें से एक पुरुषोत्तम कवि की है। यह फूल-मञ्जरी ग्रन्थ दोहा छन्द में लिखा गया है। इसमें ३२ दोहे हैं। ३१वें दोहे पर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। इसके आदि और अन्त के दोहे एक दो शब्द के पाठ-भेद से वही हैं जो नागरी प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट में नन्ददास के नाम से उद्धृत है। अन्त में दोहे के साथ कवि पुरुषोत्तम ने अपनी छाप का एक दोहा और दिया है। इस प्रति के निम्नलिखित उद्धरणों के साथ खोज-रिपोर्ट के उद्धरणों का पाठक मिलान करें—

आदि—*सीस मुकुट कुंडल झलक, संग सोहत ब्रजबाल।*
पहरे माल गुलाब की, आवत है नन्दलाल। १
चम्पक वरन सरीर सुख, नैन चपल दृग मीन।
नव दुलहनि तब रूप लखि लाल भये आधीन। २

अन्तः—*पीताम्बर की छवि बनी सोहत स्याम सरीर।*
कुसुम केतकी मुकुटधर, आवत है बलबीर। ३१
पौहप बन्ध धरि ग्रन्थ है कह्यो पुहपन को नाम।
पुरुषोत्तम याको भजै लै पुहपन को नाम।

इति श्री पौहोप मञ्जरी सम्पूर्ण।

१—विरह मञ्जरी, रस मञ्जरी, मान मञ्जरी, अनेकार्थ मञ्जरी तथा रूप मञ्जरी।

यह पुरुषोत्तम कवि किस समय का है, इसका उक्त पुस्तक से कोई विवरण ज्ञात नहीं होता। मिश्रबन्धु विनोद, भाग १[1] और भाग ३[2] में तीन प्राचीन पुरुषोत्तम कवियों का उल्लेख है, परन्तु उनके रचित ग्रन्थों में फूल मञ्जरी ग्रन्थ नहीं दिया हुआ है। चतुर्थ भाग में भी पुरुषोत्तम नाम के लेखकों का नाम आया है, परन्तु वे आधुनिक लेखक हैं जो प्राचीन ग्रन्थ फूलमञ्जरी के लेखक नहीं हो सकते। उक्त पुरुषोत्तम नाम के लेखकों में एक पुरुषोत्तम राधावल्लभसम्प्रदायी का भी 'विनोद' में उल्लेख है। सम्भव है, इस फूलमञ्जरी का रचयिता यही पुरुषोत्तम कवि हो।

उक्त फूलमञ्जरी के अतिरिक्त याज्ञिक संग्रहालय में एक केशवसुत मोहन कवि-कृत फूलमञ्जरी की भी प्रति है। इसका रचनाकाल सम्वत् १८४५ वि० है। यह भी उपर्युक्त फूलमञ्जरी की शैली में दोहा-छन्दों में लिखी गई है, परन्तु उस मञ्जरी के दोहे पुरुषोत्तम की अथवा नन्ददास के नाम से खोज-रिपोर्ट में दी हुई फूलमञ्जरी के दोहों से नहीं मिलते। इसके उद्धरण भी नीचे दिये जाते हैं—

आदि:—*कमल नैन कन्हर लला, सुन्दर स्यामल गात,*
बन ते आवत सुरभि सङ्ग,⋯⋯ मन मुसकात।
पीत पगा कीनों झगा, कर कसूम की माल,
नगन जटत कर मुरलिका बाजत सब्द रसाल।

अन्त:—*दाऊदी फूली विमल, अलि मिलि लेत सुवास,*
पिय प्यारी मिल आजु ही हिलि मिलि करैं विलास।
पाण्डु[5] बेद[4] वसु[8] चंद्[1]ये बसत कुम्हेर सुगास,
केसवसुत मोहन रची, फूलमञ्जरी नाम।

एक फूलमञ्जरी कवि मतिराम की भी लिखी हुई है जिसको प० कृष्णबिहारी मिश्र जी ने साहित्य समालोचक[3] में सम्वत् १९८५ वि० में छपवाया था। इसका पाठ उक्त दो फूलमञ्जरियों से भिन्न है, परन्तु शैली उसकी भी वही है—

आदि:—*चम्पक बरनी यों कहै; छूटै बासु सुबास,*
चम्पक माल पहरे हिये, तोंहि राखे पिय पास।

१—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, सम्वत् १९९४ संस्करण, पृ० १९६ पुरुषोत्तम कवि, रचनाकाल सम्वत् १९९८ वि०।
मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृ० ३०२। पुरुषोत्तम बुन्देलखण्डी।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग ३, पृ० १८३, पुरुषोत्तम राधावल्लभीसम्प्रदाय के। ग्रन्थ, भक्तमाल-माहात्म्य।

३—साहित्य-समालोचक, भाग ३, सङ्ख्या ४, चैत्र-वैसाख, संवत् १९८५ वि० बसंत।

अन्तः—*हुकम पाय जहँगीर को नगर आगरे धाम,*
फूलन की माला करी, मति सों कवि मतिराम।

सन् १६०६, १०, ११ ई० की खोज-रिपोर्ट में एक कवि मनोहरदास-कृत 'फूल-चरित्र' नामक ३१ दोहों के ग्रन्थ का उल्लेख है और एक महाराज सावन्तसिंह नागरीदास-कृत 'फूल-विलास' का भी उल्लेख उक्त खोज-रिपोर्ट में है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक कवियों ने 'फूलमञ्जरी' जैसी रचनाएँ की हैं। उपर्युक्त जाँच के बाद लेखक की यही धारणा है कि फूलमञ्जरी नन्ददास का कोई ग्रन्थ नहीं है। नन्ददास की शैली देखकर पुरुषोत्तम कवि की फूलमञ्जरी को किसी प्रतिलिपिकार ने नन्ददास-कृत लिख दिया है।

राजनीति हितोपदेश

तासे, शिवसिंह सेंगर और डा० ग्रियर्सन ने नन्ददास-कृत 'राजनीति हितोपदेश' ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया। इन सज्जनों को छोड़कर हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहास लेखकों ने नन्ददास के इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। नन्ददास-कृत इस ग्रन्थ की सूचना नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट सन् १६०५ ई०, में दी हुई है। खोज-रिपोर्ट १६०४ ई० में एक नारायण पण्डित-कृत 'हितोप देश' की भी सूचना है। इसके बाद सन् १६०६, १०, ११ ई० की खोज-रिपोर्ट में लल्लूलाल-कृत राजनीति हितोपदेश का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य सालों की रिपोर्टों मे अन्य लेखकों के भाषा हितोपदेशों की सूचना भी दी गई है। नारायण पण्डित-कृत हितोपदेश और नन्ददास-कृत हितोपदेश के उद्धरण तो उक्त रिपोर्ट में दिये हैं, परन्तु लल्लूलाल-कृत हितोपदेश के उद्धरण नहीं दिये गये हैं। उपर्युक्त उद्धरणों के मिलान करने से ज्ञात होता है कि दोनों सूचनाओं में एक ही प्रकार के उद्धरण है।

खोज-रिपोर्ट सन् १६०४ ई०, नं० ६। नारायण पण्डित-कृत, अनुवाद संस्कृत हितोपदेशः—

आदिः—*सिद्धि साधु के काज में, सोहर करै कृपाल।*
गंग फेन की लीक सी, सिर ससिकला विसाल।

अन्तः—*जौ लौं गौरि गिरीस को बढ़त जात नित नेह,*
राजनीति यह सिर धरै करै सो राज अछेह।
ज्यौं लौं लक्ष्मी राम उर बसति गगन रविचन्द,
तौ लौं नारायण कथा सुने सुजान अनन्द।

खोज रिपोर्ट सन् १६०५ ई०, नं० ३६। राजनीति हितोपदेश नन्ददास-कृत। लिपि-काल १८४२।

आदिः—राजनीति लिख्यते।
सिद्धि साधु के काज में सोहर करै कृपाल।
गंग फेनु की लीक सी, सिर ससिकला बिसाल॥

अन्तः—जौं लौं गिरिजा को सदा बढ़त जात नित नेह ,
जौं लौं लच्छि मुरारि उर लगी तड़ित ज्यों मेह ।
जौ लौं सुर घर कनक गिरि, फिरि सूरज औरचन्द ,
जौ लौं नारायण कथा सुनै सुजन जन नन्द ।

इति श्री हितोपदेशे नन्ददास कृतौ चतुर्था समाप्त । ··· ·······सम्वत् १८४२ वि० लिपि-कृत वैष्णव हरिदास जयपुर मध्ये । लिपायतं मीहिंलाल जी ।

इस रिपोर्ट के साथ एक नोट भी रिपोर्ट के लेखक ने दिया है । उसका आशय है—'मैं नहीं कह सकता कि यह हितोपदेश उन्हीं नन्ददास का है जिनके बहुत से प्रशंसनीय ग्रन्थ हमें मिलते हैं ।"

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि दोनों हितोपदेश एक ही ग्रन्थ हैं । इन दोनों रिपोर्टों के उद्धरणों के अन्तिम भाग में किसी 'नारायण' की छाप आती है । लेखक ने मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास एक प्रति 'भाषा हितोपदेश' की देखी है । उसके लेखक हैं लल्लूलाल जी । उसका पाठ भी उपर्युक्त उद्धरणों से मिलता है । एक ही ग्रन्थ तीन लेखकों के नाम से प्राप्त होता है, तब प्रश्न है कि इसका रचयिता तीनों लेखकों में से कौन है । लेखक का अनुमान है कि जो उद्धरण खोज-रिपोर्ट में मिलते हैं और जो प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास है वह भक्तवर नन्ददास की लिखी हुई नहीं है । संस्कृत हितोपदेश के आरम्भ में वन्दना रूप में महादेव जी की कृपा का आवाहन किया गया है, उसी वन्दना के अनुवाद से उपर्युक्त भाषा-उपदेश-ग्रन्थ आरम्भ होते हैं । नन्ददास कृष्ण के अनन्य भक्त थे । उनके वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद की यह रचना नहीं हो सकती । एक तो नन्ददास इस ग्रन्थ के आदि में श्रीकृष्ण अथवा, अपने गुरु, अथवा किसी अनन्य कृष्ण-भक्त की वन्दना अवश्य देते, सो इस ग्रन्थ में ऐसा नहीं है । दूसरे, नन्ददास ने जितने ग्रन्थ लिखे हैं वे या तो कृष्ण-चरित्र से सम्बन्धित हैं अथवा उनमें किसी न किसी रूप में कृष्ण-भक्ति का विषय अवश्य जोड़ दिया गया है । कृष्ण-चरित्र से इतर नन्ददास के सर्वसम्मति से मान्य अनेकार्थ मञ्जरी, मानमञ्जरी, रसमञ्जरी और रूपमञ्जरी ग्रन्थ हैं । परन्तु इनमें भी, जैसा कि लेखक ने इन ग्रन्थों के विवरण में कहा है, कृष्ण-भक्ति के विषय का लगाव है । लेखक का तो यह विचार है कि कृष्ण-चरित्र अथवा कृष्ण-भक्ति से रहित नन्ददास ने कोई ग्रन्थ लिखा ही नहीं । कृष्ण-भक्ति-भाव से रहित जो ग्रन्थ नन्ददास के नाम से मिलते हैं, वे या तो किसी अन्य नन्ददास के हैं अथवा वे उनके वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहिले के हैं । सन् १६०५ की खोज-रिपोर्ट के हवाले के आधार पर 'मिश्रबन्धुविनोद' में नन्ददास-कृत राजनीति हितोपदेश का उल्लेख है ।[1] परन्तु इसी ग्रन्थ के भाग दो की कवि-नामावली के पृष्ठ १२ पर

१—मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ८२४ ।

हितोपदेशकार नन्ददास के विषय में लिखा है,—"नन्ददास कदाचित् वृन्दावन वाले।" खोज रिपोर्ट में नन्ददास के हितोपदेश से दिये हुये उद्धरणों के अन्तिम छन्द में 'नारायण' नाम के साथ 'नन्द' नाम भी आता है, नारायण पण्डित-कृत हितोपदेश के 'सुने सुजान अनन्द' पाठ को नन्ददास-कृत बतानेवाले लेखक ने "सुने सुजन जन नन्द" कर दिया है।

वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले नन्ददास पद गाते थे, इस बात का प्रमाण "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" से मिलता है।[1] उससे यह भी सिद्ध होता है कि नन्ददास बड़े विद्वान् थे। परन्तु वार्ताकार ने वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले उनको विवेक-हीन रूप में ही चित्रित किया है। हितोपदेश जैसे ग्रन्थ का विवेक रखनेवाला व्यक्ति पूर्ण कवि-कुशल होना चाहिए, परन्तु वार्ताकार ने नन्ददास को ऐसा चतुर और विवेकी नहीं लिखा। इसलिए यह ग्रन्थ नन्ददास के वल्लभसम्प्रदाय में आने के पहले का लिखा भी नहीं कहा जा सकता।

उपर्युक्त विचारों के आधार से लेखक इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत नहीं मानता। मिश्रबन्धु-विनोद के आधार पर या तो यह ग्रन्थ वृन्दावनवाले नन्ददास का है अथवा किसी नारायण कवि का अथवा लल्लूलालजी का है।

तासे, शिवसिंह सेंगर और जार्ज ए० ग्रीयर्सन ने नन्ददास के ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ का नाम नहीं दिया। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[2] और मिश्रबन्धु विनोद में इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत बताया गया है। इन्हीं के आधार पर हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखकों ने भी इसे नन्ददास कृत लिखा है। लेखक ने इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ

नासिकेत भाषा (गद्य-ग्रन्थ)

एक खण्डित और दूसरी पूर्ण, मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में देखी हैं। इनमें से एक प्रति संवत् १८५५ वि० की प्रतिलिपि है और दूसरी में कोई तिथि नहीं है। इन दोनों प्रतियों की पुष्पिकाओं में ग्रन्थकर्ता का नाम स्वामी नन्ददास दिया है। एक में लिखा है कि नन्ददास ने इस ग्रन्थ का अपने मित्र के कहने से अनुवाद किया। दूसरी में लिखा है कि स्वामी नन्ददास ने भाषा में करके अपने शिष्य को सुनाया। जिस प्रति के आधार पर खोज रिपोर्ट में विवरण दिया गया है वह संवत् १८१२ वि० की लिपि है। उस प्रति में भी यही लिखा है कि स्वामी नन्ददास अपने शिष्य विप्र से इस कथा को कहते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रतियों की अन्तिम पुष्पिकाओं में बहुत पाठ-भेद है। यह भाषा-

---

१—अष्टछाप काँकरौली, पृष्ठ ३३६। गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शरण में आने से पहले नन्ददास ने जमुना की स्तुति में पद गाये थे।

२—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९०९, १०, ११ ई०, न० १०८ (ए)।

वैषम्य खोज रिपोर्ट के और याज्ञिक-संग्रहालय की प्रतिलिपियों के नीचे लिखे उद्धरणों से स्पष्ट होगा—

खोज-रिपोर्ट आदिः—

"सिद्धि श्रीगणेशायनमः, अथ नासकेत पुराण भाषा लिष्यते। अर नासकेत कथा कैसी है, बहुत श्रेष्ठ है और सर्व पाप हरत हैं। सो अब स्वामी नन्ददास जी आप विप्र ने भाषा करि कहत हैं। सिषि पूछत है। गुसाईं मेरे नासकेत पुराण सुनिवा की अभिलाषा बहुत है। मूने भाषा करि के कहो। मैं सहंसकृत समुझ नाहीं। तदि नन्ददासजी सिखि को कहत है, और अब वैसम्पायन ऋषि राजा जन्मेजय को कहत है।"

अन्त —

"और अब नन्ददासजी आप सिसन को कहत हैं, अहो विप्र, तहि राजा जन्मेजय नासकेतु पुराण सुणत ही कृतारथ होत भयो है और नासकेतु पुराण कैसो है, महापवित्र है, जैसे कोई प्राणी एकाग्रचित है करि सुणै पढे जो पारगामी होय जैसे राजा जन्मेजय पार होत भयो और सहस गऊ दिये को फल होय। इति श्री नासकेतु महापुराणे रिष नासकेतु संवादे नाम अष्टादशोध्याय १८।'

संवत् १८१२ वि० वर्षे वैशाखे कृस्न पक्षे तिथौ द्वितीयाया भृगुवासरे।

याज्ञिक संग्रहालय की संवत् १८५५ वि० की प्रतिलिपि से —

"इति श्रीनासकेत पुराने रीषी नासकेत सवादे अष्टादशोध्याय यह कथा जन्मेजय सु कही और भाषा करी स्वामी नन्ददासजी ने अपना मित्र नैं कही श्रीमते रामानुजायनम, श्रीवासुदेवायनम आदि . ."

याज्ञिक-संग्रहालय की खण्डित प्रति से.—

"इति श्री नासकेत महापुराने रिषि नासकेत संवादे अष्टादशोध्याय. १८। यह कथा रिषि राजा जनमेजय ने सहंसक्रती करि कही है, अर भाषा करी स्वामी नन्ददास अपने शिष सूँ कहि है। इति नासिकेत कथा सम्पूर्ण शुभं।"

जैसा कि ऊपर कहा गया है, उपर्युक्त उद्धरणों के उल्लेख से यह बात ज्ञात होती है कि स्वामी नन्ददास ने अपने मित्र अथवा शिष्य के कहने से नासिकेतपुराण का हिन्दी में अनुवाद किया। इस कथन में नन्ददास के मित्र का उल्लेख यह सिद्ध करनेवाला माना जा सकता है कि ग्रन्थ अष्टछापवाले नन्ददास का रचा हुआ है। ग्रन्थ के लेखक, नन्ददास के साथ 'स्वामी' शब्द इस ग्रन्थ की सभी प्रतियों में लगा हुआ है। वल्लभसम्प्रदाय में

अष्टछाप कवियों में केवल चार कवि स्वामी कहलाते हैं। नन्ददास स्वामी कहलानेवाले उन चार कवियों में नहीं हैं। अष्टछापी नन्ददास के प्रामाणिक ग्रन्थों में भी किसी-किसी हस्त लिखित प्रति में नन्ददास का नाम स्वामी नन्ददास दिया हुआ है। सम्भव है कि नन्ददास परम भक्त और पडित होने के कारण स्वामी कहलाने लगे हों। इसलिए इस ग्रन्थ में 'नन्ददास' के साथ 'स्वामी' शब्द का जोड़ इस बात का बहुत शिथिल प्रमाण है कि ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास-कृत नहीं है। परन्तु ग्रन्थ-रचनामें मित्र की प्रेरणा का उल्लेख इस ग्रन्थ के लिपिकार ने किया है। कवि ने शब्दों में कहीं पर भी यह उल्लेख नहीं है, "मैं अपने मित्र के कहने से इस ग्रन्थ को रच रहा हूँ," जैसा कि कवि ने अपने अन्य ग्रन्थों में अपने मित्र की आज्ञा का उल्लेख किया है। सम्भव हो सकता है कि किसी व्यक्ति ने नन्ददास के मित्र का हवाला देकर इस ग्रन्थ को उनके नाम से प्रसिद्ध कर दिया हो अथवा किसी अन्य स्वामी नन्ददास की यह रचना हो और भ्रमवश इसे अष्टछापी नन्ददास का समझकर किसी प्राचीन प्रति लिपिकार ने इसमें मित्र का प्रसङ्ग बढ़ा दिया हो।

पीछे अन्य ग्रन्थों के विवरण में कहा गया है कि नन्ददास ने कृष्णचरित्र अथवा कृष्णभक्ति से सम्बद्ध विषय ही अपने काव्य के लिए चुने हैं, कवि ने वे ग्रन्थ भी, जो कृष्ण चरित्र के विषय से दूर, कोष और काव्य शास्त्र के ग्रन्थ हैं, कृष्णभक्ति के भाव से सम्बद्ध कर दिये हैं। नासिकेत भाषा में कृष्ण का कोई चरित्र अथवा कृष्णभक्ति का कोई भाव नहीं आता। यही बात अष्टछाप के अन्य कवियों पर भी लागू होती है। उन्होंने भी अपने काव्य का विषय भगवान् की भक्ति अथवा भगवान् की लीला को ही चुना है। इस प्रकार ग्रन्थ में कृष्ण-चरित्र का अभाव, ग्रन्थ के नन्ददास-कृत होने में सन्देह उत्पन्न करता है।

यह ग्रन्थ गद्य में लिखा गया है। नन्ददास के अन्य ग्रन्थ तथा उनके समकालीन सभी अष्ट कवियों के ग्रन्थ पद्य-बद्ध ही मिलते हैं। गद्य में इस रचना के सिवाय और कोई रचना उनकी नहीं मिलती। यह भी एक प्रश्न हो सकता है कि नन्ददास ने कृष्ण भक्ति और लीला का कोई ग्रन्थ गद्य में क्यों नहीं लिखा? यदि यह मान लिया जाय कि यह रचना उनके वल्लभसम्प्रदाय में आने के पहले की है, तो ग्रन्थ में मित्र का प्रसङ्ग इस विश्वास को पुष्ट नहीं होने देता। नन्ददास ने अपने जिस मित्र का प्रसङ्ग अपने ग्रन्थों में दिया है वह भी माधुर्यभाव से भक्ति करनेवाला रसिक व्यक्ति है और उनका सहधर्मा है। इस बात को ध्यान में रखते हुये यदि इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत माना जाय और मित्र के उल्लेख को भी सही समझा जाय तो यह उनके सम्प्रदाय में आने के बाद की ही रचना होना चाहिए। सम्प्रदाय में आने के बाद नन्ददास की यह धारणा दृढ़ हो गई थी कि 'सुर नर चाम के धाम सब चुनहिं बीच विकराल"[1] अर्थात् सुर और नर सब नश्वर हैं, केवल कृष्ण ही सतत हैं। नन्ददास की इस धारणा की पुष्टि नासिकेत भाषा ग्रन्थ के विषय से नहीं

[1]—रूप मञ्जरी दोहा १९७, भाई बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ।

होती। इसलिए यह ग्रन्थ नन्ददास के वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले का भी नहीं हो सकता।

स्वामी नन्ददास के नाम से प्रचलित नासिकेत पुराण भाषा की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि इसकी भिन्न-भिन्न प्रतियों में भाषा का बड़ा भारी रूपान्तर है। किसी प्रति में मारवाड़ी शब्दों का अधिक प्रयोग है तो किसी में पञ्जाबी रेख़ता का। इसमें एक भाषा का नमूना देखना बड़ा कठिन है। भाषा की गहरी दृष्टि से जाँचने के लिए याज्ञिक-संग्रहालय की दोनों प्रतियों से नीचे कुछ और उद्धरण दिये जाते हैं:—

"जदो गाला रीषी कैहैत है, अहो कन्या तेरो कौन वंश विषै जनम है सो तु मोकु सतो वचन कहो। तदी चन्द्रावती कहैती है, गुसाई जो, हुं राजा रघु की कन्या हूँ। तदि गाला रिषी कैहैत है, अहो कन्या यह बात कौं करी सम्भवै। राजा रघु की कन्या बन मे क्यौं फीरति है। जब चन्द्रावती समाचार सारा कहैती है। गुसाईं जी हूँ कँवारी कन्या हूँ। गुसाईं जी हुं माता के गरभ में पैदा भये पिछे संसार को व्यौहार मैं जानु नाही। सो दई गुसाईं जी को चरीत्र है। ए वचन कन्या का रिषी नै सुना। जदी गाला रिषी कहैत है अहों कन्या तु मेरी धरम की पुत्री है तु चिंता मति करै।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण की भाषा का रूप एक मिश्रित भाषा का सा है जिसमें व्रजभाषा, मारवाड़ी, पञ्जाबी, रेख़ता आदि के शब्दों का प्रयोग हुआ है। शब्दों का रूप बहुत विकृत और अशुद्ध भी है जैसे 'सत्य' अथवा 'सच' के लिए 'सती', 'फिरति' के लिये 'फीरति', 'पीछे के लिये 'पिछे।' इसी प्रति में 'गुसाईं जी हूँ थां की बात कहूँ' आदि वाक्यों में 'थांकी' जैसे शब्द मारवाड़ी भाषा के हैं। 'तदी', 'जदी' शब्द पञ्जाबी बाँगरू के हैं। 'एक वचन कन्या का रिषी ने सुना' इस वाक्य में रेख़ता भाषा का प्रयोग है। याज्ञिक-सङ्ग्रहालय की दूसरी खण्डित प्रति की भाषा का नमूना इस प्रकार है—

'गालिब रिषि उवाच, जब गालिब रिषि कहत है, अहो, कन्या तेरो कौन बंस विषै जनम भयो है, सो मोसूं सति बचन कहि। तब चन्द्रावती कहति है गुसांईं जी हूं राजा रघु की कन्या हूं। तब गालिब रिषि कहत हैं, और कन्या यह बात क्यों करि सम्भव है, राजा रघु की कन्या अर बन मैं क्यों फिरति है। जब चन्दावती समाचार पाछिले भाति भाति करि कहति है। गङ्गाजी कौ वा कमल कौ, वा गरभ कौ जा भांति गरभ धारयो सो सगरो समाचार कहति है अरु कह्यौ गुसाईं जो हू कारो कन्या ही, गुसाईं जी हू माता गरभ बिषे उतपंनि भई पाछे संसार कौ व्यौहार मैं सुपने हु जान्यो नहीं सो देव गुसाईं जी कौन चरित्र कीयौ है सोहू न जानूँ, ए वचन कन्या के रिषि सुने, जदि गालव रिषि कहत है, अहो कन्या तू मेरी धरम की पुत्री है तू चिन्ता मति करै।'

१—सम्वत् १८४२ की प्रति, तीसरा अध्याय।

इस प्रति के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि भाषा पहली प्रति से अधिक पुष्ट है। इसका रूप अधिकाश में ब्रजबोली का ही है। ग्रन्थ में कहीं कहीं पूर्वी हिन्दी तथा 'जदो' 'कदो' जैसे बाँगरू भाषा के शब्द अवश्य आ गये हैं; परन्तु इस ब्रजभाषा में भी नन्ददास के अन्य ग्रन्थों की भाषा की छाया किसी मात्रा में भी नहीं दिखाई देती। ग्रन्थ की भाषा की इस अव्यवस्थित दशा में नन्ददास की शब्दावली नहीं मिल सकती। सम्भव है कि कोई प्राचीन प्रति नन्ददास के समय की अथवा उससे कुछ समय बाद की किसी के पास हो। यदि ऐसी कोई प्रति मिल जाय तो उसकी भाषा की जाँच से कहा जा सकता है कि ग्रन्थ अष्टछापवाले नन्ददास का है। अपनी देखी हुई प्रतियों के आधार पर लेखक का कथन है कि उसे नासिकेत-भाषा ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास-कृत नहीं प्रतीत होता।

पीछे कहा गया है कि यह ग्रन्थ किसी अन्य नन्ददास का हो सकता है। भक्तमाल में दो भक्त नन्ददासों का उल्लेख है एक अष्टछापवाले और दूसरे बरेलीवाले नन्ददास। मिश्रबन्धुओं[1] ने 'मिश्रबन्धु-विनोद' में एक बृन्दाबन वाले नन्ददास का भी उल्लेख किया है। बरेली वाले नन्ददास की किसी रचना का उल्लेख किसी भी इतिहासकार ने नहीं किया। सम्भव है कि स्वामी नन्ददास, वृन्दाबन वाले ने, जो स्वामी कहलाते होंगे, इस ग्रन्थ की रचना की हो। मिश्रबन्धुओं ने नन्ददास-कृत कहे जानेवाले राजनीति हितोपदेश ग्रन्थ को इन्हीं वृन्दाबन वाले नन्ददास-कृत बताया है।

नागरी प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट को छोड़ कर किसी भी ऐतिहासिक अथवा हिन्दी काव्य-सङ्ग्रह-ग्रन्थ में नन्ददास के 'रानी माँगो' ग्रन्थ का उल्लेख नहीं हुआ है।

रानी माँगो

खोज-रिपोर्ट[2] के विवरणकार ने इसकी रचना तथा लिपि के काल को अज्ञात लिखा है। इस पुस्तक के अधिकारी का पता रिपोर्ट में इस प्रकार दिया हुआ है। "ग्राम राटौटी, डाकखाना होलीपुरा, जिला आगरा निवासी ठाकुर प्रतापसिंह।" उक्त रिपोर्ट में जो उद्धरण दिये गये हैं वे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

आरम्भ.—अथ रानी मगो लिख्यते।

मैं जुवति जाचन ब्रत लीन्हों।
जहि जहि जौनि जाउ तहि तहि अंक भुजा पर दीन्हों।
पुरुप जाति हौ हौं दान मान देति जनम नेक न हैरौ।
केसरि वलय महावरि मण्डित इनको अलप न फेरौं।
राजसिंहासन हय रथ हाथी ल्यो नहि नटवर कोट।
अँगिया, उड़िया, लहङ्गा मुदरी इनको मेरे कोट।

१—मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, कवि नामावली, पृ० १२।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९२९ : ३१ ई०, नं० २४७ (आइ)।

सिह सुता बैकुण्ठ की रानी मङ्गति मुकतिक कर बरषें।
जिनके चित यह होत अजाची जांचिय जुग जुग हरषैं।
जाचिग सकल जगत कमला को, किरतघ्नी इत न माने।
बार मुखी को बेटा मानो पिता नही पहिचाने।
पारवती पति को अति प्यारी, सदा रहै अरधाङ्गी।
मतमानी जग मङ्गल माता अनन्त पुत्र जिन जानि।
प्यारा पुसना जठरा वीरति सुमित वेद पुरान बखानि।
पुत्र भाई परसोत्तम जांच्यो सख चक्र गदा पानी।
अदित उधार सची नीधी सोभा सति रूपा सति रानी।

अन्त —आठ आठ झुमका चहौं फेरै मानो कुमुदनी फूली अरघ मुख हेरैं।
जुथ जुथ चहुँ फेरे घनी में कफसो सुन्दरि बनि।
तबहिते आनन्दराम सावधान भये मोहन दानी खोरि खांबरी
मोहन रोकि ललिता सखि पहलो ही रोकी।
अहो मारग माँझ कौन तुम डारैं वृषभानु गोपि ते नाहिन डरैं,
अरी वृषभान गोप को कहा डर मानों, दानी दान ल्यो सब जानि।
अहो बहुत भाँति के दान कहावे, तुम कौन भाँति के दानी।
आये एक गहन वेद बलि भो जल में पीसि लोक सब देई
एक अमखस सक्ई मगै, अगर सिरा अपन पद रज इनकी प्यारी रानी मंगी।
नन्ददास।

खोज रिपोर्ट के इन उद्धरणों के अतिरिक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आया, फिर भी यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत है अथवा नहीं' इस बात के विवेचन के लिए उपर्युक्त उद्धरण पर्याप्त हैं। खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के विषय का परिचय देते हुये रिपोर्टकार ने लिखा है,—"इसमें कृष्ण राधिका के प्रेम चरित्र का वर्णन है। कूबरी को ध्यान में रखकर कृष्ण पर बड़े मनोहर उपालम्भ किये गये हैं।" ऊपर दिये हुये उद्धरणों के आधार से भी ग्रन्थ के विषय का अनुमान सहज ही में लग जाता है कि इसमें राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं के अन्तर्गत दानलीला का वर्णन है। परन्तु रिपोर्टकार ने जिस मनोहरता' का उल्लेख किया है उसका परिचय इन उद्धरणों में नहीं मिलता। इनकी भाषा पद-रचना और भावों के व्यक्त करने की शैली से प्रतीत होता है कि इनका लेखक कोई साधारण, अनपढ कवि है। इन उद्धरणों की भाषा की गठन शिथिल, शब्दों के रूप विकृत, पदों में लय की कमी, वाक्यों म भावों की अस्पष्टता आदि दोष स्पष्ट रूप से पाठक को दीखते हैं। नन्ददास के पदों में तथा छन्दों में जो भाव और भाषा का सौंदर्य है इन उद्धृत पक्तियों में नहीं है। दानलीला पर नन्ददास के पद अनेक छपे हुये तथा

हस्तलिखित कीर्तन संग्रहों में मिलते हैं। उनमें यद्यपि कहीं-कहीं भाषा का दोष है, परन्तु फिर भी भाव की उत्कृष्टता और लय का माधुर्य सर्वत्र मिलेगा। उन पदों में से दो पद मिलान के लिए नीचे दिये जाते हैं। जिससे ज्ञात होगा कि दोनों रचनाओं में कितना अन्तर है—

राग बिलावल

अहो, तोसों नन्द लाडिले झगरूंगी।
मेरे संग की दूरि जाति हैं, मटुकि पटकि के डगरूंगी।
भोर ही ठाढी कित करी मोकों, तुमें जानि कछू काज न करूंगी।
तुम्हरे संग सखन के देखत, अब ही लाड उतारि धरूँगी।
सूधे दान लेहु किन मोपै और कहा कछु पाय परूँगी।
नन्ददास प्रभु कछु न रहेगी, जब बातन उघरूँगी।[1]

राग टोड़ी

गिरधर रोकत पनघट घाट।
जमुना जल जो भरि भरि निकसे, डारि काँकरी फोरत माट।
नख सिख ते सब अङ्ग भीजत, तब कहत बचन के साट।
नन्ददास प्रभु भले पढे हो, यहि विधि को आवे या बाट।[2]

'रानी मॉगौ' के उपर्युक्त उद्धरण की इस पंक्ति में 'तबहि ते आनन्दराम साव-धान भये', 'आनन्दराम' नाम आता है। नन्ददास-नाम की छाप कहीं नहीं आती। लेखक का विचार है कि यह पुस्तक किसी आनन्दराम की बनाई हुई है। मिश्रबन्धु विनोद में एक आनन्दराम कवि का उल्लेख है[3] जिसमें उक्त कवि का रचनाकाल सन् १६०१ ई० की खोज-रिपोर्ट के आधार पर सं० १७२७ वि० दिया गया है और वह कवि भगवद्गीता भाषा का रचयिता कहा गया है। सम्भव है, 'रानी माँगौ' के यही 'आनन्दराम' कवि रचयिता हों। 'रानी माँगौ' से रिपोर्ट में जो उद्धरण दिये गये हैं उनके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत नहीं है।

नन्ददास-ग्रन्थावली की भूमिका में भी श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नागरी-प्रचारिणी-सभा के खोज रिपोर्टर की त्रुटि बताते हुये कहा है, —"रिपोर्टर महोदय ने पुष्पिका का संक्षिप्त

१—कीर्तन-संग्रह, भाग १, देसाई, पृ० २११।
२—कीर्तन-संग्रह, भाग १, देसाई, पृ० १२५।
३—मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ ५२२।

रूप 'रानी माँगो' देकर नन्ददास शब्द बढ़ा दिया है जो स्पष्ट ही निराधार है।" शुक्ल जी ने 'रानी माँगो' का रचयिता कोई राधावल्लभीय लेखक माना है।

प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक इस ग्रन्थ का उल्लेख केवल तासे महोदय ने किया है। लेखक के देखने में यह ग्रन्थ नहीं आया। उसका अनुमान है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास का नहीं है।

ज्ञानमञ्जरी इस ग्रन्थ को मिश्रबन्धु विनोद में नन्ददास कृत कहा गया है।[1] लेखक के देखने में यह ग्रन्थ भी नहीं आया। ज्ञात होता है, मिश्रबन्धुओं के कथन के आधार पर ही, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल आदि इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत लिख दिया है।

विज्ञानार्थ प्रकाशिका इसका उल्लेख भी उक्त मिश्रबन्धु विनोद में ही हुआ है। लेखक को यह ग्रन्थ भी प्राप्त नहीं हो सका। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल जी ने मिश्रबन्धुओं का ही अनुकरण किया है।

इस ग्रन्थ का उल्लेख पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी को छोड़कर किसी भी लेखक ने नहीं किया। लेखक ने चतुर्वेदी जी से इस ग्रन्थ का परिचय पूछा। उनका कहना है कि

पनिहारिन-लीला उन्होंने इस ग्रन्थ को एक वैष्णव के पास देखा है और वह नन्ददास-कृत है। ग्रन्थ के अभाव में इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेखक का अनुमान है कि यह कोई महत्व का ग्रन्थ नहीं होगा। सम्भव है कि यह पनघट लीला का कोई लम्बापद या पद-संग्रह हो।

रासलीला नन्ददास के नाम से काँकरौली विद्या विभाग पुस्तकालय में बस्ता नं० १७/५/२ में लेखक ने 'रासलीला' नामक पुस्तक देखी थी। इसमें दोहा, ढाल, चौपई, फिर दोहा इस प्रकार के क्रम से छन्द हैं, भाषा इसकी बहुत शिथिल है। इसमें कोई संवत् नहीं है। इसी छोटी सी पुस्तक का उल्लेख श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नन्ददास ग्रन्थावली की भूमिका में भी किया है। उसमें उन्होंने, काँकरौली विद्या विभाग से प्राप्त उक्त प्रति ही के आधार से, कुछ उद्धरण भी दिये हैं। शुक्ल जी ने इस लीला की भाषा शैली, तथा नन्ददास के अन्य ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषा तथा काव्य उक्तियों का मिलान करके इसको नन्ददास कृत नहीं माना।[2]

नन्ददास ने रासलीला का तीन ग्रन्थों में वर्णन किया है, 'रास पञ्चाध्यायी, दशम स्कन्ध भाषा', तथा 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।' चौथे, उन्होंने अन्य अष्ट कवियों की तरह, पदों

१—मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय संस्करण, १९२६ ई०।

२—नन्ददास-ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ २३-२४।

में भी गोपी-कृष्ण-रास का चित्रण किया है। वल्लभसम्प्रदायी नित्य तथा वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रहों में इस विषय के नन्ददास कृत बहुत से पद मिलते हैं। अष्ट कवियों के लम्बे पदों को भी, जैसा कि पीछे कहा गया है, लोगों ने अलग से लिखकर स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम दे दिया है। कृष्ण जन्माष्टमी के, नन्ददास-कृत पदों में एक बड़ा पद है— ऐरी सखी प्रकटे कृष्ण मुरारि,'' इसको यदि अलग से लिख दिया जाय तो नन्ददास का इसे भी, उक्त रासलीला की तरह, एक ग्रन्थ कह सकते हैं। सूरसागर के पदों से तो इससे भी बड़े अनेक ग्रन्थ निकाले जा सकते हैं। लेखक के भी विचार से यह 'रासलीला' नन्ददास-कृत नहीं है। सम्भव है, यह किसी अन्य नन्ददास नामक कवि की हो, और यदि इसमें आनेवाली नन्ददास की छाप के आधार से हम इसे नन्ददास-कृत ही कहें तब भी यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, एक लम्बा पद मात्र है। छपे हुए कीर्तन सङ्ग्रह तथा श्री जवाहरलाल जी से प्राप्त लेखक के पास नन्ददास के एकत्र पदों में उक्त रासलीला का पद नहीं है। इस पद में दो बार नन्ददास की छाप है और दोनों स्थानों पर 'नन्ददास दयाल' की छाप है।

बाँसुरी लीला तथा अर्थ-चन्द्रोदय (पद्य-बद्ध शब्दकोष)

इन दो ग्रन्थों की सूचना श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नन्ददास कृत ग्रन्थावली में दी है। शुक्ल जी ने ये ग्रन्थ देखे नहीं हैं, और उन्होंने इन ग्रन्थोंके नन्ददास कृत होने में सन्देह भी प्रकट किया है। लेखक के देखने में भी ये ग्रन्थ नहीं आये। इसलिए इनके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

नन्ददास की पदावली

पीछे दिये हुये ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास के बहुत से पद भी मिलते हैं। वार्ता के कथन से यह सिद्ध ही है कि नन्ददास जी भी एक उच्च कोटि के गवैया थे और पद रचना करके उन्हें गाते थे। अन्य अष्टछाप कवियों के पदों की तरह इनके पद भी वल्लभ-सम्प्रदायी 'नित्य कीर्तन', 'वर्षोत्सव कीर्तन' 'बसन्त धमार कीर्तन', 'रागरत्नाकर' तथा कृष्णानन्द व्यास जी के 'राग-कल्पद्रुम' में मिलते हैं। ये सभी ग्रन्थ, जैसा कि पीछे कहा गया है, प्रकाशित हो चुके हैं, नन्ददास के पद भी वल्लभसम्प्रदायी सेवा विधि के अनुसार मन्दिरों में गाये जाते हैं, उक्त कीर्तन ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास के कुछ स्फुट पद पुष्टिमार्गीय कीर्तनियाँओं के पास भी हैं।

उपर्युक्त छपे ग्रन्थों के आधार से तथा फुटकर रूप से मिलनेवाले पदों को लेकर श्री प० जवाहर लाल चतुर्वेदी जी ने नन्ददास के पदों का एक संग्रह तैयार किया है। चतुर्वेदी जी का कहना है कि उनके संग्रह में नन्ददास के ७०० पद हैं। इसी संग्रह के लगभग २०० पद लेखक के पास हैं। इधर 'नन्ददास' ग्रन्थ में श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने कुछ प० जवाहर लाल के संग्रह से प्राप्त तथा कुछ मयाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त नन्ददास के २८३ पद

१—कीर्तन सङ्ग्रह, भाग १, पृष्ठ ७४, लल्लूभाई छँगनलाल देसाई।

प्रकाशित किये हैं[1]। वर्षोत्सव आदि कीर्तन-संग्रहों की हस्तलिखित प्रतियाँ वल्लभसम्प्रदायी कई मन्दिरों में लेखक ने देखीं, परन्तु अन्य अष्टछाप के कवियों के पद-संग्रह के समान नन्ददास के पदों का कोई बृहत् संग्रह देखने को नहीं मिला। नाथद्वार तथा काँकरौली विद्या-विभाग में भी लेखक ने नन्ददास के पदों का कोई अच्छा संग्रह नहीं देखा। काँकरौली में दो पोथियों में उसे अलग से लिखे नन्ददास के पद मिले।

पोथी नं० ४२/६ काँकरौलीः—इस पोथी में नन्ददास के लगभग ४० पद हैं। पोथी नं० १६/७ में भी कवि के लगभग ४० ही पद हैं जो विषय के अनुसार विभाजित हैं।

मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में नन्ददास के ग्रन्थों का तो एक महत्वशाली संग्रह है, परन्तु उनके पदों का वहाँ भी लेखक ने कोई महत्वपूर्ण संग्रह नहीं देखा। वहाँ हस्त-लिखित रूप में नन्ददास के पद, अष्टछाप तथा अन्य वैष्णव कवियों के पदों के साथ मिले-हुये मिलते हैं। याज्ञिक संग्रहालय में नन्ददास के प्राप्य पदों का ब्योरा श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने अपने ग्रन्थ 'नन्ददास' में दिया है।[2]।

नन्ददास के थोड़े से पदों को छोड़कर, उनकी सब पदावली का अभी तक कोई प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। परन्तु जो पद पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने संग्रह किये हैं, जो 'नन्ददास' ग्रन्थ में छपे हैं और जो लेखक के पास संगृहीत हैं, वे पाठभेद से नन्ददास द्वारा ही लिखित पद हैं। नन्ददास ने उन पदों को किसी एक समय में नहीं लिखा। अपने साम्प्रदायिक सम्पूर्ण जीवन में उन्होंने इन्हें लिखा था। वार्ता में दी हुई उनकी जीवनी से यह बात सिद्ध है। पीछे दिये हुये विवेचन के आधार पर नन्ददास के निम्नलिखित ग्रन्थों को लेखक प्रामाणिक मानता है—

नोटः—मथुरा में लेखक को ज्ञात हुआ था कि गोकुल के श्री जमुनादास कीर्तनियाँ के पास नन्ददास के पदों का एक बृहत् संग्रह है। गोकुल में बहुत परिश्रम करने पर भी उसे वे पद उक्त सज्जन से देखने को न मिल सके। वहीं अन्यत्र कुछ और कीर्तनियाँओं के पास उसे कई कीर्तन संग्रह देखने को मिले, परन्तु उनमें सभी अष्टछाप के पद छपे कीर्तनों की तरह मिले-जुले थे। उनमें से एक संग्रह लेखक के पास है।

१—इन प्रकाशित पदों के विषय में श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी कहते हैं—"जो पद पोथियों में मिले भी, उनमें पाठ की गड़बड़ी इतनी अधिक मिली कि उनका सम्पादन नहीं हो सका। अतएव मूलपाठ में केवल ३५ पद दिये गये हैं, अवशिष्ट २४८ पद परिशिष्ट (ग) में संगृहीत हैं।" 'नन्ददास', भूमिका, पृष्ठ ८६, शुक्ल।

२—'नन्ददास', शुक्ल, भूमिका, पृ० ८५।

नन्ददास की प्रामाणिक रचना

१—रस-मञ्जरी।	२—अनेकार्थ-मञ्जरी।
३—मान-मञ्जरी अथवा नाममाला।	४—दशम स्कंध भाषा।
५—श्याम-सगाई।	६—गोवर्द्धन-लीला।
७—सुदामा-चरित।	८—विरह-मञ्जरी।
९—रूप-मञ्जरी।	१०—रुक्मिणी-मङ्गल।
११—रास-पञ्चाध्यायी	१२—भँवर-गीत।
१३—सिद्धान्त-पञ्चाध्यायी।	१४—पदावली।

वर्षोत्सव, नित्य, तथा वसन्तधमार के छपे कीर्तन सग्रहों में नन्ददास के पद

कीर्तन संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला।

विषय	पद संख्या	विषय	पद संख्या
१—जन्माष्टमी की बधाई के	६	२—पालना के	२
३—ढाढी के	२	४—बाल लीला के	३
५—राधाजी की बधाई के	२	६—दान के	९
७—करवट के	३	८—रास के	६
९—पोढवे के	२		
			३५

वर्षोत्सव, अंश दूसरा।

१०—गायखिलायवे के	२	११—हटरी के	१
१२—इन्द्रमान भङ्ग के	२	१३—गोचारन के	१
१४—ब्याह के	५	१५—गुसाईं जी की बधाई के	४
१६—सङ्क्रान्ति के	१	१७—पतङ्ग उड़ायबे के	१
१८—दुतिया पाठ के	१	१९—फूल मण्डली के	३
२०—आचार्य जी की बधाई के	१	२१—अक्षय तृतीया ब्यारू के	१
२२—चन्दन के	१	२३—नाव खेलने के	१
२४—गङ्गा दशमी के	१	२५—रथयात्रा के	१
२६—मल्हार के	६	२७—कुसुम्भी घटा के	१
२८—मान के	१	२९—छाक के	५
३०—हिंडोरा मुकुट के	१	३१—शेहरा के	२
३२—हिंडोरा पीरीघटा के	१	३३—हिंडोरा के	३

विषय	पद संख्या	विषय	पद संख्या
३४—गुसाईं जी के हिंडोरा कदम नीचे के	१	३५—फूल के हिंडोरे के	४
३६—रक्षा-बन्धन के हिंडोरा के	१	३७—राखी के	१
			५४
			कुल ८६

कीर्तन सङ्ग्रह, भाग २

३८—बसन्त के	२	३९—धमार के	१९
४०—डोल के	२		
			२३
			कुल ११२

कीर्तन सङ्ग्रह, भाग ३

४१—गोसाईं जी की बधाई के	३	४२—गङ्गा जी के	१
४३—जगायवे के	१	४४—खण्डिता के	५
४५—बसन्त की बहार के	१	४६—हिलग के	१
४७—शृङ्गार के	४	४८—पनघट के	२
४९—उराहने के	१	५०—पालना के	१
५१—ब्रज भक्तन के भोजन के	१	५२—भोगसरबे के	१
५३—छाक के	२	५४—भोग समय के	२
५५—श्रावनी के	३	५६—मान के	१
५७—आरती के	३	५८—घैया के	१
५९—मिष के	१	६०—शयन के	१३
६१—मान के	१०	६२—मान छुटिबे के	१
६३—पौढ़बे के	३		
			६२
			कुल १७४

नन्ददास के ग्रन्थों का वर्गीकरण

नन्ददास की रचनाओं के विषय में नाभादास जी ने भक्तमाल में लिखा है कि, उन्होंने दो प्रकार की रचनाएँ कीं—(१) रसरीति विषयक तथा (२) भगवान् की लीला विषयक। नन्ददास के उपलब्ध ग्रन्थ इस कथन की पुष्टि करते हैं। उनके रसमञ्जरी, नाम माला, अनेकार्थ मञ्जरी तथा रूप मञ्जरी ग्रन्थ, रसरीति से सम्बन्ध रखते हैं। भक्ति की दृष्टि से, इनमें उस मधुर भक्ति के रस की रीति का वर्णन है जिसका अनुकरण नन्ददास ने

किया था और काव्य की दृष्टि से ये ग्रन्थ रस शास्त्र के अङ्ग नायक-नायिका-भेद तथा भाषा की शक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। शेष और सब ग्रन्थ कृष्णलीला से सम्बन्ध रखते हैं। वैसे नन्ददास के सभी ग्रन्थ कृष्ण-भक्ति अथवा कृष्ण-चरित्र से लगाव रखते हैं।

नन्ददास के ग्रन्थ उनके विषयानुसार निम्नलिखित चार वर्गों में रखे जा सकते हैं—

१—कृष्ण-लीला के प्रसङ्गों से सम्बन्धित – रास पञ्चाध्यायी, भँवरगीत, श्याम-सगाई, गोवर्द्धन-लीला, दशम-स्कन्ध भाषा, रुक्मिणी-मङ्गल और पद।

२—कृष्ण-भक्ति, तथा कृष्ण-चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य व्यक्तियों के प्रसङ्गों से युक्त—रूप मञ्जरी, विरह मञ्जरी, सुदामा-चरित्र और पद।

३—कृष्ण-भक्ति और कवि के आचार्यत्व के द्योतक ग्रन्थ अथवा रस रीति और भाषा ग्रन्थ—मान मञ्जरी, अनेकार्थ मञ्जरी और रस मञ्जरी।

४—कृष्ण-भक्ति के प्रकीर्णक विषयों से सम्बन्धित रचना, इस वर्ग के अन्तर्गत उनके सिद्धान्तात्मक ग्रन्थ और गुरु-महिमा, नाम महिमा, विनय आदि के स्फुट पद हैं—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, और पद।

नन्ददास के ग्रन्थों का काल-क्रमानुसार वर्गीकरण

नन्ददास की रचनाओं का निश्चय रूप से काल-क्रम निर्धारित करना कठिन है। नन्ददास ने अपने ग्रन्थों में कहीं भी रचना का संवत् नहीं दिया। कतिपय विद्वानों के कथनानुसार नन्ददास ने कुछ ग्रन्थों की वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले रचना की। लेखक का विचार है कि जिन ग्रन्थों को पीछे प्रामाणिक रूप से नन्ददास-कृत माना गया है वे सब कवि ने वल्लभ सम्प्रदाय में आने के बाद में ही लिखे थे। 'अष्टसखान की वार्ता' में लिखा है कि नन्ददास वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले रामानन्दी सम्प्रदाय में थे। उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थों का विषय कृष्णभक्ति से सम्बन्ध रखता है। इससे यही अनुमान होता है कि ये रचनाएँ सम्प्रदाय बदलने के बाद में ही कवि ने कीं। जिन ग्रन्थों में नन्ददास ने अपने रसिक मित्र का हवाला दिया है वे निश्चयात्मक रूप से वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद की ही रचनाएँ हैं, इसका प्रमाण यह है कि वह मित्र भी कवि द्वारा कृष्ण-लीला सुनने का इच्छुक, एक रसिक भक्त कहा गया है। इसके अतिरिक्त नन्ददास के इन १३ ग्रन्थों में तथा पदावली में वल्लभ-सम्प्रदायी भक्ति और सिद्धान्तों का किसी न किसी अंश में कथन अवश्य हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण लेखक ने प्रत्येक ग्रन्थ के विवरण के साथ किया है।

'अष्टसखान की वार्ता' के आधार से पता चलता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में जाने से

पहले नन्ददास जी पद बना कर गाते थे,[1] और उन्हें नाचने-गाने का बड़ा शौक था। परन्तु इस वार्ता में उनके किसी ग्रन्थ रचने का उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार नन्ददास के जितने ग्रन्थ लेखक ने प्रामाणिक माने हैं, उन सब को, कवि के वल्लभ-सम्प्रदाय में जाने के बाद की ही रचना माना है। अब प्रश्न यह होता है कि कवि ने इन ग्रन्थों को किस क्रम से लिखा। पदों के विषय में तो हम कह सकते हैं कि वे एक समय पर नहीं लिखे गये, कुछ पद, जैसा कि 'अष्टछाप वार्ता' में लिखा है, वल्लभ सम्प्रदाय में जाने के पहले भी बनाये गये होंगे। बाकी पदों को नन्ददास साम्प्रदायिक सेवा-विधि के अनुसार-समय समय पर जीवन पर्यन्त बनाते रहे। कवि ने किसी भी ग्रन्थ में ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं दिया, इसलिए निश्चित रूप से रचनाकाल-क्रम का निर्धारण करना कठिन है। ग्रन्थों की रचनाशैली, भावगाम्भीर्य और भाषा-विचार के आधार पर इस विषय में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

नन्ददास जी संवत् १६१६ वि० के लगभग वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुये और इसके बाद कुछ समय तक उन्होंने साम्प्रदायिक ग्रन्थों का अध्ययन और अपने समकालीन सम्प्रदायी तथा अन्य सम्प्रदायी सन्तों का सत्सङ्ग किया। नागरी प्रचारिणी-सभाकी खोज-रिपोर्ट[2] में नन्ददास के 'मान मञ्जरी' तथा 'अनेकार्थ मञ्जरी' दोनों ग्रन्थों का रचना-काल संवत् १६२४ वि० दिया हुआ है। खोज-रिपोर्ट में दिए हुये इस संवत् को उक्त ग्रन्थों का, निश्चयात्मक रूप से, रचनाकाल नहीं मान सकते, क्योंकि नन्ददास की 'मान मञ्जरी' अथवा 'अनेकार्थ मञ्जरी' की किसी भी प्राचीन प्रति के पाठ में रचना-काल का संकेत, लेखक के देखने में नहीं आया। 'नाम माला' अथवा 'मान मञ्जरी' ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने अपने गुरू के चरण-कमल और कृष्ण के कमल-नैनों की वन्दना की है, और कृष्ण-रूप गुरू का स्थान गोकुल बताया है।[3] श्री विट्ठलनाथ जी अपनी सम्प्रदायी गद्दी पर बैठने के बाद अधिकतर गोकुल में ही रहा करते थे, परन्तु परिवार-सहित वे अड़ेल से ब्रज गोकुल में संवत् १६२३ वि० में आये। वहाँ कुछ महीने रहने के बाद मथुरा चले गये और संवत् १६२८ वि० तक वहीं रहे। संवत् १६२८ वि० में ही विट्ठलनाथ जी ने गोकुल को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बनाया। यदि 'गोकुल जाको ऐन' का अर्थ कृष्ण और कृष्ण रूप श्री विट्ठलनाथ जी, दोनों के अर्थ में लेते हुये यह करें कि वे गोकुल में स्थायी रूप से रहते हैं तब तो यह रचना संवत्

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ, ३२६-३२७।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९०३ ई०, नं० १२१, अनेकार्थ नाम माला।

३—तच्चमामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल दल नैन।
जगकारण करुणार्णव, गोकुल जाको ऐन।
नाममाला, लहरी प्रेस, बनारस, १९१४ संस्करण, दोहा १।

१६२८ वि० के बाद की होनी चाहिए और यदि साधारण रूप से कहें कि "गोकुल जिसका स्थान है" उस दशा में इस ग्रन्थ का कोई रचना काल सं० १६२३ के बाद लगभग सं० १६२४ हो सकता है।

लेखक का विचार है कि नन्ददास ने पहले 'रस मञ्जरी' की रचना की, क्योंकि कवि ने उस ग्रन्थ के आदि में लिखा है,—"संसार में जो रूप,[1] जो प्रेम और आनन्द-रस विद्यमान है वह सब श्रीकृष्ण से ही प्रसूत है। और प्रेम तत्व को मनुष्य तब तक नहीं समझ सकता जब तक कि वह प्रेम के भेदों को नहीं जानता। प्रेम तत्व के भेदों को जाने बिना प्रेम का 'परिचय' (अनुभव) नहीं हो सकता। इसलिए मैं, हे मित्र! तुम्हें, रस-मञ्जरी सुनाता हूँ।" प्रेममार्गीय मित्र के और अपने प्रेम परिचय के लिए नन्ददास ने रस-मञ्जरी ही पहला ग्रन्थ लिखा होगा। अपनी काव्य-रचना के आरम्भिक काल में नन्ददास ने संस्कृत ग्रन्थों का सहारा लिया। कवि ने लिखा है कि वह 'अनेकार्थ' और नाममाला' 'ग्रन्थों को अपने मित्र की जानकारी के लिए लिख रहा है। परन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि मित्र की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ अपने ज्ञान का उत्कर्ष भी नन्ददास ने इन दो ग्रन्थों को लिखकर बढ़ाया था। इसके बाद जब कवि ने मित्र को भाषा और प्रेम के तत्वों का ज्ञान करा दिया, तब उसने कृष्ण के लीलात्मक ग्रन्थों को लिखा। लीलात्मक ग्रन्थों में पहले 'दशम स्कन्ध', श्याम-सगाई' और 'गोवर्द्धन-लीला' ग्रन्थ लिखे जान पड़ते हैं। इन ग्रन्थों की भाषा-शैली बहुत प्रौढ नहीं है, कथानक में न तो वर्णन अधिक है और न भाव-प्रदर्शन का उत्कर्ष ही अधिक है। 'दशम स्कन्ध' पर तो श्रीधर स्वामी के प्रभाव की भी छाप है, जिससे अनुमान होता है कि भागवत की 'सुबोधिनी' टीका के प्रभाव में आकर भी कवि, 'श्रीधर स्वामी की टीका के जिसको उसने सम्प्रदाय में आने से पहले पढ़ा होगा, भावों का किसी हद तक पक्षपात नहीं छोड़ सका है। इसलिए ये रचनाएँ भी आरम्भिक काल की ही होनी चाहिएँ।

इसके अनन्तर कवि की ख्याति फैली होगी जैसा कि 'अष्टसखान' की तथा अष्टछाप

१—ऐसेई रूप प्रेम रस जो है, तुम ते है तुम ही कर सोहै। ७
रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव को, निधरक बरनों ताहि। ८
× × ×
अरु जु भेद नायक के गुने, तेऊ मैं नीके नहिं सुने।
हाव भाव हेलादिक जिते, रति समेत समझावहु तिते।
जब लग इनके भेद न जाने, तब लगि प्रेम तत्व नहीं आने।
× × ×
बिन जाने यह भेद सब प्रेम न परिचय होय।
चरण हीन ऊँचे अचल, चढ़त न देख्यो कोय।
'नन्ददास', शुक्ल रसमञ्जरी पृ० ३१।

वार्ताओं से प्रकट है और फिर तभी कवि की प्रतिमा का विकास उत्तरोत्तर होता गया होगा। इसके बाद कवि ने 'विरहमञ्जरी', 'रूपमञ्जरी', लिखीं। इन दोनों ग्रन्थों की भाषा, और भाव व्यञ्जना की शैली, पीछे कहे हुये ग्रन्थों से अधिक प्रौढ़ है। परन्तु इन ग्रन्थों में भी 'रीति' प्रणाली का प्रभाव विद्यमान है।

इसके बाद कवि ने रोला छन्दों में 'रुक्मिणी-मङ्गल' ग्रन्थ लिखा होगा। इसमें भाषा की गठन अधिक प्रौढ़ और भावव्यञ्जना अपेक्षाकृत अधिक कवितामय है। लेखक का अनुमान है कि 'रुक्मिणी मङ्गल' के बाद कवि ने, 'रास पञ्चाध्यायी', 'भँवरगीत' और 'सिद्धान्त-पञ्चाध्यायी' की रचना की, क्योंकि इनकी भाषा, विचार और भाव सभी प्रौढ़ हैं और वर्णन शैली भी अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। उपर्युक्त कथन के आधार पर नन्ददास के ग्रन्थ, रचना के काल क्रमानुसार, नीचे लिखे क्रम में रखे जा सकते हैं—

१—रस मञ्जरी।
२—अनेकार्थ मञ्जरी।
३—मान मञ्जरी।
४—दशम स्कन्ध।
५—श्याम-सगाई।
६—गोवर्द्धन-लीला।
७—सुदामा-चरित्र।
८—विरह मञ्जरी।
९—रूप मञ्जरी।
१०—रुक्मिणी मङ्गल।
११—रास पञ्चाध्यायी।
१२—भँवरगीत।
१३—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

चतुर्भुजदास की रचना

चतुर्भुजदास के अध्ययन की आधारभूत सामग्री तथा लेखक की खोज के आधार से अष्टछापी चतुर्भुजदास के नाम पर दी जानेवाली निम्नलिखित रचनाएँ हैं, जिनकी प्रामाणिकता पर नीचे की पङ्क्तियों में विवेचन किया जायगा—

१—मधुमालती।
२—भक्ति प्रताप।
३—द्वादश यश।
४—हितजू को मङ्गल।
५—चतुर्भुजदास के छपे कीर्तन-संग्रहों में पद।
६—काँकरौली तथा नाथद्वार से लेखक को हस्तलिखित रूप में प्राप्त पद संग्रह।

मधुमालती ग्रन्थ के अष्टछापी चतुर्भुजदास कृत होने का उल्लेख मिश्रबंधुओं ने नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[1] के आधार से किया है। प्रेममार्गीय कवि मञ्झन-कृत एक

---

[1]—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९०२, न० ४४, तथा १९२३-२४, न० ४

मधुमालती

'मधुमालती' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। मधुमालती के एक रचयिता चतुर्भुजदास कायस्थ का भी उल्लेख खोज रिपोर्ट[1] में तथा मिश्रबन्धु-विनोद[2] में आता है। मधुमालती की कथा की एक पद्य-बद्ध खण्डित प्रति मयाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय में भी है, परन्तु प्रति खण्डित होने के कारण उसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं होता। इस प्रति की भाषा-शैली इस बात को स्पष्ट बताती है कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के चतुर्भुजदास का नहीं है। उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त अन्य किसी मधुमालती नामक ग्रन्थ के रचयिता का नाम सुनने अथवा किसी इतिहास-ग्रन्थ में देखने में नहीं आता। लेखक को यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए ग्रन्थ की अन्तरङ्ग परीक्षा तो हो ही नहीं सकती; परन्तु लेखक का अनुमान है कि अष्टछापी चतुर्भुजदास ने इस नाम का कोई ग्रन्थ न लिखा होगा। पीछे कहा जा चुका है कि अष्टछाप का काव्य कृष्ण-चरित्र अथवा कृष्ण-भक्ति को छोड़कर किसी भी लौकिक विषय अथवा नायक के चरित्र से सम्बन्ध नहीं रखता। अपने गुरू और गुरुवंश का वर्णन उन्होंने अवश्य किया है, परन्तु उन्होंने गुरू और गुरू के वंशज, दोनों को अभौतिक विभूतियाँ ही मानकर ऐसा किया है। मधुमालती के शीर्षक से ज्ञात होता है कि मञ्झन की मधुमालती के कथानक की तरह इसका विषय भी लौकिक ही होगा। वल्लभसम्प्रदायी संग्रहालयों में भी यह ग्रन्थ नहीं मिलता। यह ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास कृत नहीं कहा जा सकता।

भक्ति-प्रताप

अष्टछाप के चतुर्भुजदास द्वारा रचित, 'भक्ति-प्रताप' नाम का कोई ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आया। कवि के प्राप्त पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसने 'भक्तन की लीला', 'भक्तन की प्रार्थना', 'आसक्त की अवस्था', 'भक्तन की आसक्ति को वर्णन' आदि विषयों पर भक्ति-सम्बन्धी अनेक पद लिखे हैं। इससे अनुमान हो सकता है कि 'भक्ति-प्रताप' शीर्षक के अन्तर्गत इनके ऐसे ही कुछ पद कहीं एकत्र होंगे। परन्तु जब तक ग्रन्थ देखने को न मिले तब तक उसके विषय में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

हित हरिवंश जी के शिष्य एक चतुर्भुजदास भक्त कवि और हुये हैं जिनका उल्लेख अष्टछापी चतुर्भुजदास की जीवन-चरित्र-सामग्री के विवेचन में पीछे हो चुका है। नाभादास जी ने हित सम्प्रदायी चतुर्भुजदास के विषय में लिखा है कि इन्होंने 'भक्ति-प्रताप' गाकर सबकी दास-भक्ति को दृढ़ कर दिया। इससे अनुमान होता है कि 'भक्ति प्रताप' ग्रन्थ के रचयिता हित हरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास ही हैं। 'मिश्रबन्धु विनोद' में भी हित सम्प्रदाय के एक चतुर्भुजदास का उल्लेख है उनके बनाये हुये (विनोद में) निम्नलिखित पद तथा ग्रन्थ दिये हुये हैं:[3]—

१—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२, नं० ४४।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, नवीन संस्करण, पृ० ८१७।

३—मिश्रबन्धु-विनोद, पुराना संस्करण, पृ० ४०१-४०२।

१—धर्म-विचार ५० पद।	८—मोहिनी-जस।
२—बानी ६८ पद।	९—अनन्य भजन।
३—भक्ति-प्रताप।	१०—राधा-प्रताप।
४—सन्त-प्रताप।	११—मङ्गल-सार।
५—सिच्छाचार।	१२—विमुख मुख भञ्जन।
६—हितोपदेश।	१३—द्वादश यश।
७—पतितपावन।	१४—हित जू को मङ्गल।

'मिश्रबन्धु-विनोद' में जिन ग्रन्थों को हित सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास के लिखे कहा गया है, उन्हीं में से कुछ को मिश्रबन्धुओं ने अष्टछाप के चतुर्भुजदास के नाम पर दे दिया है। लेखक के विचार से 'विनोद' की यह भूल है। 'विनोद' के बाद के किसी इतिहासकार ने इस भूल की ओर ध्यान नहीं दिया। खोज-रिपोर्ट[1] में डा० श्यामसुन्दरदास ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि मिश्रबन्धु-विनोद में चतुर्भुजदास नाम के कवियों की रचनाओं के विषय में गड़बड़ मत है।

खोज-रिपोर्ट में चतुर्भुजदास-कृत 'भक्ति-प्रताप' ग्रन्थ की सुरक्षा का स्थान दतिया राज पुस्तकालय दिया गया है। दतिया से लेखक ने इस ग्रन्थ के विषय में सूचना मँगाई थी। वहाँ से प्राप्त, इस ग्रन्थ के उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह ग्रन्थ हित सम्प्रदायी चतुर्भुजदास का ही है। दतिया से प्राप्त इस ग्रन्थ के उद्धरणों का परिचय नीचे दिया जाता है:—

आदि:—सिद्धि श्री गणेशायनमः, भक्ति प्रताप लिख्यते

नमो नमो श्री हित हरिवंश, सुमिरन होइ कलुष मनंस।
निमल भक्ति गति रति मनुबसै, हरिगुन सागर अन्तु न लहै।
भक्ति प्रताप कछू कथि कहौ, दृढ़ प्रतीति सन्तन की लहौं।
जैसे नीरु पीरु मिलि रहै, हंसनु बौरे और न लहै।
ज्यों जु भक्ति भक्तन लही।
विश्रित आगम निगम पुरान, पुनि काढै सुक परम सुजान।
भक्ति प्रतापहि गाइहौं।[2]

× × ×

१—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९२२-२४, नं० ४।
२—अन्तिम चरण 'भक्ति-प्रतापहिं गाइहौं" कुछ पङ्क्तियों के बाद टेर-रूप से बार-बार ग्रन्थ में दुहराया गया है।

अन्तः—जो यह जसु नीके करि सुने, अर्थ विचारि कथै मन गुनै।
ताहि भगति उपजे घनी ॥६०॥
मुरली धरनु चरनु प्रतिवास, सुमिरतु निके चतुर्भुजदास।
भक्ति प्रतापहि गाइहौं।

इति श्री भक्ति प्रताप सम्पूर्ण। समर्प सुभमस्तु कुवार सुदि १० सं० १७६४ वि०।

इस विवरण से तथा लेखक के उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि 'भक्ति-प्रताप' ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास द्वारा रचित नहीं है।

द्वादश-यश

मिश्रबन्धुओं ने 'विनोद' में, अष्टछाप के चतुर्भुजदास का परिचय देते समय शङ्का की है कि 'द्वादश यश' ग्रन्थ, सम्भव है, अष्टछाप के चतुर्भुजदास का लिखा नहीं है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल उन्होंने सवत् १५६० वि० दिया है।[1] परन्तु उन्होंने निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा कि यह ग्रन्थ अष्टछापी कवि का नहीं है। अष्टछापी चतुर्भुजदास जी का जन्म-समय लेखक ने लगभग संवत् १५९७ वि० निर्धारित किया है और चतुर्भुजदास के गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ का जन्म-सम्वत् १५७२ वि० है। इसलिए सम्वत् १५६० वि० का रचा हुआ ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास का किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता, जब कि कवि का इस संवत् तक जन्म ही नहीं हुआ था। खोज-रिपोर्ट में इस बात की सूचना है कि द्वादश-यश के रचयिता चतुर्भुजदास ने अपने गुरु हित जी को आदरसूचक शब्दों में कई स्थानों पर याद किया है। फिर 'विनोद' में यही ग्रन्थ हित सम्प्रदायी चतुर्भुजदास के नाम पर दिया भी गया है। इससे सिद्ध है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास का नहीं है।

हितजू को मङ्गल

'भक्तमाल', 'विनोद' तथा नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्टों से सिद्ध है कि चतुर्भुजदास नाम के कई कवि हो गये हैं। दो चतुर्भुजदास तो गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के ही शिष्य थे, अष्टछापी चतुर्भुजदास गोरवा क्षत्री थे और दूसरे मिश्र ब्राह्मण थे जिन्होंने २५२ वार्ता के अनुसार गोवर्द्धननाथ जी के कवित्त लिखे थे।[2] ये दोनों चतुर्भुजदास गोस्वामी विट्ठलनाथ तथा गोवर्द्धननाथ जी के अनन्य भक्त थे और अपने गुरू तथा अपने इष्ट भगवान् की प्रशसा के अतिरिक्त इन्होंने किसी अन्य मार्गीय गुरु की प्रशंसा या स्तुति-निन्दा नहीं की। पीछे कहा जा चुका है, नाभादास जी द्वारा कथित, दो चतुर्भुजदासों मे, एक राजा चतुर्भुजदास थे, और दूसरे हितहरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास थे, जो वृन्दावन में रहा करते थे। नाभादास जी कहते हैं—"चतुर्भुज ने श्री हरिवश के चरण बल से राधावल्लभ भजन की अनन्यता

१—मिश्रबन्धु विनोद, पृ० २४६।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, चतुर्भुजदास ब्राह्मण वार्ता, पृ० ३३३, वें० प्रे०।

बढ़ाई और गौड़ देश को एक पवित्र तीर्थ स्थान बना दिया। इनकी कविता में मुरलीधर की छाप रहती थी और वह निर्दोष होती थी। ये सदा प्रेम-रस में लीन रहते थे।"[1]

इस विवरण से सिद्ध होता है कि 'हितजू को मङ्गल' नामक ग्रन्थ भी हितहरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास का लिखा हुआ है। भक्तमाल में दिए हितहरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास के वृत्तान्त को न देखने की भूल हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारों ने की है। मिश्रबन्धु-विनोद में, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, हित सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास के नाम से 'हित जू को मङ्गल' नामक ग्रन्थ दिया हुआ है।[2]

अन्य अष्टछाप कवियों की तरह चतुर्भुजदास के पद भी तीन भागों में प्रकाशित वल्लभ

छपे कीर्तन-सङ्ग्रहों में पद

सम्प्रदायी कीर्तन-सङ्ग्रह, 'राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' तथा 'राग-रत्नाकर' में मिलते हैं। 'राग-सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' के प्रथम तथा द्वितीय भागों में कवि के ५६ पद तथा राग-रत्नाकर' में ५ पद मिलते हैं। वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-सङ्ग्रह के तीनों भागों में चतुर्भुजदास के पदों की सङ्ख्या विषयानुसार इस प्रकार हैं:—

वल्लभसम्प्रदायी छपे कीर्तन संग्रहों में चतुर्भुजदास जी के पद

कीर्तन-संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला

विषय	पद संख्या	विषय	पद संख्या
१—जन्माष्टमी बधाई के पद	३	२—पालना के	२
३—ढाढी के	१	४—बाललीला के	३
५—श्री राधाजी की बधाई के	३	६—दान के	३
७—दशहरा के	१	८—रास के	५
वर्षोत्सव, अंश दूसरा			
९—गाय जगायवे के	२	१०—कान जगायवे के	१
११—गोवर्धन पूजा के	४	१२—इन्द्र-मान-भङ्ग के	२
१३—गौचारन के	१	१४—देव प्रबोधनी के	१
१५—श्री गोसाईं जी की बधाई के	१२	१६—फूल मण्डली के	६
१७—चन्दन के	४	१८—मल्हार कुसुम्बी घटा के	२
१९—श्यामघटा के	१	२०—चुनरी के	१
२१—छाक के	२	२२—हिंडोरा के	६
			६६

१—भक्तमाल, नाभादास, छंद नं० १२३।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ४०१—४०२, पुराना संस्करण।

विषय	पद-सङ्ख्या	विषय	पद-सङ्ख्या
कीर्तन संग्रह, भाग २			
२३—बसन्त के	७	२४—धमार के	११
२५—डोल के	१		
			१६
			कुल ८५

विषय	पद-सङ्ख्या	विषय	पद-सङ्ख्या
कीर्तन-सङ्ग्रह, भाग ३			
२६—श्री आचार्य महाप्रभु के	१	२७—जगायबे के	४
२८—कलेऊ के	२	२९—मङ्गलआरती के	४
३०—पण्डिता के	६	३१—हिलग के	४
३२—दधिमथन के	१	३३—शृङ्गार के	८
३४—उराहने के	४	३५—भोजन के	१
३६—छाक के	१	३७—भोग समय के	२
३८—गाय बुलायबे के	१	३९—आवनी के	२
४०—घया के	३	४१—सेन के	२
४२—मान छुटवे के	१	४३—पौढिवे के	१
४४—वैष्णवन के नित्य नेंम के	१		
			५२
			कुल १३७

हस्तलिखित रूप में चतुर्भुजदास के पद काँकरौली विद्याविभाग तथा नाथद्वार के पुस्तकालयों में लेखक को चतुर्भुजदास के पदों के सङ्ग्रह उपलब्ध हुये हैं। उक्त दोनों पुस्तकालयों के जिन हस्तलिखित पद-सङ्ग्रहों का अध्ययन लेखक ने किया है उनका विवरण नीचे दिया जाता है—

काँकरौली विद्या-विभाग में चतुर्भुज-दास के कीर्तन सङ्ग्रह

प्रति नं० ६ / ३—कुम्भनदास के कीर्तनों के परिचय में इस प्रति का विवरण दिया जा चुका है। इस प्रति में सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास तथा गोविन्द स्वामी के पदों का सङ्ग्रह है। पीछे यह भी कहा गया है कि यह प्रति सम्वत् १७५१ वि० की लिखी हुई है। इसमें चतुर्भुज-दास के पदों का सङ्ग्रह "कीर्तनावलि चतुर्भुजदास" के नाम से है तथा इन्हीं पदों के साथ एक पोथी 'चतुर्भुजदास की दान-लीला' नाम की है। कीर्तनावलि में कवि के १८६ पद हैं जो विषयानुसार विभाजित हैं। विभिन्न विषयों के शीर्षकों में दिये हुये पदों की सङ्ख्या इसमें नीचे लिखे प्रकार से है :—

विषय	पद-सङ्ख्या	विषय	पद-सङ्ख्या
१—कृष्णजन्म समय	१	२—प्रभु जू को शयनोछित के	१
३—मङ्गलआरती समय	५	४—बाललीला के	३
५—उराहना, गोपीजन को श्री यशोमति सों	१	६—यशोदा जू के बचन गोपिन प्रति, उराहने को प्रत्युत्तर	१
७—श्री यशोदा जू के बचन साक्षात् श्री कन्हैया जू के प्रति	२	८—खण्डिता के	१४
९—बन पाउ धारण वर्णन	२	१०—वन क्रीड़ा के	३
११—श्री प्रभुजी को बनते पाउ धारन के	८	१२—बेनु-गान के	३
१३—दीपमालिका तथा अन्नकूट समय के	८	१४—आसक्त की अवस्था के	१०
१५—साक्षात् प्रभु के बचन आसक्त के श्री गोपी जन सों	१	१६—आसक्त के बचन, भक्तनि के	१६
१७—साक्षात् भक्तन की आसक्ति को वर्णन	११	१८—अथ दानलीला के	५
१९—मानापनोदन के	२१	२०—युगल स्वरूप को सुरतात वर्णन के	७
२१—प्रभु जी को स्वरूप वर्णन के	९	२२—स्वामिनी जू को स्वरूप शृङ्गार वर्णन के	५
२३—युगल रस-वर्णन के	१	२४—स्वामिनी जू की कुमार लीला के	१
२५—गोदोहन-प्रसङ्ग के	५	२६—श्री वल्लभ-यशोद्गान के	११
२७—वर्षा ऋतु-वर्णन के	३	२८—हिंडोल, प्रभु जू को झूलिवे के	६
२९—भक्तन की प्रार्थना के	५	३०—अक्षय तृतीया के समय के	३
३१—रास के	६	३२—भ्रमरगीत विरह दशा को प्रसङ्ग, उद्धव जू को गोकुल आगमन मथुरा विषे प्रभु प्रति कहनि के	१
३३—भक्तनि की लीला के	१	३४—फूल मण्डली के समय के	२
३५—बसन्त समय के	३	३६—समीप विरह के	१
		कुल पद सङ्ख्या	१८६

प्रति न० २ / १ "कीर्तन सङ्ग्रह चतुर्भुजदास"—इस प्रति में लिपि अथवा प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नहीं दिया हुआ है। परन्तु देखने से पुस्तक लगभग १५० वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। पदों का विभाजन इसमें, कृष्णदास के पदों के समान, रागों के

अन्तर्गत किया गया है। इस प्रति में दिये हुये, चतुर्भुजदास के पदों की रागानुसार सङ्ख्या नीचे लिखे प्रकार से हैं। इसमें कुल पद-सङ्ख्या १८६ है।

राग	पद-सङ्ख्या	राग	पद-सङ्ख्या
भैरव	१२	मलार	११
विलावल	१२	नटनारायण चर्चरी	११
देव गन्धार	७	गौरी	२३
टोड़ी	१	कल्याण	४
धनासिरी	१४	कानरो	८
जैत श्री	३	केदारा	१४
रामग्री	६	विहागरो	१
आसावरी	४	सामेरी	१
सारङ्ग	४८	बसन्त	३
मालव गौरा	३		
			कुल पद १८६

प्रति नं० १६/५—"चतुर्भुजदास जी के पद"—इस पोथी में भी कोई संवत् नहीं दिया हुआ है, परन्तु पोथी यह भी लगभग १५० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। इसमें कवि के १६२ पद हैं जो रागों के अनुसार विभाजित हैं। लीला अथवा विषय का विभाजन इसमें नहीं हैं। इसमें दिये हुये रागों की सङ्ख्या तथा राग वे ही हैं जो ऊपर प्रति नं० २/१ में आये हैं।

प्रति नं० ७२/१—इन पोथी में चतुर्भुजदास मिश्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सेवक द्वारा विरचित "भाषा संग्रह शान्त रस" नामक ग्रन्थ है जिसकी रचना का संवत् १७०२ वि० दिया हुआ है। ये चतुर्भुजदास मिश्र, अष्टछाप के चतुर्भुजदास गोरवा क्षत्री से भिन्न हैं।

संवत् सत्रह से बरष बीती द्वै अधिकाइ।
आश्विन सुदि दशमी शनौ ग्रन्थ भयो सरसाइ

प्रति नं० ७४/७—"चतुर्भुजदास जी के पद"। इस पोथी में चतुर्भुजदास के २६२ पद हैं जो विषय और लीला के अनुसार विभाजित हैं। पोथी में पदों की प्रतिलिपि का समय संवत् १८२७ वि० दिया हुआ है। ये पद काँकरौली वाली प्रति के पदों से कहीं-कहीं पाठभेद के साथ मिलते हैं। काँकरौली की प्रतियों से अतिरिक्त जो पद इसमें हैं वे पीछे कहे विषयों में ही थोड़े थोड़े बँटे हुये हैं।

नाथद्वार निज-पुस्तकालय में चतुर्भुजदास के कीर्तन संग्रह

चतुर्भुजदास की प्रामाणिक रचना

ऊपर दिये हुये विवेचन का यह निष्कर्ष है कि चतुर्भुजदास की प्रामाणिक रचना, लेखक के विचार से, काँकरौली तथा नाथद्वार में प्राप्त होनेवाले पद-संग्रह तथा वल्लभसम्प्रदायी छपे कीर्तन-संग्रहों में प्राप्त पद ही हैं। एक दूसरी प्रामाणिक रचना 'दानलीला' भी है जो वास्तव में कवि का एक लम्बा पद है। इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। सम्भव है, अन्यत्र वैष्णव मन्दिरों में इनके और भी पद हों लेखक ने चतुर्भुजदास के काव्य तथा विचारों के अध्ययन के लिए इन्हीं दो प्रकार के पद-संग्रहों का आधार लिया है। 'मधुमालती', 'भक्ति प्रताप' 'द्वादशयश' तथा 'हितजू को मंगल' ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास की रचना नहीं है।

गोविन्दस्वामी की रचनाएँ

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार तथा लेखकों ने गोविन्दस्वामी के किसी ग्रन्थ अथवा पद-संग्रह का उल्लेख नहीं किया। अब तक दस बीस स्फुट पदों को छोड़कर हिन्दी-संसार को इनका कोई पद-संग्रह उपलब्ध नहीं हुआ था; लेखकों ने बहुधा यही कथन किया है, "इनके स्फुट पद इधर-उधर मिलते हैं।[1]" अष्टछाप के अन्य कवियों के पद-संग्रह की भाँति इस कवि का भी पद-संग्रह लेखक को खोज में प्राप्त हुआ है। हस्तलिखित पद संग्रह के अतिरिक्त, पीछे कहे वल्लभ सम्प्रदायी छपे हुये कीर्तन-संग्रहों में गोविन्दस्वामी के पद मिलते हैं। नीचे की पंक्तियों में इन दोनों प्रकार के पद-संग्रह का परिचय दिया जाता है।

छपे कीर्तनों में, 'राग-सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' में गोविन्द स्वामी के विविध रागों के अन्तर्गत लगभग ६५ तथा 'राग-रत्नाकर' में केवल दस पद हैं। वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों के पीछे कहे तीनों भागों में इस कवि के पदों की सङ्ख्या विषयानुसार नीचे लिखे प्रकार से है:—

वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में गोविन्ददास जी के पद।

कीर्तन संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला

१—जन्माष्टमी की बधाई के पद	६	२—पालना के	३
३—ढाढी के	२	४—बाललीला के	१
५—राधाजी की बधाई के	३	६—दान के	१८
७—वामन जी के	१	८—देवी पूजन के	१
९—दशहरा के	१	१०—रास के	५

१—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, संवत् १९९७ संस्करण, पृ० २१७। हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७७।

वर्षोत्सव, अंश दूसरा

११—हटरी के	१	१२—गोवर्द्धन-लीला के	१
१३—इन्द्रमान-भङ्ग के	२	१४—गौचारन के	२
१५—देव-प्रबोधनी के	१	१६—गुसाईं जी की बधाई के	११
१७—गिरधर जी की बधाई के	३	१८—फूल मण्डली के	५
१९—रामनवमी की बधाई के	१	२०—श्री आचार्य जी की बधाई के	६
२१—चन्दन के	२	२२—स्नान-यात्रा के	१
२३—श्री रथयात्रा के	३	२४—मल्हार के	११
२५—ग्वाल पगा के	१	२६—चुनरी के	१
२७—लहरिया के	१	२८—हिंडोरा के	११
२९—पवित्रा के हिंडोरा के	३		
			१११

कीर्तन-संग्रह, भाग २

३०—बसन्त के पद	४	३१—धमार के	१७
३२—डोल के	२		
			२३
			कुल १३१

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

३३—श्री आचार्य जी महाप्रभु के	१	३४—यमुना जी के	२
३५—जगायवे के	१	३६—खण्डिता के	१०
३७—कलेऊ के	२	३८—न्हवायवे के	१
३९—व्रतचर्या के	१	४०—दधिमथन के	३
४१—कूल्हे के	३	४२—पनघट के	१
४३—फलफलारी के	१	४४—भोजन बुलायवे के	१
४५—राजभोग सम्मुख के	६	४६—कुञ्ज के	३
४७—मान कुञ्ज के	५	४८—उत्थापन के	
४९—भोग समय के	१४	५०—गाय बुलायवे के	१
५१—आवनी के	६	५२—मान के	१५
५३—शृङ्गार बड़े होयवे के	१	५४—चोरी के	६
५५—सेन के	३१	५६—पौढ़वे के	४
५७—विनती के	१	५८—वैराग्य के	१
			१२३
			कुल २५७

उक्त छपे पदों के अतिरिक्त गोविन्दस्वामी के २५२ पदों का एक और छपा हुआ पद-संग्रह लेखक के देखने में आया है।[1] यह प्रति लीथो की छपी है और इसमें पदों के अतिरिक्त कोई भूमिका नहीं दी गई है। उक्त संग्रह के अतिरिक्त जो हस्तलिखित संग्रह लेखक को अध्ययन के लिए उपलब्ध हुए हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है:—

लेखक के पास गोविन्दस्वामी के हस्तलिखित कीर्तन

सात वर्ष पहले गोविन्दस्वामी के २५२ पदों का एक हस्तलिखित पद-संग्रह लेखक को गोकुल में प्राप्त हुआ था जो अब लेखक के पास है। वल्लभ-सम्प्रदायी मुख्य मन्दिरों तथा विद्या-केन्द्रों में, इस कवि की रचनाओं के विषय में लेखक को सूचना मिली कि इनके केवल २५२ पद ही प्रसिद्ध हैं। बाद को भी गोविन्दस्वामी के जितने पद-संग्रह लेखक के देखने में आये उनमें भी २५२ पदों के संग्रह बहु संख्या में थे। कुछ पद-संग्रहों में केवल दस-बीस पद अधिक थे। लेखक के पद-संग्रह के पद रागों के अनुसार विभाजित हैं। विभाजन इस प्रकार है:—

राग	पद-सङ्ख्या	राग	पद-सङ्ख्या
१—विभास	१२	११—गौरी	२२
२—विलावल	४	१२—राग श्री	५
३—रामकली	३	१३—इमन	३१
४—देव गन्धार	२	१४—कान्हरो	२८
५—आसावरी	३	१५—केदारो	२६
६—टोड़ी	६	१६—विहाग	६
७—धन्याश्री	४	१७—सङ्कराभरन केदारो	६
८—सारङ्ग	३७	१८—मलार	१५
९—नट	२३	१९—बसन्त	२
१०—पूरबी	८		
			कुल पद २५२

इस प्रति में प्रतिलिपि की कोई तिथि नहीं दी हुई है। देखने में संग्रह लगभग पचास-साठ वर्ष पुराना ज्ञात होता है। बहु संख्या में पद राधाकृष्ण की कुञ्ज और किशोर-लीलाओं से ही सम्बन्ध रखते हैं। कुछ पद गोदोहन, गोचारण तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की स्तुति के हैं।

१—इस प्रति का नाम "गोविन्दस्वामी के कीर्तन" है। ज्योतिर्विद चतुर्भुजदास कृष्णदास ने बम्बई जगदीश्वर छापेखाने से संवत् १९४० वि० अथवा सन् १८८३ ई० में प्रकाशित किया था।

काँकरौली विद्या विभाग में गोविन्दस्वामी के पदों के संग्रह

प्रति नं० १६/३—"गोविंदस्वामी के कीर्तन" नामक प्रति में रागों में विभाजित कवि के २५२ पद हैं। यह प्रतिलिपि संवत् १८६२ वि० अथवा १८६३ वि० माघ शुक्ल १ की लिखी है। लेखक की प्रति के पाठों से इसमें कहीं कहीं अन्तर है।

प्रति नं० ४६/२—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति में भी रागानुसार कवि के वे ही २५२ पद हैं जो प्रति नं० १६/३ में हैं। प्रतिलिपि का कोई इसमें सम्वत् नहीं है।

प्रति नं० ३४/५—"गोविन्दस्वामी के २५२ कीर्तन।" इस प्रति में भी २५२ ही पद हैं परन्तु इसमें पीछे कही प्रतियों से कुछ राग अधिक हैं जैसे मालव राग, सुघक कल्याण तथा सोरठ। यह प्रति देखने में अन्य प्रतियों की तुलना में अधिक पुरानी ज्ञात होती है।

प्रति नं० ६/३—पीछे कहा जा चुका है कि इस प्रति में अष्टछाप के कई कवियों का पद-संग्रह है तथा यह सम्वत् १७५१ वि० या १७६१ वि० की लिखी हुई है। इसमें भी गोविन्द स्वामी के २५२ पदों ही का संग्रह है जो रागानुसार विभाजित हैं।

नाथद्वार निज पुस्तकालय में गोविन्द स्वामी का पद-संग्रह

प्रति नं० १६/६—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति में रागानुसार विभाजित गोविन्द स्वामी के २५२ पद हैं और लेखक के पास की तथा काँकरौली की प्रतियों में दिये हुये पद ही इसमें हैं। प्रतिलिपि सम्वत् १७३३ वि० सावन सुदि १० बुधवार की लिखी है। पदों के अन्त में यही तिथि दी हुई है।

प्रति नं० १६/४—यह संग्रह भी कवि के २५२ पदों का संग्रह है जो अनुमान से सम्वत् १७७८ वि० की प्रतिलिपि है। पदों के अन्त में कुछ हिसाब सम्वत् १७७८ वि० का दिया हुआ है, उससे अनुमान होता है कि प्रतिलिपि इस सम्वत् से पहले ही हुई होगी।

प्रति नं० १६/५—"गोविन्दस्वामी के २५२ पद।" इस प्रति में कोई तिथि नहीं है।

प्रति नं० १६/२—"गोविन्दस्वामी के २५२ पद।"

प्रति नं० १६/७—'गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति में कवि के २५६ पद हैं जिनका विभाजन रागानुसार ही है। इस प्रति में कोई सम्वत् नहीं है। पदों का विषय वही है, जो पीछे कहे २५२ पदों का है। पीछे कहे २५२ पदों का समावेश २५६ पदों में है। जो चार पद अधिक हैं वे युगल-लीला के ही हैं।

प्रति नं० १६/८—इस प्रति में भी रागानुसार विभाजित २५२ पद हैं। प्रतिलिपि सम्वत् १८७६ वि०, अगहन सुदी १२ की है।

प्रति नं० १६/६—"गोविन्दस्वामी के पद।" इसमें भी २५२ ही पद है। साथ में कुछ पद छीतस्वामी के भी हैं।

प्रति नं० १६/१०—इस प्रति में गोविन्दस्वामी के २५१ पद हैं। गोविन्द स्वामी के पदों के अतिरिक्त इसमें सूरदास के कुछ दृष्टकूट पद भी अर्थ-सहित दिये हुये हैं। प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नहीं दिया गया है।

प्रति नं० १६/२—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति में गोविन्द स्वामी के पदों की संख्या २७५ है। पदों का विषय वही है जो पीछे कहे २५२ पदों का है और जिनमें इन २५२ पदों का भी समावेश है। प्रति देखने में पुरानी है, इसमें कोई तिथि नहीं दी हुई है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि गोविन्द स्वामी के २५२ पद ही उनकी प्रामाणिक रचना है। २५२ पदों के अतिरिक्त जो पद उनके मिलते हैं जिनमें से कुछ तो छपे कीर्तन-संग्रहों में हैं और कुछ नाथद्वार की प्रति नं १६/२ में है, वे कवि की सन्दिग्ध रचना कही जा सकती हैं। सम्भव है, कवि ने अपने २५२ पदों के संग्रह को बनाने के बाद अधिक पद लिखे हों अथवा वल्लभ-वैष्णवों ने २५२ वार्ता के अनुसार कवि के केवल २५२ पद ही एकत्र किये हों, बाकी दस-पाँच यों ही प्रचलित हों। तीसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि किसी संग्रहकर्ता ने अतिरिक्त पदों को बना कर जोड़ दिया हो। भाषा-शैली के आधार से उन पदों को प्रक्षिप्त कहना कठिन है। लेखक ने इस अध्ययन में कवि के २५२ पदों के संग्रह से ही काम लिया है।

छीतस्वामी की रचना

अष्टछाप के अन्य कई कवियों की तरह छीतस्वामी की रचनाओं के विषय में, हिन्दी-साहित्य के इतिहास[1] तथा कविता संग्रहों में कोई स्पष्ट सूचना नहीं है। केवल मिश्र-बन्धुओं ने इनके २४ पदों का संग्रह अपने पास बताया है।[2] छीतस्वामी के पद भी वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन संग्रहों में मिलते हैं। पीछे कहे कीर्तन-संग्रह के तीन भागों में कवि द्वारा रचित पदों की संख्या निम्नलिखित प्रकार से हैं:—

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ४१८।
हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१७।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७६।
२—मिश्रबन्धु विनोद, प्र० भाग, पृ० २२७, चौथा संस्करण।

वल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन संग्रहों में छीतस्वामी के पद

कीर्तन संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला

विषय	पद संख्या	विषय	पद संख्या
१—जन्माष्टमी की बधाई के	×	२—पालना के	२
३—दान के	१	४—रास के	१
वर्षोत्सव, अंश दूसरा			
५—गाय खिलावन के	१	६—इन्द्रमान भङ्ग के	१
७—श्री गोसाईंजी के बधाई के	२४	८—फूल मण्डली के	२
९—श्री आचार्यजी की बधाई के	२	१०—कलेऊ के	१
११—गङ्गादशमी के	१	१२—मल्हार के	४
१३—हिंडोरा के	१	१४—राखी के	१
कीर्तन संग्रह, भाग २			
१५—बसन्त के	३	१६—धमार के	३
कीर्तन संग्रह, भाग ३			
१७—श्री आचार्य महाप्रभु के	१	१८—गुसाईं जी की बधाई के	१
१९—यमुना जी के	१	२०—न्हवायवे के	१
२१—खण्डिता के	२	२२—शृङ्गार के	३
२३—आवनी के	२	२४—सैन के	१
२५—विनती के	३	२६—आसरे के	१
			कुल ६४

राग-रत्नाकर—१ पद।

छपे हुये पदों के अतिरिक्त छीतस्वामी के पदों के जो संग्रह लेखक के देखने में आये हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

प्रति नं० २४/८ छीतस्वामी के इस पद-संग्रह में केवल ७२ पद हैं जो रागों के अनुसार लिखे हुये हैं। इस प्रति में कोई रचना अथवा प्रतिलिपि-काल नहीं है। देखने में पोथी पचास-साठ साल पुरानी ज्ञात होती है। इस संग्रह के अन्त में लिखा है—"इति श्री छीतस्वामी के पद सम्पूरण दसकत द्वारकादास चेटा नन्दान्ददास के।" लेखक ने इस संग्रह से ३८ पद छाँटकर लिये हैं।

काँकरौली विद्या-विभाग में छीतस्वामी का पद-संग्रह

उपर्युक्त पद संग्रह के अतिरिक्त काँकरौली तथा नाथद्वार में लेखक को छीतस्वामी का अन्य कोई संग्रह नहीं मिला। मथुरा में पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी के पास भी छीतस्वामी के पदों का एक छोटा संग्रह है, जो उन्हीं का संगृहीत किया हुआ है। छपे कीर्तन-संग्रहों में मिलनेवाले तथा कुछ मौखिक रूप में, कीर्तन रूप में प्रचलित पदों को ही चतुर्वेदी जी ने संग्रहीत किया है। चतुर्वेदी जी का संग्रह रागानुसार तथा विषयानुसार, दोनों प्रकार का है। इस संग्रह से भी लेखक ने कुछ पद लिखे हैं।

मिश्र-बन्धुओं के पास के ३४ पदों का संग्रह

लेखक ने इस संग्रह के देखने का प्रयत्न किया। परन्तु खेद है कि मिश्रबन्धुओं को अपने पुस्कालय में ढूंढ़ने पर भी अब ये पद नहीं मिले। इसलिये संग्रह के विषय में कोई विचार नहीं दिये जा सकते।

काँकरौली विद्याविभाग से पं० जवाहरलाल जी के पद-संग्रह से, तथा छपे कीर्तन-संग्रहों से एकत्र कर लेखक ने छीतस्वामी के पदों का एक संग्रह किया है जिसको वह कवि की प्रामाणिक रचना समझता है। इन पदों की प्रामाणिकता का 'सबूत' यही है कि ये पद वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन संग्रहों में तथा विद्या-केन्द्रों में मिलते हैं। इस अध्ययन में कवि के इन्हीं पदों का आधार लिया गया है।